शांति के नूतन क्षितिज

(NEW DIMENSIONS OF PEACE by CHESTER BOWLES)

लेखक

चेस्टर बोल्स

अनुवादक

प्रोफेसर इन्दुप्रकाश पाण्डेय

पर्ल पब्लिकेशन्स प्राइवेट लिमिटेड,

बम्बई-१

मूल्य – एक रुपया

अनुक्रमणिका

आमुख ६

पहला भाग—विजय से अवरोध तक ११

(१) योरोप मे प्रोत्साहन १३

(२) मध्यवर्ती ससार मे उथल-पुथल . . २४

दूसरा भाग—मास्को में मार्क्स का आगमन . ३३

(३) रूसी प्रस्तावना . . ३४

(४) मार्क्स के सिद्धान्त . . ४०

(५) लेनिन ने चिनगारियो को लपटो में बदल दिया ४८

(६) निर्यात के लिए क्रान्ति ५६

(७) स्तालिन की योजनाएँ तथा शुद्धीकरण ६६

(८) रूस और शीत युद्ध ७२

तीसरा भाग—चीनी क्रान्ति रास्ता भूल गयी ९४

(९) चीनी प्रस्तावना ९५

(१०) सुन यात सेन की विरासत १०४

(११) विवादास्पद उत्तराधिकार ११४

(१२) लम्बी यात्रा १२३

(१३) चीन और शीत युद्ध १३२

(१४) पेकिग का सतुलन-पत्र १४२

चौथा भाग—गांधी का विकल्प १५१

(१५) भारतीय प्रस्तावना १५२

(१६) अफ्रीका से एक नये प्रकार की क्रान्ति १५९

(१७) भारत में गाधीवाद का प्रयोग १६९

(१८) मानव समाज के पचमाश को स्वाधीनता १८१

(१९) नव भारत का उदय १८७

(२०) भारत और शीत युद्ध २०५

पाँचवाँ भाग—बाण्डुग से चुनौती २१९
(२१) नये एशिया और नये अफ्रीका का सम्मेलन . २२०
(२२) औपनिवेशिक क्रान्तियो की समीक्षा २२६
(२३) अफ्रीका का जागरण २३३
(२४) पूर्ण जनतान्त्रिक क्रान्ति २४५
(२५) बाण्डुग और शीत युद्ध २६५

छठवाँ भाग—जैफर्सन, विल्सन और हेनरी फोर्ड की क्रान्ति २८०
(२६) मुझे स्वतन्त्रता दो या मृत्यु ! . २८१
(२७) रूई ओटने से स्वचालित यन्त्र तक २९०
(२८) सभी मनुष्य समान उत्पन्न हुए है। .. २९८
(२९) अमरीका का साम्राज्यवादी प्रयोग ३१२
(३०) विल्सन द्वारा अमरीकी स्वप्न का विस्तार ३१८

सातवाँ भाग—चुनौती का अंदाज ३३४
(३१) नयी आशाएँ और अतीत के विकल्प . ३३५
(३२) ऐतिहासिक अनुदर्शन .. ३४०
युद्ध की समस्या . ३४१
वर्ग-समस्या ३४८
(३३) अमरीकी विश्व-शान्ति ? .. . ३५३

आठवाँ भाग—क्रान्ति-जगत में अमरीकी नीति .. . ३६०
(३४) सैन्य-शक्ति के उपयोग एव सीमाएँ ३६१
(३५) आर्थिक सहायता के उपयोग एव सीमाएँ . ३७४
(३६) शान्ति की राजनीति ३९१
कूटनीति की कार्य-सूची . ३९२
योरोप, अमरीका और उपनिवेशवाद . ३९८
शक्ति के ध्रुव ४०६
विदेशो मे अमरीका का स्वरूप ४११
नि:शस्त्रीकरण बहाना या वायदा ? ४१६
(३७) अवसर के अनुकूल कार्य ४२६
परिशिष्ट ४३३

शान्ति के नूतन क्षितिज

अमरीकी क्रान्ति के गूजते हुए शब्द और नारे, विचार तथा आदर्श उन सभी लोगो के लिए जबर्दस्त भावात्मक महत्व रखते है, जो स्वतत्रता के लिए सघर्ष कर रहे है।

ससार के उन सभी भागो मे, जहाँ लोग अत्याचार से पीडित है, अथवा विदेशी शासन के अधीन है या सामती बधनो मे फँसे हुए है और जो स्वतत्रता के लिए सोचते, षड्यत्र रचते तथा सघर्ष करते है, वे सभी उन्ही शाश्वत सिद्धान्तो के नाम पर ऐसा कर रहे है, जिनकी प्राप्ति के लिए आपकी क्रान्ति हुई थी। ससार के उन भागों मे आजकल अमरीकी क्रान्ति के विचार अन्य सभी शक्तियो से अधिक विस्फोटक है तथा ससार के रूप को बदलने की क्षमता की दृष्टि से भी वे बी-५२ अथवा अणुबमो से कही अधिक विस्फोटक है।

ऊ नू— बर्मा के प्रधान मंत्री
स्वतत्रता भवन,
फिलाडेलफिया, ३-७-१९५५.

आमुख

चार वर्ष पूर्व, जब मै भारत मे अपने देश का राजदूत था तभी मैने इस पुस्तक को लिखने की बात सोची। मै इस बात से चिन्तित था कि ससार के जिन लोगों को हमारा मित्र होना चाहिए था, उनसे हम दूर हटते जा रहे थे।

हमारी युद्धोत्तर नीतियों की उत्साहवर्धक सफलताओ और उनके निर्माताओं के प्रति मेरे स्थायी सम्मान और भावना के बावजूद, कुछ ऐसी बाते थी जो यह प्रकट करती थी कि जिन बातो पर हम जोर दे रहे है, उनमे कहीं कोई कमी है। मै यह जानना चाहता था कि क्या मै ससार के प्रयत्नशील ढाई अरब लोगो के लिए उन्नति का कुछ अधिक प्रभावपूर्ण मार्ग सुझा सकता हूँ।

तभी से मैने लिखना प्रारम्भ कर दिया। बीच मे कुछ समय के लिए छोड भी दिया था, परन्तु फिर चालू कर दिया। मै जानता था कि जिन नये नाटकीय तत्वो से राष्ट्र और राजनीतिज्ञ संघर्ष कर रहे है, सरल भाषा मे उनकी व्याख्या करना बडा ही कठिन कार्य है।

गत वर्ष मे विश्व की स्थिति में मौलिक परिवर्तन हुआ है। १९५५ मे जनेवा का शीर्षस्थ सम्मेलन, जिसके लिए विन्स्टन चर्चिल ने एक लम्बे अर्से से वकालत की थी और जिसके लिए सेनेट की परराष्ट्र समिति के अध्यक्ष वाल्टर जार्ज ने प्रभावशाली ढग से जोर दिया था, हो चुका था। सोवियत चालों में जबर्दस्त परिवर्तनों और सम्मेलन मे राष्ट्रपति आइसनहावर के सच्चे प्रयत्नों ने समस्याओं तथा अवसरों का एक नया क्षेत्र प्रशस्त कर दिया है।

यह मानना कि युद्ध के बादल रातों-रात गायब हो गये है, वस्तुत एक असावधानी की बात होगी। फिर भी मुझे विश्वास है कि ससार के सम्बन्धो में हमे अनुपम परिवर्तन दिखायी पड सकता है। स्तालिनवादी आक्रमण की जिन नीतियों के कारण शीत-युद्ध का सूत्रपात हुआ, उनमे परिवर्तन से न सही, रुकावट के द्वारा ही सोवियत नेता हाल ही में जानबूझकर ससार के क्रम को बदलने का प्रयास करते जान पड रहे है। इससे तो यही जान पडता है मानो स्तालिन के अधीन काम करने वाले व्यक्ति उस क्षण की प्रतीक्षा में थे, जब वे उसकी प्रायः घातक लगने वाली भूलों को सुधार सकते थे।

रूस की यह नयी कूटनीति सभव है और भी अधिक क्रान्तिकारी और भयानक सिद्ध हो जिसकी स्तालिन ने कल्पना भी न की थी। जो अमरीकी नीतिया एक वर्ष पूर्व केवल सकीर्ण और अपर्याप्त मालूम होती थी, आज वे अत्यन्त असामयिक हो गयी है।

यदि वास्तविक युद्ध का भय कम हो जाय तो ध्यान केवल क्रैमलिन और साम्यवाद को सीमित करने पर ही केन्द्रित नही होगा, बल्कि विश्व के शेष भागों मे रचनात्मक और सार्थक स्वतत्रता की स्थापना के क्रमिक एव विधेयात्मक कार्यों पर भी केन्द्रित होगा। हमे उन समस्याओं को, यानी ससार की क्रियाशील क्रान्तिकारी शक्तियों को समझना चाहिए जो सर्वत्र ऊपर उभर आयी है। संक्षेप में, हमे शान्ति की नयी दिशाओ को समझ लेना चाहिए।

इसका अर्थ यह है कि हममे से अधिकाश को एक नयी पार्श्वभूमि के लिए रास्ता निकालना होगा। मैंने पिछली सदियों मे अपनी पत्नी के साथ गोल्ड-कोस्ट स्थित आक्रा से पश्चिम, मध्य तथा पूर्वी अफ्रीका होते हुए पाकिस्तान, भारत, बर्मा तक और अत मे लदन होकर वापस अपने देश तक की तीन महीने मे ३५,००० मील की यात्रा की। तीनो महाद्वीपो की पार्श्वभूमि से यही जोरदार ललकार आ रही थी कि गोरे लोगो, भूरे लोगो, काले लोगो, एशियावासियो, अफ्रिकावासियो, योरोप तथा अमरीकावासियो, अब कार्य करो। अब झमेलो से ऊपर उठकर सक्रियरूप से मिलकर कार्य करो, जिससे कि यह नया अवसर हाथ से न निकल जाये, जिससे कि चीन और हिन्दचीन का दु खद पतन एक और बडी दुखान्त घटना का नमूना न बन जाय। अभी कार्य करो, क्योकि इन आने वाले दस वर्षों मे सृजनात्मक विचार, नि स्वार्थ सेवा और शान्तिपूर्ण कार्य वही स्थिति पैदा कर सकते है जो बाद मे किसी तरह की गोलाबारी, बमबाजी तथा रक्तपात से कभी पैदा नहीं हो सकती।

क्या अमरीका इस बढती हुई चुनौती का सामना कर सकेगा? क्या हम एक राष्ट्र के रूप मे अनेक क्रान्तियो के इस विश्व को समझ सकेगे और ठीक समय पर निर्णायक ढग से कार्य कर सकेगे? मै विश्वास करता हूँ कि हम ऐसा कर सकेंगे।

सरकारी नौकरी और अपने व्यापारिक जीवन के दौरान मे मैंने अपने देश का कोना-कोना देख लिया है। एक राज्य के गवर्नर के रूप में मै कनेक्टीकट के अपने मित्रों तथा पडोसियो की आशाओ, आशकाओ और पक्षपातपूर्ण भावनाओं के निकट सम्पर्क मे रह चुका हूँ।

मई, १९५३ मे भारत से लौटने के बाद मैंने सयुक्त राज्य मे इस छोर से उस छोर तक पचास हजार मील से अधिक की यात्रा की और मैंने लगभग ३५० अवसरो पर व्यापारियो, किसानो, मजदूरो, दूकानदारो, गृहिणियो तथा विद्यार्थियो के बीच भाषण किये। सर्वत्र मेरा विषय एक ही रहा—ससार की समकालीन वास्तविकताओ का सामना कर सकने योग्य द्विपक्षी परराष्ट्र नीति की अत्यन्त आवश्यकता। अमरीकी जनमत के साथ इन तमाम सम्पर्कों से अनेक निष्कर्ष स्पष्टत निकले है।

पहला—पेशेवर लोगो मे आश्चर्यजनक मतैक्य है, चाहे वे विश्वविद्यालयो मे हो या सरकार मे। विश्व की स्थिति के उन महत्वपूर्ण विस्तारो से सभी परिचित है जो किसी प्रकार मुख्य समाचार बनने से रह जाते है। बहुत-से लोग इस बात से चिन्तित है कि अमरीका का वर्तमान प्रत्युत्तर न तो पर्याप्त है और न पर्याप्त रूप मे विधेयात्मक है। वे सकट के क्रान्तिकारी रूप को भी समझते है।

दूसरा—अमरीकी लोगो मे अत्यधिक सद्भावना तथा जन्मजात समझदारी है। वे सभी समझते है कि केवल साम्यवाद-विरोधी निषेधात्मक नीति अपर्याप्त है। प्राय मुझे विश्वास हुआ है कि विश्व के मामलो मे अमरीका का नागरिक कल्पना, समझदारी तथा सहिष्णुता मे अपनी सरकार से आगे है। ससार के विषय मे अमरीकावासियो की रूढिगत जिज्ञासा और अन्य राष्ट्रों की महत्वाकाक्षा के प्रति ऐतिहासिक सहानुभूति मे कभी कमी नहीं हुई।

तीसरा—पेशेवर लोगो के विचारो तथा जनता तक पहुँचने वाले समाचारो के बीच एक भयानक खाई है। उन दोनों वर्गों के बीच वाले राजनीतिज्ञो को मैंने प्राय यह कहते हुए पाया है, "अनेक बातें, जो हम कहते और करते है, उनके बारे मे मुझे भी शका है, परन्तु जनमत इससे भिन्न कुछ भी स्वीकार नहीं करेगा।" मैंने सामान्य नागरिको को प्राय यह कहते सुना है, "मै कितना भी प्रयत्न करूँ, अपनी नीति के कुछ पहलुओ पर मुझे असतोष हुए बिना नही रह सकता, किन्तु हमारे नेता उसमे ही बहुत प्रसन्न प्रतीत होते हैं।"

यह खाई क्यो नहीं पाटी गयी ?

मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि इस प्रश्न का स्पष्टीकरण अधिकाश रूप से इस तथ्य पर निर्भर करता है कि हमारे बहुत से राजनीतिज्ञ अमरीकी लोगों का बहुत कम मूल्याकन कर रहे है। उनमे से बहुत से लोग, जो हमारी,

स्थिति को बदलने वाली विश्वक्रान्ति को समझते है, यह विश्वास करते है कि इसको अच्छी तरह समझाने के बाद भी लोग इसे नही समझ पायेगे। अतएव, उनमे से कुछ लोग अच्छी तरह जानते हुए भी यह विचार स्वीकार कर लेते है कि वर्तमान सकट दो दशको के नग्न सैनिकवाद की अधिकतर चक्रवत् पुनरावृत्ति है। आज की अधिक कठिन समस्याओ के राजनीतिक तथा आर्थिक विस्तारो को समझाने का वे सच्चा प्रयत्न ही नही करते।

राजनीतिज्ञ सभवत ठीक है और खाई पाटी नही जा सकती। यदि यही बात है तो हम सकट की ओर अग्रसर हो रहे है, परन्तु मै सोचता हूँ कि इस मामले मे राजनीतिज्ञ शायद गलत हो सकते है। किसी भी परिस्थिति मे मुझे विश्वास है कि अनेक विचारशील लोगो के लिए अब वह समय आ गया है जब कि वे सच्चाई से, पूर्ण रूप से, और जनता मे विश्वास के अभाव से उत्पन्न समझौते के बिना, विश्वजीवन के तत्वो पर विचार करने के लिए सगठित प्रयत्न करे।

यदि परराष्ट्र नीति के मसलो पर अपनी सम्मति द्वारा प्रभाव डालने वाला शिक्षित नागरिक समुदाय हमारे पास नही हो सकता तो हमारा जनतत्र खोखला और दिखावटी हो जायगा। यदि हम अपनी राष्ट्रीय नीतियो को विश्व-स्थिति की आवश्यकताओ के अनुकूल नही बना सकते, जैसा कि इन आवश्यकताओ को अधिकाश सुविज्ञ प्रेक्षको ने समझा है, तो स्वय हमारा राष्ट्रीय भविष्य ही खतरे मे पड सकता है।

इस पुस्तक की रचना कुछ वृहद् समस्याओ का समाधान ढूढने के प्रयत्न से की गयी है, जिन्हे आज टाला जा रहा है। यह आवश्यक रूप से हमारे समय की महान क्रान्तियो पर मेरे निजी विचारों को प्रतिबिम्बित करती है। इसमे हमारी चालू अमरीकी क्रान्ति भी सम्मिलित है, जिसमे शान्ति की उभरती हुई दिशाओं की काफी सामग्री समाविष्ट है।

नीति सम्बन्धी विस्तृत सुझावो की अपेक्षा मै मुख्यतया नये समाधान की रूपरेखा पर ही अधिक बल दूँगा। अपने वर्तमान सकटो के लिए दोषी ठहराने के लिए मेरे पास न तो कोई अमरीकी खलनायक है और न कोई राजनीतिक दल; जो कुछ भी मुझे कहना है, मैने उसमे दलगत राजनीति से बचने का यत्न किया है। जो समस्याएँ हमारे सामने है, वे हम सबकी है और स्पष्टत यह न्यूनाकन होगा यदि हम कहे कि हम सब मिलकर उनका सामना नही कर सकते।

मैंने अपने अनुभवो, वार्ताओ, अध्ययनों तथा यात्राओ के अतिरिक्त अनेक प्रेक्षको से भी काफी सहायता ली है, जिनमे से कुछ लोगो से कभी मुलाकात नही हुई। टामस ह्यूजिज, अबरम चेस, हैरिस वोफर्ड जैसे मित्रो और साथियों के सुझावो तथा सहायता के लिए मै विशेष रूप से ऋणी हूँ। इन्गेबर्ग बोवी, हिल्डर गियर, जीन स्पेलोन, जोन नैल्सन और फान्सिस ओ'डैल का भी मै अत्यत आभारी हूँ, जिन्होने बडे धैर्य से पाण्डुलिपि को, जिसके विभिन्न प्रारूप और सशोधन तैयार किये गये, बार-बार टाइप किया।

यद्यपि सहायता और सलाह के लिए मै बहुतो का ऋणी हूँ, तथापि विश्लेषण और प्रस्ताव मेरे अपने ही है और उनके लिए मै ही उत्तरदायी हूँ। आगामी काल के लिए नीति की प्राथमिकताओ पर ये पृष्ठ एक व्यक्ति की प्रथम पुस्तक (प्राइमर) के रूप मे है और इस प्रकार की सारी चर्चाएँ श्रेष्ठतर उत्तर के लिए आमत्रण के रूप मे है।

सी. बी.

इसैक्स कनेक्टीकट

अगस्त १५, १९५५.

पहला भाग

विजय से अवरोध तक

हम यहा पर पिछली दस वर्ष की ताजी स्मृतियों के साथ आये है—निराशा, गहरी फूट, भय और लगभग नैराश्य के क्षण—किन्तु बहुधा हमे इस बात का भी प्रमाण मिला है कि मानव की निश्चयात्मक भावना इस अन्योन्याश्रित ससार मे एक साथ शान्तिमय जीवन व्यतीत करने की चुनौती का सामना कर सकती है।

डाग हैमरशोल्ड

सयुक्त राष्ट्र की दसवी वर्षगाँठ पर

पृथ्वी
आर्कटिक समुद्र
रूस
कनाडा
यू एस ए (अमरीका)
चीन
भारत
अटलान्टिक महासागर
प्रशान्त महासागर
प्रशान्त महासागर
अफ्रीका
दक्षिण अमरीका
हिन्द महासागर
आस्टेलिया
अमरीका
रूस
चीन
भारत
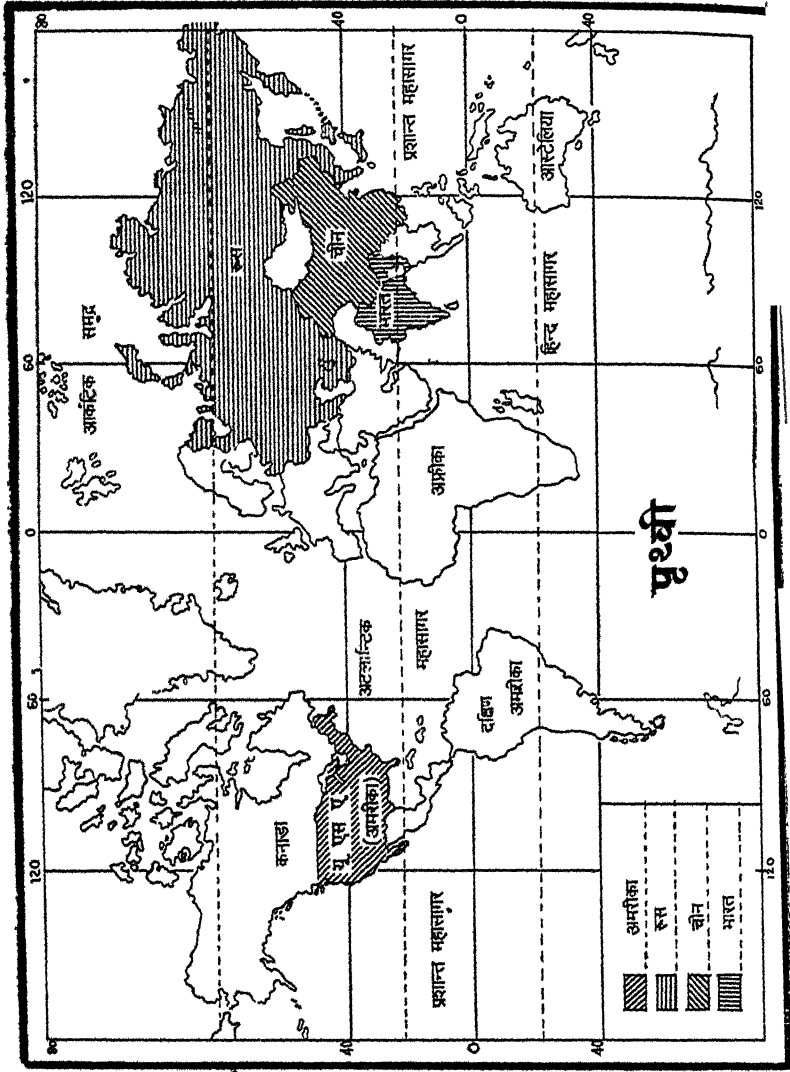
पहला प्रकरण

योरोप में प्रोत्साहन

१९५५ के जून मास के अत मे सयुक्त राष्ट्र सघ की दसवी वर्षगाँठ मनाने के लिए साठ राष्ट्रो के प्रतिनिधि सैनफ्रैन्सिस्को मे मिले। शीतयुद्ध के वर्षों के सघर्ष के उपरान्त, जब एक के बाद दूसरे वक्ता ने सतर्क आशावादिता के साथ ससार के नये दृष्टिकोण के प्रति अपनी आशाएँ प्रकट की, तो वायुमडल मे शान्ति की लहर व्याप्त होती दिखायी दी।

यदि, जैसा कि राष्ट्रपति आइसनहावर ने कहा था कि, पौ फट रही है, चाहे धीमी ही गति से क्यो न हो परन्तु मानव मात्र इस बात से सहमत होगा कि यह नव प्रभात बहुत पहले ही आ जाना चाहिए था। १९४५ और १९५५ के दशक मे दुनिया बिलकुल उलट गयी है और हममे से अधिकाश को ऐसा अनुभव होता है कि हम एक बुरा सपना देख रहे थे।

हमारे युद्धकालीन मित्र रूस और चीन, शान्तिकाल मे हमारे विरोधी बन गये हैं। हमारे युद्धकालीन शत्रु जर्मनी और जापान हमारे शान्तिकालीन मित्र बन गये हैं।

ससार के साम्यवादी आन्दोलन ने लगभग ७० करोड और लोगो को अपने वश मे कर लिया है, जिसका मतलब है कि अब एक तिहाई मानव समाज साम्यवादी शासन के अन्तर्गत ह। साथ ही साथ ६५ करोड एशिया और अफ्रीकावासियो ने पश्चिम के पुराने ढग के उपनिवेशवाद से स्वतन्त्रता प्राप्त कर ली है।

ये डरावनी घटनाएँ उस युद्ध की पृष्ठभूमि मे घटित हुईं, जिसमे ढाई करोड मनुष्य मारे गये, उससे दुगुनी सख्या मे लोग अपाहिज हो गये और जर्मनी, इटली, पोलैण्ड, बाल्कन, रूस, चीन और जापान का अधिकाश भाग नष्ट-भ्रष्ट हो गया। इस युद्ध ने अगले युद्ध के सम्पूर्ण आणविक विनाश की सभावना से भी हमे परिचित करा दिया।

आज के इस विभाजित विश्व मे १९४५ के वातावरण को फिर से पाना आसान नही है, परन्तु हमारी वर्तमान पार्श्वभूमि की दृष्टि से इन उथल-पुथल वाले दस वर्षो पर सोच-विचार कर लेना काफी शिक्षाप्रद होगा।

जब युद्धकालीन मित्र राष्ट्रों के सैनिक, स्थल-युद्ध को अन्ततोगत्वा जर्मनी की धरती पर खीच लाने के लिए विपरीत दिशाओ से एकत्र हो गये तब युद्ध के अत को अमीरीकावासी ने बडी आशा की दृष्टि से देखा। वह अपने युद्धरत पुत्रों की वापसी के लिए आँखे बिछाये बैठा था. .. सेना पर बढे हुए खर्च की कटौती की प्रतीक्षा मे था और अपने इच्छानुकूल खरीद सकने के अवसर की ताक मे था और उस तनाव से छुटकारा पाना चाहता था, जिसने पर्ल हार्बर के रविवार के दिन से उसे दबोच रखा था।

जिस अमरीकी ने १९४५ के युद्धोत्तर संसार का सामना किया, वह बहुत आगे आ चुका था और बहुत अनुभव प्राप्त कर चुका था। एक सौ सत्तर वर्ष पूर्व उसने मानवीय समता के क्रान्तिकारी सिद्धान्त के आधार पर एक राष्ट्र की नीव डाली थी। उसने एक निस्सीम समृद्धिशाली महाद्वीप की स्थापना की थी, जिसके लाभ मे बहुत से लोग सम्मिलित हो सके। उसने अपने देश के किनारो पर करोडो योरोपीय प्रवासियो का स्वागत किया।

शासन के जिन सिद्धान्तों का सूत्रपात उसने किया, उनके प्रति ससार के अनेक राष्ट्रो, धर्मों तथा जातियों मे उत्साह पैदा हो गया। बहुत ही कडुवे और खर्चीले गृहयुद्ध मे उसके अपने लक्ष्य स्पष्ट हुए और उसके जन्मसिद्ध अधिकार की पुन. पुष्टि हुई।

उस युद्ध के बाद प्रत्येक पीढ़ी मे उसने अपनी आय को दुगुना किया। परन्तु सापेक्ष रूप से विलास का जीवन व्यतीत करने पर भी वह यह कभी नही भूला कि उसकी निरन्तर प्रगति कठिन परिश्रम पर निर्भर है।

उसने स्वाधीनता को व्यापकतम रूप मे समझा और आवश्यक आर्थिक स्वाधीनता के विस्तार के लिए उस राजनीतिक स्वाधीनता का उपयोग करने में कभी झिझक नही दिखायी, जिस पर वह एक मजदूर, किसान तथा व्यापारी के रूप मे अपना अधिकार मानता था। यद्यपि उसने सहज भाव से वृह्द् शासन पर अविश्वास किया, परन्तु धीरे-धीरे साहस के साथ तथा रचनात्मक ढग से सविधान के शब्दों मे ही 'सामान्य कल्याण की वृद्धि के लिए' शासन का उपयोग करना उसने सीख लिया था।

एक महान संकट से उसे एक ऐसी ठोकर लगी, जिसने न केवल उस व्यक्तिगत स्वामित्व प्रथा का ही अत कर दिया होता, जिसके आधार पर उसने अब तक प्रगति की, बल्कि राजनीतिक क्षेत्र मे जनतंत्र को भी समाप्त कर दिया होता। फिर भी वह अपनी शक्ति तौलकर, कन्धे झाडकर फिर खड़ा हो

गया और ऐसी स्थायी आर्थिक स्थिति पैदा करने के लिए उसने प्रयत्न किया, जो सब के हित मे होगी और साथ ही गतिशीलता को कायम रख सकेगी।

यद्यपि विदेशी मामलो में उसके अनुभव स्वल्प थे, फिरभी सामान्य रूप से सभी राष्ट्रों के अपनी शासन-पद्धति के निर्णय के अधिकार की उसने सदैव रक्षा की है। उसने अनिच्छा से दो विश्व-युद्धों मे भाग लिया था, परन्तु एक बार फँस जाने पर विजय के लिए सर्वस्व लगा दिया। अब उसका देश दूसरे महायुद्ध के बाद शक्ति और नेतृत्व की नवीन महानता प्राप्त कर रहा था।

फिर भी भविष्य मे अमरीका की इस महानता के व्यवहार के सम्बन्ध मे भविष्यवाणी नही की जा सकती। प्रथम विश्व-युद्ध के उपरान्त संतुलित दशा प्राप्त करने की खोज मे हमने पृथकत्व की मँहगी राष्ट्रीय नीति अपनायी। योरोप की सीमाओ के पार हिटलर की दहाड़ और पर्ल हार्बर पर मृत्यु बरसाने वाली जापानी बमवर्षा ने क्या हमे यह आखिरी सबक नही सिखा दिया कि इस घनिष्ठ रूप से सम्बद्ध ससार मे कोई भी बडी शक्ति इसमे रहते हुए, इससे बाहर नही हो सकती? जिस प्रकार हमने विजय के यत्र गढ़े थे, उसी प्रकार क्या हम युद्धकालीन आर्थिक अस्तव्यस्तता को दूर करने के लिए उद्यत हो सकते है? क्या अमरीका अपने ऐतिहासिक पृथकत्व से हमेशा के लिए धक्का मार कर जगा दिया गया है?

१९४५ मे विश्व की अधिकाश राजधानियो मे ये प्रश्न पूछे जाते थे और अपने देश मे भी इस विषय मे कम चिन्ता नही थी। परन्तु कुछ लोग थे, जिन्होने अनुमान लगा लिया था कि इन प्रश्नो के उत्तरो की कितनी जल्दी आवश्यकता पडेगी। युद्धकालीन मैत्री की अनुकूलता ने उस खतरे की चेतावनी नही दी, जो बहुत शीघ्र ही ओडर-नीजे नदी पक्ति के पार से प्रकट हो जायेगा।

अमरीका के प्रिय अँग्रेज विन्स्टन चर्चिल, जो कुछ वर्ष पूर्व बोलशेविज्म की बाल-हत्या कर देना चाहते थे, पहले व्यक्ति थे, जिन्होंने स्तालिन को उस समय सहायता का वचन दिया था, जब हिटलर की सेनाओं ने जून, १९४१ मे रूस पर आक्रमण किया। नाजी अधिकृत योरोप मे प्रतिरोध करने वाले आन्दोलनो मे ऐसे कम्यूनिस्ट नेताओ ने सर्वदा भाग लिया और बहुधा नेतृत्व किया, जिन्होने खतरनाक जीवन व्यतीत किया और जो वीरगति को प्राप्त हुए। लाल सेनाओ की विजयों की कहानियाँ अटलाटिक जगत के अखबारो मे प्रति दिन मुखपृष्ठो पर छपती थी।

जिन शब्दो को पढकर आज अचरज होता है, उन्ही शब्दो द्वारा अनेक अमरीकी

नेताओ ने सोवियत रूस की प्रशसा की होड लगा रखी थी। "सभ्यता की आशाएँ साहसी रूसी सेना की योग्य पताकाओ पर अवलम्बित है," ये शब्द जनरल मैक्-आर्थर ने १९४२ मे कहे थे और यह भी कहा था कि, "इस प्रयत्न की विशदता और महानता सारे इतिहास मे महानतम सैनिक सफलता की परिचायक है।" १९४३ मे स्तालिन से हुए अपने विचार–विनिमय की ओर सकेत करते हुए राष्ट्राध्यक्ष रूजवेल्ट ने कहा था, "मुझे विश्वास है कि हमारी स्तालिन और रूसी लोगो के साथ अच्छी निभ सकेगी।"

उनके हाल के प्रतिपक्षी वैण्डल विल्की ने, जिनका विचार था कि श्री रूज-वेल्ट काहरा और तेहरान में अपने विचारो को काफी दूर तक नही पहुँचा पाये थे, ऐसा महसूस किया कि युद्धोत्तर सहयोग की सभावना है, क्योकि रूसी भी हमारी ही तरह परिश्रमी और सीधे-सादे लोग है और पूँजीवादी पद्धति के अतिरिक्त अन्य सभी अमरीकी बातों के प्रशसक हैं। राकफैलर समारोह मे अमरीकी महिला-सस्था 'गोल्ड स्टार मदर्स ने, सोवियत सरकार को लाल सेना के 'शानदार' युद्ध की प्रशसा मे और रूस तथा इस देश के युवको के समान उद्देश्यो के प्रतीक स्वरूप, एक रकाबी भेंट मे दी थी।

१९४५ में उनकी मास्को-यात्रा के उपरान्त, जहाँ पर उन्होंने लेनिन स्मारक की छत से रेड स्क्वायर परेड का सर्वेक्षण किया, सेना के जनरल आइसनहावर ने काग्रेस की समिति को बताया कि सयुक्त राज्य अमरीका से मित्रता जोडने की अभिलाषा के समान और कोई बात रूसी नीति का मार्गदर्शन नहीं करती।

यहाँ तक कि वे अमरीकी भी, जो विश्वव्यापी साम्यवादी आभियान के सिद्धान्तों को समझते थे, इस विचार से बहुत आश्वस्त हुए कि सोवियत नेता तथा सैनिक अन्त मे व्यापक रूप से लोकतान्त्रिक नेताओं, विचारों, उदारता तथा सफलताओं के प्रभाव के अन्तर्गत आ गये। क्या यह अनुभव अत्यन्त कट्टर मार्क्सवादियो को धीरे धीरे कुछ शिथिल नही बना देगा? रूसियों का परदेशियों के प्रति रूढ़िगत भय यदि याल्टा मे न दफना दिया जाता तो?

विजय के दिन व्हाइट हाउस के चारों तरफ नमस्कार-मुद्रा मे खडे अमरीकी सैनिको (G. I.) के परिवार, उनकी प्रेयसियो तथा मित्रो से न केवल यह सन्तोष ही परिलक्षित होता था कि युद्ध पीछे छूट गया, बल्कि यह विश्वास भी था कि शान्ति का भविष्य उज्ज्वल है। ऐसे वातावरण में यह कोई आश्चर्यजनक बात नही थी कि कम से कम समय मे लोग अपनी तलवारे को हल, खराद और टाइपराइटरो जैसे उपयोगी यत्रों में परिणत

करने के इच्छुक हों। वाशिंगटन पर जो राजनीतिक दबाव पड़ा, उसको रोका नही जा सकता था।

२२ जनवरी, १९४६ को वाशिंगटन स्थित ह्वाइट हाउस भवन मे, जनरल आइसनहावर को, जो उस समय सेनाध्यक्ष थे, "ब्रिंग बैक डैडी" (पिताजी को वापस बुलाओ) क्लबो के प्रतिनिधियो ने अचानक घेर लिया। क्रुद्ध महिलाओं दस मिनट तक मागों और शिकायतो की उन पर बौछार कर दी। वे शर्मिन्दा हुए और बौखला गये और अपने ही शब्दो मे, जो उन्होने बाद मे सभा की सैनिक मामलो की समिति की बैठक मे कहे थे, भावावेश मे किंकर्त्तव्य-विमूढ हो गये थे।

उसी दिन सेनेट की द्विदलीय उपसमिति ने, त्वरित गति से किये जाने वाले सैन्य-विघटन से सतुष्ट न होकर इस बात पर बल दिया कि सेना मे अभी भी २० लाख आदमी आवश्यकता से अधिक है और उनको हटा देने की माँग की। कांग्रेस के दोनों दलो के नेताओ ने सेनाओ को विघटित करने तथा अधिकाश नौसेना और वायुसेना को सुरक्षित रखने के आन्दोलन मे जनता की प्रशसा प्राप्त करने मे मानो एक दूसरे से होड लगा दी थी।

यदि दोनो राजनीतिक दलो के कुछ दूरदर्शी नेताओं ने अपनी राजनीतिज्ञता न दिखायी होती और उनके प्रस्तावों के प्रति अमरीकियो की अनुकूल प्रतिक्रिया न होती, तो सामान्य स्थिति प्राप्त करने के दूसरे जबर्दस्त झगडे का परिणाम और भी हानिकारक हुआ होता।

सरकारी पदाधिकारियो, निजी सस्थाओ और जनता ने साधारणतया योरोप और एशिया की सकटकालीन आवश्यकताओ के प्रति गहरी दिलचस्पी का परिचय दिया। भूतपूर्व राष्ट्राध्यक्ष हूवर, राष्ट्राध्यक्ष ट्रूमन द्वारा यथार्थता का पता लगाने के के उद्देश्य से विश्व का दौरा करने के लिए भेजे गये। वे तत्काल सामूहिक सहायता के लिए प्रभावपूर्ण तर्क लेकर लौटे और अमरीकियों ने भी अपनी परम्परागत उदारता का परिचय दिया। अमरीकी पहल और डालर ने 'उनरा' (UNRRA), विश्व बैंक, मुद्रा-निधि और दूर-दूर तक विस्तृत सयुक्त राष्ट्र सघ की विशिष्ट सस्थाओ को विकसित करने मे बहुत महत्वपूर्ण भाग लिया।

जाहिर है कि योरोप में यह कार्य बहुत कठिन था। किसी समय विश्व-सभ्यता के इस केन्द्र को दो ही पीढियों मे दो विनाशकारी युद्धो से गुजरते देख कर यदि कोई अमरीकी प्रेक्षक प्रथम दृष्टि मे यह धारणा बना ले

कि योरोप नष्ट हो गया, तो उसे क्षमा किया जा सकता है। इस प्रकार के दो भीषण उथलपुथल के बाद योरोपीय जीवन की शक्ति को पुन कैसे प्राप्त किया जा सकता है ?

योरोप का अधिकाश भाग फिर से सुधारा नही जा सकता था। बमवर्षा के परिणामस्वरूप खडहरो के ढेरो मे परिणत हो जाने वाले नगर और गावों का सम्पूर्ण विनाश, मृत्यु और वियोग की वेदना से पीडित, अधीन और भूमिगत निवास से थके हुए निराश और विश्वासहीन योरोपियनो ने विजय के दिन 'शान्ति' के वायुमण्डल में प्रवेश किया।

१९१४ के स्थायी वैभव के कभी सुदृढ़ स्मारक आन्तरिक युद्ध के वर्षों में इतने प्रकम्पित हो चुके थे कि अब मलवे के ढेर में चूर होकर गिर पडे। ब्रिटेन के परराष्ट्र-मंत्री सर एडवर्ड ग्रे ने लदन में परराष्ट्र विभाग के दफ्तर की खिडकी के पास खडे होकर, प्रथम विश्व-युद्ध के शुरू होने के पहले कहा था, "समस्त योरोप मे प्रकाश-दीप बुझ रहे है और हम अपने जीवन-काल मे उन्हे फिर से प्रकाशित होते नही देख पायेंगे।" सन् १९४५ की पार्श्वभूमि मे ऐसा प्रतीत हुआ कि सर एडवर्ड की आशका अन्त मे सही निकली।

दो विश्व-युद्धों मे फ्रान्स ने बहुत नुकसान उठाया। १९१४ और १९१८ के बीच, तीन करोड बीस लाख की जनसख्या मे से १३ लाख लोगों की बलि देनी पड़ी। १९४० मे, जब जर्मन सेनाएँ उसकी सीमाओ के पार उमडने लगी, तब तक वह प्रथम विश्व-युद्ध की आर्थिक और मनोवैज्ञानिक समस्याओ से मुक्त नही हो पाया था। द्वितीय महायुद्ध मे उसको फिर ब्रिटेन और अमरीका से भी अधिक अपने नवयुवको की आहुति देनी पडी। १९४०-४५ की पराजय, अधीनता और मुक्ति के व्यापक प्रभाव वर्षों तक उसके साथ बने रहेंगे।

वाटरलू और सोमे के बीच की शताब्दी मे ब्रिटेन को जो प्रमुखता प्राप्त थी, उसका भी अत हो गया था। इन दो विश्वयुद्धों ने अग्रेजों की भीषण जनहानि के साथ-साथ विक्टोरिया-युग मे सचित निधि को भी खाली कर दिया था। ब्रिटेन जैसे राष्ट्र के लिए, जो खाद्यान्न के आयात पर निर्भर करता था, युद्धोत्तर आर्थिक संभावनाएँ विशेष रूप से चिन्ताजनक थीं।

१९१४ से अपने अशान्तिपूर्ण इतिहास में जर्मन अनेक बार जीते और हारे। युद्धोत्तरकालीन प्रथम तीन वर्षों में उनकी निराशा पूर्ण हो चुकी थी, सैनिक अधिकार का अपमान, १,२०० कैलोरी के दैनिक राशन से, जो जीवित

रहने के न्यूनतम स्तर से ३३ प्रतिशत कम था, अशान्त भूख, मशीनो के टूट-फूट जाने और कारखानो के विनाश के कारण आर्थिक विश्रृखलता, रूसी आतक से ग्रस्त ७० लाख निराश्रित शरणार्थियो का तीन पश्चिमी भागो में आगमन, जहाँ पहले ही ४० प्रतिशत मकान मित्र-राष्ट्रो की बमवर्षा से ध्वस्त हो चुके थे, इत्यादि महत्वपूर्ण घटनाएँ थी।

जब अमरीका ने योरोप के पुनरुद्धार के लिए अपना मजबूत कदम उठाया, उस समय योरोप की स्थिति शोचनीय थी और उसके पुनरुज्जीवन की सम्भावनाएँ भी कम थी। करोडो अमरीकियो के लिए योरोप अब भी एक ऐसा 'प्राचीन देश' था, जहाँ फ्रान्स, जर्मनी, इटली, हगरी, पोलैण्ड, और बाल्कन मे उनके सम्बन्धी लोग अभावग्रस्त थे। उदारता, अर्थतत्र, सास्कृतिक बधनो, परम्पराओ तथा दीर्घकालीन सम्पर्क ने हमारे प्रथम प्रयत्न मे महत्वपूर्ण योग दिया।

यदि ये बाते पर्याप्त नही थी, तो साम्यवादी दुराग्रह ने शीघ्र ही हमारे कार्य को निश्चित रूप से और भी आवश्यक बना दिया। दूर तक फैले अपने प्रभाव तथा प्रदेश की सीमाओ को सुगठित करने के लिए सोवियत यूनियन ने अपनी भौगोलिक तथा नयी सैनिक शक्ति से पूरा लाभ उठाया।

याल्टा-सधि-पत्र पर मुश्किल से हस्ताक्षर हो पाये थे कि चेतावनी के सकेत यह प्रदर्शित करने लगे कि स्तालिन ने कितनी लापरवाही से प्रतिज्ञाएँ की और तोडी। कुछ ही महीनो मे जर्मनी के प्रशासन के प्रश्न पर रूसियो के निष्ठुर व्यवहार, हमारे त्वरित नि शस्त्रीकरण के विरुद्ध उनके बराबर सेना पर बल देने, अणुशक्ति-नियत्रण के लिए अचेसन-लिलियन्थाल वरूच के प्रस्ताव को एकदम ठुकरा देने और पूर्वी योरोप मे स्वतत्र निर्वाचन करने से इन्कार कर देने से हमारी शका और भी बढ गयी थी।

फिर भी युद्धकालीन मित्रता से जो आशाएँ उत्पन्न हुई थी, वे धीरे-धीरे विलीन हो गयी। मार्च, १९४६ में मिसौरी के फल्टन मे विन्स्टन चर्चिल ने जब हमको बतलाया कि "महाद्वीप के उस पार लौह पर्दा डाल दिया गया है" तब उनके शब्दों से हमे धक्का लगा। अमरीकी इस प्रकार की बात नही सुनना चाहते थे।

जब मैंने सयुक्त राष्ट्र की एक बैठक के सिलसिले मे नवम्बर, १९४६ मे योरोप की यात्रा की, तो मेरे रुखो मे भी कुछ तेजी आ गयी। चैम्प्स एलिसीस की ओर कवायद करते हुए जाने वाले गम्भीर मुद्रा मे दस हजार साम्य-

वादी कार्यकर्त्ताओ के दृश्य को मै शीघ्र ही नही भूल सकूँगा।

कुछ दिन बाद रूसी पदाधिकारियो से हुए अपने प्रथम सम्पर्क को भी भुलाना मुश्किल है। जनरल वाल्टर बेडेल स्मिथ ने, जो उस समय रूस मे हमारे देश के राजदूत थे, हमे एक सप्ताह के लिए मास्को आमत्रित किया। तुरन्त ही रूसी अनुवेश-पत्र (वीसा) प्राप्त हो गया और राजदूत का हवाई-जहाज हमे लेने के लिए पेरिस आ पहुँचा। हम लोग बर्लिन से आगे नही पहुँच पाये। कई दिनो की असफल अपीलो के बाद वहा के रूसी अफसरो ने बिना किसी कारण के हमारे प्रस्थान के लिए अनुमति नही दी। एक और अमरीकी के लिए चर्चिल का कथित 'लौहावरण' सत्य सिद्ध हुआ।

तेरह महीने बाद प्राग मे जान मसरिक से दो बार लम्बी बातें हुई। उन्होंने बडी उत्सुकता के साथ बार-बार मुझसे पूछा कि आपके विचार से वाशिंगटन और मास्को मे लगभग कितने समय मे "कुछ समझौता हो सकेगा ?" "हम चेक लोग तो बीच मे है और अधिक कुछ नही कर सकते ?" उन्होने दुख के साथ कहा– "यदि भाग्य ने साथ दिया तो शायद दो वर्ष और स्वतत्र रह सके"। परन्तु किस्मत दूसरी ओर जा रही थी और एक महीने के बाद ही कनेक्टीकट मे अपने घर पर प्राग मे कम्यूनिस्ट विद्रोह और जान मसरिक की मृत्यु का समाचार सुना। उस दिन और लाखों लोगों के दिलो मे अटलाटिक राष्ट्रो के सामने उपस्थित भीषण सघर्ष ने एक नया और दर्दनाक रूप धारण कर लिया।

१९४८ के वसत तक १२ करोड लोगों द्वारा आबाद बाल्टिक से एजियन तक विस्तृत क्षेत्र पर अपने अधिकार को दृढ बनाने के लिए क्रेमलिन ने पूर्वी योरोप मे अपनी अद्वितीय सैनिक स्थिति का प्रयोग किया, परन्तु तब तक और अधिक साम्यवादी कुचक्रों के प्रति हमारी स्थिति कठोर हो चुकी थी।

प्राग पर अधिकार करने के एक वर्ष पूर्व सोवियत सरकार ने यूनान और तुर्की के भीतर तक बढ जाने की धमकी दी थी। तुर्की सरकार के विरुद्ध क्रेमलिन ने व्यापक प्रचारात्मक आक्रमण शुरू कर दिया था। पूर्वी तुर्की के प्रातों पर पुराने रूसी अधिकार का दावा किया और दर्रेदानियाल की सुरक्षा तथा नियत्रण मे अपने हिस्से की माग प्रस्तुत की।

इसी बीच रूस ने चुपके से साम्यवादी नेतृत्व मे कार्य करने वाले हजारों यूनानी गुरिल्लो को शस्त्रास्त्र भेजे और यूनानी सरकार के विरुद्ध एक व्यापक विद्रोह प्रारम्भ हो गया। यूनान और तुर्की की दुःखद स्थिति स्पष्ट थी।

शक्तिशाली विदेश सम्बन्ध समिति के अध्यक्ष सिनेटर आर्थर वैण्डनबर्ग ने अन्य बीस से अधिक रिपब्लिकन सिनेटरो के साथ राष्ट्रपति ट्रूमन के इस ऐतिहासिक निर्णय के समर्थन मे कि स्वतत्र यूनान और तुर्की अमरीकी सुरक्षा के लिए अपरिहार्य हैं, डिमोक्रेटो का साथ दिया। हमने फौरन जोरदार सहायता की और इस सकटपूर्ण क्षेत्र मे सोवियत दबाव धीरे-धीरे ढीला पड गया।

पश्चिमी क्षेत्रों से बर्लिन तक रेल और सडक बना कर रूसी सरकार ने शीघ्र ही फिर आघात कर दिया। ज्यो-ज्यो सेना का आधिपत्य स्थापित होता गया, जर्मनी के ऐतिहासिक प्रतीक बर्लिन से, पश्चिमी पदाधिकारियो, सैनिको, सिपाहियो के भागने की रूसियो ने तीव्र उत्कण्ठा से प्रतीक्षा की। एक बार फिर हमारा उत्तर निश्चयात्मक रहा। कुछ ही दिनो मे अमरीकी और ब्रिटिश व्यापारी हवाईजहाज बर्लिन के टैम्पल्हाफ़ हवाई अड्डे पर प्रति नब्बे सेकण्ड मे एक की दर से उतरने लगे और कुछ ही महीनो बाद अचानक प्रतिबन्ध उठा लिया गया।

१९४७ के जून मे विदेश-मत्री मार्शल ने हार्वर्ड का प्रारभिक ऐतिहासिक भाषण दिया, जिसमे उन्होने योरोप के आर्थिक पुनरुद्धार के लिए बडे पैमाने पर एक ऐसे कार्यक्रम की घोषणा की, जो किसी के विरुद्ध नही था बल्कि भूख, अराजकता और दरिद्रता के विरुद्ध था। तुरन्त ही पेरिस मे एक मभा बुलायी गयी जिसमे सभी योरोपीय राष्ट्र, राजनीतिक विभिन्नताओ के बावजूद, आमन्त्रित किये गये। मास्को से मोलतोव आये और कुछ दिन अस्थिर रूप से रहे और फिर चले गये।

अप्रैल, १९४८ में योरोपीय आर्थिक सहकारिता सघ (OEEC) की स्थापना हुई जिसमे मार्शल योजना को कार्यान्वित करने के लिए १७ योरोपीय साझीदारों ने प्रतिनिधित्व किया। ६ वर्षों के बाद इन १७ सदस्य-राष्ट्रो मे अन्तर-योरोपीय व्यापार १९४८ की अपेक्षा दुगुना हो गया और १९३८ से ६८ प्रतिशत अधिक हो गया। १९५४ मे औद्योगिक उत्पादन १९३८ से ५० प्रतिशत अधिक था और कृषि-उत्पादन ३० प्रतिशत अधिक था। पालहाफमैन तथा अन्य लोगो के सुयोग्य नेतृत्व मे मार्शल योजना ने पश्चिमी योरोप को दुगुनी शक्ति दी। इसके बिना अराजकता, जिस पर रूस निर्भर कर रहा था, अनिवार्य थी।

पश्चिमी योरोप की सैनिक सुरक्षा के लिए भी निश्चित कदम उठाये गये।

युद्ध के तीन वर्ष बाद इसकी बिलकुल समाप्ति हो गयी। एक ब्रिटिश जनरल के शब्दो मे अटलांटिक किनारे तक पहुँचने के लिए रूसी सेना को 'केवल जूतों' की आवश्यकता थी।

४ अप्रैल, १९४९ को उत्तरी अटलांटिक-संधि पर १४ राष्ट्रों ने वाशिंगटन मे हस्ताक्षर किये और 'नाटो' (NATO) का जन्म हुआ। छः वर्ष बाद इसके सेनापतियो ने ऐसी सुरक्षा की ढाल तैयार की, जो किसी भी स्थल-सेना पर आधारित सोवियत आक्रमण को रोकने के लिए पर्याप्त थी, भले ही अन्त तक उसे संभाल नही सकती थी।

'नाटो' के द्वारा अमरीका ने पहली बार जन-धन के बलिदान का वचन दिया; स्वय अपनी जन-इच्छा और समय के अनुसार नही, बल्कि अटलांटिक समुदाय के किसी भी सदस्य पर कभी भी आक्रमण होने पर। इस प्रकार नाटो सगठन के निर्णय मे दृढ सैनिक-सुरक्षा के अतिरिक्त और भी कुछ था। अटलांटिक क्षेत्र की समान सम्यता को किसी भी शत्रु के आक्रमण से बचाने के लिए यह साधन-स्रोतों का एक ऐतिहासिक और ऐच्छिक सचय था।

कूटनीति के इतिहास मे पश्चिमी योरोप की अविकल स्वतंत्रता के आश्वासन के लिए अमरीका का प्रयत्न एक अनुपम सफलता है। अमरीका के बहुमत ने इस स्पष्ट द्विदलीय नीतियो का, जिनका उल्लेख हो चुका है, जोरदार समर्थन किया। उन्होने अपने पुत्रो को भेजना स्वीकार किया। उन्होंने न केवल सैनिक सुरक्षा के लिए, प्रत्युत अपने योरोपीय साथियों की आर्थिक दशा सुधारने के लिए कर देने में अपनी जेबों को भी खाली कर दिया था।

१९५५ के ग्रीष्म काल में भी योरोप को विकट समस्याओ का सामना करना पडा। जर्मनी विभाजित ही रहा और लाल सेना रूसी सीमा से सैकड़ो मील पश्चिम की ओर पडी थी। फिर भी पश्चिमी योरोप की सैनिक, आर्थिक और राजनीतिक स्वतंत्रता के लिए की गयी जबर्दस्त कार्रवाइयों को कोई इन्कार नही कर सकता था और एक शक्तिशाली स्थिति की रचना हो चुकी थी , जहाँ से रूसियो के साथ प्रभावपूर्ण ढग से वार्ता की जा सकती थी।

अधिकाश अमरीकी इस बात से सहमत होंगे कि हमारी १९४५ के नीति-निर्माण मे योरोप ही प्राथमिकता का पात्र था। युद्ध प्रयास का यही सबसे नाजुक क्षेत्र रहा है। विध्वस के बाद भी, पश्चिमी योरोप विश्व मे महानतम औद्योगिक स्रोतों के द्वितीय केन्द्र का प्रतिनिधित्व करता है। अटलांटिक तक पहुँचने के मार्ग इसीके हाथ मे है; भूमध्यसागर पर इसी का आधि-

पत्य है और विश्व-व्यापार के महत्वपूर्ण मार्गों के पार्श्व मे है।

उससे भी अधिक योरोप वह स्थान है, जहाँ स्वतन्त्रता और मानववाद के पश्चिमी आदर्शों का जन्म हुआ था। हमारा पारिवारिक मूल, हमारी राजनीतिक सस्थाएँ, हमारी सस्कृति, हमारे धर्मों की जडे योरोप की धरती में गहराई से जमी हुई है। योरोपीय भाषाएँ हमारे नगरो मे बोली जाती है और हमारे स्कूलो मे पढायी जाती है। हमारे कलाकार, लेखक, प्राध्यापक पढने के लिए योरोप जाते है। उसका इतिहास हमारे इतिहास का अग है।

चूंकि हमारे अधिकाश अनुभव योरोप मे हुए है, इसलिए यह स्वाभाविक ही था कि हमारी नीति की तत्काल अनुकूल प्रतिक्रिया हो। जनता का सर्वसम्मत समर्थन प्राप्त हुआ और परिणाम अत्यन्त प्रभावकारी सिद्ध हुआ; किन्तु योरोप मे शक्ति-तुला स्थायी ससार की पर्याय नही हो सकती। इस शताब्दी की घटनाओ ने नयी बलवती शक्तियो को दूर के विभिन्न महाद्वीपो मे 'ईश्वर की पीठ पीछे' जन्म दिया है। यद्यपि एक स्वस्थ और शक्तिशाली योरोप हमारे स्वार्थों के लिए अब भी आवश्यक है, अमरीक के नये उत्तरदायित्वो के पूर्ण विस्तार के लिए ससार के दूसरी ओर इसी के प्रभावपूर्ण और साहसिक समाधान की आवश्यकता है—और वहाँ बहुत कम प्रभावशाली सिद्ध हुए है।

दूसरा प्रकरण

मध्यवर्ती संसार में उथल-पुथल

१९४५ के विजय के दिन अमरीका टोकिओ से केपटाउन तक, मध्यवर्ती ससार में प्रतिष्ठा के शिखर पर था। जापानियो के हाथो से लगभग आधे एशिया को मुक्त करने मे हमने नेतृत्व किया। फिलीपाइन्स को आजाद करने के हमारे वचन बहुत शीघ्र ही पूर्ण होने वाले थे। हमारी सैन्य-शक्ति अद्वितीय थी। हमारी जनतत्रात्मक सस्थाएँ एक दर्जन नयी सरकारो के लिए आदर्श थी।

दस वर्ष बाद, १९५५ मे अनुपम शक्ति की यह स्थिति अधिकतर छिन्न-भिन्न हो चुकी थी। चीन अपने नये नेताओं के अतर्गत हमारा तीव्र विरोधी था और उसने कोरिया मे हमें सैनिक अवरोध प्रदान किया। जब पेकिंग रेडियो ने हमें 'कागजी शेर' के नाम से पुकारा तो करोडो एशियावासियोने हमारा उपहास किया। अन्य करोडो लोग हिन्द चीन तथा अफ्रीका मे योरोपीय उपनिवेशवाद का हमें समर्थक समझकर हताश हो गये और हम पर अपनी क्रान्ति से मुख मोडने का आरोप लगाया।

इस उलट-फेर का स्पष्टीकरण हम कैसे कर सकते है? योरोप मे अपन युद्धोत्तरकालीन कृत्यों से ही हम क्यो प्रोत्साहन लेते आये है? अन्यत्र हमारे कार्य क्यों इतने निराशापूर्ण और कभी-कभी घृणास्पद विफलता के रहे है? इतिहासकार इसके अनेक कारण दे सकते है।

उनमें यह बात निश्चित रूप से थी कि योरोप में तो हमे अपने कार्यों के प्रति आत्मविश्वास था, जबकि एशिया और एशियावासी अधिकाश अमरीकियोंके दिमाग में अगम्य, रहस्यपूर्ण, विदेशी और भौचक्का कर देनेवाले थे। इसने योरोपीय नीति से सहमत होने की बात को अपेक्षाकृत आसान कर दिया, जब कि एशिया के मामले मे किसी समझौते पर पहुँचने में क°वे और दलगत झगडे-बखेडे खडे हो गये। इसका परिणाम यह हुआ है कि हममें से बहुत से लोगो ने योरोपीय नीति के संकुचित विस्तार में ही विश्व-नीति को देखने और समझने की कोशिश की है और जो सीख योरोप में मिली उसीको दुनिया के सभी भागो मे लागू करने के प्रयत्न किये, जहाँ वे प्राय: अनुपयुक्त सिद्ध हुए।

१९४७ का हमारा साहसपूर्ण निर्णय एक महत्वपूर्ण उदाहरण है, जो ट्रूमन-सिद्धान्त के माध्यम से योरोप मे एक नया शक्ति-सतुलन पैदा करना चाहता है। यह महत्वपूर्ण कदम उठाते समय हम एक प्रकार से उसके महत्व को कम समझ रहे थे और आज के गतिमान शीतयुद्ध के मामले मे उन नीतियो को ग्रहण कर रहे थे जिनके आधार पर ब्रिटेन ने न केवल योरोप मे, बल्कि सारी दुनिया में लगभग २५० वर्ष तक अपनी स्थिति को कायम रखा। स्पेन के उत्तराधिकार सम्बन्धी युद्ध से, जो १७१३ मे समाप्त हुआ, प्रारभ कर ब्रिटेन ने योरोप पर अधिकार जमाए रखने के लिए उन एक अथवा अनेक सम्मिलित शक्तियों से पाच बडी लडाइयाँ लडी, जिन्होने उसे योरोप के साधन-स्रोतो और बाजारो से वञ्चित रखने की कोशिश की।

१९४७ मे जब रूस ने भूमध्यसागर पर ज़ार की पुरानी पद्धति से अधिकार प्राप्त करने के प्रयत्न किये तो हमने भी ब्रिटेन की पुरानी पद्धति से उसका प्रतिकार किया और सोवियत हस्तक्षेप रुक गया। उसी परम्परा के आधार पर हमने योरोप मे सोवियत आक्रमण को रोकने के लिए उत्तरी अटलाटिक सधि सगठन की शक्तियो के साथ मित्रता की।

फिर भी, जिस ऐतिहासिक स्थिति का मुकाबला ब्रिटेन को करना पडा और युद्ध के बाद जिन परिस्थितियो मे हम अपने को पाते है, उनमे एक मौलिक भेद था। बहुत से अमरीकी नेता इस भेद पर ध्यान देने मे असफल रहे।

द्वितीय विश्वयुद्ध के पूर्व, योरोप की राजनीतिक और सैनिक स्थिरता सारे ससार की स्थिरता की प्राय पर्याय रही है। कई पीढियो से चीन पर शक्तिहीन सम्राटो का अथवा युद्ध मे सलग्न सामन्तो का शासन रहा है। १९३२ मे एक विश्व-शक्ति के रूप मे उठने के पूर्व तक, जब उसकी आक्रामक महत्वाकाक्षाएँ प्रकट हुईं, ब्रिटेन के मित्र के रूप मे जापान ने एशिया मे रूसी महत्वाकाक्षाओ को प्रभावशाली ढग से रोक रखा। उपनिवेशवादी शक्तियो ने लदन, पेरिस, लिस्बन और हेग मे प्रमुख निर्णय किये, जिनका प्रभाव स्याम को छोड कर शेष एशिया पर पडा।

इस प्रकार 'पैक्स ब्रिटेनिका' की लम्बी अवधि मे योरोप की नीति वस्तुत विश्व-नीति हो गयी थी। १९४९ तक फिर भी, इस स्थिति मे जबर्दस्त परिवर्तन हो गया था। लगभग ६५ करोड एशियावासियो ने अपने औपनिवेशिक बधन तोड डाले थे। भारत और चीन औद्योगिक दृष्टि से भी, विश्व-शक्तियो के रूप मे उठने का प्रयत्न कर रहे थे और जापान अपनी पराजय

से बाहर निकल रहा था। अफ्रीका में उथल-पुथल मची हुई थी। इन नवीन यथार्थ परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए एक विश्वव्यापी नीति की आवश्यकता बिल्कुल स्पष्ट हो चुकी थी।

उस समय तक, दुर्भाग्य से विचारपूर्ण वाद-विवाद तथा विचार-विनिमय के लिए अनुकूल वातावरण नहीं था, जिसके बिना किसी जनतंत्र में प्रभावपूर्ण परराष्ट्र-नीति असंभव है। दिसम्बर, १९४९ तक चीन पर माओ का प्रभुत्व पूर्ण रूप से स्थापित हो गया था। छ. महीने बाद कोरिया पर साम्यवादी आक्रमण के प्रथम वर्ग-युद्ध में हमें अप्रत्याशित रूप से कूदना पड़ा और अगले अक्तूबर तक चीनी सेना के विरुद्ध हमारी सेनाएँ युद्ध में संलग्न हो गयी। दो-दलीय यथार्थवादी विश्व-नीति बनाने में सम्मिलित होने के बजाय अनेक अमरीकी राजनीतिज्ञ नये प्रकार के गाली-गलौज में उलझ गये।

यदि ये दलगत झगड़े हमारी विचारधारा को मदोन्मत्त न भी करते तो भी हमें एक दूसरी भ्रान्त धारणा को शुद्ध करने के लिए योरोप के बाहर एक प्रभावशाली विश्व-नीति की आवश्यकता पड़ती। एशिया और योरोप, दोनों स्थानों के अनुभवों ने हमारे मस्तिष्क में शक्ति की एक खतरनाक संकुचित धारणा पैदा कर दी है।

स्वाभाविक रीति से हमने योरोप को, उसकी लम्बी सैन्य परम्पराओं के साथ एक ऐसे क्षेत्र के रूप में पहचान लिया है, जहाँ राजनीतिक हस्तक्षेप बहुत जोखिम का काम है। योरोप के सैनिक उतने ही दृढ़ तथा सुसज्जित थे, जितने हमारे थे और विशेष रूप से प्रायः संख्या में अधिक थे। योरोप के मामलों में अमरीकी सैनिक हस्तक्षेप का कभी विचार नहीं था और हमने योरोप के दोनों युद्धों में बहुत वादविवाद और हिचक के साथ हिस्सा लिया।

एशिया और लैटिन अमरीका फिर भी भिन्न थे। अमरीका के मामूली साम्राज्य-वादी प्रयत्न इन्हीं क्षेत्रों में हुए। लगभग साढ़े चार सौ वर्षों से एशिया के अधिकांश भाग पर पश्चिम की उच्च सैनिक कूटनीति का प्रभुत्व था और नौसैनिक कूटनीति ही अड़ियल सरकारों से व्यवहार की स्वीकृत पद्धति थी।

योरोप के राष्ट्रों ने दक्षिण अमरीका पर अधिकार जमाने की कोशिश नहीं की; क्योंकि उनके पास अफ्रीका और एशिया का बड़ा भाग था, इसलिए नहीं कि दक्षिण अमरीका वालों में अपनी सुरक्षा की पूरी शक्ति थी, बल्कि इसलिए कि अमरीका ने मुनरो-सिद्धान्त का बन्धन लगा दिया था और इसलिए भी कि यह ब्रिटेन के हित में था कि वह अपनी शक्तिशाली नौ सेना को चुपचाप

हमारी सहायता के लिए रख दे।

तुलनात्मक सैनिक जोखिम की दृष्टि से इस प्रकार संभव है कि यह स्पष्ट हो जाय कि योरोप मे अमरीकी नीति क्यो इतनी पृथकतावादी है और अन्य स्थानों मे इतनी सक्रिय। इससे यह भी स्पष्ट होता है कि बहुतेरे अमरीकी जब एशिया और योरोप के विषय मे सोचते है तो अनजान मे वे पहले शक्ति की तुलना सैनिक बल से करते हैं।

दो विश्व-युद्धों मे हमने अत्यधिक खतरनाक दुश्मनों को परास्त कर देने वाली अपनी सैनिक तथा औद्योगिक शक्ति का पूरा परिचय दे दिया हैं। दूसरे युद्ध के बाद योरोप मे जो प्रथम खतरा दिखाई पडा, वह मास्को से सैनिक धमकी थी और हमने उसी रूप मे उसका समुचित प्रतिकार भी किया। एशिया मे जब और भी अधिक सही सैन्य नीति की आवश्यकता हुई तो स्वाभाविक रूप से हमे आणविक प्रतिकार के विशाल रूप का ही ध्यान आया, जिसने योरोप की अराजक अवस्था मे लाल सेना के प्रगति को भग कर दिया; यद्यपि एशिया मे इस कल्पना की सार्थकता नही रही है।

इस प्रकार अपने ऐतिहासिक और अर्वाचीन अनुभवों के आधार पर हमने शीत युद्ध की चुनौती के रूप के बारे में एक अतिशयोक्तिपूर्ण दृष्टिकोण अपनाया है, जो न केवल एशिया, दक्षिण अमरीका और अफ्रीका के लिए अपर्याप्त है, बल्कि योरोप के एक विस्तृत तनाव के लिए भी अपर्याप्त है।

आज के सघर्ष के सदर्भ मे जब मैंने एक बार वाशिंगटन मे ग्यारह प्रतिष्ठित नेताओ से शक्ति की परिभाषा पूछी तो मुझे मालूम हुआ कि किस हद तक इस धारणा ने हमारे मस्तिष्क पर अधिकार जमा रखा है। उन्होने शीघ्र ही स्वीकार कर लिया कि शक्ति में निम्नलिखित तत्व मिश्रित होते है— अणुअस्त्र, वायु सेना, स्थल-सेना, नौ-सेना, 'नाटो' और 'सीटो' जैसी सैनिक-सन्धियो, औद्योगिक उत्पादन, कच्चा माल, सचार-साधन और भूगोल। इनमे न तो जनता का उल्लेख किया गया और न विचारो का।

ये दो भूले हमारी उन शक्तियों को ग्रहण करने की असमर्थता का महत्वपूर्ण प्रमाण है, जिन्होंने युद्धोत्तर काल मे अधिकाश रूप से एशिया के इतिहास का निर्माण किया है और जो आज अफ्रीका मे प्रस्फुटित हो रही है और जिनके सम्बन्ध मे साम्यवादियो का दृढ निश्चय है कि अब से विश्व का इतिहास इन्ही के द्वारा लिखा जायेगा। निम्न लिखित तथ्यों के द्वारा इन शक्तियों की सामर्थ्य बड़े ही नाटचपूर्ण ढंग से सक्षेप मे बतायी गयी है — १९४७ से १ अरब

२० करोड लोगों ने अर्थात् विश्व की आधी जनसख्या ने अपनी सरकारों के रूप को बदलने के लिए पर्याप्त मात्रा में प्रभावपूर्ण शक्ति का सूत्रपात किया है, यद्यपि जिसको हम व्यापक दृष्टि से शक्ति समझने आये है, उसका मूल रूप प्रत्येक मामले में ज्यो-की-त्यो स्थिति बनाये रखने के पक्ष मे रहा है।

चीन मे माओत्से तुग ने कुल एक हजार आदमियो, दो सौ बन्दूको, असाधारण सगठनात्मक प्रवृत्तियो और एक विचार से १९२६ मे अपनी गतिविधि शुरू की और १९४९ तक वे चीन के स्वामी हो गये। १९४७ में गांधी ने व्यक्तिगत साहस और शान्तिपूर्ण ढग से परिवर्तन के विचार के आधार पर हिन्दुस्तान और पाकिस्तान को स्वतंत्र करा दिया और लका तथा बर्मा की स्वतंत्रता के लिए मार्ग प्रशस्त कर दिया।

हिन्देशिया और हिन्दचीन में हालैंड और फ्रास की अत्यधिक प्रबल सैनिक तथा औद्योगिक शक्ति फिर चकनाचूर हो गयी, वरिष्ठ भौतिक शक्ति के कारण नहीं, बल्कि जनता और उसके विचारो की शक्ति के कारण।

सैनिक दृष्टि से कमजोर होते हुए भी एक देश के बाद दूसरे देश के नेताओं ने, जिनका मुख्य विश्वास विचारों में था, चाहे वे अच्छे हो या बुरे, शासन की यथास्थिति को उलट दिया। शक्ति के और भी सकुचित रूप के प्रति अपनी हठधर्मी के कारण हमने उनके मिथ्या अनुमान निकाले है। उदाहरण के लिए, १९४५ से सुदूर पूर्व के सम्बन्ध में ही हमने निम्नलिखित हेत्वाभासों पर अपने अधिकाश विचारों को आधारित किया है :—

१९४५—च्यागकाई शेक की अमरीकी शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित सेना माओत्से तुग को पराजित कर सकती है और चीन को एक जनतन्त्रात्मक शासन पद्धति के अन्तर्गत मिला सकती है।

१९५०—कोरिया मे यदि सयुक्त राष्ट्र की सेनाएँ ३८ वे अक्षाश को पार करेगी तो चीन की साम्यवादी सेनाएँ कोरिया—युद्ध में टूट पडेंगी, पेकिंग का यह कथन उसकी झूठी धमकी है।

१९५३—च्याग को शस्त्रास्त्रो से सुसज्जित तथा स्वतंत्र कर हम चीन की मुख्य धरती पर उसके आक्रमण को सफल बना देगे।

१९५०-५४—फ्रास की औपनिवेशिक शक्ति हिन्दचीन पर अपना आधिपत्य कायम रख सकती है, यदि अमरीका उसे काफी शस्त्रास्त्र प्रदान करे। उदाहरणस्वरूप दिये गये इन कुछ भ्रान्त अनुमानों में हमारी एक ही बात सब जगह मौजूद है, और वह है हमारा सैन्य बल में अटूट

विश्वास और हताश एव भूखे लोगो की महत्वाकाक्षाओ के सयोग से गतिशील विचारो की शक्ति को समझ सकने की हमारी असमर्थता।

श्रेष्ठतम परिस्थितियो मे भी एशिया और अफ्रीका मे हमारा काम आसान नही होता। अनेक राष्ट्र, जिनके साथ हमे काम करना चाहिए, अभी हाल में ही स्वतत्र हुए हैं और योरोपीय उपनिवेशवाद के लम्बे अनुभवो ने उन्हे संशयालु और प्राय क्षुब्ध-सा बना दिया है।

इसके अतिरिक्त जब से स्तालिन ने १९३९ मे हिटलर के साथ सधि-पत्र पर हस्ताक्षर किये, तब से चले आने वाले जिस योरोपीय सकट मे अटलाटिक देश रहते आये है, उससे एशियावासी बौद्धिक तथा भावात्मक दृष्टि से पृथक रहते आये है। योरोप में एक लम्बे अर्से से साम्यवादी आक्रमण के भय तथा धमकी ने मास्को के प्रति अमरीकी दृष्टिकोण को अनिवार्य रूप से प्रभावित किया है। फिर भी एशिया मे, इतिहास के इस भयानक प्रकरण का अध्ययन नही के बराबर हुआ। इन वर्षों मे अधिकाश एशियावासी अपनी स्वतत्रता और जीवनमरण के सग्राम मे फँसे रहे।

पश्चिमी योरोप की रिक्तता को भरने के लिए जब हमने अपनी सैनिक तथा आर्थिक शक्ति का प्रयोग किया, तो हम मुख्यत उन लोगो के बीच कार्य कर रहे थे, जिन्होने हमारी ही तरह आक्रमण की शका को देखा और उसका उत्तर दिया; परन्तु जब हमने मध्यपूर्व मे सोवियत हस्तक्षेप और कोरिया मे चीन के आक्रमण रोकने की कोशिश की तो हम पर अविश्वास किया गया। इन दक्षिणी एशिया के देशों की भावुक सरकारो ने अपने उपनिवेशकालीन कटु अनुभवो की स्पष्टता के कारण अपने प्रायद्वीपो और द्वीपो तथा ऊँची पर्वत श्रेणियो के पीछे विश्व-साम्यवाद के खतरे को बहुत दूर समझा और उनके औपनिवेशिक संस्मरण स्पष्ट रूप से बने रहे।

आज एशिया मे योरोप की भाँति हमे एक ऐसे साम्यवादी सिद्धान्त का सामना करना है जिसमे नया लचीलापन आगया है और रूसी तथा चीनी कूटनीति अधिकाधिक चतुर होती जा रही है। मास्को और पेकिंग ने हमारी जनतत्रात्मक शब्दावली का प्रयोग करने मे कभी हिचक नही दिखायी। अब वे हमारे छात्र तथा सास्कृतिक आदान-प्रदान की पद्धतियो को और 'चतुर्थ सूत्र' को भी ग्रहण कर रहे है।

लेनिन ने एक बार कहा था कि पेरिस के लिए विश्वव्यापी साम्यवाद का मार्ग पेकिंग और कलकता होकर जाता है। भविष्य में उस मार्ग के खोलने का प्रयत्न

बहुत सभव है विकट हो।

स्तालिन की मृत्यु के उपरान्त क्रेमलिन शान्तिपूर्ण सह-अस्तित्व की दिन-रात बात कर रहा है। १९५५ मे उसने कार्य भी शुरू कर दिया। उसने आस्ट्रिया से शान्ति-सन्धि की, किसी समय घृणास्पद पश्चिमी जर्मन-सरकार से समझौता किया; अपने चोटी के नेताओ को टिटो के यूगोस्लेविया के साथ सधि करने के लिए बडे विनम्र भाव से भेजा; असाम्यवादी और साम्यवाद-विरोधी व्यक्तियों को रूस में प्रवेश करने और घूमने की अनुमति देने लगा और जिनेवा में अपनी सद्भावना दिखाकर अपनी नयी कूटनीति को चरम सीमा पर पहुँचा दिया।

विश्व-राजनीति मे क्रेमलिन के रुख मे परिवर्तन के अनेक कारण दिये जाते हैं। उनमे से कुछ की इसी पुस्तक में आगे चर्चा की गयी है; परन्तु कुछ भी कारण क्यों न हो, भविष्य में इनकी जटिलताएँ और भी बढ़ जायेंगी।

जर्मनी और जापान जैसे देश अधिक तेजी के साथ स्वतत्र-शक्तियों के रूप में उठेंगे, भारत का प्रभाव निश्चित रूप से विस्तृत होता जायेगा, दक्षिणी एशिया, अफ्रीका, दक्षिणी अमरीका का महत्व बढ़ जायेगा और शीत युद्ध का बिल्कुल आसान हिसाब– "या तो तुम हमारे साथ हो या हमारे विरुद्ध" और भी अधिक निरर्थक हो जायेगा।

दुनिया, जिसका क्रमिक विकास हो रहा है, क्रेमलिन के विश्व-साम्यवाद और वाशिंगटन के पश्चिमी गुट के मध्य, स्पष्ट संघर्ष के चित्र से कही अधिक जटिल जान पडेगी। सभव है, हम और रूस, दोनों परिस्थितियों अथवा घटनाओं को उतना प्रभावित न कर सके, जितना पहले से करते आये हैं।

यदि नये रूसी नेता सह अस्तित्व की अवधि को केवल एक अल्पकालीन विश्रान्ति की चाल भी मान ले, जिसके बाद रूसीनीति सशस्त्र विस्तार में परिणत हो जायगी, तो भी उन्हें पता चलेगा कि कुछ ऐसी शक्तियाँ कार्य कर रही हैं, जिनको रोक रखना कठिन होगा। जैफरसन ने एक बार कहा था–"स्वतंत्रता की बीमारी काफी आकर्षक है।" इस युद्धाक्रान्त संसार में अगर क्रेमलिन फिर सख्ती का रुख धारण करता है तो शायद उसको पता चलेगा कि शान्ति भी संक्रामक सिद्ध हो चुकी है।

अमरीकी जनता तथा उसके नीति-विधायकों के सम्मुख भी यह एक नयी चुनौती है। हम खुले आक्रमण और आक्रमण की धमकियों के युग से स्पष्ट रूप से निकलकर आतक की विषम शान्ति की स्थिति में पहुँच गये हैं। बड़े तनाव के ढीले होने पर छोटे तनाव बढ़ सकते है। जो कठिनाइयाँ, जटिलताएँ और

संघर्ष अभी तक शीतयुद्ध की राजनीति मे दबे हुए थे, वे अब पूर्ण रूप से हमारे बीच तथा हमारे मित्रों मे उभड सकते है। बिल्कुल नयी समस्याएँ खडी हो सकती है, जिनका सामना करने के लिए अभी हम तैयार नही है।

इस नये युग मे हम स्थिर केन्द्र मे खडे नही रह सकते। यह एक कल्पनाशील कार्य का समय होगा, आलस्य का नही, जैसा कि १२ वे पोप ने अपने १९५४ के क्रिसमस के खुले सन्देश मे कहा था, पारस्परिक भय और कटु जानकारी पर आधारित सह-अस्तित्व को शान्ति की सज्ञा नही दी जा सकती। उन्होने कहा—"सचमुच शान्ति से एक साथ रहते हुए, नैतिकता से सुरक्षित और प्रेरित इसका परिवर्तन होना चाहिए अन्यथा यह असाध्य लकवे की स्थिति मे सिकुड जायेगी और अततोगत्वा युद्ध मे परिणत हो जायेगी जिससे लोग भयभीत है।"

पोप ने जिस शान्तिपूर्ण सहअस्तित्व के लिए सिफारिश की है, उसके लिए विचारो में चतुर्दिक पुनर्व्यवस्था की आवश्यकता होगी। ज्यो ही नयी विश्व-परिस्थिति उन्नति और अवनति के चक्र को प्रकट करती है, उदाहरण के लिए नि शस्त्रीकरण का प्रश्न, जो आशा और संकोच के साथ संलग्न है, प्रतिद्वंद्वी ध्वनियो का शोर प्रारम्भ हो जायेगा। कुछ तो इस बात पर जोर देंगे कि हम शीघ्र ही अपनी नेकनीयती का सबूत देने के लिए अपनी सैन्य-शक्ति की वर्तमान स्थिति को समझौते की बातो के लिए त्याग दे और दूसरे इस बात पर जोर देते रहेगे कि शान्ति मनुष्य के लिए दुर्लभ ही रहेगी। इसलिए रूस और अमरीका दोनों को अणु-प्रतिद्वंद्वी के रूप मे बना ही रहना चाहिए और इस प्रकार वे दोनो इस प्रकम्पित विश्व मे एक दूसरे को अनिश्चित काल तक बुरी निगाह से देखते रहेगें।

नयी स्थिति मे नये तर्कों के बीच मे जिम्मेदारी के साथ नीति-निर्माण के लिए निश्चित रूप से साहस, धैर्य और उच्च कोटि की कल्पना की आवश्यकता होगी। सबसे अधिक, अमरीकावासी तथा उनके नेता इस नयी स्थिति के सम्बन्ध मे एक चेतना पैदा करे कि हमारे समाज के जीवित रहने की सामर्थ्य साम्यवाद की सीमाओ के बाहर रहनेवाली दो तिहाई मानवता के साथ हमारे सम्बन्ध पर निर्भर है। जो अमरीकी नीति क्रेमलिन की प्रतिक्रिया स्वरूप स्थिर होगी, वह अपने पक्ष को ही पराजित करने वाली होगी।

इसी प्रकार नीति के सैन्य-पक्ष पर केन्द्रीयकरण, जो १९४४-५५ के दशक मे अपर्याप्त सिद्ध हो चुका है, आने वाले १९५५-६५ के दशक के परिवर्तन-काल मे सर्वनाशी सिद्ध हो सकता है। वे लोग किस प्रकार सोचते है और

अनुभव करते है, उनकी इच्छाएँ क्या है, उनकी शकाएँ क्या है और विचारों की कौन सी शक्ति और रूप उन्हे प्रभावित करते है, इन बातो को समझ सकने की हमारी सामर्थ्य पर मध्यवर्ती दुनिया मे हमारे सम्बन्ध अधिक निर्भर करेगे, न कि हमारे अणु-अस्त्रो के भडार पर।

उन शक्तियों को, जो आज पूर्व स्थिति को पलट रही है, समझने के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि बीसवी सदी की तीन क्रान्तियो से, जिन्होंने दो पीढियों मे यूरेशिया की धरती के लोगो को बदल दिया है और आशा, भय, स्पर्धा और उत्तेजना की लहरो को दूसरे महाद्वीपों तक भेजा है, मौलिक परिचय प्राप्त किया जाय। इनमे से दो क्रान्तियाँ साम्यवादियों द्वारा ही की गयी और तीसरी को वे चतुरता से अपने पक्ष मे करने मे तल्लीन है। नयी और कल्पनाशील पद्धतियों के आधार पर मास्को और पेकिंग अपने-अपने ढग से एशिया और अफ्रीका के मध्यवर्ती ससार तक अपने प्रभाव को फैलाने का प्रयत्न कर रहे है, जहाँ पर अमरीकी नीति कम से कम प्रभावशाली रही है। इस स्थिति मे यह मान लेना मूर्खता होगी कि उनके इस अंतिम उद्देश्य कि, सयुक्त राज्य अमरीका को उसके मित्रो से धीरे-धीरे अलग कर दिया जाय और विश्व साम्यवाद कीं अन्तिम विजय हो, मे परिवर्तन आ गया है।

बीसवी शताब्दी की इन क्रान्तियों के उद्गमो, शक्तियों, दुर्बलताओं तथा जटिलताओं के तुलनात्मक अध्ययन और उनके संदर्भ मे हमे अपनी संक्षिप्त समीक्षा की ओर अब मुड़ना है।

दूसरा भाग

मास्को मे मार्क्स का आगमन

रूस, तू किधर जा रहा है ? जबाब दे। कोई उत्तर नही मिलता। घटियो की आवाज सगीत मे विलीन हो जाती है, हवा बिखर कर बवण्डर की भाँति दौडती है, धरती पर जो कुछ है, वह सब उडा जा रहा है और दूसरे राज्य तथा राष्ट्र चकित हो निहार रहे है।

निकोलाई गोगोल, १८०९–५२

रूसी लोगो का अतीत अन्धकारमय है। इनका वर्तमान भयानक है, परन्तु भविष्य पर इनका दावा है। ये अपनी वर्तमान स्थिति मे विश्वास नही करते। ये .समय से अधिक अपेक्षा करते है।

अलेक्जेण्डर हर्जेन १८१२–१८७०

तीसरा प्रकरण

रूसी प्रस्तावना

बीसवी शताब्दी की क्रान्ति का प्रथम विस्फोट रूसी लोगों मे ही हुआ और मास्को आज भी इसका विश्वजनीन प्रधान स्थल है। यदि हमे इस क्रान्ति और उसके अभिप्रायो को समझना है तो हमे उस देश के बारे में भी जानना चाहिए जिसने इसे जन्म दिया।

रूस शब्द मात्र अमरीकियों तथा पश्चिमी योरोपियनो के मस्तिष्क में एक ठण्डे, सख्त और निस्सीम देश, एक पूरे महाद्वीप का चित्र उपस्थित करता है, जिसका पश्चिमी योरोप एक प्रायद्वीप मात्र है। इसके प्रबल, प्रतिभाशाली तथा प्राय महान व्यक्तियों ने बेहद तकलीफें उठायी है। जैसा कि इतिहास से प्रकट है, रूसी-साहित्य भी एक हजार वर्ष की खून-खराबी, युद्ध, अत्याचार और क्रूरता को ध्वनित करता है। १९१७ के अतिम दिनो मे जब कि साम्राज्य-वादी सिंहासन लडखडा रहा था, जरीना ने अपने पति निकोलस से सुदृढ रहने के लिए इस बात की याद दिलाते हुए कहा था कि, रूसियो को कोड़ों की मार प्यारी है। कोडो की मार प्यारी रही हो अथवा नही, परन्तु शताब्दियो तक वे कोडो की मार सहते रहे।

फिर भी वही लोग अपने स्वदेश की रक्षा मे प्रथम १८१२ मे और फिर १९४३ मे आधुनिक योरोप के महानतम युद्ध-यंत्रों का सामना करनेके लिए तैयार हो गये।

पिछली शताब्दी के अंत तक अधिकाश रूसी किसान थे, जो उदरपूर्ति के लिए मध्ययुगीन पश्चिमी योरोप तथा आज के एशिया के कुछ भागों, अफ्रीका तथा लैटिन अमेरिका की भाँति प्राचीन तथा भोंडे साधनो से धरती से अन्न खुरचते थे। १८६१ तक अधिकाश रूसी लोग गुलाम थे, जो दासो की भाँति सरलतापूर्वक बेचे जा सकते थे, अन्यथा अपने सामन्ती स्वामी से तथा जिस धरती को वे जोतते थे, उसके साथ जन्म से मृत्यु पर्यन्त बँधे रहते थे। उस वर्ष के बाद, वे कानूनी तौर पर आजाद थे, परन्तु अन्य परम्पराओ मे जकडे तथा पिछडे हुए समाजों की भाँति अज्ञान और प्राचीन रिवाजो के नाम पर दास रूप में ही रखकर उनका शोषण होता रहा।

जारशाही के अतिम वर्षों मे यद्यपि किसानो को जमीन काफी बेची जाने लगी थी, तथापि किसानो का जीवन बहुत कठोर था। जहाँ शिक्षा तथा स्वास्थ्य–सुविधाएँ जैसी बाते धीरे-धीरे विकसित हुईं, वहाँ दूसरी ओर निर्द्वन्द्व क्रूरता के द्वारा निरकुश शासन को प्राय. प्रोत्साहन मिला। दरिद्रता और पैतृकवाद का सम्मिलन हो गया। वहाँ पर बेकारी और काहिली थी तथा कभी-कभी दुर्भिक्ष भी।

महान पीटर और कैथरीन के इस देश के पश्चिमीकरण करने के १८ वी शताब्दी के प्रयत्नो तक, आधुनिक युग के योरोप के साथ निकट सम्पर्क प्रारम्भ नही हुआ था। १६९७ मे जार पीटर ने छद्मवेश मे योरोप की यात्रा की। उन्होने कारखानों का निरीक्षण किया, हालैण्ड मे साधारण जहाज बनाने वाले का काम किया और ब्रिटेन को समृद्ध तथा शक्तिशाली बनाने वाली विधियो का पता लगाने के लिए लन्दन की यात्रा की। रूस में विद्रोह दबाने के लिए उन्हे वापस बुला लिया गया। उन्होनें अपने हाथो से विद्रोहियों को सजाएँ दी और तुरन्त ही पश्चिमी पद्धतियो का, जिनका अध्ययन उन्होने किया था, प्रयोग प्रारम्भ कर दिया। आज के पिछडे हुए देशो के अनेक नेताओं के पैगम्बरी व्यवहार की भाँति उन्होने लगभग एक हजार ब्रिटिश, फ्रासीसी, जर्मन निष्णातो को अपनी पिछडी हुई प्रजा को योरोप की समसामयिक कला तथा उद्योगो को सिखाने के लिए नियुक्त किया।

फिर भी वर्षों तक इस प्रकार प्रचारित नयी शक्तियाँ तथा विचार आबादी की अपेक्षाकृत छोटे समुदाय तक ही सीमित रहे। सेना के अफसर, सामन्त–पुत्र, सरकारी-पदाधिकारी और युवक विद्यार्थी योरोप की यात्रा से नये राजनीतिक तथा सामाजिक विचार लेकर वापस लौटे और साथ-ही-साथ अपने दरिद्र देशवासियो से पृथक् करने वाली दूरी के प्रति, जो न केवल शिक्षा के क्षेत्र मे थी, बल्कि जीवन की स्थितियो मे भी थी, गभीर जागरूकता भी लेकर लौटे।

धीरे-धीरे ज्योंही वर्तमान शताब्दी प्रारम्भ हुई, रूस ने औद्योगिक क्षेत्र मे बडे लम्बे-लम्बे डग भरना शुरू किया। मास्को, सेट पीटर्सवर्ग तथा डानेस के तटीय-स्थल अपनी प्रारम्भिक देहाती स्थिति से उठकर आधुनिक औद्योगिक केन्द्र बन गये, जिस प्रकार आज उत्तरी भारत मे दामोदर घाटी के औद्योगिक क्षेत्रों के गाँवो मे हुआ है।

इस औद्योगिक विकास ने कारखानो मे काम करने वाले नगरवासी मज-

दूरो के एक नये वर्ग को जन्म दिया। उनमें से अधिकांश कार्यकुशल नहीं थे। कुछ ही वर्ष पूर्व वे गाँवों से लाये गये थे और प्राय अपने ग्रामीण जीवन से सम्बन्ध-विच्छेद पर घबडा उठते थे। उनके मालिक उनसे निर्दयतापूर्वक काम लेते थे और उनकी हालत जर्मनी, फ्रान्स तथा इंग्लैंड के प्रारम्भिक विद्रोह काल के मजदूरो से मिलती-जुलती थी।

अभी हाल के वर्षों मे इस सयोग की राजनीतिक विस्फोटात्मकता अन्य स्थानो मे भी परिलक्षित है; कभी-कभी इसके परिणाम दुखपूर्ण होते है। दक्षिणी एशिया, अफ्रीका, दक्षिणी अमरीका और रूस तथा चीन में भी, दलित तथा भूमिरहित किसान वर्ग, गंदे बाडों मे रहने वाले, कम वेतन पाने वाले कारखानों के मजदूर और पश्चिमी शिक्षा प्राप्त हताश बुद्धिजीवी वर्ग, यह ऐसी सामग्री है, जिससे बीसवी शताब्दी की क्रान्तियों का उद्भव होता है।

रूस मे क्रान्तिकारी गतिविधि २० दिसम्बर, १८२५ से ही प्रारम्भ हो गयी थी, जब कि सैनिक-अफसरो के गुट ने, जिसने नेपोलियन के साथ युद्ध के समय की बढती उदारता का उपयोग किया था, ज़ार निकोलस प्रथम के सत्तारूढ होने के दिन ही विद्रोह कर दिया। जब उनकी योजनाएँ लगभग असफल हो गयी तब ये तथाकथित 'दिसम्बरिस्ट्स' बुरी तरह से दबा दिये गये।

परन्तु विद्रोह की आग सुलगती गयी। प्रत्येक युद्ध के बाद, जिसमें रूस उलझा हुआ था, जार की सरकार की ओर से हर बार रियायतों की घोषणा होती रही— १८५६ का क्रीमियन युद्ध, १८७८ का रूस और तुर्की का युद्ध, १९०५ का रूस और जापान का युद्ध—हर बार ये रियायतें, वापस ले लेने की शर्तों के साथ, बेमन से दी गयी थी। १९१४ के पूर्व शान्ति के अन्तिम वर्ष मे, कुछ उदार योजनाएँ, जैसे—भूमि-सुधार, जूरी द्वारा न्याय, इत्यादि अन्ततोगत्वा प्रारम्भ की गयी थीं, परन्तु सचमुच बहुत विलम्ब के साथ। जब रूसी क्रान्ति हुई तो उसने उस अनिश्चयात्मक सरकार को उखाड फेंका, जिसमे शासन-सचालन का ज्ञान नहीं था।

जार की कमजोरी और असमर्थता का, सचमुच, मतलब यह था कि ज़ार का आतक उनके उत्तराधिकारी साम्यवादियों के आतंक के मुकाबले का नही था। संसदीय सदस्यों ने विशेष रूप से राजतंत्र के पिछले दस वर्षों में सीमित आधार पर स्वतंत्र राजनीतिक कार्य किये। प्रेस पर यद्यपि पूर्ण सरकारी नियत्रण नही था, तथापि उसकी बहुत ध्यानपूर्वक काट-छाँट होती थी। वाम-पक्षी पत्र

भी थे—१९०५ तक छिपे रूप मे और उसके बाद अधिक खुले रूप में।

असन्तुष्ट रूसियो का रूस के बाहर और भीतर निरन्तर आन्दोलन चल रहा था और देश मे रहने वाले स्तालिन जैसे क्रान्तिकारियो तथा अस्थायी रूपसे निर्वासित लेनिन जैसे व्यक्तियो के बीच आदेशो और सूचनाओ का आदान-प्रदान चलता रहता था। जब जार ने स्तालिन को पकडा भी तो उसे साइबेरिया भेजकर सतोष कर लिया। स्तालिन के कितने विरोधी उसका दुबारा विरोध करने के लिए बच रहे ?

फिर भी जार के अन्तर्गत साम्राज्य-शक्ति का आधार अक्षुण्ण रहा—सेना, राजतन्त्र तथा जार का अपने किसानो के साथ 'माईबाप' वाला रूप सभी कुछ कायम था। परिणामस्वरूप सरकार का मौलिक विरोध छिप कर किया गया।

जार की गुप्त पुलिस ने जिस हद तक क्रूरता की तथा फाँसी की सजाएँ दी, विरोधी दल ने स्वभावत बम से उसका प्रतिकार किया। अन्तिम चारो ज़ारो पर हत्या के छिट-पुट प्रयत्न किये गये, जिनमे से दो का भयानक अत हुआ। रूस मे, दुनिया के दुर्भाग्य से, लोगो ने हिसा की आदते खूब अच्छी तरह सीख ली।

१९१७ मे जार निकोलस द्वितीय को उलट देने के बाद बोलशेविको ने निर्देश दिया कि उसके घृणित पिता अलेक्जेण्डर की मूर्ति को, जो स्वाभाविक मृत्यु पाने वाले अन्तिम दो रोमनोव शासक थे, लेनिनग्रेड के रेलवे स्टेशन के सामने पार्क मे खडा रहने दिया जाय, परन्तु उस पर के आलेख को इस प्रकार बदल दिया जाय—

हौवा

"मेरे पुत्र तथा पिता को जीवित फाँसी पर चढा दिया गया और अब मृत्यु के बाद भी मै अपमानित हूँ। यहाँ पर मै अकेले उस देश के लिए, जिसने निरकुशता के जुए को उतार फेका है, एक पीतल के हौवे की भाँति खडा हूँ।"

परराष्ट्र के मामलो मे रूस का विस्तार और उसकी सैनिक शक्ति उन्नीसवी शताब्दी में योरोपीय शक्ति के सतुलन मे महत्वपूर्ण अश बनने के लिए पर्याप्त थी। नेपोलियन के विरुद्ध युद्धमे विजयी गुट का रूस प्रमुख सदस्य था और अलेक्जेण्डर प्रथम उन तीन राजाओ मे था, जिन्होने इस पवित्र गठबन्धन की स्थापना की थी और जिन्होने योरोप को लोकप्रिय शासन और राजनीतिक स्वाधीनताओं की सक्रामक नयी धारणाओ से मुक्त रखने का सकल्प कर लिया था।

१९ वी शताब्दी मे रूस में विस्तार की ध्वनियाँ और भी अधिक सक्रामक रूप मे जारी रही। रूसी साम्राज्य की तीन पवित्र राजधानियाँ "मास्को, सेंट पीटर्सबर्ग तथा कुस्तुनतुनिया है," ऐसा पान-स्लेविस्ट त्यूचेव (Pan-Slavist Tyutchev) ने लिखा था। उसने कहा, "उत्तर, पूर्व, पश्चिम और दक्षिण मे इसकी सीमाए कहाँ है ? भाग्य यह दिखायेगा कि भावी मार्ग हमें सात आन्तरिक समुद्रों तथा सात महा नदियो की ओर ले जायेगा। नील से नेवा तक, एल्व से यांगटिसी तक, वोल्गा से दजला फरात तक, गगा से डैन्यूब तक, यही रूसी साम्राज्य है और वह युगों तक कायम रहेगा।"

गत शताब्दी के उत्तरार्द्ध मे, इस विस्तारवान साम्राज्य का दबाव एक ओर तुर्की, बालकन और मध्यपूर्व की ओर बढता गया और दूसरी ओर चीन तथा सुदूर पूर्व की ओर। पूर्वी भूमध्यसागर मे उसके प्रवेश को जब योरोपीय शक्तियो ने क्रिमिया अथवा सान स्टेफनो मे रोक दिया, तो रूसी साइबेरिया मे उपनिवेश-विस्तार के अथवा विघटनशील मचू राज्य से अधिक रियायतें ऐंठ लेने के चक्कर मे पड गये। इसका अन्तिम परिणाम यह हुआ कि जापान की बढती हुई शक्ति से ज़ार की मुठभेड हो गयी और १९०४ मे उससे पराजित होना पडा।

फिर इस विचित्र अनिवार्यता के साथ रूसी कूटनीतिक प्रयास दक्षिण-पश्चिम की ओर हुआ। इसके हथियारो में केवल ज़ार की सैनिक धमकी नही थी, बल्कि यूनानी, लेबनानी और काप्टिक कट्टर चर्चों के चचेरे भाई रूसी कट्टर चर्च पर आधारित सैद्धान्तिक अपील तथा स्लाव लोगों के सयुक्त राष्ट्र का सपना भी था। हमारी शताब्दी के प्रथम वर्षों मे आस्ट्रिया, हंगरी तथा तुर्की के बालकन साम्राज्य के अवशेषों के विरुद्ध ज़ार सरकार के स्लाविक पक्षीय षड्यत्रो ने प्रथम विश्व-युद्ध के आगमन मे योग दिया।

इसी बीच रूस का सैद्धान्तिक अभियान, अफ्रीका में भी इथिओपिया की काप्टिक क्रिश्चियन चर्च के साथ भाईचारे का रिश्ता जमाने के लिए पहुँच गया था। १९१० मे जार निकोलस ने एडिस अबाबा में प्रथम आधुनिक अस्पताल बनवाया और एक विशाल कूटनीतिक मिशन स्थापित किया। उसने आशा की थी कि इसको आधार बनाकर अफ्रीका मे ब्रिटेन फ्रांस, बेल्जियम, स्पेन, पुर्तगाल के अफ्रीकी साम्राज्यों के विरुद्ध प्रतिद्वद्वी प्रभाव-क्षेत्र का निर्माण किया जा सकेगा। १९५५ में, जब मै इथिओपिया गया, तब

मिशन की ये चौकियां क्रेमलिन के मार्गदर्शन मे अब भी समृद्ध हो रही थी, यद्यपि उनकी चाल धीमी प्रतीत होती थी।

इस प्रकार साम्यवादी होने के बहुत पहले रूस ने मिशन की एक रहस्यात्मक भावना विकसित कर ली थी। दोस्तोवस्की के कथनानुसार करोडो लोगो को यह विश्वास था कि रूस और उसके पवित्र कट्टरपथी चर्च ईसा मसीह के रूप को सुन्दर और शुद्ध ढग से सुरक्षित रख रहे है और जब समय आयेगा तब वे इसको विश्व के लडखडाते धर्मो को दिखायेगे। रूस मे नया "सितारा" निकलेगा। १९ वी शताब्दी के अनेक रूसी लेखको ने अपने देश की तुलना एक अज्ञात लक्ष्य की ओर जाने वाले और तेज घोडो द्वारा खीचे जाने वाले रथ से की थी जिसको मार्ग देने के लिए सम्मान के साथ ससार के सभी राष्ट्र अगल-बगल खडे थे।

परन्तु दोस्तोवस्की ने रूस के विश्व-मिशन के आशावादी दृष्टिकोण को अस्वीकार करते हुए लिखा था कि रूस आगे बढने की दौड मे बेतहाश कदाचित् विध्वस की ओर दौडता चला जा रहा है, क्योकि अतीत मे लोगो ने विनम्रता और आग्रह के साथ इस बेपनाह मार्ग से विचलित होने के लिए कहा था। १८४९ मे उस महान उपन्यासकार को १८४८ की घटनाओ तथा योरोपीय विचारो से प्रेरित क्रान्तिकारी षड्यत्रो मे भाग लेने के अपराध मे साइबेरिया भेज दिया गया। साइबेरिया की बजर धरती की वेदना मे उसकी राजनीतिक एव भौतिक समाधान की सारी आशाएँ जाती रही।

इसी प्रकार के देश-निकालो से दूसरे लोग अपनी नयी क्रान्तिकारी आशाओ के साथ वापस आये और दोस्तोवस्की ने जो यह आशका की थी कि जारशाही का तख्ता उलट जायगा, उसकी पूर्ति हुई। जार का स्थान एक कम्यूनिस्ट डिक्टेटर ने लिया, किन्तु इसके लिए अन्य धारणाएँ, विचार और व्यक्ति कारण बने थे।

चौथा प्रकरण

मार्क्स के सिद्धान्त

वह निश्चय ही क्रान्तियों का एक अत्यन्त अद्‌भुत जनक था, अपने देश जर्मनी से निष्कासित, दाढ़ी बढ़ाये हुए, लदन की गन्दी बस्तियों में रहने वाला वह रूखा व्यक्ति ब्रिटेन के उदार पत्रों में परराष्ट्र-नीति पर आलोचनाएँ लिख-लिख कर किसी तरह अपना जीवन-निर्वाह कर रहा था। वह प्रतिदिन सुनसान ब्रिटिश म्यूजियम में जाता, पुस्तकों और पत्रिकाओं के अध्ययन में लग जाता तथा अपने क्रान्तिकारी सिद्धान्तों की विशाल और विस्तृत रूपरेखा तैयार करने में बड़े परिश्रम से जुट जाता था।

कार्ल मार्क्स केवल इसीलिए क्रान्तिकारी नहीं था कि उसने हिंसात्मक क्रान्ति के उपदेश दिये और लोगों का सगठन किया और न इसलिए कि उसके नाम पर क्रान्तियाँ हुई, बल्कि इसलिए कि उसकी रचनाओं ने भविष्य के सभी राजनीतिक तथा आर्थिक विचारधाराओं को बहुत प्रभावित किया है।

आजकल आधे से अधिक ससार में शिक्षितों ने न्यूनाधिक रूप में उसके विचारों को स्वीकार किया है। यदि हम उन मौलिक तत्वों को हृदयगम करना चाहते हैं जो वर्तमान इतिहास का निर्माण कर रहे हैं, तो इस अनोखे व्यक्ति तथा उसके विचारों की कम से कम प्रारम्भिक जानकारी अवश्य होनी चाहिए।

मार्क्स की विचारधारा शक्तिशाली थी, क्योंकि वह उसके आसपास के जीवन के सूक्ष्म निरीक्षण पर आधारित थी। वह जीवन सीमित था, क्योंकि उसने केवल उन्हीं तथ्यों को देखा जो समय, स्थान तथा उसकी रुचि के अनुकूल थे। ये तथ्य औद्योगिक क्रान्ति के भयानक युग में जीवन की दर्दनाक वास्तविकताएँ थी। उसने लदन की गंदी बस्तियों में रहनेवाले अपने उन पड़ोसियों को देखा जो कम से कम साधनों पर जीवन निर्वाह करते थे; तग कोठरियों में घुटते रहते और काम करते-करते थक कर चूर हो जाते थे। उसने बाध्य गति से फैलते हुए अर्थतत्र के घातक प्रभाव को भी देखा। उसने इसके शिकार उन व्यक्तियों के आतक और आधारहीनता को भी देखा, जो अपने कारखानों के मालिकों और शासन के नियत्रकों की शक्ति के सम्मुख व्यक्ति

के रूप मे बिल्कुल असहाय थे।

आधी शताब्दी के उपरान्त बिलकुल वैसी ही परिस्थितिया रूस में भी दिखायी देने लगी। वस्तुत न्यूनाधिक मात्रा मे अधिकाश देशो मे भी वैसी ही परिस्थितियाँ देखी जा सकती थी, जो कृषि से यत्र पर आधारित अर्थतत्र के कठिन सक्रान्ति-काल से गुजर रही थी। इन मानवीय कठिनाइयो की सहानुभूति तथा चतुराई के साथ व्याख्या करते हुए और उनसे निस्तार पाने के लिए युक्ति प्रस्तुत करने का दावा करते हुए, मार्क्स ने अपनी अपील का एक टिकाऊ आधार प्रदान किया।

मार्क्सवाद विकासशील कारखाना-पद्धति के कटु अन्यायो के विरुद्ध एक जोरदार आवाज से कुछ अधिक तो है ही, परन्तु समाजवादी समाधान की अपील से भी अधिक है। राबर्ट ओवेन तथा अनेक अग्रेजी और फ्रासीसी विचारको ने इन दोनो बातो की ओर सकेत किये थे। मार्क्स ने इन कारखानो के मालिको और शक्तिशाली लोगो के अधिकारो मे भाग लेनेवाली बातो को काल्पनिक माना। मार्क्स ने कहा कि कुछ व्यक्ति ऐसे आत्मत्यागी हो सकते है, परन्तु पूरा वर्ग कभी नही हो सकता।

उसके स्थान पर, जिस प्रकार डारविन ने जीवन मे विकासवादी प्रक्रिया को कार्य करते देखा, मार्क्स ने भी आर्थिक इतिहास मे उसी प्रकार के तत्वो को कार्य करते हुए देखा। इसके कारण उसे विश्वास था कि व्यापक सीमाओ के अन्तर्गत घटनाओ की सभावना पर भविष्यवाणी की जा सकती है।

जर्मन दार्शनिक हीगेल के सिद्धान्त मार्क्स को बहुत सार्थक प्रतीत हुए। हीगेल का मत था कि इतिहास मे प्रत्येक महान विचार, जिसे वह 'वाद' (Thesis) कहता था, अपना 'प्रतिवाद' (Antithesis) साथ लाता है। जब ये दोनो विचार प्रभुत्व के लिए सघर्ष करते है, तब एक समन्वयवाद (Synthesis) विकसित होता है, जिसमे दोनो के सच्चे तत्व होते है। यह समन्वयवाद बाद मे नया वाद बन जाता है और इसी प्रक्रिया की पुनरावृत्ति होती रहती है, जिसमे प्रत्येक के परिणामस्वरूप प्राप्त 'समन्य-वाद' अपने पहले वाले से अधिक शुद्ध और सम्पूर्ण होता जाता है। यही वह प्रक्रिया है, जिसे हीगेल ने द्वद्वात्मक कहा था।

बाद मे मार्क्स ने यह दावा किया था कि उसने हीगेल को "सिर के बल खडा कर दिया है।" ऐतिहासिक विकास के नियत्रक तत्व के रूप मे विचारो के सघर्ष के स्थान पर मार्क्स ने इस तत्व को समाज की अस्थिर आर्थिक

शक्तियो में पाया। प्रत्येक प्रकार का आर्थिक संगठन केवल एक वर्ग को सत्ता प्रदान करता है, जिमके सदस्य उम विशिष्ट पद्धति के अन्तर्गत उत्पादन के साधनो के स्वामी होते है।

मार्क्म ने कहा था कि अपनी आर्थिक शक्ति के कारण यह वर्ग समाज की राजनीतिक बागडोर भी अपने हाथ मे रखता है। चाहे कितने ही जनतंत्रात्मक नियत्रण क्यो न रखे जाये, शासक वर्ग इस राजनीतिक सत्ता का अनिवार्य रूप से अपने प्रभुत्व को बढाने में ही प्रयोग करता है। किसी समाज की कला, मंस्कृति और रहन-सहन मुख्य रूप से शासक वर्ग की रुचि तथा आवश्यकताओ को प्रतिबिम्बित करती है, जो उन आर्थिक प्रयत्नो से मचालित होते है जिनके आधार पर वे सत्ताधीश बने थे।

फिर भी इम प्रकार की प्रत्येक आर्थिक-पद्धति मे मार्क्म के अनुमार, 'आन्तरिक विरोध' तो रहते ही हैं। जैसे-जैमे उत्पादन के माधन बदलते है, वैसे ही वैसे प्राविधिक सुधारो से एक नवीन आर्थिक वर्ग का विकास होता है। ज्यो ज्यो यह उदीयमान शामक-वर्ग संख्या और शक्ति में बढता जाता है, त्यो-त्यो वह नये यान्त्रिक सुधारो के लाभो मे अधिक से अधिक भाग लेना चाहता है। पुराना शासक वर्ग उसे रोकने की कोशिश करता है। पहले वह राज्य के पद और बल को इन नये विरोधियो के विरुद्ध लगा देता है और जब वह अपर्याप्त सिद्ध होता है तो शक्ति और हिंसा का प्रयोग करता है। मार्क्स के अनुमार काल्पनिक (यूरोपियन) समाजवादियों ने इमे कभी समझा ही नहीं।

उदीयमान आर्थिक वर्ग ने सदैव अपने स्वार्थों की सुरक्षा प्रमुखत. हिंसा से की है और अन्तत. सत्ता हथिया ली है, जो इसके लिए पूर्व ही निर्धारित की गयी थी। इस प्रकार हिंसात्मक क्रान्ति ने प्रत्येक नयी आर्थिक व्यवस्था के जन्म पर दाई का काम किया है और एक बार नयी व्यवस्था कायम हो जानेपर पुनरावृत्ति का यह चक्र चलता रहता है।

मार्क्स ने पाश्चात्य इतिहास मे इस प्रक्रिया का ज्वलन्त आदर्श सामन्तवादी से पूँजीवादी व्यवस्थाओ की ऐसी सक्रान्ति मे देखा, जो ससार के अनेक भागो मे अभी पूरी नही हुई थी, या हमलोगो के जीवन काल में उपेक्षित थी और उसे अपने देश मे तो और भी कम दिखायी दी। सामन्तवाद के अन्तर्गत उस समय और आज भी आवश्यक आर्थिक सगठन कृषि-उत्पादन के चतुर्दिक चक्कर काटता रहता है। अतएव मार्क्स के लिए, उसकी अपनी परिभाषा के अनु-सार, सामन्ती उच्च वर्ग, जो उत्पादन के साधनोंका स्वामी था, शासक भी था।

मार्क्स ने कहा कि सामन्तवादी सामाजिक तथा राजनीतिक सगठन केवल एक ही बडे उद्देश्य के लिए बने थे—धरती के जोतने वालो को इस प्रकार बाँध रखा जाये कि वे निश्चित रूप से उन अल्पसख्यको के हित मे कार्य कर सके जो धरती के मालिक है।

अस्तु, अनिवार्यत विरोधो का विकास हुआ। विलास-सामग्री की खरीद तथा सेना के सरक्षण के लिए जमीन के स्थान पर नकद धन की आवश्यकता, व्यापार तथा परिवहन के बेहतर साधनो तथा कृषि-उत्पादन की बचत ने धीरे-धीरे व्यापारियो, कारीगरो तथा महाजनो के एक नये वर्ग के साथ नगरो का विकास किया। परश्रमजीवियों के इस नये वर्ग ने (Bourgeoisie) उत्पादन के नये साधनो, पूजी तथा कारखानो पर नियत्रण कर लिया। उसके स्वार्थ भूमिस्वामित्व पर आधारित प्राचीन सामाजिक तथा राजनीतिक ढाँचे के बिलकुल विपरीत थे।

जमीदार की दिलचस्पी सदा से इसीमे रहती आयी है कि किसी प्रकार व्यवस्था और स्थायित्व कायम रहे और अर्ध-दासो के साथ उसके सम्बन्ध पूर्ववत् बने रहे और साथ ही इस प्रकार की जीवन-प्रणाली को कायम रखनेवाली उच्च वर्गीय राजनीतिक सत्ता अक्षुण्ण बनी रहे। अब नया मध्यवित्तीय वर्ग जहा कही भी अपना व्यापार चलाना या बढाना चाहता है, मजदूरो को भाडे पर रखने के अधिकार के लिए आग्रह करता है। इन उद्देश्यो की पूर्ति के लिए वह पहले सामन्तो के विरुद्ध राजा को तैयार करता है और तदनन्तर राज्य व्यवस्था मे राजा के विरुद्ध अपने अधिकार मांगता है। नगर की जनसख्या उच्चवर्गीय जन-सख्या से अधिक होने के कारण उनका हित इसी मे है कि वे अन्ततोगत्वा अपनी राजनीतिक माँगो को जनतत्रात्मक प्रतिनिधि-शासन के रूप मे प्रस्तुत करे, जिससे उनके उद्देश्य की ओर अन्य वर्ग भी आकृष्ट हो जाये।

मार्क्स के अनुसार इसका अनिवार्य परिणाम यह होगा कि मध्यवित्तीय वर्ग अभिजातीय समाज-व्यवस्था को हिंसात्मक ढग से उखाड फेकेगा। उसने फ्रान्सीसी क्रान्ति को सुन्दर दृष्टान्त के रूप मे प्रस्तुत किया। मार्क्स की व्याख्या के अनुसार ही, यह नया 'समन्यवाद' (Synthesis) भी स्थिर नही रहा। लगभग तुरन्त ही इसके भी विरोधी तत्व एकत्र होने लगे और क्रान्ति की उसी प्रक्रिया की पुनरावृत्ति हुई।

उदाहरणस्वरूप, औद्योगिक क्रान्ति की पूर्ण सफलता के लिए जो आर्थिक

शक्तियाँ कार्य कर रही थी, उनके लिए बडे-बडे कल-कारखानो के निर्माणार्थ नित्यप्रति अधिक पूँजी की आवश्यकता थी। जिन थोडे-से लोगों के पास कुछ पूँजी थी, वे नये शासकवर्ग के रूप मे आ गये। अनिवार्यत समाज के इस नये आर्थिक ढाँचे ने स्वय अपनी कब्र खोदने वाले तैयार कर लिये, जो-कल कारखानो मे काम करने वाले मजदूर थे।

देहातों से नयी भर्मियों तथा जनसख्या की वृद्धि के कारण उनकी सख्या प्रतिदिन बढती गयी और मार्क्स ने देखा कि वे पश्चिमी योरोप के औद्योगिक यत्रो के जबडो मे समाते चले जा रहे हैं। उसने विश्वास के साथ यह भविष्य-वाणी की कि भूमिहीन श्रमिको का यह सर्वहारा वर्ग नये मालिको द्वारा शोषित किया जायेगा, क्योकि लाभ ही इन मालिको का एकमात्र उद्देश्य था। निरन्तर विकासमान उद्योग एकाधिकार मे परिणत होते जायेंगे और मजदूरो को केवल जिन्दा रखने भर के लिए वेतन मिलेगा। परन्तु मार्क्स की यह मौलिक आर्थिक भविष्यवाणी १९ वी शताब्दी के ब्रिटेन मे ही असत्य सिद्ध हो चुकी है।

छोटे-छोटे व्यापारी, पूजीपति की केन्द्रीभूत पूँजीवादी आर्थिक शक्ति के मुकाबले न ठहर सकने के कारण समाप्त हो जायेंगे और श्रमिकवर्ग मे शामिल हो जाने के लिए विवश हो जायेंगे। अब पूरा समाज धीरे-धीरे, उत्पीडित श्रमिक और उनके उत्पीडक पूँजीवादी, इन दो विरोधी वर्गों मे विभाजित हो जायगा।

मार्क्स ने अपने विश्वास के अनुसार आर्थिक उथलपुथल के चक्र में पूँजी-वाद का आन्तरिक विरोधाभास देखा, जो १९वी शताब्दी मे ही स्पष्ट हो चुका था। मार्क्स ने कहा कि नये औद्योगिक यत्रों से उत्पादन इतना बढ़ जायेगा कि उसे न तो पूँजीवादी वर्ग स्वय खपा सकेगा और न वह मजदूरो को खरीदने देगा। उसने कहा कि "अधिक उत्पादन की महामारी" का अनिवार्य परिणाम मन्दी होगा तथा यह मन्दी सामूहिक बेकारी के साथ श्रमिक और पूँजीवादी वर्गों के बीच सघर्प को और भी अधिक तीव्र और कडवा बना देगी।

मार्क्स ने भविष्यवाणी की कि "श्रमिक वर्ग मे ज्यो-ज्यों प्रतिरोध की शक्ति बढ़ती जायेगी, त्यों-त्यों पूँजीवादी वर्ग दमन के लिए शासन यत्र पर अपने नियत्रण का अधिक से अधिक प्रयोग करेगा। जब ये शान्तिपूर्ण तरीके श्रमिक को शान्त रखने मे अपर्याप्त सिद्ध होगे, तब पूँजीवादी वर्ग सेना और पुलिस की नग्न शक्ति का, जिन पर उनका कब्जा होगा ही, प्रयोग करने के लिए विवश होगा। श्रमिक वर्ग भी स्वत्व का अपहरण करने वालों को अधिकार-वचित

करने के लिए तीव्र हिंसात्मक विरोध करेगा और 'सर्वहारा का अधिनायकतंत्र' स्थापित करेगा जिसमे उत्पादन के साधनो पर श्रमिक वर्ग की ओर से राज्य का अधिकार होगा।

फिर भी, प्रत्येक पिछली क्रान्ति के विपरीत यह पहली क्रान्ति होगी, जिसमे केवल सर्वहाराओ का ही एक वर्ग बचा रहेगा जब कि अन्य सभी वर्ग विनष्ट हो जायेगे। चूँकि राज्य स्वय वर्ग-शासन का साधन है जिसकी फिर कोई जरूरत नही रह जायेगी, लेनिन के शब्दो मे, वह कुछ दिनो मे लुप्त हो जायेगा और अन्तिम समन्वय के रूप मे एक वर्गविहीन साम्यवादी समाज ऐतिहासिक प्रक्रिया की शाश्वत विजय के परिणामस्वरूप रह जायेगा।

× × ×

फरवरी, १८४८ की क्रान्तियो मे से, जो उस वर्ष योरोप भर मे फैल जाने वाली थीं, प्रथम क्रान्ति जर्मनी और फ्रान्स मे फूट पडी। उसी महीने मे मार्क्स का कम्यूनिस्ट घोषणापत्र प्रकाशित हुआ। ऐसे अधिकतम महत्व की पुस्तिका कदाचित् ही कभी प्रकाशित हुई हो। इसमे मार्क्स ने सर्वप्रथम अपने सिद्धान्तो की विस्तृत रूपरेखा प्रस्तुत की, जिसका अन्त इन अशुभ शब्दो मे हुआ,—"साम्यवादी इस बात की खुली घोषणा करते है कि वर्तमान सामाजिक परिस्थितियो को शक्ति द्वारा उखाड फेकने से ही उनके उद्देश्यों की प्राप्ति हो सकती है। शासक-वर्ग को साम्यवादी क्रान्ति से प्रकम्पित कर दो। सर्वहाराओ का बेडियो के सिवाय और कुछ नही जायगा। ससार के मजदूरो एक हो।

विश्वक्रान्ति के लिए यह एक खुली ललकार थी। घोषणापत्र ने यह स्वीकार किया कि प्रत्येक देश के सर्वहाराओ को पहले अपने देश के मध्यवर्गीय लोगो से अपने मामलो को निबटाना चाहिए, जिसका रूप राष्ट्रीय आन्दोलन की भाँति ही है। फिर भी, साराश मे यह सिद्धान्त अन्तर्राष्ट्रीय था। घोषणापत्र के अनुसार श्रमिको का कोई देश नही है। उन्नीसवी शताब्दी के राष्ट्रीय राज्य पूँजीवादी अत्याचार के साधनो के अतिरिक्त और कुछ नही है। नये विजयी सर्वहारा अब इनमे से किसी के प्रति आस्था नही रखेगे।

इसके विपरीत, वर्गहित तथा सहानुभूति से ससार के अन्य सभी देशो मे श्रमिको की एकता स्थापित होगी, जिनके लिए सभी राष्ट्रीय पूँजीवादी सरकारे एक जैसी दुश्मन होंगी। जिस प्रकार आर्थिक स्थितियो ने विश्वव्यापी क्रान्ति को जन्म दिया, उसी प्रकार उसका विश्वव्यापी इलाज भी हो सकता है। इस प्रकार अन्त मे सफल क्रान्ति विश्वव्यापी वर्गविहीन समाज, अभिनव शासन

तथा विश्व अर्थतंत्र की स्थापना करेगी।

राष्ट्रीयता द्वारा उत्पन्न समस्याओ के मार्क्सवादी समाधानों ने इसके प्रभाव को सदैव एक नया विस्तार प्रदान किया है। फ्रास, बेलजियम, जर्मनी, इग्लैण्ड से आये हुए प्रतिनिधियो के अन्तर्राष्ट्रीय दल के द्वारा ही इस घोषणा-पत्र का सूत्रपात हुआ था। १५ वर्षों बाद मार्क्स ने श्रमिक वर्ग की एक प्रथम अन्तरराष्ट्रीय संस्था (इण्टरनेशनल वर्किंग मेन्स असोसिएशन) की नीव डाली, जिसका उद्देश्य, उसके साथी एजिल्स के शब्दों में, 'योरोप और अमरीका के श्रमिको की विशाल सेना को एक सूत्र मे संगठित करना था।'

इस प्रकार मार्क्स ने सिद्धान्त से बहुत कुछ अधिक कहा। विश्व-क्रान्ति के लिए आन्दोलन की नीति भी उसके पास थी। उसने कहा, "आज तक संसार के समझने तथा समझाने का यह काम दार्शनिको का था और अब इसको बदलना हमारा काम है।"

मार्क्स ने भविष्य के चित्र को बडे मजे से अस्पष्ट ही रहने दिया। भविष्य के साम्यवादी समुदाय के ढाँचे तथा उसके नेताओ की नीतियों की अपेक्षा वह सघर्ष की प्रक्रिया के प्रति अधिक चिन्तित था। इन मामलो मे अटकल लगाना उसकी दृष्टि में एक बुरा जुआ था।

इसी प्रकार मार्क्स की विचारधारा का एक और महत्वपूर्ण सन्दिग्ध प्रस्ताव भी बिलकुल अस्पष्ट रह गया। मार्क्स ने अपने साथियो को समाजवाद के हेतु से सघर्ष करने के लिए प्रेरित और संगठित किया और उन्हे समझा-बुझा कर यह भी दिखाने का प्रयत्न किया कि यह अनिवार्य है। परन्तु पूर्व निश्चित परिणाम की प्राप्ति के लिए परिश्रम तथा बलिदान करने का क्या महत्त्व है?

इस विरोधाभासपूर्ण अस्पष्ट सिद्धान्त ने मार्क्सवादी आकर्षण को और अधिक बढ़ा दिया है। अनेक बुद्धिजीवी तथा आदर्शवादी लोग उस पवित्र नैतिक लक्ष्य से, जो उन्होने इस सिद्धान्त मे देखा, अत्यधिक प्रभावित हुए, जबकि हताश क्रान्तिकारी इस जानकारी से आश्वस्त हो लेते हैं कि इतिहास उन्ही के पक्ष मे है।

अनिवार्यता की यह भावना कम्यूनिज्म के इस गुण के साथ कि साध्य ही साधन का औचित्य है, भलीभाँति घुलमिल गयी। चूंकि वह अन्तिम परिणाम पर शका नहीं करता, इसलिए एक पक्का साम्यवादी साधनों के सम्बन्ध में अविवेक से कभी नहीं घबरायेगा।

अनेक दुःख भोगने वाले योरोपीय लोगो के लिए मार्क्सवादी विकल्प की सभावना ने उसमे तात्कालिक प्रभावोत्पादकता पैदा कर दी। जब मार्क्सवादी विचारों की भनक मध्य विक्टोरिया युग के इगलैण्ड की शान्ति प्रक्षुब्ध कर रही थी, तब स्वतत्रता और सुख-सम्पत्ति के देवदूत जॉन स्टूअर्ट मिल ने अपने समकालीनो को एक तीव्र चेतावनी दी—

"समस्त सभावनाओ के साथ साम्यवाद और तमाम तकलीफो और अन्यायो के साथ वर्तमान समाज, जिसके साथ निजी सम्पत्ति की सस्था भी सलग्न है, जिसमे परिश्रम का फल, जैसा कि हम अभी भी देखते है, मजदूर को सबसे कम और जो परिश्रम बिल्कुल नही करते उनको सबसे अधिक मिलता है, उससे कम भाग उन्हे प्राप्त होता है, जो नाममात्र के लिए काम करते है और इसी प्रकार निम्न अनुक्रम मे यदि इन दोनो के बीच किसी को चुनना पड़े—यदि यह समाज अथवा साम्यवाद ही दो विकल्प है, तो साम्यवाद की सभी छोटी-बडी कठिनाइयाँ तराजू मे केवल धूल मात्र होगी।"

एक प्रकार से साम्यवाद—विरोधी प्रजातन्त्रात्मक समाजवादी दलो का, जिनमे से अधिकाश ने अपने को मार्क्सवादी बताया है, यही देखना विशेष लक्ष्य रहा है कि चयन का यह कटु प्रश्न ही न उठे। यदि यह बात उलटी प्रतीत होती है, तो हमे याद रखना चाहिए कि मार्क्स ने स्वय एक बार कहा था कि मै मार्क्सवादी नही हूँ और इस पर उसके अनुयायी अपने गुरु की मन-चाही विवेचना करने का अधिकार अपने पास ही सुरक्षित रखना चाहते है।

ब्रिटेन के राजनीतिक सिद्धान्तवादी विचारक हैराल्ड जे लास्की, जो कभी मजदूर दल के अध्यक्ष भी थे, एक बार जब न्यूयार्क मे व्याख्यान दे रहे थे, तब कुछ साम्यवादी प्रदर्शनकारियो ने प्रश्नो से उनके व्याख्यान मे बाधा डाली। जब बाकी श्रोता प्रश्नकर्त्ताओ की हँसी उडाने का प्रयत्न कर रहे थे, लास्की ने कहा, "छोडो इनको, आखिर हम सभी मार्क्स के अनुयायी है। वे अपने ढग से मार्क्स का अनुसरण करते है और मै मार्क्स के ढग से।"

जबसे मार्क्स ने लिखा, तब से उसके विभिन्न अनुयायियो ने भिन्न-भिन्न ढग से उसके विचारो पर मत व्यक्त किये है, जिनके परिणाम भी विभिन्न रहे है। प्रजातन्त्रात्मक समाजवाद, जो हिंसात्मक परिवर्तन की कल्पना को अस्वीकार करता है, पश्चिमी योरोप के श्रमिक आन्दोलनो का नियत्रक सिद्धान्त बन गया है और इसके महत्व ने अमरीकी राजनीति को भी प्रभावित किया है। यह एक ऐसा विषय है जिस पर हम किसी अगले प्रकरण मे विचार करेगे।

पाँचवाँ प्रकरण

लेनिन ने चिनगारियों को लपटों में बदल दिया

यह भविष्यवाणी करने के लिए कि रूस मे मार्क्सवादी सिद्धान्त की एक नम्र, सहिष्णु और विकासवादी व्याख्या रूस मे लागू नही हो सकती, हम वहा की १९ वी शताब्दी के षड्यन्त्रमय वातावरण को काफी देख ही चुके हैं।

१८७० और १८८० के दशको मे मुट्ठी भर आतकवादियों ने जार के सम्पूर्ण दमनकारी क्रूर यन्त्र को उससे लड कर तथा १८८१ मे स्वयं जार अलेक्जैण्डर द्वितीय और अन्य उच्चाधिकारियों की हत्याएँ कर ठप कर दिया। तब जार का भयानक दमनचक्र क्रूरता के साथ चल पडा और उसने एक-एक आतकवादी को पकडकर फाँसी पर लटकवा दिया। उनमे से लेनिन का २१ वर्षीय जवान भाई अलेक्जैण्डर अलिवानोव भी था।

रूस में मार्क्स के सिद्धान्तो ने इस प्रकार कल्पनाहीन या योजनाहीन छिट-पुट आतक की निरर्थकता को सिद्ध कर दिया, जो उस समय छिप कर कार्य करने वाले क्रान्तिकारियों मे चरमोत्कर्ष तक पहुँच गयी थी। टॉलस्टॉय जैसे शान्तिवादी ईसाई की जनतंत्रात्मक प्रार्थना निष्फल-सी ही गयी।

ऐसा मालूम होता था कि केवल मार्क्सवादी ही व्यावहारिक समाधान प्रस्तुत कर सकते थे और वह समाधान था, विचारों का ऐसी चतुरता से गढ़ा जाना कि उससे मजदूरों में एक जनव्यापी आन्दोलन उत्पन्न हो सके और इन सिद्धान्तों मे दीक्षित, अनुशासित और सगठित लोगों के द्वारा उन विचारों को बड़ी तेजी के साथ कार्यान्वित किया जा सके। इन दीक्षित लोगों का कार्य ही यह था कि कारखानों के मजदूरों को इस लोकप्रिय विप्लव की जरूरत समझने के लिए शिक्षा दें और ऐसे तरीके सिखलाये कि यह क्रान्ति उपयुक्त समय पर हो सके।

निकोलई लेनिन ने अकेले ही इस अवसर को किसी भी रूसी क्रान्तिकारी की अपेक्षा अधिक स्पष्ट रूप से पहिचाना। सेण्ट पीटर्सबर्ग में "श्रमिक वर्ग की मुक्ति के लिए यूनियन" नामक एक संस्था के सगठनकर्त्ता के नाते १८९५ में २७ वर्ष की आयु मे लेनिन को साइबेरिया भेज दिया गया। अपने बन्दी-जीवन के इन पाँच वर्षों में लेनिन को मार्क्स की महान विचारधारा को आत्म-

सात करने, रूस में पूजीवाद के विकास पर अपना मुख्य विश्लेषण लिखने तथा भावी योजना तैयार करने का अवसर मिला।

गुप्तरीति से कार्य करने की क्रान्तिकारी परम्परा मे पले, किन्तु विशुद्ध आतक के दिवालियेपन से निराश बुद्धिवादी नौजवानो को उसने प्रभावित किया और सोशल डिमोक्रेटिक पार्टी के अत्यन्त क्रान्तिकारी पक्ष का वह अध्यक्ष बन गया। १९११ मे जिस रूसी क्रान्ति ने ससार को प्रकम्पित कर दिया उसका कुशल सचालक बनने के लिए यह पद बहुत उपयोगी और श्रेष्ठ था।

१९०० मे कुछ ही लोग लेनिन का मुकाबला कर सकने थे। साइबेरिया से मुक्त होने पर उसने एक मार्क्सवादी पत्रिका "इस्करा", जो पहले जर्मनी से, फिर इगलैण्ड से और अन्त मे स्विट्जरलैण्ड से प्रकाशित हुई थी, को शुरू किया। उसका मुख्य नारा था "चिनगारी से लपटो तक।" वह तथा अन्य रूसी प्रवासी क्रान्ति के सिद्धान्तों तथा कूटनीति पर परस्पर झगडते रहे और अपनी-अपनी चालो को किसी प्रकार चोरी से रूस पहुँचाते रहे, जहाँ मुट्ठी भर उत्सुक बुद्धिवादी लोग मिलकर उन्हे गुप्त रूप से पढते थे।

ये निर्वासित व्यक्ति तथा इनकी विस्तृत कुशल योजनाएँ प्राय हँसी-मजाक का विषय बन जाती थी। सम्मानित आस्ट्रियाई सोशलिस्ट, विक्टर एडलर ने अपने विदेश-मत्री काउट बर्चटोल्ड को समझाने की कोशिश की कि योरोपीय युद्ध का अर्थ होगा रूस मे क्रान्ति। बर्चटोल्ड ने तिरस्कार के साथ पूछा—"इस क्रान्ति का नेतृत्व कौन करेगा? शायद काफे सेन्ट्रल मे बैठे हुए श्री ब्रोन्स्टीन!" इतिहास मे श्री ब्रोन्स्टीन लिओ ट्रॉट्स्की के नाम से मशहूर हुए।

अक्तूबर, १९१७ की क्रान्ति के केवल दो महीने पूर्व ही ट्रॉट्स्की एकदम वामपक्षी के रूप मे लेनिन से आकर मिले थे, परन्तु परिस्थितियाँ गुप्त क्रान्तिकारियो को विरोधी दलो मे विभाजित कर रही थी।

१९०३ मे ब्रुसेल्स मे होने वाली रूसी सोशलिस्ट पार्टी की दूसरी बैठक तक बाते काफी ऊपर आने लग गयी थी, किन्तु वह बैठक, जो बाद मे लन्दन मे हुई, पुलिसके द्वारा तितर-बितर कर दी गयी। वहाँ लेनिन के गुट ने, जो बाद मे बोलशेविक (बहुसख्यक) के नाम से प्रसिद्ध हुआ, नरमवादी दल को, जो बाद मे मैनशेविक (अल्पसख्यक) के नाम से मशहूर हुआ, ४३ व्यक्तियो की सभा मे बहुत कम मतो से हरा दिया। उन दोनो के बीच मतभेद का मौलिक प्रश्न क्रान्ति के तरीको के सम्बन्ध मे था। क्रान्ति जन–आन्दोलन पर निर्भर करे, जिसमे मैनशेविको का विश्वास था, या थोडे से षड्यन्त्रकारी लोगो के दल

पर, जिसका पक्ष बोलशेविको ने ग्रहण किया और जिसे पूरा करने के लिए वे तैयार भी थे।

बोलशेविको और मैनशेविको मे अन्तिम रूप से फूट पड जाने के पूर्व १९०५ में, क्रान्ति के लिए नये मार्क्सवादी कार्यक्रम की प्रथम परीक्षा हुई। जापान के साथ युद्ध मे रूस की हार के बाद सेंट पीटर्सबर्ग और मास्को के मुद्रको ने सरकार के विरुद्ध हडताल कर दी। क्रान्तिकारी योजनाओ को सफल बनाने के उद्देश्य से श्रमिको ने प्रत्येक कल-कारखानो से सामान्य समिति के लिए प्रतिनिधि चुन कर भेजे। इसका नाम श्रमिकों की सहायक पचायत (सोवियत आफ वर्कर्स डिप्टीज) रखा गया और इसका सगठन मैनशेविकों ने किया जिसमे ट्रॉट्स्की भी शामिल था। अर्ध–सरकार के रूप में, उसने ९० दिनो तक राजधानी मे शासन भी किया।

स्वेच्छा से प्रेरित एव जनतत्रात्मक ढग से निर्वाचित, मजदूरों की इस छोटी-सी सस्था ने अल्पकाल मे ही, राजनीतिक और सामाजिक सुधार के असाधारण कार्य किये, यद्यपि वे कुछ ही दिनों तक रहे। मुद्रण की पूर्ण स्वतत्रता स्थापित हुई और उदार, समाजवादी तथा रूढिवादी सभी राजनीतिक विचारो के दैनिक पत्र प्रकाशित होने लगे। आठ घण्टे के दिन की घोषणा कर दी गयी। १९०६ में अन्य नेताओ के साथ ट्रॉट्स्की ने अपनी गिरफ्तारी के बाद, भारतीय अहिंसक क्रान्तिकारियों की भाँति अपने मुकदमे को क्रान्तिकारी विचारो के प्रचार के माध्यम का अच्छा साधन बनाया।

अपने अन्य भागे हुए नेताओ के साथ क्रान्ति के संचालन और विस्तार में सहायता के लिए लेनिन अन्य निर्वासित नेताओ के साथ विदेश से लौट आया। मास्को सोवियत की सशस्त्र क्रान्ति कुचल दी गयी थी, परन्तु इस असफलता के बावजूद, क्रान्तिकारियों के दुर्व्यवस्थित सोवियत मे अपने अनुशासित बालशेविको को सम्मिलित कर भविष्य की क्रान्ति के सचालन की बागडोर हथिया लेने की सभावना को लेनिन ने भलीभाँति समझ लिया था।

१९०५ की हार से लेनिन ने एक सबक सीखा। जिन सिपाहियों ने इस विप्लव को दबाया था और सोवियत को उखाड फेका था, वे सिपाही किसान थे। यद्यपि १९०४ से १९०६ तक की अवधि मे रूस में यत्रतत्र अनेक किसान-विद्रोह हुए थे, परन्तु मुख्य बात यह थी कि जो क्रान्तिकारी उत्साह और मानसिक उत्तेजना शहर के मजदूरो मे आगयी थी वह पिछडे गाँवों तक नही पहुँच पायी थी, जहाँ से ये सिपाही आये थे। यह निश्चित था कि किसान ज़ार–सरकार के

वफादार बने रहे।

लेनिन ने इस बात को समझ लिया था कि केवल कारखानो के मजदूरो से सफल क्रान्ति नही हो सकती। इसके लिए रूस के बड़े जनसमुदाय के सहयोग की आवश्यकता होगी और ऐसे किसानो की जरूरत होगी जो सामन्ती उच्चवर्ग की रियासतो मे दीन-हीन जीवन बिता रहे हैं। उसका अनुमान था कि इन किसानों का सहयोग तथा समर्थन पाना कठिन नही होगा।

बोलशेविको का सत्ता प्राप्त करने का सफल प्रयत्न ठीक बारह वर्ष बाद हुआ। यह पैट्रोग्रेड मे हुआ जो पहले पीटर्सबर्ग था और २४ अक्तूबर, १९१७ को जिसे लेनिनग्रेड नाम दिया गया। यह लगभग छ महीनो की उत्तेजित राजनीतिक गतिविधियो तथा आन्दोलनो के उपरान्त हुआ। जैसा कि एजिल्स ने कहा था, यह विश्व-युद्ध के परिणामस्वरूप हुआ। एक बार उसने लिखा था कि अब विश्व-युद्ध के सिवाय प्रशा-जर्मनी मे कोई दूसरा युद्ध सम्भव नही और ऐसा भीषण विश्व-युद्ध जिसकी कल्पना भी नही की जा सकती थी।

योरोप के अमीरो और शरीफो को एजिल्स ने एक बार चेतावनी दी थी कि परिस्थितियाँ उन्हे 'अन्तिम विशाल युद्ध-नृत्य मे ढकेल ही देगी'। उसने स्वीकार किया था कि सभव है, कुछ समय के लिए युद्ध हमे पृष्ठभूमि मे ढकेल दे, परन्तु उसे विश्वास था कि ऐसी शक्तियाँ उन्मुक्त होगी, जिन पर कोई भी नियत्रण नही कर सकेगा। "इस भयानक दुर्घटना के पश्चात् तुम बरबाद हो जाओगे और सर्वहाराओ को या तो विजय प्राप्त होगी या उसका प्राप्त होना अनिवार्य हो जायेगा।"

१९०५ के बाद रूसी बोलशेविको और मैनशेविको के बीच की भेदक रेखा और भी कठोर हो गयी। कुछ तो क्रान्तिकारी गतिविधियों के पराभव के कारण और कुछ लेनिन के कुचक्र के कारण कमजोर और प्रभावहीन लोग बाहर निकाल फेके गये। अब बहुसख्यक बोलशेविक अपेक्षाकृत कट्टर उग्रवादियो के एक छोटे-से दल मे परिणत हो गये, जिसका सम्बन्ध विदेश स्थित केन्द्रीय समिति से बना रहा और जिस पर लेनिन का ही प्रभाव था।

फिर भी वर्षों तक भूमिगत कार्य से बहुत से सदस्यो की वफादारी और कठोरता की परीक्षा हुई। कुछ तो प्रचारक तथा आन्दोलक के रूप मे दीक्षित हो चुके थे। जार का खजाना ले जाने वाली गाडी की लूट के समय कुछ लोगो ने गुरिल्ला युद्ध देखा था। इसी लूट के धन से क्रान्तिकारी कार्य चलता था।

सबसे महत्वपूर्ण बात तो यह थी कि उनमें से प्रत्येक व्यक्ति केन्द्रीय समिति की आज्ञा मानने के लिए तैयार था।

पूँजीवादी समाज के विरुद्ध वर्गयुद्ध जीतने के लिए लेनिन ने अपनी पार्टी के लिए एक केन्द्रीय कमान तथा आन्तरिक अनुशासन पर बहुत अधिक बल दिया, जैसा कि युद्ध-क्षेत्र में लड़ने वाली सेना में होता है। साधन पूर्ण-रूपेण साध्य के अन्तर्भूत थे। सभी प्रकार के नैतिक शील-सकोच को दबाना था। उसके जनतत्रात्मक केन्द्रवाद के अन्तर्गत उच्चतम विचार-परिषद ने एक बार जो भी निर्णय कर लिया, तो उन गोपनीय तथा हिंसात्मक कार्यों में से किसी को भी पूरा करने के लिए दल का कोई भी सदस्य तैनात किया जा सकता था जो युद्ध-नीति के अन्तर्गत अनिवार्यत. स्वीकृत होते हैं। १९१७ के अक्तूबर तक लेनिन की सेना हमला करने के लिए मौके की ताक में थी।

उसी वर्ष की फरवरी म ज़ार का शासनतत्र जर्मनी की सेनाओ के साथ छिटपुट युद्धों से जर्जरित हो, टूट गया था और निष्क्रिय बन गया था। कारखानो के मजदूरो तथा युद्ध-पीडित किसानो से विप्लव प्रारम्भ हुआ। सैनिकों ने अपने उच्चाधिकारियो के आदेशो को मानने से इन्कार कर दिया, नौसेना ने पैट्रोग्रेड के महत्वपूर्ण नौसैनिक स्थल कोन्सटाट में विद्रोह कर दिया। एक सप्ताह की उथल-पुथल के बाद रामानोव राजवश ध्वस्त कर दिया गया। उदारवादी तथा नरमवादी समाजवादियो की अस्थायी सरकार ने इसका स्थान ग्रहण किया। उन्होंने बालशेविको को अस्वीकार कर दिया और नरमवादी मैनशेविको का विशेष स्वागत किया।

कुछ ही दिनो बाद लेनिन स्विट्जरलैण्ड से एक बन्द गाडी मे जर्मन सैनिक अधिकारियों की मदद से योरोप पार करते हुए रूस जा पहुँचा। कुशल बोल-शेविक आन्दोलनकारी, जिनके साथ क्रान्तिका उपदेशक ट्रौट्स्की भी बाद मे आकर मिल गया, कारखानो और सेनाओ मे घुस गये। राजधानी मे प्राय होनेवाली जन-सभाओ में उन्होंने क्रान्ति की भावना से उत्तेजित, अव्यवस्थित तथा दिग्भ्रान्त जनता के सामने रोटी, जमीन तथा शान्ति के नारों को बारबार दुहराया।

अस्थायी सरकार सकोच में थी। उसने यह प्रस्ताव रखा कि भूमि-सुधार एक विधान-परिषद के सयोजित होने तक न किये जाँय, क्योकि विधान-परिषद ही जनतत्रात्मक ढग से भूमि-वितरण पर विधान बना सकती है। परन्तु देर-पर-देर होती गयी और विधान परिषद की बैठक न बुलायी जा सकी।

मुद्रा-प्रसार का जोर बढता गया। युद्ध के तीन वर्षों के बाद की क्रान्ति ने गाँवो से शहरों तक अनाज के प्रवाह को अवरुद्ध कर दिया। शहरो मे भूख और लगभग अकाल की स्थिति पैदा हो गयी। एक ओर रूस के थके हुए सिपाही तथा उनके किसान-परिवार शान्ति के लिए चिल्ला रहे थे, दूसरी ओर अस्थायी सरकार ने वफादारी के साथ जर्मनी के विरुद्ध युद्ध जारी रखने के लिए पश्चिमी शक्तियो की दिये गये वायदे को फिर से दुहराया।

जबकि यह नयी सरकार सुदृढ होने की कोशिश कर रही थी, उसके मैनशेविक समर्थको के सामने एक परिचित विरोधी सस्था पैट्रोग्रेड सोवियत, जिसमे विद्रोही सेनाओ तथा हडताली कारखानो के निर्वाचित सदस्य थे, एक चुनौती के रूप मे खडी थी। बालशेविको का सोवियत सदस्यो के एक बहुत बडे दल पर नियत्रण था। १९१७ मे ग्रीष्मकाल का अन्त होते-होते उन्होने बहुमत प्राप्त कर लिया था और वे नयी सरकार के आदेशो के विरुद्ध आदेश दे रहे थे।

इस प्रकार सोवियत ने रूसी सैनिको तथा नौसैनिको को आदेश दिया कि वे अपने अफसरो की आज्ञाओ को न माने, अपनी इकाइयो के प्रशासन के लिए रेजिमेण्टल समितियाँ चुने और क्रान्तिकारी अनुशासन कायम करे।

१९०५ के विपरीत, इस बार पैट्रोग्रेड सोवियत को अन्य सोवियतो से बल प्राप्त हो रहा था, जो न केवल अन्य औद्योगिक केन्द्रो मे प्रस्फुटित हो चुकी थी, बल्कि उन गाँवो मे भी फैल गयी थी, जहाँ पर किसान सदस्यों की सोवियतो ने जमीन जब्त करना शुरू कर दिया था।

"सारी सत्ता सोवियत की" का एक चौथा नारा गढ कर लेनिन ने जानबूझ कर इस अस्थायी सरकार को नष्ट करने का प्रयत्न शुरू कर दिया। कारखानो और सेनाओ मे बोलशेविको की सरगर्मी बढने लगी। पैट्रोग्रेड मे प्राय प्रतिदिन जनता के प्रदर्शन होने लगे।

जुलाई, १९१७ के प्रारम्भिक दिनो मे सरकार ने बोलशेविक दल के विरुद्ध दमन-चक्र चलाने के लिए एक ऐसे ही मौके से लाभ उठाया। लेनिन तथा अन्य नेताओ पर यह अभियोग लगाया गया कि वे जर्मनी के वेतनभोगी है। तमाम लोगों के साथ ट्रॉट्स्की भी जेल मे ठूँस दिया गया। लेनिन बडी होशियारी के साथ फिनलैण्ड निकल भागा और फिर अक्तूबर मे तभी वापस आया, जब उसके दल ने सत्ता हथिया ली।

इस बीच पहली अस्थायी सरकार टूट कर एक मैनशेविक वकील करेन्स्की के हाथ मे आ गयी थी। सितम्बर मे जनरल कोर्नीलोव ने, जो ज़ार की वापसी

का विरोधी था, किसी प्रकार के सोशलिस्टो द्वारा सचालित अस्थायी सरकार से कोई आशा न देख, अपनी सेना के साथ पैट्रोग्रेड की ओर कूच कर दिया। राजधानी की प्रतिरक्षा के लिए करेन्स्की को उस सोवियत की सहायता लेनी पडी, जिसमे पहली बार बालशेविको को बहुमत प्राप्त हुआ था।

अब लेनिन फिनलैण्ड के अपने गुप्त स्थान से बोलशेविक केन्द्रीय समिति को, अन्तिम कदम उठाने के लिए प्रेरित करने लगा, जो नयी सरकार के विरुद्ध एक सशस्त्र विद्रोह ही था। समिति मे सख्त विरोध के बाद लेनिन की योजना स्वीकृत हुई, जिसका समर्थन उसकी अनुपस्थिति मे ट्रॉट्स्की तथा स्तालिन ने किया।

करेन्स्की को व्यवस्थित ढग से दमन के लिए उकसाया गया और २४ अक्तूबर की रात मे बालशेविकों ने आक्रमण कर दिया। उन्होंने बडी सावधानी से राजधानी पर सैनिक अधिकार की योजना बनायी, जिसमे कम से कम रक्तपात हुआ। कुछ ही घण्टों मे करेन्स्की भाग निकला। पैट्रोग्रेड की सोवियत ने नगर पर नियत्रण कर लिया और लेनिन ने अपनी सुदृढ टुकडी के जरिये सोवियत पर नियत्रण रखा। दूसरे दिन लेनिन तथा उनके अनुयायी अखिल रूसी सोवियत काग्रेस मे, जिसकी बैठक उन दिनों चल रही थी, रूस की नयी सरकार के रूप मे प्रतिनिधियो से स्वीकृति पाने के लिए गये।

कारखानो के मजदूरो तथा सेना के सिपाहियों के साथ बोलशेविक अब भी सबसे मजबूत थे। उनका सगठन रूस के भीतर अधिक दूर तक प्रवेश नही कर सका था। ८० प्रतिशत रूसी किसान थे। १९०५ के पराभव ने लेनिन को सिखा दिया था कि शहरी क्रान्तियों का दुर्भाग्यपूर्ण अन्त होगा यदि इसे किसानो का कम से कम निष्क्रिय समर्थन भी न प्राप्त हो। मार्क्स ने किसानों को गँवार और भोदू मानकर छोड़ दिया था।

इस मामले की सचाई तो यह है कि मार्क्स ने किसानो को अपनी गणना से लगभग बहिष्कृत ही कर दिया था। मुख्यत. ब्रिटेन और जर्मनी के औद्योगिक समाज से परिचित होने के कारण मार्क्स ने अपने सिद्धान्तों की रचना केवल कारखानों के मजदूरों के आधार पर की थी। १८४८ के साम्यवादी घोषणापत्र मे किसानो की ओर केवल सकेत मात्र हुआ है। खेती तथा उत्पादक उद्योगों के सम्मिलन का बडे चलते ढग से उल्लेख मात्र हुआ है जिसमे गाँवों और नगरों के भेद को मिटाने की चर्चा की गयी है।

परिणामस्वरूप शायद रूसी क्रान्ति के पूर्व समस्त पूर्वी योरोप में किसान

आन्दोलन के नेताओ ने मार्क्स की ओर या तो ध्यान नही दिया या उनका विरोध किया। यह तो लेनिन की प्रतिभा थी, जिसने मार्क्सवादी सिद्धान्तो मे इस गम्भीर भूल को समझा और उसको सुधारने का यत्न किया। उसने बड़ी होशियारी से भूमि के पुन वितरण को बोलशेविक कार्यक्रम मे अन्य प्रमुख बातो के साथ रखा।

लेनिन-सरकार के प्रथम कार्यों मे ७ नवम्बर, १९१७ को जमीदारो की बेदखली और किसानो मे भूमि-वितरण की पुष्टि थी। उसने अपने साथियो से कहा—"हमे इस आज्ञा को सारे देश मे प्रसारित करना चाहिए। तब उन्हे भूमि पर कब्जा करने की कोशिश करने दो। यह हमारी क्रान्ति की सबसे महत्वपूर्ण सफलता है। आज बोलशेविक क्रान्ति पूर्ग होगी जिसे फिर कभी उलटा नही जा सकेगा।"

बाद मे कठिन परिस्थितियो मे किसान साधारणतया तटस्थ रहे। ब्रिटेन, फ्रान्स तथा जापान के धन-जन तथा शस्त्रों की सहायता से तथा (Archangel) अर्चेन्जल मे साहसिक अभियान के लिए अमरीकी सेना के प्रोत्साहन से जार के अफसरो ने बोलशेविको की नयी सरकार के विरुद्ध युद्ध छेड दिया। परन्तु किसानो ने उनकी सहायता करने से इन्कार कर दिया और अधिकतर इसीलिए प्रतिक्रान्ति धीरे-धीरे एक गम्भीर खतरा बनने से रुक गयी।

लेनिन ने अपने जिस बोलशेविक को प्रभावित करने के लिए 'जमीन, रोटी और शान्ति' का नारा बुलन्द किया था, उसका नाम बदल कर कम्यूनिस्ट क्रान्ति रख दिया गया। सशस्त्र सघर्ष के दौरान मे इन विचारो ने लोगो को कार्य के लिए प्रेरित किया और ये ही विचार निर्णायक तत्व सिद्ध हुए। अपनी कुशलता के प्रमुख रहस्य को बताते हुए लेनिन ने कहा, "युद्ध सम्पूर्ण का एक अश मात्र है और वह सम्पूर्ण राजनीति है।"

किसान उस 'सम्पूर्ण' के अत्यावश्यक अग है। जिस प्रकार शहर के मजदूर कारखानो पर सामूहिक स्वामित्व प्राप्त करके क्रान्ति के माध्यम से सुरक्षा प्राप्त करने की कोशिश करते है, उसी प्रकार शिथिल, रूढिवादी तथा राजनीतिक दृष्टि से अचेत किसान अपनी-अपनी धरती पर व्यक्तिगत स्वामित्व के द्वारा सुरक्षा प्राप्त करने की कोशिश करते है।

परन्तु युद्ध और राजनीति को केवल घर तक ही सीमित नही रखा जा सकता और न रूसी क्रान्ति के उन्नायको ने उसे केवल रूस के ही लिए माना था।

छठा प्रकरण

निर्यात के लिए क्रान्ति

"दुनिया के मजदूरो ! एक हो।" यह न केवल सबसे बुलन्द मार्क्सवादी नारा था, प्रत्युत वास्तव में उसने कार्य के ढंग में नाटकीयता पैदा कर दी थी और मार्क्स की राय में उसने कम्यूनिस्टो को अन्य क्रान्तिकारियो से पृथक कर दिया। घोषणा-पत्र के अनुसार कम्यूनिस्ट, "समस्त सर्वहाराओं के सामान्य स्वार्थों के हित में ही कार्य करेंगे, चाहे वे किसी भी राष्ट्र के क्यों न हों।"

परन्तु अन्तर्राष्ट्रीय श्रमिक सघ, जिसका सगठन मार्क्स ने अपने जीवनकाल में ही किया था, असफल रहा। उसकी मृत्यु के ६ वर्ष उपरान्त १८८९ में सगठित द्वितीय 'इण्टरनेशनल' अधिक सफल रहा। प्रथम विश्व-युद्ध के पूर्व के वर्षों में योरोप की सभी प्रमुख सोशलिस्ट पार्टियाँ उसके सदस्यों मे थीं।

१९१२ में, बसेल में, कैसर की सेनाओ के बेलजियम पर आक्रमण करने के दो वर्ष पूर्व इण्टरनेशनल कांग्रेस ने 'युद्ध के विरुद्ध युद्ध' का एकमत से निश्चय किया। इस बात को न समझना कि विश्व-युद्ध की पैशाचिकता की कल्पनामात्र से निश्चय ही श्रमिक वर्ग विद्रोह कर बैठेगा, सरकारों का पागलपन होगा। बसेल की घोषणा में यही चेतावनी दी गयी थी और यह भी कहा गया था कि मजदूर पूँजीपतियो के लाभ के लिए, राजाओ की महत्वाकाक्षाओ अथवा रहस्यपूर्ण कूटनीतिक संधियों के महान् गौरव के लिए, एक दूसरे पर गोली चलाना अपराध समझते है। प्रतिनिधियों ने बडे उत्साह के साथ हर प्रकार से युद्ध का मुकाबला करने की, यहाँ तक कि सारे योरोप मे हडताल तक कर देने की प्रतिज्ञाएँ की।

इस मसले पर तथा अन्य मामलों मे भी नरमदली जनतत्रात्मक सोशलिस्टों तथा क्रान्तिकारी सोशलिस्टों के बीच मतभेद बना रहा। लडाकू वामपक्षी दलों ने भावी क्रान्ति के राष्ट्रविरोधी रूप पर बहुत बल दिया। दूसरी ओर नरम विचारवाले सोशलिस्टो मे अप्रत्यक्ष रूप से ही सही, उन राष्ट्रो के प्रति आस्था बढ़ती जा रही थी जिनकी ससदों में वे भाग ले रहे थे। उनकी

युद्धविरोधी भावनाएँ यद्यपि सच्ची थीं, तथापि वे रूढिगत शान्तिवादी दृष्टिकोण को ही अधिक परिलक्षित करती थी।

जब योरोप मे शान्ति थी, तब ये मतभेद अस्पष्ट ही रहे और प्राय होटलो तथा शराबखानों मे सैद्धान्तिक तर्क-वितर्क के विषय से अधिक नही थे। फिर भी, युद्ध के अचानक आगमन ने, सिद्धान्त को एक तरफ फेक दिया और यह दिखा दिया कि लोग क्या सोचते है और किन आधारो पर कार्य करते है।

द्वितीय इण्टरनेशनल की पच्चीसवी वर्षगाँठ के अवसर पर अगस्त, १९१४ मे कैसर ने अपने बर्लिन के छज्जे से घोषित किया, "मै कोई दल नही जानता, मै केवल जर्मनो को जानता हूँ।" और अधिकाश जर्मन सोशल डिमोक्रेट, जो योरोपीय सोशलिस्ट पार्टियो मे सबसे बडे और अपने ढग के थे, तुरन्त ही चुपचाप युद्ध के लिए चल पडे।

फ्रान्स के प्रमुख युद्ध-विरोधी व्यक्ति जुआरेस (Juares) का किसी कट्टर राष्ट्रवादी ने कत्ल कर दिया और अन्य मित्र राष्ट्रो के समाजवादी अपने देश के झडो के नीचे एकत्र हो गये। द्वितीय इण्टरनेशनल के अध्यक्ष, बेलजियम के वाण्डरवेल्डे (Vandervelde) ने प्रतिज्ञा की कि जब तक बेलजियम के श्रमिको के घरो मे जर्मन सिपाही घुसे रहेगे, तब तक इण्टरनेशनल की कार्यसमिति की बैठक बुलाने की बात नही हो सकती।

सभी तटस्थ देशो के मार्क्सवादी अन्तरराष्ट्रीय समाजवाद के इस विशाल प्रासाद के पतन से भयभीत हो उठे। युद्धरत राष्ट्रो मे भी १९१७ मे अमरीका के इयूजीन डेब्स (Eugene Debs) जैसे थोडे से लोगो ने युद्ध के विरुद्ध कार्य करना और परिणामस्वरूप जेल जाना जारी रखा।

क्रान्ति के साथ नरमदली पश्चिमी सोशलिस्टो के विश्वासघात के सम्बन्ध मे लेनिन ने बडी कटुता से लिखा। यह युद्ध का विचार नही था, जो लेनिन को नापसन्द था, बल्कि अधिकाश पश्चिमी सोशलिस्टो की दयनीय तथा सकीर्ण राष्ट्रीयता उसे नापसद थी। उसे उन समाजवादी शान्तिवादियो के प्रति भी कोई सहानुभूति न थी, जिन्हे वह "युद्ध से भयभीत भावुक हुल्लडबाज" कहा करता था। "द्वितीय इण्टरनेशनल का पतन" (Collapse Of The Second International) शीर्षक पुस्तक मे उसने लिखा—"दुनिया मे बहुत कुछ बच गया है, जिसे आग या तलवार से नष्ट कर ही देना चाहिए।" उसने यह मन्तव्य रखा—"विश्वव्यापी सर्वहारा—क्रान्ति ही विश्व-युद्ध की भयानकता से

बचने का एक मात्र उपाय है।"

किन्तु यह विश्वव्यापी क्रान्ति कैसे और कहाँ से आरम्भ होगी ? विश्व-व्यापी युद्ध से उत्पन्न विनाश और अव्यवस्था को किस प्रकार ऐसे प्रारम्भ में परिणत किया जा सकता है ?

साम्यवादी घोषणापत्र ने पूँजीवाद को एक विश्वव्यापी प्रणाली माना, जिसमें उसके उत्पादनों के लिए "बाजार की निरन्तर बढती हुई जरूरत मध्य-वित्तीय वर्ग (बुर्जुआ) से सारी दुनिया की खाक छनवा डालती है। यह पद्धति सर्वत्र अपना जाल बिछायेगी और सभी जगहो से अपना सम्बन्ध स्थापित करेगी। सक्षेप में तात्पर्य यह है कि यह अपने रूप के अनुसार सारी दुनिया को बना लेती है। जिस प्रकार इस प्रणाली ने गावो को शहरो पर निर्भर बना दिया, उसी प्रकार इसने असभ्य तथा अर्ध-सभ्य देशो को सभ्य देशो पर निर्भर बना दिया, किसान राष्ट्रो को 'बुर्जुआ' राष्ट्रों पर और पूर्व को पश्चिम पर आश्रित करवा दिया।"

सामान्यरूप से मार्क्सवादियों द्वारा यह माना जाता रहा है कि सफल क्रान्ति सर्वप्रथम जर्मनी जैसे अत्यधिक औद्योगिक देशो में होगी, जहाँ मजदूरो की एक बडी सुसगठित सस्था आधार का काम देगी। फिर भी, लेनिन ने मार्क्स की व्याख्या को यह कह कर और आगे बढाया कि क्रान्ति पूँजीवादी शृंखला की सबसे कमजोर कडी से प्रारम्भ होगी। उसने कहा, 'रूस में, जहाँ पूँजीवाद कमजोर और दमन सबसे अधिक है, औद्योगिक योरोप से पहले क्रान्ति फलीभूत होगी।

प्रक्रिया किस प्रकार कार्यान्वित होगी, इसका चित्र लेनिन ने वर्षों पूर्व, प्रस्तुत कर दिया था। यह एक ऐसी व्याख्या थी जो औपनिवेशिक क्षेत्रो में आज भी आकर्षक है। एशिया के बुद्धिजीवियों को पूँजीपतियों द्वारा श्रमिको के शोषण का प्रत्यक्ष अनुभव बहुत कम था, परन्तु लेनिन का साम्राज्यवाद का सिद्धान्त उनके अपने साम्राज्यवादी शोषण को समझने के लिए एक प्रश-सनीय तर्क प्रस्तुत करता है।

लेनिन ने कहा था कि राष्ट्र के भीतर ज्यों-ज्यों आर्थिक स्पर्धा कम होती जाती है, त्यों-त्यो अन्तरराष्ट्रीय क्षेत्रों में बडे राष्ट्रो के बीच सर्वाधिकार के लिए स्पर्धा और भी तीव्र होती जाती है। बाजारों तथा कच्चे माल के लिए निश्चित दबाव, जो पूँजीवादी उत्पादन के विस्तार में ही सन्निहित है, अर्धविकसित देशों पर और कम उन्नत राष्ट्रों पर अधिकार प्राप्त करने के अन्तरराष्ट्रीय

संघर्ष में प्रतिफलित हो जाता है।

चूँकि प्रत्येक राष्ट्र मे पूँजीपतियो को अपना लाभ जारी रखने के लिए उपनिवेशो तथा परतंत्र देशों की नितान्त आवश्यकता होती है, इसलिए उनकी प्राप्ति को अवसर अथवा अस्थायी आर्थिक मोलभाव करने की शक्ति पर नही छोड दिया जायेगा। प्रत्येक देश मे शासक वर्ग अपने उद्देश्यो की पूर्ति के लिए राज्य की पूरी शक्ति का उपयोग करेगा।

पहले तो झगडा आयात-निर्यात-करो तथा व्यापारिक प्रतिबन्धो के जरिये होगा। अन्त मे प्रतिद्वंद्वी राष्ट्रो के पूँजीपतियो पर विजय के लिए सेनाओ का उपयोग किया जायगा। इसके परिणामस्वरूप अनेक विनाशकारी साम्राज्यवादी युद्ध होगे, जिनके कारण सारी दुनिया का पूँजीवाद अत्यधिक रक्तस्राव से श्वेत हो जायेगा और विद्रोही सर्वहारा का सरलता से शिकार बन जायेगा।

बढती हुई विश्व-क्रान्ति सर्वप्रथम पूँजीवादी देशो मे सबसे अधिक कमजोर कडी पर प्रहार करेगी। पिछडे हुए तथा औपनिवेशिक क्षेत्र क्रान्ति के समर्थन के लिए एकत्र होगे। विदेशी शासन तथा देशी सामन्तवाद के विरुद्ध विद्रोह योरोपीय पूँजीवाद के किले मे मजदूरो के विप्लव की आग भडका देगा। इस प्रकार जब औपनिवेशिक क्रान्ति पश्चिमी सर्वहाराओ की विजय के लिए निर्णायक कार्य कर सकती है, तब उपनिवेशो मे सामन्तो के विरुद्ध विद्रोह को पश्चिमी क्रान्ति के निर्देशन की आवश्यकता होगी और वह क्रान्ति उन देशों को औद्योगिक विकास कठिन स्थिति से अन्त मे साम्यवाद तक पहुँचा सकेगी।

स्तालिन ने बाद मे कहा, "लेनिनवाद ने यह सिद्ध कर दिया है कि पश्चिम मे क्रान्तिकारी सफलता का मार्ग उपनिवेशो तथा गुलाम देशो मे साम्राज्यवाद के विरुद्ध स्वतत्रता के आन्दोलनो के साथ क्रान्तिकारी सधि से प्राप्त होगा।"

लेनिन की दृष्टि मे प्रथम विश्व-युद्ध इसी प्रकार का एक साम्राज्यवादी युद्ध था, औपनिवेशिक एशिया तथा अफ्रीका पर कब्जा बनाये रखने के लिए यह जर्मनी तथा अन्य मित्र पूँजीवादियों के बीच सघर्ष था। इस प्रकार यह युद्ध पूँजीवाद की मरणपीडा का सूचक है। रूसी क्रान्ति की अन्तिम विजय का आश्वासन देने वाली योरोपीय राज्यो की क्रान्ति अब बहुत पीछे नही रह सकती।

सर्वप्रथम घटनाएँ लेनिन की भविष्यवाणी को सत्य सिद्ध करती जान पडी। ठीक उसी समय, जब वह बोलशेविको की केन्द्रीय समिति को अक्तूबर-क्रान्ति के लिए प्रेरित कर रहा था, जर्मन नौसेना मे विद्रोह हो गया। बालशेविक

विद्रोह प्रारम्भ करने के उचित समय के सम्बन्ध में उसने निश्चय ही इस घटना का प्रभावपूर्ण तर्क के रूप में प्रयोग किया।

पूर्वी तथा मध्य योरोप में अगले कुछ महीनों के लिए क्रान्ति की लपटे फैल गयी। प्रथम सोवियत परराष्ट्र मंत्री ट्रॉट्स्की ने अपने साथियों की आशावादिता को प्रकट किया। उसने कहा कि अब मेरा काम आसान हो जायेगा, मैं कुछ क्रान्तिकारी घोषणाएँ प्रकाशित करूँगा और तब दूकान बन्द कर दूँगा।"

जर्मनी मे अधिकतर रूसी सोवियतों के आधार पर शहरो मे श्रमिक परिषदे तथा पिछड़े क्षेत्र मे सैनिक परिषदे स्थापित हुई। जनवरी, १९१९ तक, बर्लिन की गलियो में क्रान्तिकारी विद्रोह प्रारम्भ हो गये और भीड़ ने सरकारी इमारतो पर अधिकार कर लिया।

मार्च में, साम्यवादी नेता बेलाकुन के नेतृत्व मे हंगरी मे श्रमिकों, किसानो तथा नौसैनिकों की परिषदो का गणराज्य घोषित कर दिया गया। इटली में हड़ताल, दगे तथा स्थानीय विद्रोह फैल गये। फ्रान्स मे भी सोशलिस्ट पार्टी के लड़ाकू पक्ष को, जो बाद मे कम्यूनिस्ट हो गया, मजदूरो का बहुमत प्राप्त हो गया। लेनिन ने विश्वास के साथ घोषित किया—"न केवल योरोपीय देशो मे, प्रत्युत सबकी आँखों के सामने समस्त संसार के सर्वहाराओ की क्रान्ति सुदृढ हो रही है।"

इस उथलपुथल के दौरान में ही लेनिन ने मास्को मे योरोपीय समाजवादी दलों की एक सभा बुलायी, जिसने विश्वक्रान्ति को बल प्रदान करने के लिए तृतीय इण्टरनेशनल, 'कोमिण्टर्न' की घोषणा कर दी। अपने प्रथम वर्ष में 'कोमिण्टर्न' काफी अशक्त बना रहा। रूस में गृह-युद्ध चलना ही रहा और नयी सरकार की सारी ताकत इसका मुकाबला करने मे खर्च होती रही।

इस बीच योरोपीय क्रान्तियाँ ठंडी पड़ने लगी। जर्मन विद्रोह का केन्द्र तोड डाला गया और उसके नेता कत्ल कर दिये गये। फिनलैण्ड की क्रान्ति भी समाप्त हो गयी। मार्क्सवादी सिद्धान्त के चकमे में आकर बेलाकुन का अन्त हुआ। किसानों के साथ अपने व्यवहार मे लेनिन ने अपने आपको उस चकमे से बचाया। बेलाकुन ने अपनी शक्ति को सुदृढ बनाने के पहले ही अपने इस वादे का खण्डन किया कि किसानों को अपनी जमीन पर स्थायी अधिकार प्राप्त होगा और उसने जबरदस्ती सामूहिक खेती को किसानो पर लादने की कोशिश की। हंगेरी में इसकी तीव्र प्रतिक्रिया हुई, अन्य कठिनाइयाँ भी उठ खडी हुई और अगस्त, १९१९ तक उसकी सरकार उखाड फेंकी गयी।

इटली मे सघर्षशील समाजवादी गतिविधिया १९२० के अन्त तक नेतृत्व के अभाव मे छिन्नभिन्न हो गयी। पहले के समाजवादी मुसोलिनी ने शक्ति-सचय प्रारम्भ कर दिया, जिसके द्वारा बाद मे उसने रोम पर फासिस्टो की चढाई कर दी।

लेनिन की दृष्टि मे १९२० मे एक आशाप्रद शक्ति जो शेष रह गयी थी, वह थी लाल सेना, जो उस समय पोलैण्ड की ओर बढ रही थी और रूसी साम्यवादी शक्ति का जर्मनी की बची-खुची क्रान्तिकारी शक्ति से गठबधन की सभावना पैदा कर दी थी। रूसी सेना वारसा के दरवाजे पर थी जब कोमिण्टर्न की दूसरी काग्रेस बुलायी गयी थी। इस काग्रेस ने इक्कीस शर्तें लगायी थी, जिनका सभी कोमिण्टर्न पार्टियो द्वारा पालन अत्यावश्यक था; परन्तु एक सप्ताह बाद ही रूसी सेना विस्चुला मे बुरी तरह से परास्त हुई और इस प्रकार सारे योरोप मे फैल जाने की तात्कालिक सर्वहारा-क्रान्ति की आशाएँ लुप्त हो गयीं।

फिर भी, ये इक्कीस शर्तें, साम्यवादी क्रान्तिकारी चालो के विकास की महत्वपूर्ण प्रतीक थीं। योरोपीय समाजवाद के नरम दलीप तथा उग्रवादी क्रान्तिकारी तत्वों को एक दूसरे से सदैव के लिए पृथक् करने की दृष्टि से, लेनिन ने इन शर्तों को बनाया था। यद्यपि वह जानता था कि वीरतापूर्ण लडाई के लिए इस सख्या मे बहुत कमी आ जायेगी, जैसा कि उसकी बोल-शेविक पार्टी मे एक बार हुआ था, परन्तु उदार आदर्शवादी के लिए उसकी योजना मे स्थान नही था।

बोलशेविक आधार पर सदस्य-पार्टियो का सगठन और स्थानीय पार्टियो द्वारा कोमिण्टर्न के आदेशों को वफादारी के साथ पालन करने की स्वीकृति मुख्य शर्त थी। फिर भी, इस स्थिति तक, यह नही मान लिया गया था कि ये निर्णय रूसी पार्टी के द्वारा निर्देशित होगे, बल्कि कोमिण्टर्न की केन्द्रीय कार्य-कारिणी मे स्वतत्र मतदान से होगे, जिसमे सभी सदस्य-पार्टियो के प्रतिनिधि शामिल होगे।

क्रान्ति की सफलता के लिए लेनिन की किसानो के महत्व की स्वीकृति तथा समझदारी इन इक्कीस शर्तों मे द्रष्टव्य है। किसानो का समर्थन प्राप्त करने के लिए सभी पार्टियो का प्रयत्न करना आवश्यक था। एशिया और अफ्रीका मे योरोप के औपनिवेशिक अधिकारो के राजनीतिक ह्रास सम्बन्धी लेनिन के सिद्धान्त का पालन करते हुए सभी सदस्य-पार्टियो के लिए उत्पी-

ड़ित राष्ट्रो तथा गुलाम देशों की स्वतत्रता का समर्थन करना तथा उसको प्राप्त करने के उद्देश्य से कार्य करना भी आवश्यक था।

× × × ×

१९२४ में लेनिन की मृत्यु के कारण रूस के बाहर क्रान्तिकारी उत्तेजना दब गयी। वे रूसी नेता अमान्य कर दिये गये, जो इस दकियानूसी बोलशेविक सिद्धान्त पर अभी भी जोर दे रहे थे कि कि नयी सोवियत यूनियन का जीवन योरोपीय देशो में तुरन्त होनेवाली क्रान्तियों पर निर्भर करता है—पर वह क्रान्ति कभी नही हुई।

परिणामस्वरूप स्तालिन अपने अधिकृत सिद्धान्त को नये तथ्यो के अनुकूल बनाने के लिए, एकदेशीय साम्यवाद की नयी विचारधारा को प्रस्तावित करने के लिए विवश हुआ। बाहर की सभी साम्यवादी पार्टियों के लिए यह आवश्यक हो गया कि वे अपने देश में क्रान्ति के उद्देश्य को क्रान्ति की मातृभूमि रूस की सुरक्षा की आवश्यकता पर आश्रित कर दे। यद्यपि बाकी दुनिया के साम्यवादियो ने कठिनाई से इस प्रत्यागमन को गले के नीचे उतारा, तथापि अधिकाश ने यही माना कि यह सब परिस्थितियों के कारण ही हुआ। माओ-त्सेतुग के इन शब्दों मे उनकी यही भावना प्रतिबिम्बित है, "समाजवाद की शिक्षा देना बेकार है, जब तक कि समाजवाद के प्रयोग के लिए कोई देश न हो।"

चूँकि १९२० और १९३० के दशकों में विश्व-क्रान्ति का जोश ठंडा पड गया इसलिए विदेशो मे सोवियत सघ के प्रति अधिक दोस्ती का रुख पैदा हुआ। बोलशेविकवाद का जो भय विल्सन और हार्डिंज के प्रशासनो के अन्तर्गत अमरीका सहित पश्चिम में व्याप्त था, वह धीरे धीरे समाप्त हो गया।

अमरीकी कार्पोरेशनों ने विकास के नये कार्यक्रमो को पूरा करने में सहायता करने के लिए इजीनियरों को रूस भेजा। जनरल एलेक्ट्रिक तथा फोर्ड को बडे-बड़े ठेके मिले। १९३० के दशक मे सोवियत सघ की हमारी अधिकृत मान्यता के बाद की अपेक्षा १९२० के दशक मे सोवियत रूस और अमरीका में अधिक व्यापार हुआ।

सम्मानित व्यापारी तथा उनके परिवार ग्रीष्मकालीन परिभ्रमण के लिए लेनिनग्रेड गये और स्तालिन-शासन की सफलताओं की प्रशंसा के साथ लौटे। १९३० के दशक में मदीग्रस्त अमरीका की कठोर वास्तविकताओं से परिचित तथा बेकार नौजवान लेनिनग्रेड गये बिना ही, सोवियत के प्रचारा-

नुसार, 'वर्गविहीन, जातिमुक्त स्वर्ग' के बारे मे सब कुछ मान लेने के लिए तैयार थे।

स्तालिन ने अपने दूसरे तर्क को कि सोवियत सघ एक देश से कही अधिक है, कभी नही छोडा। यह न केवल विश्व-क्रान्ति का केन्द्र है, बल्कि जैसा कि वह जोरो के साथ कहा करता था, एक ही विश्वव्यापी अर्थप्रणाली के आधार पर भावी राष्ट्र सघ का सजीव प्रतिरूप भी है।

घटनाओ की यथार्थता ने रूसी राष्ट्रवाद तथा विश्व-साम्यवाद की विजय-दुदुभी बजा ही दी। सोवियत यूनियन ने एक विशाल राष्ट्र-राज्य तथा एक विश्वव्यापी विचारधारा, दुनिया की इन दो प्रबलतम शक्तियो को एक साथ मिला दिया। रूसी नेतृत्व तथा एक विस्तारवान साम्राज्य के लिए ऐतिहासिक रूसी अभियान अब एक सगठित आन्दोलन से सम्बद्ध सिद्धान्त के हथियार से लैस थे, जो मामूली 'पचम स्तम्भ' (Fifth Column) मात्र नही था। अब विश्व-साम्यवाद के पास साधन के रूप मे लाल सेना से युक्त एक राष्ट्र का सहारा भी था।

१९३५ की इण्टरनेशनल की सातवी विश्व काग्रेस मे बलगेरिया के साम्यवादी नेता जिऔर्जी डिमीट्रोव ने कहा था कि, "इतिहास-चक्र आगे की ओर बढ रहा है और जब तक सोवियत समाजवादी गणतत्रो का एक विश्वव्यापी सघ नही स्थापित हो जाता और जबतक सारे ससार मे समाजवाद की अन्तिम विजय नही हो जाती, तब तक वह बढता ही रहेगा।"

परन्तु निरन्तर चक्रवत् प्रगति के स्थान पर कोमिण्टर्न मे शीघ्र ही आन्तरिक विरोध कार्य करते हुए दिखाई पडने लगे। ट्रॉट्स्की रूस के लिए कोई भी खतरा मोल लेकर विश्व-क्रान्ति करना चाहता था। उस पर स्तालिन की विजय का अर्थ था विदेशो मे कम्यूनिस्ट पार्टियो के लिए स्वतत्रता की आशा का अन्त। उसके बाद उत्तरोत्तर वे मास्को के शासन के अधीन होती गयी और कोमिण्टर्न स्तालिन के आदेशो को प्रेषित करनेका साधन बन गया।

इसके परिणामस्वरूप रूस के हित के लिए नीतिमे कोई भी परिवर्तन या तोड-मोड अथवा कोई भी चाल स्वीकृत हो जाती। जर्मनी मे अपनायी गयी चालो मे इन तोड-मोड तथा परिवर्तनो के ज्वलन्त उदाहरण है।

१९२७ से १९३२ तक, जब कि हिटलर और नाजी धीरे-धीरे अपनी शक्ति बढा रहे थे, रूसी कोमिण्टर्न ने जर्मन साम्यवादियो को नाजियो पर आक्रमण करने के लिए आज्ञा न देकर सोशल डेमोक्रेटो पर आक्रमण की

आज्ञा दे दी। इसके लिए प्रायः यही सफाई दी गयी है कि कम्यूनिस्टों का विश्वास था कि हिटलर एक ऐसी अव्यवस्था पैदा कर रहा था जिसके कारण वे स्वयं विजय प्राप्त कर सकेंगे। परन्तु यह भी सच है कि सोशल डेमोक्रेट एक प्रमुख जर्मन गुट था, जो इग्लैण्ड और फ्रान्स से समझौता करना चाहता था, जिनसे १९१८ के गृह-युद्ध के बाद से सोवियत सघ की शत्रुता चली आ रही थी। कारण चाहे कुछ भी हो, सत्ता के लिए नाजी अभियान को साम्यवादियों ने आसान बना दिया था।

मार्च, १९३३ में, जब स्तालिन ने समझा कि उसने एक बहुत भयकर शत्रु के उत्पन्न करने मे मदद की है, तो तुरन्त ही उसने अपनी चालों को हिटलर के विरुद्ध उलट दिया। फिर भी यह चाल सैकडो ट्रॉट्स्कीवादियो को जर्मन 'गेस्टापो' के हाथो मारे जाने से रोक न सकी।

सोवियत सघ के विरुद्ध हिटलर के दबाव का मुकाबला करने के लिए स्तालिन ने अपने पुराने शत्रु फ्रान्स और ब्रिटेन को नाजी जर्मनी के विरुद्ध लगाने की कोशिश की। ब्रिटिश तथा फ्रासीसी साम्यवादियों को, अपनी सरकारो की बुराई न करने तथा लोकप्रिय मोर्चा आन्दोलनो मे उनसे सहयोग करने की आज्ञाएँ दी गयी।

बाद में सीधे हिटलर से बातचीत के पक्ष मे यह चाल भी छोड दी गयी। अगस्त, १९३९ में इस चाल का अन्त उन्मत्तपूर्ण नाजी-सोवियत संधि मे हुआ, जिसने दो सप्ताह बाद पोलैण्ड पर जर्मनी के आक्रमण के लिए तथा द्वितीय विश्व-युद्ध के सूत्रपात के लिए रगमच तैयार कर दिया।

अब दुनिया भर की साम्यवादी पार्टियों से कह दिया गया कि वे जर्मनी के विरुद्ध फ्रान्स और ब्रिटेन के युद्ध-प्रयासो से अपने समर्थन को वापस ले ले, क्योंकि यह साम्राज्यवादी युद्ध है। जून, १९४१ में, जब नाजी पैंजर सेनाओं ने सोवियत सीमाओं को पार किया तो वफादार साम्यवादियो को अपनी चाल बदलने की फिर आवश्यकता हुई। जर्मनी के विरुद्ध यह युद्ध अब जन-युद्ध हो गया।

१९४३ में, विभिन्न उद्देश्यों की पूर्ति के बाद कौमिण्टर्न को अधिकृत और औपचारिक ढग से भग कर दिया गया। ऐसा मालूम होता है कि १९४७ और १९५५ के बीच इस चक्र की पुनरावृत्ति हुई और उसका उत्तराधिकारी कौमिनफॉर्म भी अब शीघ्र ही समाप्त कर दिया जायेगा।

इस प्रकार ससार की साम्यवादी पार्टियाँ सोवियत की परराष्ट्र नीति का

उपकरण बन गयीं, जिनके उद्देश्य जार के उद्देश्यो से शायद ही भिन्न थे। साम्यवादी दलो द्वारा सचालित श्रमिक वर्गों की विश्वव्यापी क्रान्ति के ज्वलन्त सपने हवा हो गये। निस्सन्देह बहुत से देशों में यह सपना आदर्शवादी साम्यवादियों के लिए अब भी जीवित था; परन्तु इसका नया तथा और भी भयानक रूप स्तालिन के रूस द्वारा सचालित विश्व-साम्यवाद का स्वप्न था, जो लाल सेना के ध्वसात्मक कार्य और शक्ति के द्वारा लादा गया था।

सातवाँ प्रकरण

स्तालिन की योजनाएँ तथा शुद्धीकरण

जनवरी, १९२४ में जब लेनिन की मृत्यु हुई तो स्तालिन, ट्रॉट्स्की, जीनोवीव तथा कामेनेव, इन चार व्यक्तियों में उत्तराधिकार के लिए संघर्ष चला। इनमे से प्रत्येक क्रान्ति का नायक था, लेनिन का सहयोगी था और था अपनी सरकार का नेता।

लेनिन की मृत्यु के बाद उनमे मे विशेषरूप से एक को अधिक स्वतंत्रता थी और उसका कारण भी था और वह था स्तालिन। एक ही वर्ष पूर्व लेनिन ने लिखा था कि स्तालिन ने अपने हाथ मे "जबरदस्त शक्ति संचित कर ली है।" उसने यह भी लिखा कि स्तालिन बड़ा उद्दण्ड है और उसकी यह बुराई, साम्यवादियों में आपस के सम्बन्धो की दृष्टि से बिल्कुल समर्थनीय होते हुए भी महा मन्त्री के पद के लिए असमर्थनीय है। इसलिए मैं अपने साथियों के समक्ष प्रस्ताव रखता हूँ कि स्तालिन को इस पद से हटाने की कोई युक्ति निकाली जाय।" चार वर्ष बाद उत्तराधिकार का झगडा स्तालिन की पूर्ण विजय मे समाप्त हुआ। यही वह आदमी था जिसने अपने आपको फौलाद कहा था।

उसकी अन्तिम विजय, १९१७ की लेनिन की जैसी चतुर चालों और सिद्धान्तों के समन्वय पर आधारित थी। साम्यवादी दल का मन्त्री होना भी उसे बहुत सहायक सिद्ध हुआ। लेनिन ने सचमुच ही बड़ी होशियारी से इस तरीके को प्रस्तुत किया था:—"यदि पाँच दल है तो पाँचवे का अन्त करने के लिए तीन से मिल जाओ। तब बाकी दो का साथ दो और चौथे को निकाल बाहर करो। तीसरे को समाप्त करने के लिए दो में से एक के साथ हो जाओ। फिर केवल एक ही विरोधी दल बचता है, जिसको आसानी से ठिकाने लगाया जा सकता है।"

लेनिन की पुस्तक से सबक लेकर स्तालिन ने पहले जीनोवीव तथा कामनेव से, जो क्रमश लेनिनग्रेड तथा मास्को के पार्टी-अध्यक्ष थे, ट्रॉट्स्की के विरुद्ध साँठ-गाँठ शुरू की। उस समय ट्रॉट्स्की ही इन चारों में सबसे अधिक शक्तिशाली विरोधी प्रतीत होता था। लेनिन की मृत्यु के एक वर्ष के भीतर ही ट्रॉट्स्की को क्रान्तिकारी युद्ध-परिषद के अध्यक्षपद से इस्तीफा देना पडा और इस प्रकार उसकी प्रभावपूर्ण शक्ति का खातमा हो गया। विदेशों से

वर्षों तक निष्कासित जीवन व्यतीत करने के बाद, एक दिन, मैक्सिको मे क्रैमलिन के गुप्तचरों द्वारा आखिरकार उसकी हत्या कर दी गयी।

स्तालिन तब अन्य दो की ओर मुडा, जो एक तरह से ट्रॉट्स्की को प्रतिध्वनित करने लगे थे—जो चाहते थे उग्र समाजवाद तथा औद्योगीकरण, विदेशो मे क्रान्ति और दल मे विचारो की अधिक स्वतत्रता। यद्यपि अन्तिम बात अधिक लोकप्रिय थी, तथापि पहली दोनो नही। १९२५ के अन्त मे साम्यवादी दल की १८वी काग्रेस मे स्तालिन के वफादार समर्थको ने इन तर्कों को अस्वीकृत कर दिया और दो ही वर्षों के भीतर जीनोवीव तथा कामनेव बडे ही व्यवस्थित ढग से अपने अधिकार के पदो से पृथक् कर दिये गये।

विरोधी के अभाव ने नीतियो मे अचानक उलटफेर कर दिया जिनका प्रयोग स्तालिन ने अपनी शक्ति जमाने मे किया। सबसे पहले किसानो पर इसका असर हुआ। १९१७ के नवम्बर मे लेनिन के भूमि-वितरण के बाद, जिसने 'क्रान्ति को अटल बना दिया था,' गृहयुद्ध के समय मे किसानो पर अतिरिक्त कर लगाये गये और उनका बहुत-सा अनाज छीन लिया गया। गृह-युद्ध के समाप्त होते ही इन नीतियो ने प्रतिरोध करने की काफी शक्ति विकसित कर ली थी। १९२१ के अशान्त दिनो मे क्रान्सटाड्ट के नौसैनिक विद्रोह, पैट्रोग्रेडकी आम हडताल और तम्बोव प्रान्त मे किसानो के विद्रोह के पश्चात लेनिन ने नयी आर्थिक-नीति के पक्ष मे इन चालो को त्याग दिया और किसानो को अपनी उपज के वितरण में पर्याप्त स्वतत्रता प्रदान की।

रूस मे क्रान्ति को सुदृढ़ बनाने की इच्छा से स्तालिन ने इन उदार तरीको को जारी रखने का अस्थायी रूप से समर्थन किया। इसीलिए उसने सत्ता के लिए अपने सघर्ष की नाजुक अवधि मे रूसी जनमत के एक महत्वपूर्ण भाग का समर्थन प्राप्त करने की कोशिश की और आधुनिक क्रान्ति मे किसानो के योग के महत्व को प्रदर्शित कर दिया।

अब यह घोषणा करके कि रूस पर पूँजीवादी देशो द्वारा आक्रमण का खतरा है, एक ऐसा सिद्धान्त जो आज भी चल रहा है, स्तालिन ने पचवर्षीय योजनाओं की प्रथम कडी को प्रारम्भ किया जो ससार के इतिहास मे अपूर्व थी और जिसमे बलात् औद्योगीकरण के विशालतम कार्यक्रम का समावेश था।

इस तीव्र औद्योगिक विकास की सफलता के लिए आवश्यक था कि किसानो के प्रति स्तालिन की हाल की उदार नीति मे परिवर्तन किया जाय। निर्माण तथा औद्योगीकरण के लिए अधिक मजदूरो को प्राप्त करने के लिए किसानो

को अपनी उपज का एक बड़ा हिस्सा शहरो में वितरण के उद्देश्य से कम दामों पर देने के लिए मजबूर किया गया। सरकार को सामूहिक खेती के लिए तथा ट्रेक्टर स्टेशनो पर खेती के औजारो को एकत्रित करने में बहुत अधिक प्रयत्न करना पडा। स्तालिन की दृष्टि से, खेती के जबर्दस्त शोषण के फलस्वरूप बढ़े हुए राजनीतिक अधिकार ने किसानो की दुश्मनी का भी मुआवजा पूरा कर दिया। यद्यपि कुल उपज में काफी कमी आ गयी थी, तथापि शहरो में पहुँचनेवाली उपज के अनुपात मे वृद्धि हुई।

पचवर्षीय योजना ने सम्पूर्ण राष्ट्र के लिए, प्रत्येक आर्थिक क्षेत्र के लिए, प्रत्येक उद्योग के लिए और प्रत्येक कारखाने के लिए आर्थिक लक्ष्य निर्धारित कर दिया। एक बार लक्ष्यो के निर्धारित हो जाने पर, उन्हे पूरा करने और उनसे भी आगे बढ़ने के लिए शक्ति और अनुनय के प्रत्येक श्रोत का प्रयोग किया गया और विडम्बना तो यह थी कि अमरीकी पूँजीवादी पद्धति की नकल करने के लिए भी अपीले की गयी। अप्रैल, १९२४ मे स्वर्डलोव विश्वविद्यालय में "लेनिनवाद की नीव" पर अपने व्याख्यानो में स्तालिन ने कहा कि "अमरीकी दक्षता" एक ऐसी अजेय भावना है, जो न तो कोई बाधा जानती और न किसी बाधा से रुकती है और तबतक निरन्तर अध्यवसाय से कार्य करती रहती है जबतक बाधा दूर नहीं हो जाती; एकबार जिस कार्य में जुट गये उसी में खप जाना, चाहे वह कितने ही साधारण महत्व का कार्य क्यों न हो। ऐसी लगन के बिना गम्भीर रचनात्मक कार्य का प्रश्न ही नहीं उठता। स्तालिन ने यह चेतावनी देते हुए अपनी इस प्रशंसा को मर्यादित कर दिया कि "अमरीकी दक्षता मे जबतक व्यापक रूसी क्रान्तिकारी कार्यक्षेत्र का समावेश नहीं होता, तबतक उसके संकीर्ण और सिद्धान्तहीन 'व्यापारवाद' में परिणत हो जाने का खतरा है," किन्तु उसका यह निष्कर्ष सफल रहा। "व्यापक रूसी क्रान्तिकारी कार्य-क्षेत्र और अमरीकी दक्षता, इन दोनों का समन्वय ही पार्टी मे और राज्य-कार्य में लेनिनवाद का मूल तत्व है।"

जब पुरानी सैद्धान्तिक कट्टरता कुछ ढीली हुई, तब नियमित साप्ताहिक वेतन के स्थान पर आंशिक कार्य-दर का हिसाब रख दिया गया। जो मजदूर अपने 'कोटे' से अधिक कार्य कर लेते थे, उन्हे अतिरिक्त वेतन द्वारा पुरस्कृत किया जाता था। इसका परिणाम मजदूरी का ह्रास ही था, क्योंकि नया कोटा उनके पिछले अद्वितीय उत्पादन के आधार पर ही नियत किया जाता था। हर प्रकार के पुरस्कार और तमगे मुक्त हस्त से दिये जाते थे, परन्तु गाजर के

भीतर सदैव सख्त लकडी भी होती है। छोटे-बडे सभी जानते थे कि शासन हीलाहवाली नही जानता। योजना की पूर्ति मे विफलता का अर्थ था शीघ्र तथा पूर्ण विनाश।

ये तरीके भद्दे अवश्य थे, किन्तु ससार के इतिहास मे कम से कम समय मे एक शक्तिशाली आधुनिक औद्योगिक राज्य के निर्माण मे सफल रहे। द्वितीय विश्व-युद्ध के दौरान में सोवियत अर्थतत्र का युद्ध सम्बन्धी भारी उत्पादन उनकी सफलता को प्रमाणित करता है। फौलाद जैसे भारी-भारी उद्योगो मे ही नहीं, बल्कि अणु तथा उद्‌जन अस्त्रो तथा फौजी हवाई जहाजो के निर्माण मे भी रूस की युद्धोत्तर प्रगति उसकी और भी अशुभ सिद्धि है।

यह औद्योगिक प्रगति नृशस मानवीय मूल्य तथा रूस की सम्भाव्य आन्तरिक घृणा से प्राप्त हुई थी, परन्तु मनुष्य का यत्रवत् उपयोग तथा मानवीय भावनाओ का तिरस्कार उस स्तालिनवादी सिद्धान्त के अनुसार उचित माना गया, जिसका महान तथा एकमात्र उद्देश्य क्रान्ति की सुरक्षा तथा सफलता थी। राज्यशक्ति विरोध को समाप्त करने में काफी मजबूत सिद्ध हुई।

समय-समय पर कमजोर तथा ढुलमुल विचार के पार्टी-सदस्यो का शुद्धीकरण सर्वदा बालशेविक सगठन का मुख्य सिद्धान्त रहा है। कोमिण्टर्न की इक्कीस शर्तों में विदेशी साम्यवादी पार्टियोसे इसकी पूर्ति की माँग की गयी थी। सत्ता-सघर्ष मे स्तालिन के विरोधियो के विरुद्ध उपयोग की जानेवाली यह एक प्रत्यक्ष युक्ति थी। पहले का शुद्धीकरण दलगत तथा राजनीतिक प्रतिबन्ध पर निर्भर करता था न कि सरकारी सजाओ पर। दल (पार्टी) और राज्य के विकासमान एकीकरण से उत्पन्न यह स्तालिन की नयी देन थी।

जब बलात् औद्योगीकरण की गति का प्रतिरोध बढ गया, तब जीनोवीव तथा कामनेव जेल मे डाल दिये गये। अगस्त, १९३६ मे प्रथम खुले आम शुद्धीकरण के मुकदमो ने ससार को भयभीत करना शुरू कर दिया। उनके विरुद्ध तोड-फोड, अनास्था तथा फूट के आरोप लगाये गये। चमत्कारपूर्ण ढग से चकित करनेवाली स्वीकारोक्तियो द्वारा स्तालिन के प्रतिद्वद्वियो ने एक-एक करके अपने आपको दण्डित किया।

कानूनी जगत 'अभियोक्ता' विशिन्स्की की प्रतिवादी से निम्नलिखित बातचीत द्वारा स्वीकृति प्राप्त करा लेने की अद्‌भुत सफलता पर आश्चर्य करेगा :—

विशिन्स्की—"१९३३ में, तुमने जो वक्तव्य तथा लेख लिखे थे और जिनमें

तुमने पार्टी के प्रति वफादारी व्यक्त की थी, उनका अब क्या अर्थ लगाया जाय, धोखेबाजी ?"

कामनेव—"नही, धोखेबाजी से भी बुरा।"

विशिन्स्की—"विश्वासघात ?"

कामनेव—"उससे भी बुरा।"

विशिन्स्की—"धोखेबाजी से भी बुरा, विश्वासघात से भी अधिक ? देश-द्रोह शब्द ठीक होगा ?"

कामेनेव—"आपको उपयुक्त शब्द मिल गया।"

इन नेताओं की स्वीकृतियो ने अधिक नरम विचार के राजनीतिज्ञों को फँसा दिया, जिनको पचवर्षीय योजना के विरोधी के रूप मे भी माना गया था। नरमविचार के ये लोग स्तालिन के दूसरे जत्थे के शिकार हुए। सोवियत समाज के सभी अंचलो पर हमले किये गये। स्वय पार्टी को, जिसके अधिकाश कम क्रियाशील कार्यकर्त्ता स्तालिन द्वारा ही नियुक्त किये गये थे, नीचे से ऊपर तक पीस दिया गया। डिवीजन कमाण्डर तथा उससे भी ऊँचे पद के ३०० सैनिक पदाधिकारियों में से १८३ पदाधिकारी फाँसी पर चढा दिये गये।

अन्त में यह 'शुद्धीकरण' स्वय अपने ऊपर गिरा और भयानक एन के वी. डी. (N. K V. D.) को भी अपने पजो में फँसा लिया—उसी संस्था को जिसने उसके लिए योजना बनायी और उसकी देखरेख भी की।

एन के वी. डी के अध्यक्ष येजोव, जिसके नाम पर शुद्धीकरण का रूसी शब्द 'येजोवश्चीना' बना, १९३८ में पागलपन के कम होने के साथ-साथ हमेशा के लिए गायब हो गया।

इस शुद्धीकरण के पैशाचिक अत्याचारों के लिए अनेक प्रकार की बाते बतायी जाती है—स्तालिन का मानसिक उन्माद, आर्थिक विकास के विकट दबाव से बचने के लिए बलि के बकरे की आवश्यकता, एन के. वी. डी. के निहित स्वार्थ तथा षड्यत्र और देशद्रोह के कार्यों में मातहत अधिकारी। स्पष्टीकरण चाहे कुछ भी हो, शुद्धीकरण, औद्योगिक विकास के लिए रूस द्वारा रक्त और पीडा के भयानक मूल्य के रूप में चुकता की गयी एक और किश्त थी। फिर भी इस धक्के से हमें इतनी महँगी खरीदी गयी आर्थिक शक्ति को कम नही समझना चाहिए।

सोवियत औद्योगिक विकास के एकमात्र गुरुत्व ने एशिया, अफ्रीका,

दक्षिणी अमरीका के करोडो लोगो पर गहरा प्रभाव डाला है। उनके लिए सोवियत आर्थिक सफलताएँ, एक अर्धविकसित राष्ट्र अपने ही बल पर किस प्रकार तेजी से उत्थान कर सकता है, इसकी प्रतीक बन गयी है। उनमे से इस प्रकार के अनेक लोग है, जो यह निष्कर्ष निकालने के लिए तैयार है कि उनके लिए सोवियत मार्ग ही एकमात्र मार्ग है और परिणामो को देखते हुए खून के रूपमे चुकता किया गया मूल्य उचित ही था।

आठवाँ प्रकरण

रूस और शीतयुद्ध

विजय-दिवस के बाद अपनी स्थिति पर विचार करने पर स्तालिन को पर्याप्त आत्मसन्तोष हुआ, जिसके लिए यथेष्ट कारण थे। युद्ध के कठिन दिनो में रूस की शक्ति आशातीत सिद्ध हुई। रूस को बहुत अधिक नुकसान उठाना पड़ा, परन्तु उसका अस्तित्व बच गया था। सैनिक प्रतिरोध के इतिहास में थर्मापली के बाद स्तालिनग्रेड एक महाकाव्य बन गया था।

मित्र राष्ट्रोंने रूस के युद्ध-प्रयत्नो की मुक्तकण्ठ से प्रशसा की। रूसी जनता तथा लालसेना की प्रतिष्ठा चरमोत्कर्ष पर थी। तेहरान और याल्टा मे उच्चतम युद्ध-परिषदो मे स्तालिन ने उन तीन महान शक्तियो के साथ बराबरी का स्थान ग्रहण किया, जिनके निर्णय समस्त विश्व के भाग्य-नियामक थे। रूसी सैनिकों ने पूर्वी योरोप तथा बाल्कन मे नाजी आधिपत्य को अधिकतर समाप्त कर दिया था। इटली और फ्रान्स की प्रतिरक्षा मे कम्यूनिस्टोंने रोमाचकारी सहयोग दिखाया। नयी सोवियत औद्योगिक यत्र-व्यवस्था ने विशाल पैमाने पर युद्ध सामग्री का उत्पादन किया था। कुछ अशुभ असन्तोषवादी आन्दोलनो के अतिरिक्त, जिन्हे नाजी अधिक न बढ़ा सके, रूसी जनता अपने देश की प्रतिरक्षा मे बराबर सगठित रही।

यद्यपि रूसी युद्ध से क्षत-विक्षत हो गये थे, तथापि उन्होंने योरोप और एशिया की ओर देखा जो अराजकता की सीमा तक पहुँच गये थे। पीढियों के आर्थिक तथा राजनीतिक अन्याय पर नये कष्ट और विनाश का ढेर लग चुका था। पश्चिम के लिए दक्षिण तथा पूर्व राजनीतिक तथा आर्थिक दृष्टि से खोखले थे, जो एक प्रकार से सोवियत हस्तक्षेप की माँग कर रहे थे।

२८ वर्ष पूर्व, अक्तूबर, क्रान्ति के दिनों मे, जब कि बालशेविक चिन्ता और आशा से पश्चिम में अपने समर्थन मे सर्वहारा विद्रोहो की प्रतीक्षा कर रहे थे, ट्रॉट्स्की दहाड उठा था– "यदि जर्मनी नही उठता अथवा अत्यन्त कमजोरी से उठता है तो हम अपनी रक्षा के लिए नही, बल्कि एक क्रान्तिकारी आक्रमण आरम्भ करने के लिए अपनी सेनाओ को भेजेगे।"

अपने-आप होनेवाले स्थानीय साम्यवादी विद्रोहो के समर्थन मे ट्रॉट्स्की ने

अपने आक्रमण को सैनिक गतिविधि का एक क्रम माना था, किन्तु उस समय लाल सेना मे न तो इतनी शक्ति थी और न इतनी इच्छा कि वह वारसा की बाहरी सीमा से आगे बढ सके, जहाँ वह १९२० में पहुँची थी।

मई, १९४५ मे स्थिति बिल्कुल भिन्न थी। विजयी लालसेना ने सोवियत सीमा से एल्ब तक अधिकाश क्षेत्र पर वस्तुत आधिपत्य जमा लिया था। उनके साथ मास्को-प्रशिक्षित और स्वदेश लौटनेवाले लोग भी आये, जो शासन को सँभाल लेने के लिए अथवा आवश्यक होने पर 'सयुक्त मोर्चों' में अस्थायी रूप मे सम्मिलित होने के लिए तैयार थे।

जबकि विश्व युद्धोत्तरकालीन सोवियत कूटनीति की भद्दी चालो को प्रकट होते देख रहा था, तो यह स्पष्ट हो गया कि प्राय किसी भी समसामयिक समस्या को साम्यवादी हित मे बदला जा सकता है। मार्क्स के सिद्धान्तो, लेनिन की चालो तथा स्तालिन की सेनाओ का मनमाने ढग से इस्तेमाल करते हुए, सोवियत नीति स्तम्भित कर देनेवाले विभिन्न तरीको से सचालित हो रही थी।

आणविक शक्ति के नियत्रण के लिए अचसेन-लिलिन्थाल-बरुच के कल्पनाशील प्रस्ताव से लेकर बर्लिन घेरेबन्दी की जानबूझ कर की गयी क्रूरता तक, सयुक्त राष्ट्र की विशिष्ट समितियो के बहिष्कार से लेकर यूनान के गृह-युद्ध मे प्रच्छन्न आक्रमण तक और ईरान मे खुलमखुल्ला छानबीन करने तथा तुर्की को धमकी देने से लेकर दक्षिणी कोरिया मे किसी दूसरे से आक्रमण कराने तक—इन सभी में विस्तारशील रूसी साम्राज्यवादी स्वार्थो की अधीर भावना कार्य कर रही थी।

फिर भी, जब युद्ध की धूल साफ हो गयी, तो पता लगा कि पूर्वी योरोप मे लाल सेना की युद्धकालीन प्रगति की सीमाएँ तथा सोवियत के पश्चिमी प्रदेश की सीमाएँ एक हो गयी हैं। इन सीमाओं के बाहर ईरान, तुर्की, यूनान, इटली और बर्लिन नगर मे इनके प्रवेश को रोक दिया गया और जनता तथा सरकारो के दृढ प्रयत्नो, रूसियो की ज्यादतियो, ट्रूमैन-सिद्धान्त के साधनसम्पन्न समर्थनो, मार्शल योजना, 'नाटो' (उत्तरी अटलाटिक सन्धि-सगठन) आदि ने मिल कर उनके मुँह मोड दिये। टिटो का यूगोस्लाविया, जो कभी पिछलग्गू जगत का आदर्श था, अपनी पुरानी परिधि से निकल भागा और पश्चिम की ओर मुड गया।

टिटो ने सदैव मार्क्स के प्रति अपनी आस्था स्वीकार की थी। सचमुच १९५४ मे

निकली टिटो की जीवनी सम्बन्धी फिल्म में दिखाये गये अमूल्य संस्मरण मार्क्स की 'डास कैपिटल' पुस्तक के विकृत प्रतिरूप थे जिससे मार्शल टिटो ने १९२० में अपने राजनीतिक बंदी जीवन-काल में साम्यवादी सिद्धान्त सीखा था।

रूस से सम्बन्ध-विच्छेद होने तक एक मान्य मार्क्सवादी के रूप में टिटो ने पूर्वी योरोप के अन्य साम्यवादी दलों पर गहरा प्रभाव डाल रखा था। जनवरी, १९४८ में अपने बुडापेस्ट के दफ्तर में हंगरी के सुदृढ़ साम्यवादी मात्याम राकोसी ने मुझे बताया था कि बाल्कन राष्ट्र शीघ्र ही रूस के साथ नही, टिटो के साथ जायेंगे। राकोसी ने कहा, "दक्षिणी पूर्वी योरोप के संयुक्त राज्य के नाम से एक नया संघ स्थापित होगा जो स्वतंत्र रह कर रूस से संबद्ध होगा।"

अन्य बालकन राष्ट्रों के विपरीत, टिटो के यूगोस्लाविया ने बिना लाल सेना की सहायता के जर्मनों को अपनी धरती से निकाल बाहर करने में सफलता पायी थी। १९४५ और १९४८ के बीच यूगोस्लाविया की प्रतिष्ठा का मान किसी आकस्मिक दर्शक के लिए भी स्पष्ट था।

जनवरी, १९४८ में संयुक्त राष्ट्रसंघ के काम से उस क्षेत्र की दो सप्ताह की यात्रा में मैंने स्तालिन के प्रत्येक उल्लेख के साथ टिटो का दर्जनों बार उल्लेख सुना था। यद्यपि वहाँ पर सामान्य विश्वास था कि लोग चाहें या नही, साम्यवाद आनेवाला है, तथापि सर्वत्र यही आशा प्रकट होती थी कि किसी न किसी प्रकार ये देश टिटो के झण्डे के नीचे संगठित हो जायेंगे और किसी हद तक सोवियत संघ से अपने को मुक्त रखेंगे।

प्राग में जान मसारिक ने मुझे बताया कि मास्को में तीन वर्ष पूर्व स्तालिन ने प्रायः अचानक एक शिथिल "सोवियत विश्व संघ" की संभावना का उल्लेख किया था। यद्यपि प्रधान कार्यालय मास्को में ही होगा तथापि प्रत्येक सदस्य राष्ट्र अपने आन्तरिक मामलों में स्वतंत्र रहेगा। मसारिक का विचार था कि ऐसे प्रस्ताव का उन युद्ध-पीड़ित योरोपवासियों पर बिजली का-सा प्रभाव पड़ेगा, यदि उन्हें साम्यवाद के साथ आनेवाले रूसी राष्ट्रवाद का भय न होता तो वे साम्यवादी विचारधारा को स्वीकार कर लेते।

मसारिक का अनुमान था कि स्तालिन इतना सिद्धान्तवादी था कि स्वयं अपने ही सुझाव को स्वीकार नहीं करेगा और उसका ख्याल ठीक साबित हुआ। कुछ ही महीनों बाद सारी विपरीत आशाएँ चूर-चूर हो गयी जब स्तालिन

अचानक टिटो पर टूट पडा। पिछलग्गू कोमिनफोर्म-नेताओ ने एक परेड की, जिसमे टिटो की "विपथगामिता" को धिक्कारा और पडोसी साम्यवादी देशो मे शुद्धीकरण का आन्दोलन प्रारम्भ कर दिया गया। चेकोस्लोवाकिया मे रुडोल्फ स्लैन्स्की तथा अन्य दस 'टिटोवादी' फाँसी पर लटका दिये गये और हगरी मे भी गृह-मत्री राजक सहित अन्य नेताओ का भी वही हाल हुआ।

जून, १९५३ मे आखिरकार पूर्वी जर्मनी के मजदूरो ने सोवियत तानाशाही के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। सचमुच ट्रॉटस्की के ३० वर्ष बाद लाल सेना दुर्भाग्य से साथी की हैसियत से विश्व-क्रान्ति मे जर्मन सर्वहाराओ की सहायता के लिए नही, बल्कि रूस के दुश्मनो की हैसियत से उन्हे गोली से उडा देने के लिए योरोप के बीचोबीच पहुँच गयी।

× × × ×

१९५० तक योरोप मे सोवियत अभियान के क्रमश घटते प्रभाव ने रूसियो को जार के दिनो वाली निष्ठुर गति से अपनी महत्वाकाक्षा की पूर्ति के उद्देश्य से पूर्व की ओर मुडने के लिए प्रेरित किया। योरोप मे स्तालिन को अपनी आशा से बहुत कम प्राप्त हुआ, परन्तु एशिया मे निश्चित रूपसे बहुत अधिक।

इस बात के पर्याप्त प्रमाण है कि जिस प्रकार अमरीका ने चीन की घटनाओ को ठीक से नही समझा, उसी प्रकार सोवियत सरकार ने भी गलत समझा। निश्चय ही मास्को इस कल्पना के आधार पर कार्य करता मालूम होता था कि चीनी साम्यवादी अपने आप सत्ता नही प्राप्त कर सकेगे और कुछ वर्षों तक राष्ट्रीय शासन के प्रतीक के रूप मे च्याग को ही स्वीकार किया जायेगा। यद्यपि रूस ने १९४९ मे सत्तारूढ होने के चीनी साम्यवादियो के अन्तिम प्रयत्नो मे विलम्ब से समर्थन प्रदान किया तथापि चीनी अथवा रूसी नेताओ को भी इस बात पर विश्वास कर लेने मे कठिनाई होती कि अन्तिम विजय के लिए रूसी प्रयत्न, शक्ति अथवा दूरदर्शिता अत्यावश्यक थी।

परन्तु पश्चिम मे साम्यवादी प्रगति ठप हो जाने और चीन मे साम्यवादी शासन का नियत्रण सुदृढ हो जाने के साथ रूस का विस्तारवाद (Drang natch Osten) तेज रफ्तार पर पहुँच गया। जून, १९५० मे ३८ वी समानान्तर रेखा के पार उत्तरी कोरिया के अभियान मे इसका प्रदर्शन हुआ जो रूसी शस्त्रो से सज्जित था और सम्भवत रूस ने ही उसके लिए समय निश्चित किया था।

अन्य स्थानो की भाँति कोरिया मे भी सोवियत चाले बहुत कुछ मौके से

लाभ उठाने की घात में थी। कुछ अर्थों में कोरियाई अनुमान रूसी नीति के लिए लाभदायक ही रहा। इसने पश्चिमी जगत की उपलब्ध सैन्य-शक्ति के एक बड़े हिस्से को सुदूरवर्ती तथा नगण्य मोर्चों पर ही उलझा रखा और इसने चीन तथा पश्चिमी विश्व के अन्तर को और भी पक्का कर दिया। सोवियत सहायता की चीनी आवश्यकता स्पष्ट रूप से सिद्ध हो गयी, जब कि साम्यवादी साधन-स्रोतो के दिन-प्रति-दिन के शोषण का भार चीन पर ही आ पड़ा।

कोरिया ने सोवियत सैनिक नेताओं को, बिना एक भी रूसी सिपाही की प्राणहानि के, उनके अपने नवीनतम अस्त्रों के परीक्षण का एक अवसर दिया। चीन का आर्थिक शोषण सोवियत कुचक्रों के अनुकूल ही था, क्योंकि आखिर रूस भी तो यही चाहता था कि चीन इतना वफादार हो कि वह मास्को के ढग के विश्व-साम्यवाद को सुदृढ समर्थन प्रदान करे, पर इतना प्रबल न हो कि स्वयं रूस के लिए ही खतरा बन जाय।

अन्त में कोरिया ने सोवियत सघ को प्रचार करने का मौका दिया, जिसका उपयोग बहुत ही प्रभावपूर्ण ढग से किया गया। पश्चिमी इरादों से भयभीत और उपनिवेशवाद के संस्मरणों से परिपूर्ण एशिया में सयुक्त राष्ट्रसघ की सेनाओं को, उत्तरी कोरिया के आक्रमण के स्पष्ट प्रमाण होते हुए भी, साम्राज्य-वादी करार देना कठिन नहीं था।

फिर भी, हिसाब लगाने पर मास्को कोरिया सम्बन्धी प्रयत्नों को शायद ही सफल समझे। सोवियत यूनियन के लिए कमसे कम दो बड़ी हानियाँ स्पष्ट रूपसे सामने थी। पहली, कोरिया आक्रमण ने ही योरोप में शिशु 'नाटो' के प्रयत्नों को नवीन बल प्रदान किया और साथ ही अमरीकी सैनिक शक्ति बढ़ाने के लिए प्रेरित किया। इस सैनिक तैयारी ने अटलांटिक राष्ट्रों को सुसगठित कर दिया; क्रेमलिन के समक्ष एक बिलकुल नयी शक्ति-सतुलन की स्थिति पैदा कर दी और स्वयं सोवियत सघ को एक विशाल और व्ययसाध्य सैन्य विस्तार के लिए विवश किया। ये प्रतिकूल बातें ही रूस को कोरिया से होनेवाले लाभों से अधिक भारी प्रतीत होंगी।

दूसरी, कोरिया में साम्यवादी चीन के लिए एक नयी प्रतिष्ठा, शक्ति और महत्व का प्रश्न था, जिसका परिणाम था कि सुदूर पूर्व में रूस का प्रभाव उठ गया और साथ ही पेकिंग को आर्थिक सहायता का नया वचन देना पड़ा। कोरियाई संधि के बाद से मास्को वर्तमान खर्च तथा साम्यवादी चीन की अशुभ शक्तिशाली स्पर्धा से भलीभाँति अवगत है।

दूसरी बात पर अधिक जोर देने की जरूरत नही। १९५५ की गर्मियो मे, एशिया के एक उच्च पदस्थ कूटनीतिज्ञ ने, जो कुछ पेकिग का पक्षपाती था, मुझे बताया कि वह "रूस द्वारा चीन के बेचे जाने पर" चिन्तित था। उसने कहा कि क्रेमलिन म अब विरोधी ध्वनियाँ प्रतिध्वनित हो रही होगी—कुछ कहते होगे कि पैकिग की बढती हुई माँगो को पूर्ण रूप से स्वीकार किया जाय और कुछ कहते होगे कि अन्त मे ब्रिटेन और अमरीका से स्थिर सम्बन्ध के लिए कोई आधार ढूंढ लेना अधिक सस्ता तथा सुरक्षापूर्ण होगा।

मुझे तो यह असम्भव लगता है कि क्रैमलिन मे इस समस्या पर इतना तीव्र मतभेद होगा, किन्तु इसमे तो शका की गुजाइश नही है कि सोवियत यूनियन के शासक साम्यवादी चीन के उत्थान से बहुत बेचैन है। पूर्व और पश्चिम के बीच रूसी नीति का ज्वारभाटा शताब्दियो तक चीनी तथ्य को इच्छानुसार उपेक्षित कर सकता था, परन्तु अब यह सभव नही था। पेकिंग और मास्को मिलकर अपनी समान नीतिओ की एक ही धारणा विश्व के समक्ष क्यों न प्रस्तुत करे, यह सम्भव प्रतीत होता है कि धरातल के नीचे का तनाव दोनो ही राजधानियो की प्रवृत्तियो को पहले ही से प्रभावित कर रहा होगा।

१९५० से चीन और रूस के सम्बन्धो मे सफलताएँ तथा तनाव हमारे युग की परराष्ट्रनीति के मुख्य तत्त्व बन गये है। सोवियत सघ की असदिग्ध युद्धोत्तर औद्योगिक प्रगति इसीके समान एक दूसरी महत्वपूर्ण बात है जो विश्व-स्थिति को प्रभावित करती है।

१९४५-५५ के बीच रूस एक औद्योगिक शक्ति के रूप मे उठा जो केवल सयुक्त राज्य अमरीका से कुछ कम है। रूस मे बार-बार उत्पन्न होनेवाली आर्थिक समस्याओ के बावजूद यह सोचना मूर्खता होगी कि रूस के गाँव गन्दे है, पिछडे हुए है, बल्कि इससे तो रूसी सफलता की हमारी समझ पर ही पर्दा पड जायगा।

१९५२ में मालेनकोव ने कहा, "सभी आँकडो से यह स्पष्ट है कि रूस (सयुक्त समाजवादी सोवियत गणतत्र) तथा जन-प्रजातत्रो के औद्योगिक विकास की गति के सामने, सयुक्त राज्य अमरीका तथा अन्य पूँजीवादी देशो मे औद्योगिक उत्पादन की गति काफी पिछडी हुई है।" मालेनकोव का पतन हो चुका है, परन्तु हमारी सूचना के अनुसार वर्षों से साम्यवादी नेताओ के डींगभरे दावो मे यह दावा बहुत कम बढा-चढा कर किया गया है।

उच्च अमरीकी आर्थिक अधिकारियो द्वारा सरकारी सोवियत रिपोर्ट

से निकाले गये आंकडो से पता लगता है कि दो विश्व-युद्धो, गृह-युद्ध तथा क्रान्ति के बावजूद १९१३ से रूसी अर्थतंत्र ने अपना कोयला उत्पादन दसगुना, कच्चा लोहा सातगुना, फौलाद नौगुना, पैट्रोल छ गुना और विद्युत-शक्ति आठगुना बढाने की व्यवस्था की है।

१९५४ में अमरीकी उत्पादन में अस्थायी गिरावट के फलस्वरूप सोवियत उद्योग ने प्रथम बार अमरीका के फौलाद उत्पादन के आधे अर्थात् लगभग साढे चार करोड टन से कुछ अधिक उत्पादन करने मे सफलता पायी। १९५५ में कोयले के उत्पादन मे रूस अमरीका के करीब पहुँच रहा था।

कुशलतम विश्लेषणकर्त्ताओं को अब विश्वास हो गया है कि अभी हाल में रूस के कुल राष्ट्रीय उत्पादन में वार्षिक औसतवृद्धि ७ या ८ प्रतिशत हुई है जब कि ऐतिहासिक अमरीकी आँकडा ३ और ४ प्रतिशत के बीच रहा है।

ये मोटे आँकडे और भी बडे हो जाते है जब हम रूस के भारी उद्योग के कही अधिक उत्पादन पर ध्यान देते है। सोवियत के योजनाकार, जिनके दिमागो में अभी भी विश्व-क्रान्ति के सपने है, अपना समय सोडा-लैमन की मशीनों तथा "ज्यूक" बक्स बनाने में नही नष्ट कर रहे है।

रूसी औद्योगिक उत्पादन को असीम कच्चे मालो का सहारा प्राप्त है। साम्यवादी राष्ट्र सचमुच एक गुट के रूप में काफी लम्बे भविष्य के लिए स्वावलम्बी है, जब कि हम अब भी अपनी महत्वपूर्ण आवश्यकताओं का लगभग ५० प्रतिशत माल बाहर से मगाते है।

औद्योगिक उत्पादन मे वृद्धि के साथ ही जटिल तथा विकसित आधुनिक यंत्रों के मामलो मे भी रूसी कौशल बढ़ता जा रहा है। उनके उत्तम लड़ाकू जेट विमान तथा बमवर्षक और उद्जन बम पर अप्रत्याशित शीघ्रता से उनका प्रभुत्व, इसके ज्वलन्त उदाहरण है।

वैज्ञानिक तथा यान्त्रिक प्रशिक्षण मे भी रूस की प्रगति भविष्य के लिए कम महत्वपूर्ण नही है। १९५० में सैनिक (जी आई.) अधिकार-विधेयक की सहायता से अमरीकी विश्वविद्यालयो ने ५२,००० इंजीनियर स्नातक निकाले। जून, १९५४ मे संख्या घटकर २०,००० तक पहुँच गयी। रूस में हमारे सर्वोत्तम अनुमान के अनुसार यह प्रवृत्ति विपरीत दिशा में रही है; १९२८ मे यह सख्या ११ हजार थी जो १९५० में २८ हजार हो गयी और १९५४ मे तो यह ५४ हजार के आश्चर्यजनक आकड़े तक पहुँच गयी।

रूसी कार्यक्रम इतना विस्तृत हुआ कि उसमे चीन तथा अन्य पिछलग्गू

देशों के सैकडो विद्यार्थी शिक्षा पा रहे है और अमरीकी वैज्ञानिको के शब्दो में टेक्निकल शिक्षा का स्तर अमरीकी स्तर से कम नही है। आणविक तथा भौतिक-शास्त्र वेत्ता और कोलम्बिया यूनिवर्सिटी स्कूल आफ इजीनियरिंग के डीन, डा जॉन आर डनिंग ने तो यहाँ तक कह डाला कि "वैज्ञानिक जन-शक्ति के युद्ध मे हम लोग मैदान लगभग हार चुके है। रूस मे लगभग उतने ही वैज्ञानिक तथा इञ्जीनियर है जितने हमारे यहाँ और वह और भी तेजी से उन्हे पैदा कर रहा है।"

सभवत अमरीकी तथा रूसी आर्थिक एव यात्रिक विकास के बीच कतिपय तुलनाएँ अनावश्यक रूप से निराशाजनक है। कुछ तो १९५५ के आरम्भ में सोवियत सामरिक उत्पादन मे एकदम वृद्धि कर देने से, कृषि-उत्पादन तथा नागरिक औद्योगिक उत्पादन, १९५४ की वृद्धि-दर की तुलना मे औसतन घट गया। सोवियत तेल-उत्पादन को भी आघात पहुँचा। सोवियत यातायात प्रणाली दूरियो को देखते हुए अपर्याप्त है। सोवियत राष्ट्रीय आय को देखते हुए उनके मकानो का स्तर बहुत ही गिरा हुआ है। मकान-निर्माण और याता-यात के अचल मे काफी दिलचस्प बात यह है कि सोवियत योजनाकारो ने पर्याप्त प्रगति जारो से विरासत मे पायी थी।

इसके अतिरिक्त कोरिया-युद्ध के समय मे भी सयुक्त राज्य अमरीका रूस के मुकाबले कही कम उत्पादन कर रहा था। सयुक्त राज्य अमरीका का ४० घटे का श्रम-सप्ताह रूस के ४८ घटे के श्रम-सप्ताह की तुलना मे इस अन्तर को स्पष्ट कर देता है। रूस की अधिकाश स्त्रियाँ मजदूरी कर रही है। यह गर्व के साथ कहा जा सकता है कि सकटकाल की लम्बी अवधि मे, अमरीका अपने मौजूदा कारखानो और सामग्रियो की क्षमता से औसतन रूस से अधिक उत्पादन कर सकता है।

दूसरी ओर रूस में अपेक्षाकृत निम्न जीवन-स्तर के कुछ सैनिक लाभ हो सकते है। पश्चिमी उपभोक्ता अपने जीवनयापन के लिए कही और अधिक चाहता है। फिर भी एक स्पष्ट राजनीतिक प्राणी के नाते एक पश्चिमी नागरिक किसी भी नागरिक मितव्ययता की प्रक्रिया मे सैनिक ढग से अनु-शासित एक रूसी की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण तत्व होता है, जिसको मै अपने युद्धकालीन मूल्य तथा राशनिंग प्रशासक की हैसियत से प्राप्त अनुभवों से सिद्ध कर सकता हूँ।

रूसी अर्थ-व्यवस्था कम से कम कृषि मे विशेषरूप से दोषपूर्ण हो सकती

है। जिस किसान की मौन सम्मति ने लेनिन की क्रान्ति को बढावा दिया, वही सुनिश्चित विकास और आन्तरिक स्थिरता के मार्ग मे एकमात्र जबर्दस्त रोडा रहा है। रूस के भविष्य के लिए निर्णायक होते हुए वह आज भी रूस का बिसराया हुआ आदमी है।

सोवियत विकास की प्रारम्भिक स्थितियों में, रूसी भौमिक साधनस्रोत इतने विशाल थे और प्रति व्यक्ति खाद्यान्य-उत्पादन इतना अधिक था कि साम्यवादी योजनाकारों ने किसानों का बडी क्रूरतासे आर्थिक शोषण किया और आज भी वे नगरवासियों के लिए पर्याप्त किन्तु, साधारण खुराक के लिए किसानों से काफी अनाज खीच रहे है। मास, मुर्गी, अण्डे तथा दूध-मक्खन इत्यादि का उत्पादन कम कर दिया गया और तरकारियों तथा अनाज पर अधिक जोर दिया जाने लगा जिनसे पर्याप्त पोषक तत्व कैलोरी, खनिज और प्रोटीन प्राप्त हो सकते है।

परन्तु लोगो की सहनशक्ति की भी एक सीमा है। इस प्रकार सीधे जीवन-निर्वाह की आरोपित अर्थ-व्यवस्था हमेशा नही चल सकती, चाहे विदेशी शत्रुओं तथा आन्तरिक सकटों का कितना ही प्रचार क्यो न किया जाय। परिणामस्वरूप १९५५ में मास के, जो उच्च जीवनस्तर का परिचायक है, उत्पादन को दुगुना कर देने का व्यापक प्रयत्न प्रारम्भ हुआ।

सोवियत योजनाकारों के दृष्टिकोण से यह समस्या कहने में आसान, किन्तु समाधान में कठिन है कि किसान को अधिक उपभोक्ता-सामग्री न प्रदान कर तथा क्रय-विक्रय की अधिक स्वतंत्रता न देकर, अधिक अन्न कैसे प्राप्त किया जाय। खेती सोवियत अर्थतंत्र की सम्भवतः कठिन समस्या ही बनी रहेगी।

यदि क्रैमलिन कपडे धोने की मशीनों, मोटर-कारों तथा मकानों के अधिक निर्माण की अनुमति देने का निर्णय करे—जैसा कि उसने १९५४ में कुछ समय के लिए किया था, तो और भी नयी समस्याएँ पैदा होने लगेंगी। आर्थिक अन्याय और भी फैल जायेगा। उच्च जीवनस्तर की लालसा और भी बढ़ेगी। सैन्य अनुशासित साम्यवादी समाज में भी, उस समय झगडे पैदा होने लगेंगे, जब आर्थिक उन्नति का प्रारम्भ दिखाई देने लगेगा और जब और अधिक सुधार के अवसर पहलेपहल पूर्ण रूप से समझ लिये जायेंगे।

हर हालत में, सोवियत अर्थतंत्र की स्थिति, अद्भुत सफलताएँ तथा उसकी मर्यादाएँ सोवियत परराष्ट्रनीति के निर्णय मे अधिकाधिक महत्वपूर्ण सिद्ध

होगी। दोनों स्थितियाँ शीतयुद्ध को ढीला करने पर मजबूर करेगी। जैसा कि बाद मे मै विस्तार से चर्चा करूँगा, विरोधाभास के रूप मे दोनो ही शीतयुद्ध की शिथिलता के लिए जोर दे सकती है।

× × ×

रूसी इतिहास, मार्क्सवादी सिद्धान्त और सोवियत व्यवहार की इस सक्षिप्त रूपरेखा मे हमने देखा कि मास्को से चलनेवाला साम्यवाद सगठित क्रूरता से भी कहीं अधिक जटिल घटना है। मार्क्सवादी सिद्धान्त ने रूसी नीति को एक सैद्धान्तिक आकर्षण प्रदान किया है, यद्यपि यह आकर्षण प्राय· दूकानो मे पडा रह गया और जहाँ इसके अनुभवो ने लोगों को सचेत ही किया है। सोवियत आर्थिक प्रगति के आँकडो तथा भौतिक प्रमाणों का, उन राष्ट्रो पर, जो इसी प्रकार की उन्नति के लिए लालायित है, जबर्दस्त प्रभाव पडता है। सैन्यशक्ति की विशालता उसकी प्रतिष्ठा में चार चाँद लगा देती है।

इनके विपरीत दूसरा चित्र भी है, जिसमे धोखेबाजी, षड्यत्र, हिंसा जिनका प्रयोग इन उद्देश्यो की प्राप्ति के लिए किया गया है, के साथ बढती हुई खिन्नता है। कम से कम योरोप के सबन्ध मे यह कहना ठीक होगा कि बुद्धिजीवी आदर्शवादियो मे साम्यवाद का प्रभाव कम हो रहा है। एशिया में, जैसा कि हम आगे चलकर देखेंगे, एक दूसरी ही कहानी है।

इसके बाद हमारे समक्ष एक मौलिक प्रश्न उठता है द्वितीय विश्व-युद्ध के बाद के दूसरे दशक मे मास्को की सम्भाव्य चाल क्या होगी ? यह बढती हुई आशा कहाँ तक उचित है कि मास्को शीतयुद्ध को सचमुच ही कम कर देना चाहता है ?

पश्चिमी विचारधारा की परम्परा में गहराई से समायी यह धारणा है कि रूस की विशाल और कठोर सुदृढ शक्ति अपने निश्चित उद्देश्यों की ओर निर्द्वन्द्व बढती चली जा रही है। फिर भी, रूसी क्रान्ति के उद्‌गम तथा प्रवाह की इस संक्षिप्त झाँकी मे हमने देख लिया है कि सोवियत नीति अपनी टेक्नीको में असाधारण परिवर्तन करने मे समर्थ है, जिनमे से कुछ लक्ष्यो को प्रभावित करने की दृष्टि से काफी मौलिक है।

अब हम, कुछ परिवर्तनो पर, जो आज की स्थिति से अधिक सम्बन्धित है, संक्षेप मे विचार करे। हम यह देख ही चुके है कि लेनिन ने किस प्रकार प्रथम

विश्व-युद्ध के बाद मध्य योरोप में राजनीतिक दृष्टि से रिक्त स्थानो में क्रान्तिकारी अवसरों को देखकर सोवियत सेना तथा राजनीतिक तंत्र को विश्वव्यापी क्रान्ति के अभियान में लगा दिया। जब जर्मनी और हंगरी में लाल सेनाएँ पराजित हुई तो लेनिन ने इन प्रयत्नों को छोड दिया।

लेनिन के बाद स्तालिन ने रूस में ही साम्यवाद की स्थिरता के लिए सोवियत नीति में और भी मौलिक परिवर्त्तन कर दिया। सह-अस्तित्व की यह अवधि १९४१ में समाप्त हो गयी, जब हिटलर ने अपनी दहाडती हुई बख्तरबन्द सेनाओं को सोवियत संघ के मध्य तक पहुँचा दिया। अगर युद्ध की बात न होती तो कौन जानता है कि आन्तरिक विकास पर पोलित ब्यूरो का ध्यान कब तक केन्द्रित रहता? फिर भी, युद्ध ने प्राचीन योरोप-शासित संसार को जड़ से हिला दिया और अन्तिम विश्व-क्रान्ति की अपनी धारणा के अनुसार, सोवियत नीति योरोप के इस पार से उस पार तक और मध्य पूर्व में राजनीतिक दृष्टि से रिक्त स्थानों को भर देने के प्रयास के रूप में बदल गयी।

१९४८ में पूर्वी योरोप में सोवियत शक्ति के सुदृढीकरण, अन्य स्थानो में इसके धक्के तथा अगले वर्ष चीन में माओत्सेतुंग की अप्रत्याशित विजय के बाद युद्ध-पूर्व-काल के सह-अस्तित्व के प्रति इसकी चालो में भारी परिवर्तन अपेक्षित था। फिर भी, मालूम होता है कि सोवियत सैनिक तथा राजनीतिक चालों की आंशिक सफलता के कारण स्तालिन ने कुछ समय के लिए अपनी आक्रामक नीति को जारी रखना उचित समझा।

फिर भी, १९५२ तक, अधिकांश प्रेक्षकों को यह स्पष्ट हो गया कि स्तालिनवादी दुराग्रह से न केवल लाभ मिलना बन्द हो गया था, बल्कि वह अत्यन्त खतरनाक भी हो गया था। मुझे नयी दिल्ली में उस वर्ष की जुलाईकी शाम याद है, जिसे मैंने एक दर्जन या अधिक साथियों के साथ बिताया था, जिनमें ६ या ७ सरकारो के प्रतिनिधि भी थे। हमने बात ही बात में उन कारणों की सूची बनायी कि पोलितब्यूरो के दृष्टिकोण से रूसी चालों में जबर्दस्त उलटफेर क्यों तर्कसंगत प्रतीत हो सकता है। कारणो की सूची इस प्रकार थी:—

(१) आणविक अस्त्रो का विकास तथा उनके उपयोग की क्षमता किसी भी प्रमुख युद्ध को शीघ्र ही विजयी और विजित दोनों के लिए विनाशकारी बना देगी। वाशिंगटन की गल्पकथाओ के अनुसार रूस की हवाई शक्ति के पूर्णतया विकसित होने के पूर्व कतिपय अमरीकी उग्रवादियो में यह चर्चा बढ़ती जा रही थी कि किसी बहाने से एक अवरोधक युद्ध आरम्भ कर दिया जाय।

(२) 'नाटो' (Nato) की बढती हुई शक्ति के द्वारा पश्चिमी योरोप मे अपेक्षाकृत अधिक सैनिक सुरक्षा प्राप्त हुई थी और चैनल तथा अटलांटिक पर सोवियत स्थल सेनाओ के शीघ्र ही तीव्र प्रहार का प्रलोभन बहुत कम हो गया।

(३) कोरिया-युद्ध दो वर्ष बाद बन्द हो गया और रूस और चीन दोनो के लिए खर्च का कारण बन गया और वह आसानी से अनपेक्षित बडे युद्ध का रूप धारण कर सकता था।

(४) ज्यो-ज्यों योरोप आर्थिक दृष्टि से धीरे-धीरे अपने पैरो पर खडा होने लगा, त्यो-त्यो हिंसात्मक वर्ग-क्रान्ति के द्वारा गृह-युद्ध पैदा करा देने की मास्को की क्षमता भी कम होती गयी। एशिया के नये स्वतत्र देशो मे, कोमिनफार्म-प्रेरित साम्यवादी क्रान्तियाँ वहाँ की बढती हुई राष्ट्रीयता की भावना के सामने न ठहर सकी, केवल उन देशो मे उनके लिए अवसर रह गया, जहाँ अभी भी उपनिवेशवाद है।

(५) युद्ध की लगातार धमकी ने योरोप मे मित्रराष्ट्रो की प्रतिरक्षा को सुदृढ बनाने के सिवाय और कुछ भी न किया और पश्चिमी राष्ट्रो की मित्रता को और पक्का बना दिया। अब पश्चिम को, न तो योरोप मे और न एशिया मे रूसी धमकियो का डर रहा।

(६) इसके विपरीत, अनुभव से यह मालूम हुआ कि पश्चिम राष्ट्रो की मित्रता मे तनाव के ढीले होने पर फूट पैदा होने लगी है।

(७) सैनिक तैयारी का दबाव सोवियत आर्थिक व्यवस्था पर बहुत बडा बोझ था और आर्थिक विकास की गति उतनी ही धीमी पड गयी थी। सोवियत कृषि की स्पष्ट कठिनाइयो के साथ साम्यवादी चीन मे भारी आर्थिक सकट की सम्भावना पैदा हो गयी थी।

(८) सैनिक तैयारी में ढिलाई के फलस्वरूप बचत से ही सोवियत सघ, चीन तथा योरोपीय पिछलग्गू राष्ट्रो को अपनी सहायता बढा सकता था और भारत जैसे तटस्थ राष्ट्रो के लिए ठोस और राजनीतिक दृष्टि से प्रभावपूर्ण सहायता का कार्यक्रम तैयार कर सकता था।

(९) रूस की पूर्वी सीमाओं पर सगठित चीन के विकास की बढती हुई शक्ति ने, यद्यपि वह साम्यवादी बधनो द्वारा रूस से सबद्ध था, रूस के नियामको के लिए अनेक नयी समस्याएँ पैदा कर दी थी। रूस के पिछले दरवाजे पर शक्तिशाली चीन बहुत ही महत्वपूर्ण भौगोलिक तथा राजनैतिक तत्व होगा।

इस पर सर्वदा नियत्रण नहीं रखा जा सकता था।

(१०) मार्क्सवादी सिद्धान्त मे इस बात पर जोर दिया गया है कि पूँजीवादी अर्थ-व्यवस्था की स्वस्थता युद्ध की तैयारियो पर आश्रित होती है और मास्को सम्भवत समझेगा कि पश्चिमी प्रतिरक्षा-मोर्चे पर ढिलाई अमरीका को मंदी के गहरे गर्त मे गिरा देगी। १९२९ से अमरीका मे युद्ध के समय अथवा उसके बाद की तात्कालिक अवधि मे बेकारी समाप्त हो गयी थी जब कि नागरिको की अपूर्ण माँगो को पूरा करना था।

(११) अन्त मे, सोवियत सघ प्रचार की दृष्टि से विश्व के समक्ष सुदृढ स्थिति मे पहुँच जायेगा, यदि उसका शान्ति-अभियान विश्वासपूर्वक चलता रहा, यदि शान्ति स्थापित हुई तो क्रेमलिन को इसका अधिक से अधिक श्रेय तो मिलेगा ही, साथ ही अमरीका को कूटनीति के द्वारा धीरे-धीरे पृथक् करने का उसे अवसर भी प्राप्त हो जायेगा। यदि शान्ति कभी नहीं आयी तो उसका दायित्व अमरीका तथा उसके अटलाटिक साथियो पर डाला जायगा और सोवियत स्थिति और भी मजबूत हो जायेगी।

यद्यपि हमको ऐसा मालूम हुआ कि तर्कों की सच्चाई रूस के नीति-निर्माताओ को स्पष्ट रूप से मालूम होगी, फिर भी उस समय मास्को मे ढिलाई का कोई लक्षण नही था। इसके विपरीत, ठीक उसी समय मास्को के साथ अमरीका के सम्बन्ध विशेषरूप से गम्भीर स्थिति मे थे।

यह नयी दिल्ली सहित विश्व की सभी राजधानियों में प्रकट था। सामाजिक समारोहो मे सोवियत प्रतिनिधियो ने अत्यन्त औपचारिक शिष्टता से भी इन्कार कर दिया। नवम्बर, १९५२ में, कोरिया-युद्ध में सयुक्त राष्ट्र के द्वारा मध्यस्थता करने के नेहरू के प्रयत्नो को भी विशिन्स्की ने उद्दण्डतापूर्वक ठुकरा दिया।

फिर भी, मार्च, १९५३ मे स्तालिन की मृत्यु के पूर्व ही परिवर्तन दिखायी देने लगा। सोवियत प्रतिनिधि अचानक सद्भावना दिखाने लगे। भारत में अमरीकी दूतावास के एक दर्जन या कुछ अधिक सदस्यों को उन्ही के पद के सोवियत प्रतिनिधियो से क्रिस्मस कार्ड मिले। जुलाई, १९५३ मे उसी आधार पर, जिसे सोवियत ने आठ महीने पहले ठुकरा दिया था, कोरिया मे सधि हो गयी।

८ अगस्त को स्तालिन के उत्तराधिकारी मालेनकोव ने नयी चाल के आधार की व्याख्या की . "अन्तरराष्ट्रीय सम्बन्धों मे तनाव की परिस्थितियों में, यदि

आज उत्तरी अटलांटिक गुट आन्तरिक कलह तथा विरोधो से फूटग्रस्त है, तो इस तनाव की कमी से सभवत वह बिखर सकता है।"

कुछ ही महीनो मे सोवियत शान्ति-अभियान ने कठोर वचनो की अपेक्षा स्तालिनवाद की चापलूसियो से कुछ दूर हटने की व्यवस्था की। उन अनेक उदाहरणो मे से कुछ ये हैं – चीन को पोर्टआर्थर लौटा दिया गया, कतिपय बलगेरियन उद्योग स्थानीय नियत्रण मे दे दिये गये और ट्रिग्रस्ट समझौता सम्पन्न हो गया। अपनी पिछली स्थिति को उलटते हुए रूस ने यूनेस्को तथा सयुक्त राष्ट्र की टेकनिकल सहायता मे भाग लेनेका निश्चय किया। तुर्की और दर्रेदानियाल के विरुद्ध दावो को त्याग दिया गया। डेन्यूब नदी में आवागमन खोल दिया गया।

८ फरवरी, १९५५ को मोलोतोव ने मास्को मे सुप्रीम सोवियत की बैठक मे कहा कि यदि पश्चिमी जर्मनी के पुन शस्त्रीकरण सम्बन्धी पेरिस-समझौते की पुष्टि की गयी तो 'नाटो'–शक्तियो पर उसके भयानक परिणाम देखने को मिलेगे। उसने इस बात पर जोर दिया कि आस्ट्रिया का मामला जर्मनी की समस्या के सन्तोषप्रद समाधान पर निर्भर है। तीन महीने बाद ही, मोलोतोव ने अचानक बडी रियायते दी और आस्ट्रियाई सधि पर हस्ताक्षर हो गये।

ब्रिटेन, फ्रान्स, पश्चिमी जर्मनी, स्केन्डिनेविया, यूगोस्लाविया, यूनान, मिस्र तथा अर्जेण्टाइना के साथ सोवियत व्यापारिक सम्बन्ध पूरे हो गये हैं। टेक्निकल तथा आर्थिक सहायता का न केवल साम्यवादी गुट के अन्दर ही प्रयोग हुआ, बल्कि इसके बाहर अफगानिस्तान और भारत को भी पर्याप्त सहायता पहुँचायी जा रही है। १९५५ मे भारत को अपने पक्ष मे करने के सोवियत प्रयत्न अधिक तेज कर दिये गये। चूँकि साम्यवादी चीन की भौगोलिक तथा राजनीतिक महत्ता बढती जाती है, इसलिए सभव है कि क्रेमलिन भारत की ओर, चीन की बढती हुई माँगो के पलडे को बराबर करने के लिए और अधिक झुके।

मई, १९५५ मे बेलग्रेड मे एक बिलकुल नाटकीय चाल चली गयी। मार्शल जोसेफ ब्रीज टिटो को, जिन्हे सात वर्षों के अधिकाश समय मे "भद्दा", "छिछोरा", "जनखा", "बदमाश", "फासिस्ट", "नरभक्षी" तथा "बेलग्रेड का तुतलाने वाला तोता" कहकर पुकारा जाता था, अचानक क्रेमलिन-क्षेत्र मे वापस आने के लिए आमत्रित किया गया।

एक सप्ताह की खीचातानी के बाद एक समझौते की घोषणा की गयी जिस पर टिटो तथा सोवियत प्रधान मत्री बुलगानिन के हस्ताक्षर थे और जिसमे कहा गया था कि समाजवादी विकास के विभिन्न रूपो का सम्बन्ध एकमात्र सम्बन्धित देशो से ही है। सैद्धान्तिक मतभेदो अथवा सामाजिक व्यवस्था के भेदो की परवाह किये बिना उन्होने राष्ट्रो मे शान्तिपूर्ण सह-अस्तित्व के विकास और मान्यता के लिए जोर दिया।

बेलग्रेड मे ख्रुशेव तथा बुलगानिन के पश्चात्तापपूर्ण अभिव्यक्ति के साथ यह नया परिवर्तन निश्चय ही सोवियत परिधि मे काफी व्यग्रता तथा उलझन पैदा करनेवाला था। ट्रियस्ट का इटालियन साम्यवादी नेता विट्टोरिओ विडाली, जिसके समाचारपत्र ने उसके ये भाव उगल दिये कि टिटो सम्बन्धी ख्रुशेव की नीति ने हमारी पार्टी को उसी तरह झकझोर डाला जिस प्रकार ऐड्रियाटिक की हवा वृक्षो को झकझोर डालती है, औरो के सम्बन्ध मे इसी तरह उलटासीधा बोल रहा था।

यह सभव है कि टिटो की सफलता, अनपेक्षित ढग से मास्को के प्रति अन्य पूर्वी योरोपीय दृष्टिकोण मे कुछ परिवर्तन कर दे। उनमे से कुछ उस व्यापक मार्क्सवादी परम्परा की ओर मुडने के लिए आकर्षित हो सकते है, जिसकी व्याख्या यूगोस्लाविया के अत्यन्त प्रभावशाली सिद्धान्तवादी एडवर्ड कार्डेल्ज ने की थी। अक्तूबर, १९५४ मे ओस्लो मे स्कैन्डिनेविया के सोशल डेमोक्रेटो (Social Democrats) के समक्ष भाषण करते हुए कार्डेल्ज ने राज्य के नौकरशाही वाले रूप पर चोट की और क्रान्ति को विदेशो में हिंसात्मक ढग से बढाने के मास्को के पुराने सिद्धान्त का खण्डन किया।

उसने कहा, "क्रान्तिवादी तथा विकासवादी समाजवाद के बीच के झगडे को इतिहास ने दोनो को स्वीकार करके मिटा दिया।" पिछलग्गुओ पर मास्को के नियत्रण के सारे आधार को इससे कडे शब्दो मे अस्वीकार नही किया जा सकता।

× × ×

१९५३ मे जो नयी सोवियत चाले शुरू हुई और जो जुलाई, १९५५ मे जिनेवा के शीर्षस्थ सम्मेलन मे समाप्त हुई, उनका चाहे जो भी अन्तिम अर्थ हो, अमरीका तथा उसके अधिकाश अटलाटिक सहयोगियो ने धोखे के खतरे को समझ लिया है और अब वे फिर कभी भी अपनी सेनाओ को मनमाने ढग से विघटित नही करेगे, जबकि सोवियत नेता शान्ति की बाते करते है। साथ

ही पश्चिमी नीति-निर्माताओ के लिए, सोवियत चालो मे अत्यन्त महत्वपूर्ण तथा दीर्घकालिन परिवर्तनो की सभावनाओ की उपेक्षा करना भी घातक होगा। अगले दशक के भाग्य-निर्माण मे यह एक प्रमुख तत्व हो सकता है।

२४ अक्तूबर, १९५७ को रूसीक्रान्ति चालीस वर्ष पुरानी हो जायेगी और अधेड अवस्था को पहुँच जायेगी। अधेडावस्था प्राय रूढिवादिता को अपने साथ लाती है और उसमे अधिकाधिक सम्मान पाने की इच्छा रहती है। साम्यवादी राष्ट्र मे भी, समाज के अनेक प्रादेशिक, सास्कृतिक तथा कुशल तत्वो मे व्याप्त आन्तरिक मतभेदो पर इसका और अधिक प्रभाव पड सकता है।

आज सोवियत सघ मे ही, आय-वितरण, दल मे पद, अर्धनिष्णात श्रमिक वर्ग मे सामाजिक पुरस्कार, मध्यवर्ती तथा उच्चतम प्रबध के प्रश्न पर तीव्र मतभेद है और सेना, जिसके प्रभाव को १९३७ के शुद्धीकरण तथा युद्ध-कालीन विजयो के बाद स्तालिन ने व्यवस्थित रूप से कम किया, स्तालिन के बाद के युग मे बहुत बढा दी गयी है। इसी प्रकार के विभाजन उद्योग, खान, यातायात और सचार मे भी पाये जाते है। १९५५ के मध्य-ग्रीष्म मे अमरीकी मिडवैस्ट मे जिन सोवियत किसान प्रतिनिधियो का स्वागत किया गया था, उनकी उच्चतर जीवन-स्तर की भूख तीव्र हो गयी होगी। सघर्ष की अन्य रेखाएँ नागरिक तथा ग्रामीण अर्थव्यवस्था तथा राष्ट्रीय और सास्कृतिक भावनाओ को पृथक् कर रही है।

रूस से प्राप्त समाचारो मे सोवियत नागरिको के जीवन की असली झाँकियाँ शायद ही कभी मिलती हो। अमरीकी किसानो को, जो १९५५ की कृषि-विनिमय की योजना के अन्तर्गत रूस गये थे, वहाँ की वास्तविक दशाओ की शायद उतनी ही अच्छी जानकारी हुई, जितनी अभी हाल मे गये हुए पर्यवेक्षको को हुई थी। पश्चिमी प्रेक्षको की सूचनाओ से यह मालूम होता है कि रूस मे साधारण मनुष्य का जीवन निरन्तर सघर्षमय है और उसे अधिक घण्टो तक कार्य करना पडता है, अत्यन्त महँगा खाद्यान्न खरीदना पडता है और उसका पारिवारिक जीवन अभी तक युद्ध की विभीषिका से पुन व्यवस्थित नही हो पाया है। शहरो मे दरिद्रता तथा भीड की जीवनदशा, सफाई की आदिकालीन सुविधाएँ, खरीददारो को थका देने वाली पक्ति मे खडे होने की पद्धति, इन सबने मिलकर वहा जीवन मे एक अरुचि पैदा कर दी है; हाँ, मद्यपान के उत्साह ने इस अरुचि को कुछ कम अवश्य कर दिया है।

उपभोक्ता के सामानो में वृद्धि के लिए मालेनकोव के वायदे, सैनिक प्रतिरक्षा के भारी दबाव और विशेषकर विमान-निर्माण के जबर्दस्त कार्यक्रम के कारण, जिसके परिणामो ने हमारे विशेषज्ञों को भी भौचक्का और आश्चर्य-चकित कर दिया है, झूठे पड़े गये हैं। कहा जाता है कि १९५५ मे उपभोक्ता माल-उत्पादन में केवल ५ प्रतिशत की वृद्धि हुई, जो युद्ध के बाद किसी भी वर्ष से कम ही है। रूस की आबादी प्रतिवर्ष १½ प्रतिशत के हिसाब से बढ़ रही है, जिसका अर्थ यह है कि शीतयुद्ध की परिस्थितियो मे ठोस सुधार की आशा नही की जा सकती।

स्तालिन की मृत्य के बाद इस मानवीय पक्षको विशेष रूप से सार्थक कर देनेवाले अनेक परिवर्त्तन देखे गये हैं। सवाददाता तथा दर्शक, जो कुछ वर्षों के बाद रूस लौटे हैं, परिवर्तनो से अधिकतर सहमत है। उनका कहना है कि प्रारम्भिक यात्राओ मे उन्हे सर्वदा यह महसूस होता रहा कि वे पहले साम्य-वादियो से और बाद मे रूसियो से बाते कर रहे है, परन्तु अब उन्हे ऐसा लगता है कि वे पहले रूसियो से बाते कर रहे है और युद्ध के बाद किसी भी समय से अब उनसे बाते करना अधिक आसान है।

इस बात से भी वे काफी प्रभावित हुए कि जिन रूसियो से उन्होने बातचीत की, उनमे से बहुत कम राजनीतिक मामलो से चिन्तित थे। इसके बजाय, जैसा कि 'लन्दन टाइम्स' के एक सवाददाता ने हाल ही मे लिखा था, वे भी उन्ही चीजो की चर्चा कर रहे है, जिनकी सभी जगह, सभी लोग करते है "दफ्तर की, बच्चो की, शिक्षा की, लडकी के प्रेमी की, छुटि्टयों मे कही जाने की, टेलीविजन खरीदने की या कल कसाई गोस्त लायेगा या नही, इत्यादि।"

इस सवाददाता ने आगे लिखा, "जबकि राजनीतिक दिलचस्पी का यह अभाव उत्साही लोगो को पसन्द न था, फिर भी किसी को भी यह आभास होता था कि रूस मे क्रान्ति का ज्वार फिलहाल समाप्त हो गया है, शायद बहुत समय के लिए और वर्षों के तूफान के बाद समाज ने अपनी गति के साथ, अपने स्थापित पदो तथा अधिकारो के साथ, अपनी नयी और पुरानी परम्पराओ के साथ और अपनी बढती हुई सुविधाओ के साथ एक सुस्थिर रूप ग्रहण कर लिया है।

आजकल सोवियत सघ मे उनलोगो ने, जिन्होने वहाँ की यथातथ्यता पर दाँव लगा रखा है, हो सकता है वहाँ की कम साहसपूर्ण परराष्ट्रीय नीति पर भी

सानुपात दाँव लगा दिया हो। इसका अर्थ यह नही है कि सोवियत नीति किसी बढने हुए मर्यादावादी साँचे मे ढाली जा सकती है। इसका निश्चित रूप से यही अर्थ है कि बढती हुई नरमी की चाले, यद्यपि वे कभी-कभी ही दिखाई देती है, बहुत सभव है कि अच्छी तरह से स्पष्ट न हो। कुछ समय के लिए नरमी हो सकती है, फिर अचानक कठोरता और फिर बाद मे वही मुस्कानों और रियायतो का युग आ सकता है।

बदलती हुई चालो की ऐसी नीति के लिए क्या सोवियत सरकारी सिद्धान्त में आमूल सशोधन की आवश्यकता होगी ? आवश्यक रूप से नही। जैसा कि हम देख चुके है, यह बार-बार सिद्ध हो चुका है कि साम्यवादी मस्तिष्क एक साथ ही विरोधी विचारो को ग्रहण करते है और साथ ही बात एक तरह से कहने तथा आचरण दूसरी प्रकार से करने मे भी समर्थ हैं।

व्यावहारिक साम्यवाद की दोहरी चाल से सोचनेवाली सामर्थ्य उन पर्यवेक्षकों को आश्चर्य मे डाल देनेवाली होती है, जो तथ्य, तर्क और युक्ति मे प्रशिक्षित होते है। हम लोग यदि कोई विचार जाँचने पर गलत, झूठा या अपर्याप्त साबित होता पाते है, तो या तो हम उसे फिर से जाँचते है या फिर उसे छोड देते है। दूसरी ओर साम्यवादी किसी भी प्रमाण के सही होने पर भी उसे ठुकरा सकता है, यदि वह उसके पूर्व विचारित सिद्धान्त से मेल नही खाता।

"दोहरी चाल से सोचने" की शक्ति साम्यवादी सैद्धान्तिक को अपनी परिभाषा के अनुसार अपनी समस्या को हल कर देने के योग्य बना देती है। इस तरह चूँकि साम्यवादी नेता साम्यवादी परिभाषा से अपने अथवा अन्य लोगो को नही दबा सकते अथवा आक्रमण नही कर सकते, इसलिए जो आलोचक यह आरोप लगाते है कि वे यही करते है, वे अवश्य ही द्वेषपूर्ण, पूँजीवादी, बदनाम करने वाले लोग होगे। इस प्रकार सरकारी सोवियत सिद्धान्तवादिता इस तथ्य में दोहरी चाल नही समझती कि दूसरे के आक्रमण की निन्दा करते हुए रूस ने १९४० तथा १९४८ के बीच अपनी सीमाओ पर प्रत्येक योरोपीय राष्ट्र से या तो कुछ हडप लिया या उन्हे प्रादेशिक रियायते देने के लिए मजबूर कर दिया था।

ब्रिटेन और अमरीका मे पर्यवेक्षक अनजाने ही सोवियत विचारधारा मे एक ऐसा तर्क लगा सकते है जो पश्चिमी पर्यवेक्षको की दृष्टि से तर्क ही नही। साम्यवादी नेता ऐसी बाते करते है मानो वे शान्ति और साम्यवादी शक्ति

का सीमा-विस्तार, दोनों ही एक साथ चाहते है। क्या वे अपने सिद्धान्त के प्रति वफादार रह सकते है और इन विपर्ययो का सन्तुलन कर सकते है ? साम्यवादियो की यह अपूर्व 'दोहरी चाल से सोचने की शक्ति' हमारी शान्ति की आशाओ पर क्या प्रभाव डालेगी ? क्या विश्व की स्थिरता के लिए आवश्यक होगा कि कम्यूनिस्ट सिद्धान्तवादी अपने सूक्ष्म आक्रमक सिद्धान्तो का परित्याग करे ?

सार्वजनिक रूप से परित्याग सभव नही है। इसके अतिरिक्त अधिकृत मार्क्सवादी सिद्धान्त के कुछ अशो का औपचारिक त्याग भी आवश्यक नही है, यद्यपि इससे कुछ काम बन सकता है। साम्यवाद के कूटनीतिक विरोधियों को यह समझ लेना चाहिए कि यद्यपि "दोहरी चाल से सोचने' की वृत्ति उनमे गहराई से जमी हुई है, फिर भी साम्यवादियो के 'कहने' से 'करना' अधिक महत्वपूर्ण है। जैसा कि अन्य सिद्धान्तो के साथ है, उदाहरण के लिए इस्लाम धर्म के "अनिवार्य" जेहाद (धर्म-युद्ध) मे, साम्यवाद के कुछ मौलिक नियमो को केवल मौखिक श्रद्धा प्राप्त है, परन्तु व्यवहार मे उन्हे काट दिया जाता है और भुला दिया जाता है।

इस बीच असाम्यवादी कूटनीतिज्ञो को चाहिए कि वे साम्यवादी नेताओ मे से 'दोहरी चाल से सोचने' की उन विचारधाराओ को निकालने का प्रयत्न करे जिनका प्रभाव वास्तव मे उनकी नीति पर पडता है। उनको मौखिक के बजाय सार्थक विकल्पो के स्पष्ट निर्वाचन की ओर प्रेरित करें। यद्यपि निश्चित रूप से नही कहा जा सकता, फिर भी अभी जिन प्रमाणो की हमने परीक्षा की है, उनके आधार पर हमारे पास इस परिणाम पर पहुँचने के कारण है कि सोवियत सघ के नये नेता शान्ति और सगठन का युग चाहते है। मालेनकोव के अधीन उन्होने उपभोक्ता सामग्रियो की माँग पेश की। बुलगानिन के अधीन उन्होने अपने उसी स्वार्थ को छोड देने की क्षमता प्रदर्शित की है, जिससे जबर्दस्त वायु-सेना का कार्यक्रम संचालित हो सके और जिससे यह साबित हो सके कि विदेशो मे विपरीत अफवाहों के बावजूद सोवियत अर्थव्यवस्था 'टूटे पैरो' पर नही खडी है।

इस लचीलेपन को प्रदर्शित करने के बाद, जुलाई, १९५५ मे सोवियत नेता जनेवा गये और शान्ति के लिए प्रतिज्ञाएँ की। 'दोहरी चालसे सोचने' की विचारधारा से दबे होने पर भी सोवियत नेताओ के सामने ठोस कार्य के द्वारा अपनी शान्ति की घोषणाओं को पूरा करने का मौका था।

शीतयुद्ध के दबाव मे कमी, कोमिनफॉर्म की समाप्ति और नि शस्त्रीकरण पर बातचीत करने की सच्ची इच्छा तथा मतभेद की मौजूदा बातो को ठीक कर लेना, ऐसी बाते है, जो सोवियत स्थिति के उक्त अनुमान से सर्वथा मेल खाती है। इसके अलावा, यह १९२० से लेकर १९३९ के हिटलर-स्तालिन सन्धि तक, जिससे ससार को यह मालूम हुआ कि रूस एक अच्छा और शान्ति-प्रिय पडोसी है और जिसके विचार मौलिक होते हुए भी अधिकाश में अपने ही देश मे उपयुक्त होने के लिए है, रूसी चालो के अनुसार ही है।

नि शस्त्रीकरण मे सोवियत सघ की दिलचस्पी यदि सच्ची साबित होती है, तो हमें याद रखना चाहिए कि रूस मे नि·शस्त्रीकरण के प्रस्ताव, साम्यवादी सरकार के वर्षों पूर्व की एक दीर्घकालीन कूटनीतिक परम्परा के रूप मे है। १८१६ मे जार अलेक्जैण्डर प्रथम ने लॉर्ड केसलरे (Caselereagh) के समक्ष, बडी शक्तियों द्वारा निर्मित हर प्रकार की सैनिक शक्ति को एक साथ ही कम करने का सुझाव रखा। १८६८ मे, अलेक्जैण्डर द्वितीय ने विस्फोटक गोलो के प्रयोग पर प्रतिबन्ध लगाने का प्रस्ताव रखा था और ६ वर्ष बाद मे ब्रुसेल्स मे यह सुझाव रखा कि जो अस्त्र अनावश्यक कष्ट पैदा करते है, उन पर प्रतिबन्ध लगा देना चाहिए। १८९९ में निकोलस द्वितीय ने हेग सम्मेलन बुलाकर शान्ति निर्माता के रूप में अन्तरराष्ट्रीय ख्याति प्राप्त कर ली।

१९१६ मे सत्ता प्राप्त करने के पूर्व लेनिन ने कहा था कि नि शस्त्रीकरण तभी सभव है, जब सर्वहारा वर्ग मध्यवित्तीय वर्ग को नि शस्त्र कर देगा, इसके पहले कदापि नहीं। फिर भी, १९२७ मे राष्ट्रसघ (लीग आव नेशन्स) के समक्ष मास्को ने बड़े नाटकीय ढग से सभी भूसेना, नौसेना तथा वायुसेना की बिलकुल समाप्ति, वर्तमान सभी अस्त्रो, युद्धपोतो, वायुयानो तथा अस्त्र-शस्त्र बनाने वाले कारखानो का नाश, सभी प्रकार के सैनिक प्रशिक्षण का अन्त और इस कार्यक्रम को कार्यान्वित करने के लिए एक अन्तरराष्ट्रीय सस्था के निर्माण का प्रस्ताव रखा।

रूसी नेताओं ने १९५५ के जनेवा-सम्मेलन और उसके आगे के ससार की ओर देख कर सोचा होगा कि इस परम्परा की पुनरावृत्ति के लिए समय आया या नही। इस ढील से, अनेक लाभों के अतिरिक्त जिनकी मै चर्चा कर चुका हूँ, लाल सेना की उत्साहहीन और जबर्दस्त धमकी तथा व्यापक रूप से अविश्वसनीय तथा असम्मानित कोमिन्फार्म द्वारा सचालित प्राय नृशस देशद्रोही कार्य की अपेक्षा अत्यन्त महत्वपूर्ण मध्य-

विश्व की जनता को आकृष्ट करने के लिए आधार मिल गया होगा।

सोवियत नेता सदा बचाव की काफी गुजाइश रख कर कार्य करते है। इस प्रकार की लचीली नीति न केवल उनके बचाव की गुजाइश को बढायेगी, बल्कि कुछ लोगो को तो ऐसा भी प्रतीत होगा कि इससे मूल साम्यवादी लक्ष्यो को प्राप्त करने की सभावनाएँ भी बढ जायेगी। अपने को खतरे मे डालकर हम अमरीकी साम्यवादी चुनौती की बढती वास्तविकताओ की उपेक्षा कर सकते है, अपनी इच्छा के बिलकुल विपरीत हम अपने आपको ऐसी स्थिति मे पाते है, जहाँ से हम क्रेमलिन का प्रभावशाली ढग से मुकाबला कर सकते है, चाहे वह आक्रमणकारी विस्तार की मनोदशा मे हो अथवा प्रति-स्पर्धात्मक सह-अस्तित्व की।

आज भी कोई नही जानता कि इन राष्ट्रों तथा विचारो के बीच प्रतियोगिता के कितने विभिन्न रूप होगे, परन्तु यह अत्यन्त असभव है कि औद्योगिक दृष्टि से विकसित देशो मे सर्वहारा– क्रान्ति की विशिष्ट मार्क्सवादी पद्धति पर मुख्य संघर्ष होगा।

सोवियत नेता स्वय इस बात को स्वीकार करते मालूम होते है। "लेनिनवाद की नीव" विषय पर १९२४ में व्याख्यान देते हुए स्तालिन ने कहा था कि विश्व दो शिविरो मे विभक्त है; एक शिविर है मुट्ठीभर सभ्य राष्ट्रो का, जिनके पास पूँजी है और जो ससार की अधिकाश आबादी का शोषण करते है और दूसरा शिविर है उपनिवेशों तथा पराधीन देशो के उन शोषित तथा उत्पीडित लोगो का, जो बहुमत में है।" उसने कहा कि साम्यवादियो को इस दूसरे शिविर का निश्चय ही नेतृत्व करना चाहिए।

अपेक्षाकृत अधिक समृद्ध अटलाटिक राष्ट्र यह जानते है कि रूस की गुप्त पुलिस तथा बन्दी-शिविर, मार्क्स की इस कल्पना के उसके अनुयायी सफलताएँ प्राप्त करेगे, उपहास है। परन्तु अर्धविकसित राष्ट्रो का विशाल बहुमत, जो स्तालिन के दिमाग मे था, सोवियत सघ की सफलताओं के सम्बन्ध में अपने अनुमान मे खतरनाक अदूरदर्शिता से पीडित था और यह अदूरदर्शिता मानवीय पीडा की अपनी विकट समस्याओ के दबाव से पैदा हुई है।

एशिया, अफ्रीका तथा दक्षिणी अमरीका के करोडों लोग प्राय अपने दुखो से छुटकारा पाने के लिए किसी भी परिवर्तन के तत्काल स्वागत के अतिरिक्त और कुछ सोच ही नही सकते। सोवियत सघ के बारे में वे यह जरूर देखते हैं कि २० करोड़ लोगों का वह देश, जो पिछडा हुआ था, आज एक

ही पीढी में बढ कर बीसवी शताब्दी के उद्योगवाद की प्रथम श्रेणी मे पहुँच गया है। वे एक विश्व-राजनीतिक दल को देखते है, जो जातिगत भेदभाव का विरोध करता है, मानवता के लिए चिन्ता व्यक्त करता है तथा भूमि, रोटी और शान्ति का वादा करता है। वे यही चीजे देखते है और प्रभावित होते है।

जिन अन्य आश्वासनो, द्रुत विकास के दृष्टान्त तथा अन्य क्रान्तियो को अधिकाश मानव-समाज देखेगा, वे ही न केवल समस्त अर्धविकसित महाद्वीपो के भाग्यनिर्णायक बनेगे बल्कि उन दो महान् राष्ट्रो के, जो आज अणु-गतिरोध मे उलझे हुए है, भाग्य का फैसला भी करेगे।

तीसरा भाग

चीनी क्रान्ति रास्ता भूल गयी

चीन—वह एक दैत्य पड़ा सो रहा है। उसको सोने दो, क्योंकि जब वह उठेगा तो दुनिया को हिला डालेगा।

—नैपोलियन बोनापार्ट

नवाँ प्रकरण

चीनी प्रस्तावना

द्वितीय विश्व-युद्ध के बाद के अशान्तिपूर्ण दशक मे, जब हमारी आशाएँ चूरचूर हो गयी और अपेक्षाएँ असत्य सिद्ध हुईं तो सोवियत यूनियन के प्रति अमरीकी रुख मे अचानक परिवर्तन हुआ, परन्तु रूसी व्यवहार पर क्षोभ, इतिहास की कोई नयी घटना नही थी।

साम्यवादी चीन का उद्भव हुआ। १९४५ मे अमरीकावासी सम्भवत इसके लिए तैयार नहीं थे, जिस प्रकार वे अणु-विभाजन के लिए तैयार नही थे। तथापि, रूस की भाँति अपनी विशाल जन-सख्या तथा साधन-स्रोत-सम्पत्ति के कारण चीन के भाग्य मे विश्व के मामलो में प्रमुख भाग लेना बदा था।

थोडे से दूरदर्शी लोगो ने इसे स्पष्ट रूपसे समझा। जैसे ही इतिहास ने बीसवीं शताब्दी मे प्रवेश किया, एक अमरीकी विदेश-मत्री ने घोषणा की "विश्व की शान्ति चीन पर आश्रित है और जो कोई चीन को समझ सकेगा, उसी के हाथ में आगामी पाँच शताब्दियो तक विश्व-राजनीति की कुजी होगी।" पिछली पाँच शताब्दियो के "नैसर्गिक साम्राज्य" के साथ अपने स्वय के अनुभवो ने, योरोप और अमरीका की आत्मतुष्ट दुनिया को कुछ ऐसा बना दिया था कि उसने जान हे की चेतावनी को मिश्रित उदासीनता और अविश्वास के साथ सुना। अभी हाल तक वही निषेधात्मक प्रतिक्रिया हम मे दृढता से बनी रही।

कुछ ईसाई धर्म-प्रचारको, व्यापारियो तथा मुट्ठी भर विदेश-सेवाके पदाधिकारियो के अतिरिक्त, हे के समय के कुछ ही अमरीकियो को चीन के बारे मे कुछ मालूम था। यह ठीक है कि अधिकाश हाईस्कूल के विद्यार्थी जानते है कि मानवजाति का पाँचवाँ भाग चीन मे है और उनकी सभ्यता दो या तीन प्राचीनतम सभ्यताओ मे से एक है, फिर भी कुछ ही लोगो को ऐसा लगा कि चीन कभी विश्व के मामलो मे विशेष महत्वपूर्ण प्रभाव डाल सकेगा।

चीनी सभ्यता की परम्परागत निष्क्रिय विशेषताओं के बारे मे जो लोग पढ चुके हैं और जो चीन पर विदेशी आक्रमणकारियो की लम्बी शृखला से

परिचित है, उनके लिए हैं की भविष्यवाणी और भी सोच-विचार में डाल देने वाली सिद्ध हुई। चीनी इतिहास के अनेक विद्यार्थी, जिन्हे इस बात का विश्वास होगया था कि ताग राज्य-वश की विचक्षणता को न तो कोई पा सका है और न पा सकेगा, यह निष्कर्ष निकालते है कि एक हजार वर्ष की इस सफलता से प्रेरित आत्मतुष्टि का अचानक सशक्त परिवर्तनो मे प्रस्फुटन सम्भव नही है। (Tang) ताग-काल के सबध मे जैसा कि एक टीकाकार ने कहा है, " वे पहले ही से क्लान्त और निर्भ्रान्ति थे। सब कुछ अनुभव कर लेने वाले लोगो की शिथिलता से पस्त हो चुके थे, सभी भौतिक पदार्थों की निस्सारता से, परिचित लोगो के अवसाद से जर्जरित थे। उनके लिए सभो प्रश्नो के समाधान हो चुके है; उन्होंने ससार की पदार्थ योजना में अपना समुचित स्थान प्राप्त कर लिया है, उनके लिए और कुछ नहीं हो सकता, उनकी अभी इच्छाएँ तो है, किन्तु महत्वाकाक्षाएँ नहीं।"

प्राचीन चीन अपने को मध्य राज्य (मिडिल किंग्डम) कहा करता था और उसे विश्वास था कि वह विश्व-सभ्यता का प्रकाश-विकीरण केन्द्र है। कनफूसियन दर्शन के राजनीतिक तथा सामाजिक कल्पनाओं में तल्लीन वह परम्पराओ का सम्मान करता था और प्रयोगो तथा नवीनताओं से घृणा करता था। साक्षरता और उच्चतम ज्ञान सत्ताधिकार तथा शासन-क्षमता के सूचक थे। पारिवारिक स्वार्थ, जिनकी रक्षा उच्चतम सद्गुणो की भाँति को जाती थी, पक्षपात तथा सगठित भ्रष्टाचार के द्वारा सरकार का निर्माण करते थे और राष्ट्रीय चेतना को सर्वथा निरुत्साहित करते थे।

प्राचीन दर्शनशास्त्रो द्वारा व्यवस्थित स्पष्ट वर्ग चेतना द्वारा सामाजिक प्रगति को उसी तरह निरुत्साहित किया गया। कनफ्यूसिअस ने कहा था—"शिष्टता साधारण व्यक्तियो के साथ नही बरती जाती और प्रभुओं (लॉर्ड्स) को दण्ड नही दिया जाता।" उसके अनुयायी मैनशिअस ने तर्क पेश किया, "भद्रजनो के बिना साधारण लोगो पर शासन करने के लिए कोई न रहेगा और साधारण आदमियो के बिना भद्र जनो को कोई खिलानेवाला नही रहेगा।"

१९४३ तक च्याग काई शेक ने इस पैत्रिक विचारधारा के अत्यधिक आदर्शवादी तथा मोहक सद्गुणो की अपने देशवासियो के लिए सिफारिश की। च्याग ने लिखा कि कनफ्यूसिअस द्वारा विकसित और मैनोशिअस द्वारा विस्तृत और प्रचारित चीन का जीवन-दर्शन स्वत एक उच्च प्रणाली के रूप मे परिणत हो गया जो ससार के किसी भी अन्य दर्शन से श्रेष्ठ है।

यदि चीन के उत्सर्ग और सापेक्षवाद के प्राचीन गुण क्रान्ति के निकृष्ट बीज थे, तो वे आत्मरक्षा के मामलो मे भी उतने ही बेकार थे। गत हजारो वर्षो मे आधे से अधिक समय तक उत्तरी चीन पर विदेशी आक्रमणकारियो का शासन रहा है। दो बार समस्त चीन को रौद डाला गया था।

अपने पितामह चगेजखान के एशिया और अधिकाश योरोप मे साम्राज्य स्थापित कर चुकने के बाद १३ वी शताब्दी मे कुबलाई खा के नेतृत्व मे मगोल सारे चीन पर छा गये। यह साम्राज्य उपने उत्कर्ष-काल मे इतना सुव्यवस्थित था कि एक चीनी इतिहासकार ने प्रशसा करते हुए लिखा, "एक कुमारी कन्या अकेली हाथ मे स्वर्ण-पात्र लेकर मगोल साम्राज्य के इस छोर से उस छोर तक निर्विघ्न जा सकती थी।"

१७ वी शताब्दी के मध्य मे मिग राज्यवश उत्तर से मचू आक्रमणकारियो द्वारा पदाक्रान्त हुआ। मचू, जो प्रारम्भ मे एक छोटा सा कुल था, किस प्रकार मध्यवर्ती मैदानो को जीत सकने की शक्ति एकत्र कर सका, च्याग काई शेक ने उसका इन शब्दो मे वर्णन किया है, जो स्वय उसके पतन का आशिक कारण बना, "इसका कारण यह था कि मिग राज्यवश के अन्त मे राजनीति भ्रष्ट हो चुकी थी, आपस मे मतभेद थे, राजनीतिक दल झगडते रहते थे, डाकेजनी फैली हुई थी, हिजडों ने सत्ता हथिया ली थी और सेनाधिकारी आज्ञा का पालन नही करते थे।"

यह विचित्र समानान्तर स्थिति आगे भी जारी रही। मञ्चुओं से हार जाने पर च्याग की भाँति १६६१ मे मिग राज्यवश के बचे-खुचे लोग फारमोसा चले गये जहाँ से एक पीढी तक और, उन्होने मुख्य भूमि के विरुद्ध सघर्ष जारी रखा।

मञ्चुओ के अधिकार मे चीन सबसे बिलकुल अलग रह कर दो शताब्दियो तक बराबर विकसित होता रहा। अपनी सीमा पर 'बर्बरो' को मिलाने या मिटाने के अतिरिक्त चीन का बाहरी दुनिया से कोई सम्बन्ध नही रहा। इस अलगाव ने चीनियो के दिमाग मे यह बात भर दी कि वे ही विश्व-राज्य है और उनका सम्राट सर्वसत्ताप्राप्त 'स्वर्ग-पुत्र' है।

मञ्चू सम्राटो मे से दो सम्राट, कान से और चियान लग (Kan Hse and Chien Lung) महान ऐतिहासिक शासक थे, जिन्होने बीच के १४ वर्षों को छोडकर १६६२ से १७९६ तक शासन किया। दोनो ही असाधारण प्रतिभासम्पन्न प्रशासक थे। उनकी प्रजा का उन्हे अलौकिक पुरुष कहना

उचित ही था।

उदाहरण के लिए, ब्रिटिश सरकार ने १७९२ मे जब एक व्यापारिक मण्डल चीन भेजा, तब चियान लग ने चीनी सभ्यता की उपलब्धियो से लाभान्वित होने की विनम्र इच्छा के लिए जार्ज तृतीय को अभिनन्दन करते हुए एक सन्देश भेजा। सदेश का अतिम भाग इस प्रकार था—'हे राजन्, आपको यही शोभा देता है कि आप भविष्य में और अधिक भक्ति तथा निष्ठा का प्रदर्शन करे, जिससे हमारे राजसिंहासन के प्रति आपकी चिरन्तन अधीनता आपकी शान्ति और समृद्धि को सुरक्षित रख सके।.. भयभीत हो हमारी आज्ञा पालन करे और किसी प्रकार की असवाधानी न करे।'

मञ्चू शासन के महान् युगों का, भ्रष्टाचार और न्यायालय के पक्षपात के फलस्वरूप सामान्य पतन के कारण १८ वी शताब्दी में अन्त हो गया। १८४० के दशक मे जब पश्चिम ने ब्रिटिश युद्धपोतो के साथ ललकारा तो मञ्चुओं ने शीघ्र ही आत्मसमर्पण कर दिया।

यह सैनिक पराजय से भी कही अधिक था। सरकार की प्रतिष्ठा छिन्नभिन्न हो गयी और उसकी कमजोरियाँ सब की निगाहो के सामने आ गयी। सम्राट नें न केवल विदेशी बर्बरों को निकालने मे अपनी असमर्थता दिखायी, बल्कि चीनी तथा ब्रिटिश व्यापारियों के अफीम पर लगाये बंधनो को तोडने के षडयत्र को भी वह न रोक सकी।

१८४२ में अफीम-युद्ध के बाद चीन ने ब्रिटेन के साथ अपनी सधि में हाग-कांग द्वीप को दे दिया और व्यापार के लिए पाँच बन्दरगाह खोल दिये। चीन ने, जो अफीम नष्ट हो गयी थी उसके लिए मुआवजा देना स्वीकार किया और बाद में इसके नियमित आयात को कानूनी बना दिया। व्यापार के ये नये स्थल शीघ्र ही अनेक प्रकार की विशेष सुविधाओं से भर उठे और जब ब्रिटेन को सीमित चीनी तट-कर एकत्र करने का अधिकार प्राप्त हो गया और चीन में रहने के लिए वहाँ के कानूनी प्रतिबन्धो से छूट मिल गयी तो संयुक्त राज्य अमरीका, फ्रान्स और रूस भी इसी प्रकार की सुविधाओं की माँग करने लगे।

सयुक्त राज्य अमरीका ने सर्वप्रथम चीन के साथ एक ऐसी सधि तैयार की जिसके अनुसार यदि चीन किसी राष्ट्र को कोई अधिक सुविधा देता, तो वह सुविधा सयुक्त राज्य को भी तुरन्त मिलती। १८६० में, जब सम्राट ने, एक नयी संधि को, जिसके अनुसार राजधानी में विदेशी राजदूतों के लिए

निवासस्थान प्रदान करना था, स्वीकार करने में आनाकानी की, तो इग्लैण्ड और फ्रान्स की फौजो ने टियण्टसीन (Tieentsin) से पैकिंग की ओर कूच कर दिया। यहाँ उन्होने चीन के एक अत्यन्त प्रसिद्ध महल तथा अमूल्य कला-वस्तुओ को भी विनष्ट कर दिया। इस प्रकार परेशान सम्राट ने शीघ्र ही स्वीकृति दे दी।

व्यापारिक सुविधाओ के लिए इस सिद्धान्तविहीन सघर्ष ने पश्चिम को चीन के सम्पर्क मे ला दिया। आज भी उसकी प्रतिक्रियाएँ हमारे साथ है और वर्षों तक हमारे साथ रहेगी।

दुर्भाग्य से पश्चिमी सैन्य शक्ति के अधीन रहने की अवधि मे ईसाई धर्म भी अनेक चीनियो के गले पड गया। अन्य स्वीकृत सुविधाओ मे एक यह भी थी कि विदेशी ईसाई धर्म प्रचारकों को अपने धर्म के निर्विरोध प्रचार और प्रसार का आश्वासन दिया गया।

अधिकाश मिशनरियो की दृष्टि मे इस व्यवस्था का इससे अधिक महत्व नही है कि उन्हे उचित सरक्षण का आश्वासन मिला। इसके लिए वे उसी समय से प्रयत्न कर रहे थे जबकि महान पादरी 'इण्डीज का देवदूत' फ्रासिस जेवियर, तीन शताब्दी पूर्व 'निषिद्ध राज्य' मे प्रवेश का व्यर्थ प्रयत्न करने के बाद, चीनी तट से परे पहाडी सान्सियन द्वीप में मर गया था। किन्तु अधिकाश चीनी लोगो की निगाहो मे ये धर्म-प्रचार सबन्धी सुविधाएँ, जो एक विदेशी सैनिक तथा आर्थिक शक्ति द्वारा एक असहाय सरकार से छीन ली गयी थी, स्वयं उनके लिए तथा उनकी युगो प्राचीन परम्पराओ के लिए भी अपमान के रूप मे थी।

जब ये सुविधाएँ प्राय चीन के सरकारी और पारिवारिक अधिकार से लेकर धर्मपरिवर्तित चीनी ईसाइयो के विशेष सरक्षण के लिए प्रदान की गयी, तब विरोध भीतर ही भीतर सुलगने लगा। इस प्रकार ईसाई धर्म प्रचारक, जिनमे से अधिकाश बलिदान और आदर्शवाद की सर्वश्रेष्ठ ईसाई परम्पराओ से प्रेरित थे, धीरे धीरे बढते हुए अविश्वास के बोझ के नीचे काम करने लगे।

जब १८४० के दशक मे पश्चिम ने चीन मे प्रवेश किया, तब चीनी समाज साक्षर शासक वर्ग तथा निरक्षर किसानो मे विभक्त था। किसान रोजमर्रा की कठिनाइयो के आदी हो गये थे और किसी तरह जीवन-निर्वाह की क्रूरताओ के अनुकूल बन गये थे। "हवा ही मेरा वस्त्र, बर्फ मेरा कम्बल, और मेह मेरा पेय था।" यह एक पुरानी यथार्थवादी चीनी कहावत है।

पश्चिम के अनधिकार प्रवेश ने चीनी समाज की गहरी मान्यताओ को जड से हिला दिया। पश्चिम के सैनिक तथा आर्थिक आक्रमण ने चीन की विनम्र पैंकिग सरकार को न केवल जनता की निगाहो से गिरा दिया, बल्कि पश्चिमी विचारों के धीमे विनाश-चक्र ने चीनी जीवन के मूल तत्व को ही नष्ट करना शुरू कर दिया।

पश्चिम से सम्पर्क के कारण चीनियों मे राष्ट्रीयता की एक नयी भावना पैदा हुई, जिसने सधियों के विरुद्ध तीव्र क्षोभ बढाया। इस प्रकार अफीम-युद्ध के कुछ ही वर्षों के अन्दर चीनी परम्परा में एक नया सामाजिक जोश काम करने लगा। यद्यपि उस समय पर्यवेक्षक कुछ भी भविष्यवाणी नही कर सकते थे, फिरभी चीन मे परिवर्तन के एक नये युग का प्रारम्भ हो चुका था जिसको पश्चिम ने ही पैदा किया था, किन्तु, अन्त में जिसे वह नियंत्रण में नही रख सका।

+ + +

माओत्से-तुग की लाल सेनाओं द्वारा च्यागकाई शेक को फारमोसा मे विश्रान्ति के लिए खदेड दिये जाने के ठीक एक शताब्दी पूर्व, १८४९ में, भोंडे हथियारो से लैस कट्टर किसानो की सेना दक्षिणी चीन के पर्वतों की ओर चल पडी। उन्होंने गाँवो पर अधिकार किया, ग्रामीणो को एक नवीन राजनीतिक विचारधारा मे दीक्षित किया और फिर वे उसी प्रकार अचानक वापस चले गये, जिस प्रकार आये थे।

ये छिट-पुट हमले मञ्चुओं के विरुद्ध तायपिंग (Taiping) विद्रोह के प्रारम्भ थे। उनका नेता एक विचित्र आदमी, हुग सिभा चुआन (Hung Hsia Chuan) था जो अपने को ईसामसीह का छोटा भाई समझता था और अपने को "स्वर्ग का राजकुमार" बताता था।

यह ठीक है कि एक वर्ष पूर्व ही साम्यवादी घोषणा-पत्र प्रकाशित हो चुका था, परन्तु यह असंभव ही मालूम होता था कि हुग ने कभी कार्ल मार्क्स का नाम भी सुना था। फिर भी, यह ध्यान देने योग्य बात है कि, तायपिंग-कार्यक्रम की अनेक बाते साम्यवादी कार्यक्रम की परिकल्पना सी प्रतीत होती थीं, जिसने माओत्सतुग को, एक शताब्दी बाद, चीन पर अधिकार प्राप्त करने मे सहायता की।

अपने जीवन के प्रारम्भिक दिनो मे हुग को सपने दिखायी देते थे कि मञ्चुओ के अत्याचार से चीन को मुक्त करने के लिए ईश्वर उसे पुकार रहा है। कैण्टन

में प्रोटेस्टैण्ट प्रचारक के साथ दो महीने रह कर उसने ईसाई उपदेशों से परिचय प्राप्त किया और वह स्थानीय मन्दिरो मे मूर्तियो को तोडने के लिए निकल पडा। अपने आप बने हुए ईसाई तथा बाइबिल की कल्पनाओ मे डूबे हुए हुग ने एक राजनीतिक सिद्धान्त की रचना की जिसमे सुधार, कट्टरता और ईसाई सिद्धान्त की प्राय त्रुटिपूर्ण टीका भी शामिल थी। उसने अपने उपदेशो (Gospels) को प्रकाशित करवाया और 'ईश्वर के समाज' के रूप मे अपने अनुयायियो को सगठित किया।

मञ्चुओं को शीघ्र ही मालूम हो गया कि हुग मामूली धार्मिक प्रवचको से कही अधिक शक्तिशाली है। किसानो तक उसकी जबर्दस्त पहुँच थी। हुग ने विश्वास दिलाया कि हम पतित समाज का पुर्ननिर्माण करना चाहते है, जिससे कि ससार ईमानदार हो जाये, बलवान निर्बल को सता न सके, बुद्धिमान लोग भोलेभाले लोगो का शोषण न कर सके या निडर भीरु को न दबा सके।

बीमारी, सूखा, बाढ तथा दुर्भिक्ष ने जनता की गरीबी को और बढा दिया था और १८४० के दशकान्त मे वह विनाशकारी स्थिति तक पहुँच गयी थी। पश्चिमी अनधिकार प्रवेश के समक्ष पैकिंग-सरकार के ढीलेपन से जनता मे व्यापक निराशा के कारण असन्तोष और अशान्ति बढ गयी थी। हुग किसानो के इस धीरे-धीरे उबलते हुए विद्रोह का नेता बन गया और तायपिग की तेजी से बढती हुई उन्मत्त सेनाओ ने शीघ्र ही सम्राट की हताश तथा अध पतित सेनाओ को एक के बाद दूसरे युद्ध मे हराना शुरू कर दिया। हुग के अनुयायियो ने क्वागसी से उत्तर की ओर हमले किये और यागटिसी की घाटी मे अपनी सत्ता स्थापित कर ली।

१४ वर्ष बाद विद्रोह दबा दिये जाने के पूर्व ग्यारह प्रान्त पदाक्रान्त हुए थे और एक विशाल क्षेत्र बरबाद कर दिया गया। लाखो व्यक्तियो की हत्या कर दी गयी। १८५३ तक तायपिंग के लोगो ने हाकाओ, वूचाग, हानयाग और अन्त मे नानकिंग पर कब्जा कर लिया। नानकिंग को ही नयी राजधानी बनाया गया।

हुंग के कठोर, शुद्धतावादी नैतिक नियमो को उसके अनेक अनुयायियो ने व्यावहारिक रूप प्रदान किया। पहले पहल पतित मचुओ की तुलना मे उनके अकलुष आचार का गाँवो पर बहुत गहरा प्रभाव पडा। अभी हाल मे हुए चीनी गृह-युद्ध में साम्यवादियो की भाँति, तायपिंग नेताओ ने अपनी

सेनाओ को ग्रामीणो को सताने से रोका और उसी प्रकार उनकी प्रतिष्ठा भी बढ गयी। १८५३ मे एक ब्रिटिश नौसेना के अधिकारी ने तायपिंग की राजधानी देखकर कहा था, "वे तो बिल्कुल दूसरी जाति के लोग है।" यह परिकल्पना उसी प्रकार की है जिस प्रकार द्वितीय विश्व-युद्ध के बाद ही माओ के 'कृषि-सुधारो' के बारे मे कुछ पश्चिमी लोगो ने झूठी आशाएँ की थी।

कुछ ही वर्षों में हुग ने प्रारम्भिक कृषि सुधारो की घोषणा कर दी, जिसमे भूमि के उपयोग में भावी समानीकरण, भूमि का नौ वर्गों में विभाजन और भूमि की उर्वरता के अनुसार उसके वर्गीकरण की ओर सकेत था। हुग ने घोषणा की–"सभी को खाना मिलेगा, सभी को कपडे मिलेगे, और धन में सभी का हिस्सा होगा, सभी चीजो में बराबरी होगी, कोई भूखा या नगा नही रहेगा।"

जमीन्दारो के अधिकारो को उसी तरह समाप्त कर दिया गया जिस तरह एक सौ वर्ष बाद चीनी साम्यवादियो ने किया। परिवार की सदस्य-संख्या के आधार पर धरती दी जाती और किसानो के पच्चीस घरो का एक सामाजिक घटक बनता था। इनमें से प्रत्येक में जमीन साथ-साथ मिल कर जोती जाती थी। उपज की बचत समाज के खजाने में जाती थी। यह प्रणाली उन क्षेत्रो में स्थापित की गयी जिन पर तायपिंग सैन्य-सगठन का नियत्रण था और इस आशा से कि यह प्रणाली चीन के बाहर भी फैलेगी, सभी स्थानो में लाखों नये धर्मपरिवर्तित लोग इस विद्रोह में शामिल हो गये।

अभिभावको द्वारा पक्की की गयी शादियो, गुलामी, रखल प्रथा, पाँव बाँधन की परिपाटी तथा मञ्चू के आज्ञानुसार चोटीधारण तथा अफीम के प्रयोग पर हुंग ने प्रतिबन्ध लगा दिया। उसने स्त्री-पुरुषो के बीच समानता बढाने के लिए कानून बनाने का समर्थन किया।

परन्तु हुग के सुधार मुश्किल से पूरे होने वाले ही थे कि विद्रोह में शिथिलता दिखाई देने लगी। तायपिंग लोगो में सुदृढ तथा सुयोग्य नेतृत्व का अभाव था। वे विद्वानो को तथा मञ्चू-विरोधी गुप्त संस्थाओ तथा विदेशी धर्मप्रचारको को भी, जिनके ईसाई उपदेशो ने उनके कार्यक्रम को आशिक रूप से प्रेरित किया था, आकृष्ट करने में असमर्थ रहे। विदेशी शक्तियो ने कूटनीतिक सचालन में उनको नौसिखिया पाया। आखिरकार तायपिंग के कुछ नेता पुन उसी प्राचीन भ्रष्टाचार में फँस गये, जिसनें चीन को शताब्दियों से प्रभावित कर रखा है।

हुग की सेनाएँ धीरे-धीरे नृशंस युद्धो में जर्जरित हो गयी थी। मंचुओं द्वारा

भाड़े पर रखी गयी पश्चिमी सेना और नौसेना, जिसके सेनापति अमरीकी फ्रेडरिक टाउनसेड वार्ड और ब्रिटिश मेजर, चार्ल्स जार्ज 'चीनी' गोर्डन जैसे साहसी व्यक्ति थे, शीघ्र अन्तिम पराजय का कारण बनी। जून, १८६४, में दुश्मनो द्वारा घिरी हुई राजधानी नानकिंग मे हुग ने आत्महत्या करली।

१९ वी शताब्दी बीत गयी। चीन की परिस्थितियाँ, जिनके कारण ताय-पिंग विद्रोह हुआ, अधिकतर वैसी ही बनी रही। कुछ दिनो के लिए दबी अशान्ति फिर उभडने लगी।

हुग तथा उसके क्रान्तिकारियो के प्रति व्यापक अमरीकी सहानुभूति थी। विद्रोह की असफलता के बावजूद, मिशनरी स्कूलो तथा ब्रिटिश और अमरीकी विश्वविद्यालयो के अनेक चीनी छात्रो ने हुग के काम को, स्वतत्रता की पश्चिमी कल्पनाओ तथा व्यक्तिगत अधिकारो के साथ, जिनकी वे शिक्षा पा रहे थे, मिला दिया।

इस प्रकार मञ्चू विरोधी सुधार आन्दोलन प्रच्छन्न रहते हुए भी बिलकुल सजीव था। एक टीकाकार ने लिखा है, "मञ्चू पालतू बिल्लियो की भाँति थे और चीनियो ने यह जानते हुए उन्हे वैसे ही बनाये रखा कि जब अध पतन पूर्ण हो जायगा, एक चीनी क्रान्तिकारी इस सडे हुए ढाँचे को उलट फेकने के लिये आ जायगा।"

दसवाँ प्रकरण

सुन यात सेन की विरासत

सुन यात सेन के नेतृत्व में चीन की क्रान्तिकारी राजनीतिक चेतना एक बार फिर बडे उन्मुक्त रूप से भडक उठी। तार्यापिंग विद्रोह की समाप्ति के बाद १८६७ में उसका जन्म हुआ और माओ के अधीन हुनान में साम्यवादी दल के द्वारा आयोजित किसानो के प्रथम विद्रोह के ठीक पहले १९२५ में उसका देहान्त हो गया। इस प्रकार सुन का जीवन चीन की इन दो महान क्रान्तियो के बीच बीता।

हुग की भाँति सुन भी अत्याचार के विरुद्ध विद्रोह के लिए पश्चिमी प्रजातन्त्र के आदर्शों से प्रेरित था। "मै स्वय कुली हूँ और कुली का बेटा हूँ।" उसने बडे गर्व के साथ घोषित किया –"मै गरीब के यहाँ पैदा हुआ और आज भी गरीब हूँ। मेरी सहानुभूति सर्वदा सघर्षशील जनता के साथ रही है।"

होनोलुलू के एक अग्रेजी स्कूल में दाखिल होने के लिए सुन ने युवावस्था में घर छोड दिया। सुन ने कदाचित वुडरो विल्सन के अतिरिक्त अपनी पीढ़ी के सभी राजनीतिज्ञो की अपेक्षा पाश्चात्य राजनीतिक साहित्य का अधिक अध्ययन किया। अमरीकी राजनीतिक आदर्शों के प्रति उसकी सहानुभूति ने उन्हें चीनी स्थितियो पर लागू करने के लिए उत्साह के साथ और कभी-कभी दबाव के साथ प्रेरित किया। आधुनिक युग के किसी चीनी की अपेक्षा, सुन विश्व-राजनीति में चीन के प्रवेश का और पश्चिमी तथा सुदूर पूर्वी सस्कृतियो की कोमल और अवर्णनीय अन्तरक्रिया का भी प्रतीक बन गया।

इसलिए सुन के लिए यह स्वाभाविक ही था कि उसके अनुसार निश्चित रूप से आनेवाली क्रान्ति की तैयारी के लिए जापानी सहायता पर ही, जो बहुत काफी थी, निर्भर न करे, बल्कि पश्चिमी, विशेष कर अमरीकी नैतिक तथा आर्थिक सहायता पर भी निर्भर करे। परन्तु शताब्दी के व्यतीत होते ही, इसके पूर्व कि वह बिल्कुल बडी खुली क्रान्ति के लिये तैयार हो पाये, चीन में ऐसी घटनाएँ प्रारम्भ हुईं कि चीन का राजनीतिक क्षेत्र अत्यन्त क्षुब्ध हो उठा। ये 'द्वार खोलो' ('Open doors') पत्रो तथा बॉक्सर विद्रोह के साल थे।

एक बार एक भारतीय इतिहास के प्राध्यापक ने मुस्कराते हुए कहा कि

कम से कम भारत ने चीन की अपेक्षा अपने औपनिवेशिक शोषको के साथ अच्छा सुलूक किया है। उसने कहा कि भारत एक ही शक्ति द्वारा शोषित हुआ, चीन का लगभग सभी ने शोषण किया।

ब्रिटिश शासन के अन्तर्गत भारतीय अर्थतत्र पर दबाव पडने के बावजूद, अनेक भारतीय साधन-स्रोत विकसित किये गये, एक सुयोग्य नागरिक सेवा का निर्माण हुआ और आधुनिक सवाहन प्रणाली की स्थापना हुई। मञ्चूरिया के आशिक विकास के अतिरिक्त, यह बात चीन के सबध मे नही कही जा सकती। पश्चिमी साम्राज्यवाद के इस सम्मिलित उपनिवेश मे किसी एक शक्ति ने एकाधिकार के लाभ नही उठाये कि जिससे निरन्तर अधिक से अधिक पूँजी लगाने का आकर्षण पैदा हो। वहाँ प्रभाव के क्षेत्रो के लिए इतनी भीषण प्रतियोगिता थी कि १८९८ तक यह सम्भव प्रतीत होने लगा था कि, चीन अटलाटिक क्षेत्र के व्यापार के लिए लालायित राष्ट्रो तथा रूस के बीच औपचारिक रूप से विभाजित हो जायगा।

इस स्थिति मे जॉन हे के 'द्वार खोलो' पत्रो से, जिनमे अन्त मे प्रार्थना की गयी थी कि बडी शक्तियाँ चीन की प्रादेशिक एकता के समर्थन के लिए प्रतिज्ञाएँ करे, योरोप की राजधानियो मे भ्रान्तिपूर्ण और अनिश्चित प्रतिक्रिया हुई। परम्परा के रूप मे इन पत्रो को अमरीकी कूटनीति की प्रथम श्रेणी की विजय माना गया है, जिसने किसी हद तक चीनी स्वतत्रता की रक्षा की।

सुयोग्य आलोचको की बाद की पीढी ने अमरीकी कूटनीतिक विजय के सूत्रधारो को यह कह कर तिरस्कृत किया कि यह तो मूल ब्रिटिश सिद्धान्त से चोरी किया गया है। १९०० के राष्ट्राध्यक्षीय चुनाव के समय इसे राजनीतिक ढग से रखा गया और इसे नीति के एक सुदृढ आश्वासन के लिए एक सूक्ष्म नैतिक प्रतिज्ञा समझने की भूल की गयी। ये सारे आरोप केवल आशिक रूप से ही सत्य है, किन्तु मै सोचता हूँ कि यह आलोचना कही अत्यधिक कडी तो नही है।

'द्वार खोलो' की नीति हमारी सर्वश्रेष्ठ प्रवृत्तियो की प्रतिबिम्ब मात्र है। इसका अखण्डनीय खोखलापन इस बात मे है कि हे तथा उनके उत्तराधिकारियो को यह मालूम था कि अमरीका इच्छा-शक्ति अथवा सैनिक शक्ति से इतने व्यापक बन्धन की पूर्ति का समर्थन करने के लिए तैयार नही था। इसका मतलब यह नही है कि नैतिक सिद्धान्तो वाले कूटनीतिक वक्तव्य आवश्यक रूप से गलत या मूर्खतापूर्ण है या हम अपनी परराष्ट्रीय नीति के संचालन के लिए ऐसे सिद्धान्तो की सार्थकता की उपेक्षा कर सकते है। दूसरे

राष्ट्रो के साथ हमारे संबंधो में कुछ कम सिद्धान्तों की हमें जरूरत नही है, बल्कि एक बार जानबूझ कर महत्वपूर्ण वादा कर लेने पर अधिक सुदृढता तथा अपनी क्षमता की और अधिक यथार्थवादी जानकारी की आवश्यकता है।

'बॉक्सर' नाम का चीनियो का एक दल हर हालत में यह सोचता था कि उसने चीन की एकता के पुनस्सस्थापन का एक अधिक सुन्दर ढग निकाल लिया है। उसका विश्वास था कि विदेशियों को समझने का एक ही तरीका है, या तो उन्हे मार डाला जाय या उन्हे बाहर निकाल दिया जाय और उनके प्रत्यक्ष सघर्ष की पद्धति उनके नाम "बॉक्सर" से ही प्रकट है– "तने हुए घूसे का औचित्य"।

"बॉक्सरों" मे तार्यापिग आन्दोलन के सामाजिक उद्देश्यो का अभाव था और इसीलिए व्यापक आन्दोलन में विकसित होने के जो भी मौके हाथ आये, उन्होने खो दिये। इसके अतिरिक्त १९०० के बॉक्सर विद्रोह का नेतृत्व दक्षिण-पन्थी गुप्त संस्थाओ के उन उग्रवादी सदस्यो ने किया, जिन्होने अपनी वार्ता से सम्राज्ञी डोवागर को विश्वास दिला दिया कि उनका जादू विदेशी बन्दूको से चीन को बचा सकता है।

अचानक पागलपन के झोके मे बॉक्सरो ने २४२ ईसाई धर्म प्रचारकों तथा उत्तरी चीन और मचूरिया के अन्य विदेशी नागरिको की हत्या कर दी। पचास वर्षों में यह चीन का पश्चिम के विरुद्ध विद्रोह का अन्तिम निराशापूर्ण प्रयास था। पीकिंग में विदेशी दूतावास घेर लिये गये और कुछ समय तक सभी पश्चिमी लोग आतकित रहे। एक अमरीकी ईसाई धर्म प्रचारक की उस समय आठ वर्षीय कन्या, पर्ल बक ने बाद में लिखा कि उसने जीवन के प्रथम और प्राथमिक अन्याय का अनुभव किया। "क्योकि मेरा रग गोरा था, आँखें नीली थी और अपनी जाति के से सुनहले बाल थे, मुझसे घृणा की जाती थी और अपने तथा अपने समान दूसरों के भय के कारण मैं खतरे में जी रही थी।"

वर्षों बाद चीनी–अमरीकी मैत्री के प्रति अपने जीवन को उत्सर्ग करने वाली पर्ल बक ने इन घटनाओं की याद करते हुए आगे लिखा, "चीनी लोगो के हृदयो मे एक शताब्दी से भी अधिक समय से क्षोभ की आग सुलगती रही है, और यह क्षोभ ही, जिसे न तो गोरे समझ सकते थे और न समझेंगे, अपने देश में च्याग काई शेक की पराजय और कम्यूनिस्टो की विजय का मुख्य कारण था। हमको एशिया वालों के सामने यह साबित करने के लिए कि हम वैसे गोरे नही हैं, जसे कि दूसरे थे, बहुत कुछ करना होगा।"

बॉक्सरो का शीघ्र ही पतन हो गया। अन्त में एक जर्मन सेनापति के नेतृत्व में एक अन्तरराष्ट्रीय अभियान बलात् टीएन्टसिन से पीकिग पहुँचा और राजधानी को घेर कर परम्परागत क्रूरताओ का प्रदर्शन किया तथा ३३ करोड़ डालर जबर्दस्ती हर्जाना वसूल किया, जो बॉक्सरो द्वारा पहुँचायी गयी क्षति से कही अधिक था।

मञ्चू दरबार के लोग जो डर के मारे पश्चिमी प्रान्त के निरीक्षण के बहाने भाग गये थे, अपने विजेताओ के निर्देशानुसार अपने 'मृत्यु-पत्र' पर, हस्ताक्षर करने के लिये वापस आगये। बाद मे अमरीका ने इस सैनिक कार्रवाई मे अपने योगदान की स्मृति मिटा देने का सच्चा प्रयास अपने हर्जाने के हिस्से को अमरीका स्थित चीनी छात्रो के अध्ययन के लिए निर्धारित कर किया। किन्तु बॉक्सर विद्रोह के बाद दस वर्ष तक चीन मे शान्ति उसी तरह छायी रही जिस तरह उफनती हुई नदी के ऊपर बर्फ जमी हो।

सुन यात सेन ने विदेशियो द्वारा बार-बार किये गये इन अपमानो के सम्बन्ध मे अपने क्रान्तिकारी विश्वासो को विशेषरूप से प्रस्तुत किया। १९०५ में उसने अपनी तुग मेग हुई (Tung Meng Hui) नाम की क्रान्तिक्रारी सस्था की रचना की, जो बाद मे 'कुओमिन्ताग' बन गया। फिर भी वर्षों तक वह पश्चिम के विरुद्ध अपने लोगो को सगठित करने के लिए जापान, अमरीका तथा योरोप मे रहने वाले चीनियो तथा पश्चिमी या पश्चिमी देशो द्वारा शासित देशो मे रहने वाले अपने मित्रो पर आर्थिक सहायता के लिए आश्रित रहा। वास्तव मे हागकाग और फ्रासीसी हिन्दचीन के अड्डो से सुन ने मञ्चुओ के विरुद्ध अपने विद्रोहो का सचालन किया।

१९११ मे, जब सुन क्रान्ति-निधि एकत्र करने के लिए अमरीका की ओर चला, तब तक ऐसे दस विद्रोह असफल हो चुके थे। जब वह चला गया तब चीन मे उसकी सैनिक टुकडियो ने अचानक यागटिसी (Yaugtse) प्रान्त मे राज्यवश के प्रतिनिधियो को उलट दिया। जर्जरित साम्राज्य ताश के महल की तरह ढह गया। क्रान्तिकारियो ने अनुपस्थित सुन को चीनी गणतत्र का प्रथम राष्ट्रपति घोषित कर दिया। सुन का अपनी नयी स्थिति के सम्बध मे एक अमरीकी समाचारपत्र से उस समय ज्ञात हुआ जब उसकी ट्रेन डेनवर पहुँच गयी थी।

एशिया के अन्य स्थानो में लोगो की आँखें चीन की घटनाओ की ओर लगी थी। नेहरू ने बाद मे भारतीय जनता को इसका सादृश्य समझाते हुए

मञ्चुओ के बारे मे लिखा, "वे आये तो शेर की दहाड के साथ लेकिन गायब हो गये साँप की पूछ की तरह।"

सुन की नयी सरकार विभिन्न प्रकार के अनेक दलो पर आश्रित थी, जो मञ्चुओ को उलटने के एक सामान्य उद्देश्य से अस्थायी लाभ के लिए सगठित हो गये थे। किसानो, मजदूरो, बुद्धिजीवियो, सेनानियो, जमीदारो, बैंकरो, और शघाई के चीनी तथा विदेशी व्यापारियो के प्रतिद्वद्वी स्वार्थों ने एक सगठित आर्थिक तथा राजनीतिक कार्यक्रम को असभव बना दिया। सुन ने स्वय बाद में शिकायत की कि मेरे चार अनुयायियो में से तीन मञ्चुओ को निकाल कर स्वय सम्राट बनाना चाहते थे।

सुन जानता था कि वह किसके विषय में बोल रहा है। १९१२ में उत्तरी चीन की सेना के नेता, युआन-शी-काई (Yuan Shih Kai) के पक्ष मे वह राष्ट्रपति-पद छोडने के लिए मजबूर हुआ, जिसने तदुपरान्त अपने आपको सम्राट के रूप में स्थापित करने के लिए अगले चार वर्षों तक कोशिश की।

× × ×

१९१६ मे युआन की मृत्यु के बाद सेनानियो तथा युद्ध-प्रभुओ का फिर कुचक्र आरम्भ हो गया और वे स्थानीय लाभ के लिए लक्ष्यहीन और रक्तरजित युद्ध में एक-दूसरे को परास्त करने के लिए अपनी निजी सेनाएँ तैयार करने में जुट गये। प्रान्तीय सेनाओ के नेताओ में एकता का प्रतीक बनाये रखने के असफल प्रयत्नो के बाद १९१९ तक सुन के मन में निश्चय हो गया कि जनता के व्यापक समर्थन की नितान्त आवश्यकता है।

कुओमिन्ताग अभी भी एक प्रादेशिक दल था, जिसका अस्पष्ट उद्देश्य गणतत्रवाद तथा समाजवाद था और जिसका युवक किसानो, व्यापारियो, मजदूरो तथा छात्रो पर अनिश्चित प्रभाव था। अपनी सैन्य-शक्ति के अभाव मे पार्टी को अधिक भ्रष्ट सेनाओ के विरुद्ध सहायता प्राप्त करने के लिए कम भ्रष्ट सैनिक गुटो के साथ गठबन्धन करने के लिए विवश होना पड़ा।

इन दुर्बलताओ को दूर करने के लिए सुन बहुत अधिक परिश्रम करने लगा। पाँच वर्षों की अवधि में उसने "राष्ट्रीय पुनर्निर्माण-कार्यक्रम", "पंच शक्तीय सविधान" और "जनता के तीन सिद्धान्त" प्रकाशित किये। उन्होने मिलकर आर्थिक तथा राजनीतिक मच की रचना की, जिसके आधार पर सुन ने कुओमिन्ताग को पुनर्जीवन प्रदान करने की आशा की।

सुन की रचनाओ मे पश्चिमी उदार सिद्धान्तो मे एकाधिपत्यवाद के भाव विचित्रता के साथ मिल गये। सुन ने स्वय अपने राष्ट्रवाद, प्रजातत्र तथा जीविका के तीन सिद्धान्तो की तुलना लिंकन की "जनता की, जनता द्वारा और जनता के लिए" सरकार की रूपरेखा से की। तथापि उसकी कुछ रचनाएँ लिंकन की अपेक्षा लेनिन के सदृश अधिक मालूम देती है।

यह अस्पष्टता आश्चर्यजनक नही है। सभव है कि १९२४ मे कैण्टन मे दिये गये सुन के व्याख्यानो मे सोवियत गुप्तचर माइकेल बोरोडीन के सुझाव रहे हो, जो कुओमिन्ताग को क्रान्ति के सिद्धान्त, प्रचार तथा दलगत अनुशासन की शिक्षा देने के लिए एक ही वर्ष पूर्व आया था।

अपनी पुस्तक "दी पीपुल्स डिमोक्रेटिक डिक्टेटरशिप (जनता की प्रजातत्रात्मक तानाशाही) मे लिखते समय माओत्स-तुग के दिमाग मे यही सोवियत मिशन रहा होगा कि, किस तरह १९२१ के पूर्व चीन के बुद्धिजीवी सत्य के लिए पश्चिम की ओर व्यर्थ ही ताक रहे थे। माओ ने आगे लिखा है कि सुन यात सेन को अपने जीवनकाल मे केवल एक बार अन्तरराष्ट्रीय मदद मिली और वह सोवियत रूस से मिली।

यद्यपि माओ का कथन असत्य है, तथापि जितनी मात्रा मे कुओमिन्ताग नेताओ ने प्रारम्भिक दिनो मे योरोप और अमरीका से नैतिक, आर्थिक तथा सनिक मदद की आशा की थी, वह नही मिली। १९२० और १९२१ में सुन ने न्यूयार्क, लन्दन तथा पेरिस मे चीनी आर्थिक विकास के लिए ऋण प्राप्त करने के व्यर्थ प्रयत्न किये। पश्चिमी सहायता न मिलने पर निश्चय ही सुन को निराश हो कर मास्को से अपील करनी पड़ी।

१९२२ मे चीन में प्राप्त जार की पुरानी रियायतो को लेनिन ने अपनी बुद्धिमानी और स्वेच्छा से त्याग कर वह कार्य कर दिखाया। अपनी आर्थिक निर्बलता से लाभ उठाते हुए रूस ने एक ही झटके में अपने आप को अधिक सुदृढ बना लिया और अटलाटिक शक्तियो पर ऐसे समय पर गहरा आघात किया जब सुन पश्चिमी सहायता से निराश होकर "असमान सधियो" की कड़ी आलोचना करने लग गया था। सुन ने अनुमान लगाया कि इन संधियो ने पश्चिमी शोषको को चीनी जनता से प्रतिवर्ष १-२ अरब डालर की अपार धनराशि खीचने के योग्य बनाया। अमरीकी जनता के प्रति उसकी सम्मान की भावना अभी भी बनी रही, जो इस बात से प्रकट होती है कि सयुक्त राज्य अमरीका को उसने इन अभियोगो से अधिकतर मुक्त रखा।

सभवत: सोवियत रूस और अटलाटिक राष्ट्रो के बीच किसी एक समान तत्व ने विकासमान चीनी राजनीतिक जागरूकता पर इतनी गहराई से प्रभाव नही डाला, जितना कि प्रादेशिक विशेषाधिकार और निर्धन चीनी अर्थतत्र के कानूनी शोषण की इस विस्फोटक समस्या के प्रति उनके परस्पर-विरोधी रुखो ने डाला है। यद्यपि १९३० के दशक मे चीन मे योरोपीय राष्ट्रो तथा अमरीका द्वारा की गयी सधियो ने चीन को सघाई जसे नगरो पर जापानी कुचक्रों से बचाया, तथापि वह केवल एक सयोग था।

अब हर हालत मे चीनी इस द्वेषात्मक तुलना की ओर ही देखते हैं कि रूस के स्वेच्छापूर्वक चीन से हट जाने के २० वर्षों बाद तक पश्चिम अपने विशेषाधिकारो से चिपका रहा। १९४२ तक अमरीका तथा उसके योरोपीय साथियो ने अधिकृत रूप से असमान सधियो को नही त्यागा और न चीन की अपमानजनक अर्ध-औपनिवेशिक स्थिति को समाप्त किया। चीनियो का कहना है कि उस समय तक जापानियो के सैनिक आधिपत्य ने इन विशेषाधिकारो को निरर्थक बना दिया था।

सुन यात सेन अपने बाद के दिनों मे विदेशियो के इन विशेषाधिकारो के प्रश्न मे इतना व्यस्त रहा कि उसने साम्राज्यवाद-विरोधी मच का उपयोग पश्चिमी अत्याचारियो के विरुद्ध उत्पीडित एशियावासियो के वर्गयुद्ध के लिए आवाहन करने में किया। अब उसके कम्यूनिस्ट उत्तराधिकारी पेकिंग में इसी भाषा का प्रयोग और भी कटु रूप में प्रतिदिन कर रहे हैं।

फिर भी सुन का प्रबल राष्ट्रवाद, मास्को से सचालित एकतंत्रवादी विश्व के कम्युनिस्ट उद्देश्य के स्पष्टत प्रतिकूल था। जो भी हो, क्रेमलिन की क्रूर चालो के साथ एक ऐसे व्यक्ति के सिद्धान्तो का सामञ्जस्य नही हो सकता था, जिसे कुछ लोग उदारतम क्रान्तिकारी कहते थे और जो उस समय की प्रतीक्षा में था, जब चीन की विशाल और व्यापक भूमि पर प्रत्यक्ष लोकतंत्र के सुपरिचित साधन, पहल, मतगणना और वापसी के अधिकार का राजनीतिक नियत्रण होगा। सुन मानवता, उदारता, विद्वानो की सरकार और कन्फ्यूशियस-परम्परा के अनुसार आनुवशिक निष्ठा का अनुयायी था, जो मार्क्सवादी सिद्धान्त से और भी मेल नही खाती था ।

सुन ने पश्चिमी ढग के पूजीवाद का विरोध किया और उसके लिए चीन का रास्ता बन्द बताया यद्यपि अमरीका में उसकी महान सफलताओ की उसने भूरिभूरि प्रशसा की। अगस्त, १९२४ में, अपनी मृत्यु के आठ मास पूर्व, "सामा-

जिक प्रश्न" पर अपने प्रथम व्याख्यान में उसने हैनरी फोर्ड के प्रयत्नो की विशेषरूप से प्रशसा की।

यह बताते हुए कि मार्क्स बदलती हुई परिस्थितियो की पूर्वकल्पना करने में असमर्थ रहा, उसने कहा, फोर्ड-कारखानो की समृद्धि कम से कम तीन बातो में मार्क्स का खण्डन करती है। अधिक काम के घण्टो, कम मजदूरी तथा उच्च मूल्य पर जोर देने के बजाय फोर्ड-कारखानो ने काम के घण्टो को कम किया, मजदूरी बढायी और अपने उत्पादन का मूल्य घटाया। उसने मार्क्स के अतिरिक्त मूल्य के सिद्धान्त को "बेहूदा" बताया और उसके अनिवार्य वर्ग सघर्ष के मौलिक विश्वास पर आघात किया।

सुन ने योरोप और अमरीका के पूजीवाद के दु खद विकास से बच कर सुव्यवस्थित औद्योगीकरण द्वारा अपनी समृद्धि की क्रान्ति को सफल बनाने की आशा की थी। उसने एक बार कहा था, "भौतिक सभ्यता का लक्ष्य व्यक्तिगत लाभ नही, सार्वजनिक लाभ है और उस लक्ष्य तक पहुँचने का छोटे से छोटा रास्ता स्पर्धा नही, सहयोग है।" नियोजित सहयोग, बैंको, सचार-साधनो और रेलवे के राज्य-नियमन आय पर प्रत्यक्ष कर तथा सहकारी समितियो के द्वारा वितरण का रूप धारण करने वाला था।

जिन किसानो के पूर्वजो ने तायपिंग के साथ युद्ध किया था, उनके लिए सुन ने भूमि-व्यवस्था, अन्नोत्पादन का नया कार्यक्रम प्रस्तुत किया। खाद और कृषि औजारो के उपयोग में चीजो के उन्मूलन मे, सवाहन के सुधार में, नदी के घटाव को रोकने तथा पुन वृक्षारोपण मे सरकार सहायता करने वाली थी।

अमरीकी अर्थशास्त्री तथा दार्शनिक हैनरी जार्ज से विचार ग्रहण करते हुए, सुन ने भूमि-मूल्य की अनुपार्जित वृद्धि पर कर लगाने का अनुरोध किया, बशर्ते यह मूल्य-वृद्धि राजनीतिक सुधारो अथवा सामाजिक उन्नति के कारण हुई हो। सुन ने अन्त में कहा, "सक्षेप मे मेरा यह विचार ह कि चीनमें पूजीवाद समाजवाद को जन्म दे ताकि मानवीय विकास की ये दो आर्थिक शक्तियाँ भावी सभ्यता में साथ-साथ कार्य कर सके।"

जेफर्सन और लिंकन का यह विचित्र एशियाई प्रशासक इस तथ्य से प्रोत्साहित हुआ कि चीन में प्रजातत्रवादी विकास के मार्ग मे कुछ अत्यधिक विकट रूढिगत बाधाएँ उपस्थित नही थी। २३ शताब्दियो पूर्व सामन्तवादी प्रणाली के भग हो जाने के बाद से चीन में पश्चिमी नमूने पर न तो वशानुगत कुलीन समाज (Aristocracy) था और न भारत और जापान की भाँति जाति-प्रथा

ही थी। आर्थिक, शैक्षणिक तथा राजनैतिक स्तरो के भेद तथा परिवारो के सीमित प्रभावो के बावजूद चीनी समाज में सर्वदा से पर्याप्त मात्रा में गतिशीलता रही है। यद्यपि सैद्धान्तिक दृष्टि से सम्राट के हाथो में निरकुश सत्ता थी तथापि चीनी लोगो ने पर्याप्त मात्रा मे स्वायत्तशासन का उपभोग किया है।

सुन का विश्वास था कि लम्बे दौरान मे यह सन्निविष्ट प्रजातान्त्रिक परम्परा चीन के नये नेताओ के लिए विशेष रूपसे सहायक सिद्ध हो सकती है; परन्तु उसने निर्णय किया कि विघटनशील राजनीतिक स्थिति के अनुसार एक महत्वपूर्ण राजनीतिक कार्रवाई के लिए यह कोई विकल्प नही प्रदान करती।

सोवियत संघ से सुन की सहमति ठोस राजनैतिक बुनियाद के मगठन का अन्तिम प्रयत्न था। यह सुविधा का मेलमिलाप था।

यह व्यवस्था केवल पाँच वर्षों तक सुविधाजनक सिद्ध हुई, किन्तु १९२३ में यह मूर्खतापूर्ण भविष्यवाणी होती जब कि युवक च्याग काई शेक लेनिन के नाम सुन का परिचय पत्र लेकर सैनिक प्रशिक्षण के लिये मास्को रवाना हुआ। उसी समय सुयोग्य बालशेविक बोरोडीन सुन के कुओमिन्ताग का संगठन करने के लिए मास्को से कैण्टन आया। रूस से विशेष मैत्री, कुओमिन्ताग में साम्यवादी पार्टी के सदस्यो के प्रवेश तथा मजदूरो और किसानो की राजनीतिक मुक्ति ये तीनो बातें सुन की अन्तिम "दोहरी नीति" का उदाहरण मात्र थी।

१९२३ में सुन तथा सोवियत राजदूत जोफे का एक सयुक्त वक्तव्य अति विनम्र एव आश्वासनों से युक्त प्रतीत हुआ। इसमें कहा गया कि चीन में न तो साम्यवादी व्यवस्था लागू की जा सकती है और न सोवियत पद्धति, क्योकि यहाँ वे स्थितियाँ नही हैं, जो साम्यवाद अथवा सोवियतवाद की सफल स्थापना के लिए आवश्यक है।

परन्तु कौमिण्टर्न के मार्गदर्शन में, कुओमिन्ताग का नया ढाचा शीघ्र ही सोवियत रूप धारण करने लगा। वह पार्टी की गुप्त बैठको तथा पोलितब्यूरो से पूर्ण था। कुछ ही महीनो मे यह सभावना दिखायी देने लगी कि कुओमिन्ताग पर साम्यवादी दल का प्रभुत्व हो जायेगा।

मार्च, १९२५ में इस अशुभ विकास के बीच सुन यात सेन की मृत्यु हो गयी। बोरोडीन के साथ उसकी मैत्री ने एक सघर्षशील परम्परा छोड़ी और हम अनुमान लगा सकते है कि यदि सुन यात सेन कुछ वर्षों तक और जीवित रहा होता तो उसकी क्रान्ति का क्या रुख होता।

एक ओर सुन के अन्तिम उत्तराधिकारी च्याग काई शेक ने उसके सिद्धान्तो के प्रति भक्ति पर बार-बार जोर दिया। राष्ट्रवादी चीन के उच्च पुरोहित के रूप मे स्मारको, शब्दो तथा गीतो में उसे पूजनीय बना कर कुओमिन्ताग ने सुन यातसेन के मत के प्रसार के लिए सुव्यवस्थित प्रयत्न किये।

दूसरी ओर श्रीमती च्याग काई शेक की बहन, सुन की विधवा पत्नी ने आज एक निर्भ्रान्त लोकतत्रवादी, पीपुल्स काग्रेस की स्थायी समिति की सदस्या तथा कम्यूनिस्ट प्रचार के लिए उपयोगी प्रतीक के रूप मे पेकिग में रहना पसद किया है।

सिद्धान्तवादी के रूप मे सुन यात सेन वर्गीकरण को चुनौती देता था। व्यक्तित्व के रूप मे वह अपने घोषित पश्चिमी जनतत्रवादी सिद्धान्तो तथा भ्रान्तिपूर्ण मार्क्सवाद के बीच चढता-उतरता रहता था। नेता के रूप मे, उसके जीवन के अन्तिम क्षणो तक उसकी लोग प्रशसा करते, घृणा करते, मजाक उड़ाते और पूजा भी करते थे। मञ्चू-विरोधी क्रान्ति के सूत्रधार के रूप मे तथा मृत्यु के बाद देवदूत एव कानून-निर्माता के रूप मे आज भी वह अपने विभक्त करोडो देशवासियो के लिए चीन का जार्ज वाशिगटन है।

ग्यारहवाँ प्रकरण

विवादास्पद उत्तराधिकार

सुन की मृत्यु के बाद दो वर्ष तक रूस और चीन को मुश्किल से निभ पायी। १९२५-२६ में सोवियत प्रचारकों ने मुख्यत ब्रिटेन के विरुद्ध चलाये गये जबर्दस्त साम्राज्यवाद-विरोधी अभियान का नेतृत्व किया था और ब्रिटेन ने हैंकाओ तथा यागट्सी बन्दरगाहो पर बडी रियायते देकर प्रत्युत्तर दिया।

इसी बीच भूस्वामी कुलीन वर्ग की पृष्ठभूमि से, चार वर्ष के जापानी सैनिक प्रशिक्षण, शंघाई में एकान्तवास और अपनी मास्को-यात्रा से जनता की निगाहो में चढ़कर च्याग काई-शेक अपने को सुन का उत्तराधिकारी सिद्ध करने के लिए शक्तिशाली ढग से आगे बढ़ा। बोरोडीन की आपत्ति पर, जिसने सतर्कता और सगठन की सलाह दी, च्यांग ने उत्तरी अभियान आरम्भ किया, जिसने केन्द्रीय सत्ता को शघाई और नानकिंग तक बढ़ा दिया।

मध्यचीन का शासक होने पर, एक बार च्याग ने सोवियत मिशन से सम्बन्ध-विच्छेद कर लिया था। वामपक्षी कुओमिन्ताग और हैंकाओ में साम्यवादी नेताओ के सरकार बनाने के प्रयत्नों का विरोध करने के लिए उसने नानकिग में अपनी राजधानी बनायी। अप्रैल, १९२३ मे "फ्रांसीसी कन्सेशन" के पुलिस-प्रधान से प्राप्त हथियारो की सहायता से च्याग ने शंघाई के बढते हुए मजदूर-आन्दोलन को, हजारों को फाँसी देकर निष्ठुरता के साथ कुचल दिया, और एक मधुर भाषी भद्रजन, जो बाद मे चू एन लाई के नाम से प्रसिद्ध हुआ, द्वारा आयोजित कम्यूनिस्ट विप्लव को भी कुचल दिया। हैन्काओ शासन एक स्थानीय जनरल द्वारा भंग कर दिया गया और बोरोडीन मास्को की ओर भाग गया।

घटनाओ का यह उलटफेर स्तालिन और पोलितब्यूरो के लिए करारा आघात था। कुओमिन्ताग के अन्तर्गत कार्य करने के प्रत्येक प्रयत्न का ट्रॉट्स्की ने विरोध किया था। शायद उसको इस बात का आभास था कि वह साम्यवादी प्रवेशकर्त्ताओं को निगल जायेगा, परन्तु स्तालिन ने बोरोडीन के दृष्टिकोण का इस आधार पर समर्थन किया था कि चीन एक स्वदेशी साम्यवादी आन्दोलन

के विकास के लिए अभी बहुत पिछडा हुआ है और इसलिए धीरे-धीरे घुस कर स्थिति पर अधिकार प्राप्त करना चाहिए। उसने कहा कि चीन पर सत्तारूढ होने के लिए रूसी कम्यूनिस्टो को कुओमिन्ताग के साथ गठबन्धन करना चाहिए। तब उपयुक्त अवसर आने पर अपने साथियो को 'चूसे हुए नीबुओ' की तरह दूर फेंक देना चाहिए, परन्तु अभी कुछ समय के लिए साम्यवादी ही नीबुओ की तरह निचोड कर फेंक दिये गये थे।

स्तालिन के क्रमलिन में अपना प्रभुत्व जमा लेने के बाद, कौमिण्टर्न ने चेएन तू शियू (Chen Tu shiu) को, जो चीनी साम्यवादी दल का सस्थापक था, बलि का बकरा बना कर निकाल दिया। बोरोडीन तक की बडी फजीहत की गयी और वर्षों बाद अत्यन्त मामूली अपराधो के लिए उसे पूर्वी साइबेरिया के एक कम्प जेल मे भेज दिया गया, जहाँ वह १९५२ में स्तालिन से कुछ महीनो पूर्व मर गया।

लेनिन जसी शुभ परिस्थितियो के सपने देखा करता था वैसी ही परिस्थितियो में चीन ने सोवियत सघ को आमन्त्रित किया। वास्तव मे एशिया की प्रथम और प्रमुख लोकप्रिय क्रान्ति की पूर्णता और स्थापना का सारा सचालन-भार मास्को को सौंप दिया गया।

इस अपमानजनक असफलता के क्या कारण थे? निश्चय ही, इतनी दूर से इतने विशाल कार्य के प्रयत्नो के सचालन मे मास्को के क्रान्तिकारी विचारको की असमर्थता एक कारण था। क्रेमलिन के आन्तरिक सघर्ष से, जो उस समय चरम सीमा पर था, यह समस्या और भी जटिल हो गयी।

परन्तु, इस पतन का सबसे महत्वपूर्ण कारण था कौमिण्टर्न का सकीर्ण मार्क्सवाद पर आग्रह करना, जो ग्रामीण चीन के लिए अनुपयुक्त तो था ही, रूस में भी सफल नही हो सकता था। यह तो लेनिन जैसे लचीले व्यक्ति को ही मालूम था कि मार्क्स का अनुसरण कब किया जाय और कब उसमें सुधार किये जाँय। जैसा कि हम देख चुके है, जब तक १९१७ के नवम्बर मे किसानो को जमीन देने वाली उसकी घोषणा नही हो गयी, तब तक लेनिन ने क्रान्ति को "अटल" नही माना।

परन्तु १९२३ में लेनिन मर रहा था, और उन शक्तियो के समझने की उसकी चतुराई को, जो प्रारम्भिक ग्रामीण अर्थ-व्यवस्था को सचालित करती थी, बिसरा दिया गया। विद्यार्थियो और शहर के मजदूरो को क्रान्तिकारी आधार मानने वाले मार्क्स के सकीर्ण सिद्धान्त से चिपके हुए चीन में बोरोडीन

के कौमिण्टर्न सलाहकारो ने उन किसानो के महत्व को कम समझा, जो अपनी विशाल सख्या तथा महत्वपूर्ण आर्थिक शक्ति के कारण एशिया में किसी भी क्रान्ति की सफलता या विफलता की कुजी है।

जैसा कि हम बार-बार देखेंगे कि वे ही लोग, जो किसानो की शक्ति के सिद्धान्त को समझते तथा अपनाते है, एशिया में क्रान्ति के ज्वार में ऊपर चढे है और अब भी चढ रहे है। यह चीन के लिए दु ख की बात है कि १९२९ से १९४९ तक के दो दशको में, जिन्होने इस सिद्धान्त को समझा वे माओत्सेतुग के साम्यवादी शिविर मे सम्मिलित हो गये। बीस निर्णायक वर्षों तक च्यागकाई शेक इस सिद्धान्त को या तो समझ न सका या विरोधी दबाव में इतना उलझा हुआ था कि वह उसको निश्चित नीति में परिणत न कर सका। माओत्से-तुग, १८९३ में हुनान गाँव मे किसान के घर पैदा हुआ था और अल्पायु में ही काफी अध्ययनशील तथा प्रतिभाशाली लेखक बन गया था। मार्क्स और लेनिन के अध्ययन ने उसके उत्साह की ज्वाला प्रज्ज्वलित कर दी। जब बोरोडीन मास्को से आया, तो माओ का नाम भी कुओमिन्ताग की केन्द्रीय समिति की सदस्यता के लिए प्रस्तावित किया गया। १९२४ तक सुन यात सेन तथा च्याग काई शेक से उसका परिचय कराया जा चुका था और वह चुपचाप साम्यवादी दल और कुओमिन्ताग दोनो के सदस्य के रूप में काम करता रहा।

उसी वर्ष बाद में बीमारी के कारण माओ को हुनान प्रात में अपने गाँव, शाओशान जाना पडा। यही पर सर्वप्रथम माओ ने खुले आम मार्क्स के इस कट्टर सिद्धान्त की सच्चाई का खण्डन किया, जो सोवियत गुप्तचरो द्वारा सिखायी जाती थी कि बडे शहरो में सर्वहारा विद्रोहो से ही क्रान्ति आयगी। उसको पूरा विश्वास हो गया था कि सफल विद्रोह के बीज कैण्टन और शघाई के मजदूरो मे नही है, बल्कि करोडो किसानो अथवा उसके अपने शाओशान जैसे छोटे-छोटे गाँवो में है। इस पर माओ ने उसी सबक को पढा और याद रखा जिसे लेनिन जानता था और जिसे स्तालिन ने शुद्ध मार्क्स की ओर लौट जाने पर भुला दिया था।

स्वस्थ होते ही माओ ने विद्यार्थियो, मजदूरो और खनिको का सगठन छोड दिया और किसानो को सगठित तथा आन्दोलित करने के लिए गाँवो में चला गया। अक्तूबर, १९२६ तक उसकी किसान-सस्थाओ का हुनान के अधिकाश भाग पर नियत्रण था और लगभग बीस लाख तक सदस्यता पहुँच गयीं थी।

इस अनुभव ने माओ के विश्वास को पक्का बना दिया कि चीन मे क्रान्तिकारी शक्ति का व्यापक आधार किसानो में है। उसने उनके विकास का दृढ निश्चय कर लिया। "जनता से पहले सीखो और बाद मे उसे सिखाओ" माओ ने एक बार लिखा था।

साम्यवादी दल को क्रेमलिन ने निर्देश देकर, इस आधार पर कृषि-सुधार के विरुद्ध चेतावनी दी कि चीनी किसान अभी तैयार नही है। इससे थोडे समय के लिए माओ के प्रयत्न धीमे हो गये। बाद मे माओ ने घोषित किया कि सिद्धान्त गोबर से भी अधिक अनुपयोगी है; गोबर का उपयोग कम से कम खाद के रूप मे तो किया जा सकता है। वह खुद कौमिण्टर्न द्वारा अपनी विपथगामी नीतियो के कारण दो बार निकाल दिया गया।

परन्तु शीघ्र ही क्रान्ति के लिए बुलाये गये सोवियत विशेषज्ञ तिरस्कृत होकर चले गये और माओ को अच्छा मौका मिला। दो सौ से कम बन्दूको और एक हजार अनुयायियो तथा ऐसे स्फूर्तिदायक विचार के साथ, जो करोडो चीनी किसान-परिवारो के लिए उपयुक्त था, वह एक सगठन-केन्द्र की तलाश मे दक्षिण की ओर चल पडा।

मध्य दक्षिणी चीन में हुनान-किआग्सी सीमा पर चिगकानशान पर्वत की चोटी पर, माओ और चूते, जो १९५५ की पैकिंग सरकार मे द्वितीय महत्वपूर्ण अधिकारी था, के मिलन मे साम्यवादी चीन का भावी नेतृत्व तैयार हुआ। चू चवान जमीन्दार के धनाढच परिवार मे उत्पन्न हुआ था। उसने यूनान की सीमा पर युवक सेनानी की हैसियत से गुरिल्ला युद्ध के तत्वो को सीख लिया था। ३३ वर्ष की आयु में उच्च जीवन की अभिरुचि के साथ वह एक ब्रिगेडियर था और १९२४ में जब तक वह जर्मनी नही गया, एक पेशेवर सैनिक साहसिक था। वहाँ गोटिन्जेन मे उसने समाजशास्त्र का अध्ययन किया, अपनी व्यक्तिगत आदतो में सुधार किया और बर्लिन की साम्यवादी पार्टी मे शामिल हो गया।

अपने ग्रामीण युवा-जीवन से लेकर ट्रान्स साइबेरियन रेल से चीन वापस आने तक चू ने ग्रामीण एशिया का इतना पर्याप्त दर्शन कर लिया था कि वह भी माओ की तरह मानने लगा था—"जनता समुद्र है। हम लोग मछली है। जब तक समुद्र उष्ण और मैत्रीपूर्ण होता ह तब तक हम उसमें तैर सकते है और जी सकते है।" अपने मिलन के दिन से ही चू और माओ ने निश्चय कर लिया कि वे कुओमिन्ताग को नष्ट करके रहेगे और साम्यवादी चीन की स्थापना करेगे।

यद्यपि अभी भी उसके सिपाहियो की सख्या बन्दूको से अधिक थी, तथापि चू ने चार वर्षों में एक लाख आदमियो की सुदृढ लाल सेना का सगठन कर एक केन्द्रीय शक्ति का निर्माण कर लिया था। १९५५ में चू साम्यवादी चीन के ४० लाख सैनिको की सेना के सेनापति के रूप मे चौथाई शताब्दी के सयुक्त प्रयत्नो के बाद भी माओ का अडिग सहयोगी बना रहा।

उन्ही दिनो हुनान मे भावी कम्युनिस्ट सत्ता के दो अन्य प्रमुख सदस्य भी उनसे आकर मिल गये। इनमे से एक था, कठोर साधक लिउ शाओ ची, (Liu Shao Chi) जो पार्टी का सिद्धान्त-निर्माता था; दूसरा था पेरिस-प्रशिक्षित चाउ एन लाई, जो विदेश-नीति का प्रवक्ता था।

१९२८ से चीनी साम्यवादी दल के नेतृत्व ने किसी भी देश के साम्यवादी दल की क्रान्ति तथा सरकार के अत्यन्त व्यापक व्यावहारिक अनुभव प्राप्त किये थे। किसान-क्रान्ति पर आधारित, लाल सेना के निर्माण की अपनी प्रमुख नीति का पालन करते हुए माओ तथा उसके समर्थको ने किआगृसी तथा हुनान में दक्षिणी चीन के पर्वतो पर किसानो के विद्रोहो को उभारा, जिनमे से अनेक हिंसात्मक थे।

उनकी नयी क्रान्तिकारी सरकार ने, जो अपने को हुनान किआगसी प्रदेश श्रमिक तथा कृषक-सरकार कहती थी, धीरे-धीरे जमीन्दारों की जमीनो को जब्त करना और उन्हे किसानो मे बाँटना शुरू किया। मार्क्स के सम्मान में कागजी विधान स्वीकार कर लिया गया जिसमें उन अधिकतर अस्तित्वहीन कारखाना-मजदूरो का समर्थन किया गया था, जो कभी एक भावी कम्यूनिस्ट सरकार के अन्तर्गत एक राजनीतिक शक्ति के स्रोत के रूप में विकसित हो सकते है।

१९३१ मे माओ ने चीनी सोवियत गणराज्य की घोषणा की। क्याग्सी के जुई-चिन में इसकी राजधानी थी और उस समय इसका छः जिलो पर नियत्रण था। मन्चूरिया पर जापानियो के आक्रमण के बाद इसने जापान के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी।

× × ×

इसी बीच नानकिग में, १९२७ से १९३७ के दशक में च्याग काई शेक की राष्ट्रवादी सरकार, चीन की सभी पिछली सरकारो की अपेक्षा अनेक प्रकार से अधिक आधुनिक तथा प्रभावशाली सिद्ध हो रही थी। पार्टी तानाशाही के आधार पर कुओमिन्ताग द्वारा नियत्रित सरकार अपनी वित्तीय शक्ति के

लिए शंघाई के नये चीनी व्यापारी वर्ग पर निर्भर थी।

च्याग ने काफी उन्नति की। चीनी प्रभुसत्ता पर 'असमान सधियो' द्वारा प्रस्थापित अनेक प्रतिबन्ध, जिनके विरुद्ध सुन ने कहा था, समाप्त कर दिये गये। अनेक विदेशी रियायतें चीन को वापस मिल गयी। शघाई स्थित प्राचीन चीनी-विदेशी मिश्रित न्यायालय बन्द कर दिया गया और सरकार ने अपने अधिकाश तट-कर और चुगी क्षेत्र वापस ले लिये।

दीवानी और फौजदारी के कानूनो मे सुधार कर उन्हे कार्यान्वित किया गया। पश्चिमी प्रशिक्षित वित्तीय प्रशासक टी वी सुग जैसे व्यक्तियो के प्रभाव के अन्तर्गत मुद्रा-एकीकरण के प्रयत्न किये और आधुनिक आयव्यय के लेखा-जोखा की प्रणाली चलायी गयी। रेलो तथा सडको के निर्माण का एक साधारण कार्यक्रम प्रारम्भ हुआ। नागरिक सेवा को विस्तृत किया गया। अफीम-उत्पादन, पग-बन्धन और अभिभावको द्वारा तय की गयी शादियो की प्राचीन समस्याओ के विरुद्ध प्रयत्न किये गये। ग्रामीण क्षेत्रो मे साक्षरता, जनस्वास्थ्य, वृक्ष तथा पशुपालन के जबर्दस्त प्रयास किये गये और फसलो के उत्पादन मे सुधार किये गये। डाक्टर जेम्स वाई सी येन के प्रशसनीय प्रयत्नो से दो करोड लोगों को ग्राम-विकास योजना के अन्तर्गत लाया गया जिस तरह आज भारत में सफलतापूर्वक किया जा रहा है।

च्याग के अधीन इनमे से अनेक सफलताएँ वास्तविक एव उत्साहप्रद थी। फिर भी, तत्कालीन आवश्यकताओ को देखते हुए वे अशान्त, अधीर लोगो के लिए केवल छिट-पुट, अल्पकालीन सकेत मात्र प्रतीत हुईं। सच तो यह है कि किसान जीवन को पीसने वाली कठिनाइयाँ बनी रही।

बहुतो के लिए भूमि-लगान अत्यधिक रहा और किसानो के नकद चुकता न करने पर उन्हे मजदूरी या पदार्थ में चुकता करना पडता था। लगान-अदायगी के वास्ते, लिये गये ऋण या अग्रिम पर ब्याज की दर १५ से ३० प्रतिशत तक थी। अभी भी ग्रामीण क्षेत्रों में 'सैनिक सेवा कर' वसूल किया जाता था। सेना में भर्ती करने वाले स्थानीय अफसर ही तय करते थे कि 'छूट की दर' के आधार पर किसको भर्ती करना चाहिए और किसको नही। प्राय यह दिया गया धन अफसरो की जेबो में ही चला जाया करता था।

इन सभी कारणो के अतिरिक्त किसानो की उदासीनता और असहयोग के कारण, च्याग ने वास्तव मे जो भी सुधार किये, वे प्राय असतोषजनक ही सिद्ध हुए और जार के अधीनस्थ रूस की तरह चीन मे भी अधिक व्यापक

परिवर्तनो को तीव्र बनाने का कारण बने। एक टीकाकार ने लिखा है, चीन के गाँवो की समस्याये इतनी व्यापक थी और परिवर्त्तन के लिए दबाव इतना अधिक था कि सुधार प्राय क्रान्ति की दिशा मे सम्भवत प्रतिक्रियाओ की शृखला ही उत्पन्न करने वाले थे।

चीन की प्रभावशाली छात्र-सस्थाएँ भी पृथक् रही और प्राय विरोधी ही बनी रही। सरकार छात्र-मत की तीव्र धाराओ को प्रेरणात्मक तथा रचनात्मक प्रगति की दिशा मे मोडने की आवश्यकता के प्रति पर्याप्त रूप से जागरूक नही थी। १९१९ में ४ मई के प्रदर्शन के बाद से विद्यार्थी कई बार विदेशी प्रभावो तथा घरेलू प्रतिक्रिया के विरोध मे सामूहिक रूप से खुले आम भडक उठे थे। १९३६ तक वे जापान से लडने में च्याग की झिझक के विरुद्ध भी भडक गये थे।

चीन के अधिकाश लोगो ने वस्तुत च्याग को धीरे-धीरे ठुकरा दिया, यद्यपि इसमें काफी समय लगा और यह कोई अद्भुत बात नही जान पडी। शनै शनै' कुओमिन्ताग लोकप्रिय कल्पनाओ और मूलभूत आदर्शवाद से वचित हो गयी।

च्यांग में आवश्यक रूप से सकल्प का अभाव नही था, यद्यपि उसकी अनेक विडम्बनाएँ स्वय उसीकी बनायी हुई थी। ऐतिहासिक घटनाओ, राजनीतिक शक्तियों और व्यक्तिगत दबावो ने अन्त मे उसे इस हद तक घेर लिया कि उनको रोकने में वह असमर्थ हो गया। अन्ततोगत्वा घटनाओ ने स्वय असमर्थता, के एक 'दुखान्त' नाटक की रचना की।

च्याग एक सनिक था और अन्य अधिकाश सैनिको की भाँति उसने सुदृढ राष्ट्रीय सेना के निर्माण को उच्चतम प्राथमिकता प्रदान की। प्राय विचारो के महत्व तथा उनसे प्रभावित लोगो की कठोर शक्ति की ओर ध्यान न देते हुए, उसने माना, जसा कि हमारे बहुत-से सेनानी (जनरल) आज भी मानते है, कि साम्यवाद की पराजय मुख्यत' एक सैनिक समस्या है।

एक कुशल सेना के निर्माण के कार्य में सहायता के लिए उसने खर्चीले और पेशेवर विदेशी सलाहकारो को बुलाया। अमरीकी सेनानियो ने १९४० और १९५० के दशको में इस कार्यभार को ग्रहण किया, जबकि वहाँ पर १९२० के दशक में रूसी तथा १९३० के दशक में जर्मन पूर्वाधिकारी रह चुके थे।

च्याग ने यह जान कर जुआ खेला कि अन्य सामाजिक तथा आर्थिक तत्वो से वंचित देशभक्ति सुदृढ सेना के निर्माण के लिए पर्याप्त आधार प्रदान

करेगी। इस सम्बन्ध मे माओ का निर्णय अधिक श्रेष्ठ सिद्ध हुआ, । च्याग ने यह आशा की थी कि राष्ट्रीय सेना उस राष्ट्रीय चेतना के निर्माण मे सहायक होगी जो जनता के प्रति आस्था के कारण युद्ध-स्वामियो को हटा देगी और इस प्रकार कुआमिन्ताग सरकार की शक्ति को बढायेगी।

च्याग यह भी जानता था कि चाहे जापानी शत्रु हो या अपने ही देश के साम्यवादी, उनके विरुद्ध उसकी सेना अपरिहार्य होगी। १९३१ के आरम्भ में मञ्चूरिया पर जापानी आक्रमण के समय उसे निश्चय करना पडा कि किसके साथ युद्ध किया जाय। स्पष्ट ह कि उसकी सेनाएँ अकेले दोनो खतरो का सामना करने मे असमर्थ थी।

जापानियो ने अपने आक्रमण-काल को बडी बुद्धिमानी से निश्चित किया था। पश्चिमी शक्तियाँ अपनी बढती हुई मन्दी मे उलझे रहने अथवा अपने ही आन्तरिक सघर्षो को शान्त करने या साहस बटोर सकने मे अशक्त होने के कारण चीन को नैतिक सहायता के सिवाय और कुछ नही दे सकती थी। जनेवा मे राष्ट्र सघ के अधिवेशन मे जब रूसी परराष्ट्र मत्री लित्विनाफ ने जापानी आक्रमण के विरुद्ध सामूहिक मोर्चा बनाने का अनुरोध किया, तब ब्रिटेन और फ्रास ने अस्वीकृति प्रकट करने के सिवाय, और कुछ करने से इन्कार कर दिया। और हमारा विदेश-विभाग इतना ही कह कर सन्तुष्ट हो गया कि वह जापानी आक्रमणो के परिणामो को मान्यता नही देगा।

चीन की मदद करने मे अटलाटिक राष्ट्रो की उन अधिकाश असमर्थताओ से सोवियत सघ ने बराबर लाभ उठाया। २२ जुलाई, १९३७ को "इजवेस्तिया" ने कहा, "जापान मञ्चूरिया मे अपनी योजनाओ मे पश्चिमी शक्तियो की निष्क्रियता के कारण ही सफल हो सका। १९३१ और १९३२ की जापानी विजय मे इगलैण्ड की मौन सहमति का कम हाथ नही था।"

लित्विनाफ ने जनेवा मे अभियोग लगाया कि ब्रिटेन ने जापान के साथ गुप्त समझौता किया था कि जब जापान मञ्चूरिया को हडपेगा तो वह अलग रहेगा, यदि जापान इसके बदले मे यह वचन दे कि वह मध्यचीन से, जहाँ पर ब्रिटेन के व्यापक व्यापारिक स्वार्थ है, अलग रहेगा। यद्यपि सोवियत प्रतिनिधि ने, जापानी आक्रमण को रोकने के लिए नौ ताकतो की 'नौ शक्ति सधि' के प्रयोग के लिए विदेशमत्री स्टिम्सन के प्रयत्नो का स्वागत किया, फिर भी उसने चतुराई से सकेत किया कि सयुक्त राज्य अमरीका ने इन वर्षों में जापान को तेल तथा युद्ध सामग्री प्रदान करके काफी लाभ उठाया है।

अमरीकी-चीनी सम्बन्धो के लिए यह सारा किस्सा हलके मन से दिये गये आश्वासनो की निरर्थकता तथा प्रवचना का एक महँगा सबक था। मञ्चूरिया निश्चित रूप से वह स्थान था जहाँ पर सयुक्त राज्य अमरीका ने १९०० में हे की "द्वार खोलो नीति" और १९२२ में वाशिंग्टन में की गयी नौ शक्तियो की सधि द्वारा अपने कूटनीतिक वचनो को अत्यधिक विस्तृत किया था। दोनो ही मे चीन की प्रादेशिक एकता का आश्वासन विशेष रूप से दिया गया था।

तथापि इन महत्वाकाक्षापूर्ण दायित्वो के अनुसार अपनी सैन्य शक्ति को सुदृढ करना तो दूर रहा, उसी वाशिंग्टन सम्मेलन के परिणामस्वरूप, नि'शस्त्री-करण-समझौता हुआ, जिससे सयुक्त राज्य अमरीका सैन्य शक्ति की दृष्टि से पश्चिमी प्रशान्त महासागर में नि शक्त बन गया।

१९३१ में जापानियो ने ठीक ही अनुमान लगाया था कि हमारी प्रतिक्रिया बाँह चढाने और दाँत पीसने तक ही सीमित रहेगी। विभक्त, नि शक्त तथा असहाय चीन आक्रमणो के प्रथम क्रम का मुकाबला करने के लिए अपने ही साधनो पर छोड दिया गया, जिससे अन्त में द्वितीय विश्व युद्ध का सूत्रपात हुआ। सोवियत सघ ही एक मात्र अकेला राष्ट्र है, जो उसके लिए कुछ करने के लिए तैयार दिखाई पडा। इस तथ्य ने चीनी जनता पर गहरा प्रभाव डाला।

बारहवाँ प्रकरण

लम्बी यात्रा

दो शत्रुओ का सामना होने पर च्याग ने हुनान और क्याग्सी मे साम्यवादी शक्ति के अचलो को समाप्त कर देने के उद्देश्य से "विनाशकारी अभियानो" की ओर सर्वप्रथम ध्यान दिया। जिस प्रकार की प्रतिरक्षा का उसको सामना करना पडा, उसका सकेत उन चार नारोसे मिलता है जिनका उपयोग उस समय चिग्कानशान में माओ के सदर मुकाम में होता था। वे गुरिल्ला युद्ध-प्रणाली की आकर्षक पूर्व-झाँकियाँ है, जिनका बाद में लाल सेना ने बडे पैमाने पर उपयोग किया और फ्रासीसियो को हिन्दचीन से निकाल बाहर करने मे हो-ची-मिन्ह ने जिनको ग्रहण किया –

१. जब शत्रु बढता है तो हम पीछे हटते है।

२ जब शत्रु रुकता और डेरा डालता है तब हम उसे परेशान करते है।

३ जब शत्रु युद्ध से बचने का प्रयत्न करता है, हम हमला करते है।

४ जब शत्रु पीछ हटता है तब हम उसका पीछा करते है।

दो या तीन वर्षों तक इन तरीको ने माओ और चू तेह को ठहर सकने के योग्य बनाया, परन्तु १९३४ के अन्ततक "चीनी सोवियत गणतत्र" च्याग के निरन्तर प्रहार से ध्वस्त हो गया। इस स्थिति मे पीछे हटने की अत्यन्त आवश्यकता थी और ऐतिहासिक 'लम्बी दौड' का निश्चय हुआ। यह एक चाल थी जिसने अन्ततोगत्वा पराजय को विजय मे परिणत कर दिया।

उनके पास २० हजार चुने-चुनाये लोग बच गये थे जो दो वर्ष बाद उत्तरी-चीन के येनान में अपने नये शक्तिशाली अड्डे पर प्रकट हुए और जिन्होने दुर्भिक्ष और महामारियो का तथा अनेक छिपे आक्रमणो और युद्धो का सामना किया था। छ हजार मील अर्थात् अमरीकी महाद्वीप की चौडाई के दुगुने फासले की पैदल यात्रा करके उन्होने चीन के बारह प्रान्त पार किये, अस्थायी रूप से बासठ शहरो पर कब्जा जमाया, २४ विशालतम नदियो और एशिया की सबसे बडी १८ पर्वत श्रेणियो को पार किया। कुओमिन्ताग की लाखों सेनाओ से लडते हुए यह सशस्त्र देशान्तरगमन बीस करोड की आबादी वाले क्षेत्रो से हुआ।

युद्धों के दौरान में साम्यवादियो ने अपनी ग्राम्यक्रान्ति तथा अपनी जापान-विरोधी नीति को समझाने के लिए प्रत्येक अधिकृत नगर में आम सभाएँ बुलायी। उन्होने नाटकों का प्रदर्शन किया, बहुत से कैदियो को आजाद किया, व्यापारियो, कुओमिन्ताग अफसरो, बड़े-बडे जमीन्दारो और कर वसूल करने वालो की सम्पत्ति जब्त कर ली और उनके सामानो को गरीबो में बाँट दिया। नाटकीय प्रभाव की दृष्टि से इस 'लम्बी दौड' की तुलना नही की जा सकती।

बचे हुए लोगो की सख्या के चौगुने आदमी अर्थात् अस्सी हजार व्यक्ति तो मार्ग मे ही चल बसे। उन तीस औरतो में माओ तथा चाऊ एन लाई की पत्नियाँ भी थी, जो येनाम पहुँचने के लिए जीवित रही। माओ के तीन बच्चे इस लम्बी यात्रा मे स्थानीय किसानो को दे दिये गये, जिनके पुन पाने के सभी प्रयत्न व्यर्थ रहे। निर्बल और अनिश्चित लोग मार्ग मे ही गिर गये।

बचे हुए लोग थक कर चूर-चूर हो गये थे, किन्तु वे भावी युद्ध के लिए सन्नद्ध थे। अविश्वसनीय आपत्तियो के बीच माओ को अपनी सेना पर अपने नियत्रण का विश्वास था, और लाल सेना तथा इसके नेतृत्व ने कठोरतम प्रशिक्षण प्रदान किया था। भविष्य में लम्बी यात्रा के सामान्य अनुभव लाल चीन के अन्त में होने वाले शासको को सत्ता की दीर्घ यात्रा के लिए असाधारण शक्ति का एक सूत्र प्रदान करेगा।

१९३१ से १९३६ तक जब कि च्याग ने माओ की साम्यवादी सेनाओ से युद्ध किया, वह मञ्चूरिया तथा उत्तरी चीन में जापानी आक्रमण के सामने पराजित हुआ। दिसम्बर, १९३६ तक उसकी सेनाएँ माँग करने लगी थी कि उनकी बन्दूके घर के विद्रोहियो पर न चलकर विदेशी आक्रमणकारियो पर चलनी चाहिए।

उसी समय मञ्चूरिया की सेना के सेनापति च्याग सुए-लिआग ने च्याग को उडा दिया। इसी स्थिति से जापानियो के विरुद्ध सयुक्त मोर्चा बनाने का समझौता हुआ जिसके लिए च्याग तथा चाऊ एन लाई ने बातचीत की थी। च्याग का जीवन खतरे में था और चाऊ इस स्थिति में था कि उस पर पिस्तौल चला दे। शायद इसीलिए बाद में च्याग ने उसे एक समझदार साम्यवादी कहा था, जिसका अभिप्राय था कि फिलहाल और कम से कम चाऊ के साथ सह-अस्तित्व संभव है।

येनान में नया साम्यवादी अड्डा लम्बी यात्रा से बच हुए लोगों के लिए दूरस्थ शरणस्थल मात्र नही था। उसकी स्थिति सामरिक दृष्टि से भी बहुत

ही महत्वपूर्ण थी। येनान में चीन, जापान और रूस की भाग्यरेखाएँ भौगोलिक दृष्टि से एक साथ गुँथी हुई थी। यह जान कर और कदाचित् इस बात से आतकित होकर कि च्याग के नेतृत्व मे सयुक्त मोर्चा कही और अधिक दृढ राष्ट्रीय चेतना न पैदा कर दे, जापानियो ने खास चीन पर शीघ्रता से आक्रमण कर दिया। १९३७ में पेकिंग के पास मार्कोपोलो पुल पर आक्रमण के साथ चीनी-जापानी युद्ध सचमुच शुरू हो गया।

नयी राष्ट्रीय एकता के प्रमाणस्वरूप, लाल सेना तात्रिक दृष्टि से केन्द्रीय सरकार की कमान में रखी गयी और क्रान्तिकारी साम्यवादी कार्यक्रम कुछ ढीला हो गया, परन्तु इसके सिद्धान्त बडी सावधानी से सजीव बनाये रखे गये। लम्बी यात्रासे चीनी-शक्ति के मौलिक स्रोत के सम्बन्ध मे माओ के प्राचीन विश्वास और भी दृढ हो गये थे। उसने घोषणा की कि केवल जागृत किसानो से ही हम जापानियो का मुकाबला कर सकते है।

अगस्त, १९४५ तथा जापान के अन्तिम पतन तक ही चीन मे कुओमिन्ताग तथा साम्यवादियो के बीच ऊपरी सहयोग कायम रह सका। यह आकस्मिक सहयोग था, जो कभी-कभी युद्ध के रूप मे भी दिखायी पडता था, क्योकि सयुक्त मोर्चे मे तो १९४० में ही दरार पड चुकी थी। दोनो पक्ष निरन्तर प्रतियोगात्मक लाभ के लिए चाले चला करते थे।

१९३८ में समुद्रतट तथा सचार-साधनो पर जापानियो के नियत्रण ने च्याग को और भी भीतर की ओर जेचवान तक खिसक जाने के लिए मजबूर कर दिया। यहाँ चुकिंग की अपनी नयी राजधानी मे वह अधिकृत केन्द्रीय सरकार का प्रतिनिधि बना रहा। येनान के अपने सदर मुकाम मे माओ-त्से-तुग, साम्यवादी नियत्रण के अन्तर्गत विशाल और बढते हुए क्षेत्र का प्रभावशाली नेता था।

इन्ही दिनो माओ ने अनेक छोटी-छोटी पुस्तके लिखी जिनमें उसने तर्क पेश किया कि जापानियो के विरुद्ध युद्ध के लिए जिस चाल की जरूरत है, वही चीन के स्थगित आन्तरिक युद्ध पर भी लागू होती है। उसने भविष्यवक्ता की भाँति कहा, "गाँव तथा देहाती क्षेत्र कस्बो और शहरो को हरा देंगे। प्रतिरोध का युद्ध सचमुच किसानो का युद्ध है। प्रतिरोध में हम जिन चीजो का इस्तेमाल करते है, जिन चीजो पर हम जिन्दा है, वे सभी वास्तव मे हमको किसानो से मिलती हैं-जो हमारे सर्वस्व हैं।"

जापानियों द्वारा तटीय शहरो पर अधिकार हो जाने पर, च्याग को न

केवल सीमा-शुल्क मिलना बन्द हो गया, बल्कि उसके स्वदेशी समर्थन का प्रमुख स्रोत भी बन्द हो गया। तटीय नगरो के अनेक व्यापारी तथा महाजन (बेकर) आधुनिक व्यापार-वृत्ति की पीढी की अपेक्षा प्रगतिशील रूढिवादी बन गये थे। पश्चिमी प्रान्तो के जमीन्दार मृत अतीत के प्राचीन रुढिवादी थे।

इस प्रकार, जब च्याग चुंकिंग गया, तो वहाँ पर उसे अधिकाधिक ऐसे लोगो पर निर्भर रहना पडा, जो क्रान्तिकारी घटनाचक्र के सम्पर्क में नही थे। इसके बदले इस स्थिति ने राष्ट्रीय सरकार को धीरे-धीरे किसानों का शत्रु बना दिया।

जापान पर अन्तिम विजय के बावजूद, चुंकिंग मध्यान्तर ने, जो सैनिक दृष्टि से अनिवार्य था, एक संयुक्त असाम्यवादी चीन के निर्माणार्थ च्याग के प्रयत्नो में गम्भीर बाधा उत्पन्न कर दी। कर तथा भर्ती की नीतियो ने किसानो को और भी भडका दिया। भ्रष्टाचार ने देश से नैतिकता का सफाया कर दिया। मुद्रास्फीति ने आर्थिक ढाँचे को छिन्न-भिन्न कर दिया और नागरिक सेवा को बढा दिया।

साम्यवादी यातनाओं, अपर्याप्त साधनो, अनाज्ञाकारी प्रादेशिक सेनाधिपतियो, उसके अपने राज भवन से प्रसारित व्यापक घूसखोरी और जन समर्थन प्राप्त करने के विचारों के अभाव के कारण, अत्यधिक आवश्यक नैतिक उत्साह प्रदान करने में च्याग उत्तरोत्तर असमर्थ होता गया। च्याग की इस दुर्बलता के कारण उसकी पहले की सफलताओं की याद तथा प्रशसा को धीरे-धीरे भुला दिया गया। उत्तर में माओ तथा उसके साथियो की विश्वासपूर्ण प्रतिज्ञाओ ने, चुंकिंग के राष्ट्रवादियों की शकाओ तथा उनकी आपस की फूट की तुलना में बडा अनुकूल प्रभाव पैदा किया।

एक विचार की दृढता के कारण कम्यूनिस्ट लगभग एक शताब्दी पूर्व हुग द्वारा संचालित क्रान्तिकारी शक्तियो के साथ घुलमिल गये। अगस्त, १९४५ में युद्ध के बाद 'लम्बी यात्रा' में सत्ता के लिए बोये गये बीजो ने चीन की धरती को शीघ्र फसल के लिए तैयार कर दिया था।

+ + +

अक्तूबर, १९४५ में माओ तथा च्याग ने शान्ति और एकता की इच्छा का वचन देते हुए एक संयुक्त वक्तव्य प्रकाशित किया, किन्तु मञ्चूरिया पर अधिकार जमाने की होड़ में साम्यवादियों तथा राष्ट्रवादियो के बीच पहले ही संघर्ष शुरू हो गये थे और महीने के अन्त तक ग्यारह प्रान्तो में लडाई शुरू हो गयी।

पहले तो जापानियो द्वारा खाली किये गये प्रदेशों मे लोगो ने लौटनेवाले राष्ट्रवादियो का स्वागत किया, परन्तु शीघ्र ही विकर्षण भी प्रारम्भ हो गया। चुंकिग से लौटने वाले नेताओ मे कुछ नये चेहरे भी थे। १९३८ से १९४५ तक कुओमिन्ताग के अधिकाश प्राचीन और प्रभावहीन प्रशासनाधिकारियो ने न केवल अपनी स्थिति को कायम रखा, बल्कि उसे और भी सुदृढ बना लिया। सत्ता-ग्रहण के साथ ही जिस घूसखोरी और शासन की अकुशलता ने उन्हे कलकित कर दिया था उससे आजादी की चमक मे धुधलापन आ गया। युद्ध के पुनरारम्भ के साथ ही मुद्रा-प्रसार अधिक बढ गया।

दिसम्बर में राष्ट्रपति के विशेष प्रतिनिधि के रूप मे अमरीका के अत्यन्त ख्यातिप्राप्त सनिक तथा राजनीतिज्ञ, जनरल जार्ज मार्शल को चीन भेजा गया। उन्होंने स्थायी युद्धबन्दी की व्यवस्था करने तथा सयुक्त सरकार के निर्माण के लिए और निर्माण मे धैर्यपूर्ण तथा अथक बातचीत में एक वर्ष बिता दिया। कुछ महीनो के लिए युद्ध बन्द हो गया। तब दोनो पक्षो ने एक दूसरे पर फिर से युद्ध शुरू करने का अभियोग लगाया।

धीरे-धीरे यह स्पष्ट हो गया कि मिलीजुली सरकार बनाने के लिए कोई उचित आशा नही है, चाहे उसका नेता च्याग हो या अन्य कोई उदार नरम-वादी। जब जनवरी, १९४७ में जनरल मार्शल विदेश-मत्री के पद को सुशोभित करने के लिए चीन से रवाना हुए, तो उन्होने अपने कार्य की विफलता के लिए पारस्परिक अविश्वास तथा दोनो पक्षो के उग्रवादियो को दोषी ठहराया।

जब देश खुले गृह-युद्ध में फँस गया, उस समय कोई आकस्मिक पर्यवेक्षक यही निष्कर्ष निकालता कि राष्ट्रवादियो को अभी भी हर तरह का लाभ था। कानूनी ढग से मान्य सरकार उन्ही की थी। उनके पास अधिक शासन क्षेत्र था। उनके पास अपेक्षाकृत बडी और सुसज्जित सेनाएँ थी जिनके पीछे नौ-सेना तथा वायु-सेना की शक्ति थी। साम्यवादियो के पास इन दोनो का अभाव था।

केन्द्रीय सरकार को सयुक्त राज्य अमरीकी काग्रेस द्वारा निर्धारित दो अरब डालर का माल तथा आर्थिक सहायता प्राप्त थी। इसके अतिरिक्त राष्ट्र-वादियों को अमरीकी बचत सम्पत्ति में से यह भी स्वतत्रता प्राप्त थी कि जहाँ कही भी उपलब्ध हो, एक डालर में २५ सन्ट के अनुपात से, वे एक अरब अमरीकी युद्ध बचत सामग्री में से १ अरब डालर का सामान खरीद सकेगे। १९४६ के पतझड़ तक अमरीकी सैनिक मिशनो ने उन बीस डिवीजनो के अलावा जो

जापान के विरुद्ध युद्ध के समय प्रशिक्षित और सुसज्जित किये गये थे, चालीस कुओमिन्तांग सैनिक डिवीजनों को प्रशिक्षित किया।

फिर भी १९४७ के अन्त तक माओत्से-तुंग की लाल सेनाएँ साधारणतया आक्रमक थी। च्यांग की देखने में विशाल, किन्तु प्राय निरुत्साहित सेनाओ के विरुद्ध उन्होंने न केवल गोलियाँ, हथगोले और गोले फेंके, बल्कि विस्फोटक विचार भी फैलाये। राष्ट्रवादी केवल बन्दूकों से जवाब दे सकते थे और वे बन्दूके भी ऐसे लोगो के हाथ मे थी, जिनमे किसी प्रकार का विश्वास न था।

दो वर्षों बाद, अनेक जबर्दस्त विजयों के उपरान्त पेकिंग से चीनी जन-गणतंत्र की घोषणा की गयी। ७ दिसम्बर, १९४९ को पर्ल हार्बर पर जापानियो के आक्रमण के ठीक आठ वर्ष बाद च्यांग काई शेक ने फारमोसा को अपना नया सदर मुकाम बनाया और चीन की धरती पर साम्यवादी विजय निश्चित हो गयी।

तभी से अमरीका में, साम्यवाद विरोधी शक्तियो की अन्तिम पराजय के लिए दोषी ठहराने के व्यर्थ और प्राय भावुक प्रयास में एक कटु दलगत मतभेद पैदा हो गया है। अब यहाँ उस मतभेद पर कुछ और कहने से कोई लाभ न होगा। बाते बडी जटिल है और कुछ मामले अभी प्रच्छन्न ही है। किन्तु सभी आरोपो और प्रत्यारोपो में, हमें चीन की दु.खद घटना से उन मुख्य शिक्षाओ को स्पष्टरूप से अपने सामने रखने का प्रयत्न करना चाहिए, जिनके सम्बन्ध में अधिक मतभेद नही है।

मुख्य चीन में, च्यांग के अन्तिम तीन वर्षों में चीन स्थित अमरीकी राजदूत डा. जॉन लेटन स्टुअर्ट स्वयं उस समय की अमरीकी नीति के कुछ पहलुओ के आलोचक थे। डा स्टुअर्ट ने, चीन में अपने चालीस वर्षों के अनुभवो के आधार पर १९५४ में लिखा—"कुओमिन्तांग ने प्रजातांत्रिक तथा सामाजिक सुधारो के विधेयात्मक उद्देश्यों की अपेक्षा दुर्बल, विदेशी साम्राज्यवादी राजवंश को उखाड फेंकने की, निषेधात्मक प्रेरणा और फिर वैसा ही प्रादेशिक युद्ध स्वामियो के साथ करने की प्रेरणा के बल पर सत्ता प्राप्त की थी।"

आगे लिखते हुए उसने कहा कि एक ओर च्यांग के शासन में सार्वजनिक निधियो से मुनाफाखोरी, देश-हित की अपेक्षा परिवार, मित्र अथवा गुट की अधिक चिन्ता, दिखावा कायम रखनेकी भावना, नौकरशाही, "लाल फीता" और अकुशलता का बोलबाला था और दूसरी ओर निर्धन जनता और साम्यवादियो द्वारा नगण्य साधनो के कुशल प्रयोग की पृष्ठभूमि थी।

च्यांग की व्यक्तिगत ईमानदारी की प्रसिद्धि चाहे जितनी भी रही हो, परन्तु वह सभी स्तरो पर उन अधिकारियो से घिरा हुआ था, जिन्होने उसके नेतृत्व को बदनाम कर दिया। यद्यपि उसके बहुत से राष्ट्रवादी सैनिक वीरतापूर्वक लडने के लिए तैयार थे, तथापि उनके सेनापतियो ने पूरे डिवीज़न के डिवीजन को एक गोली चलाये बिना बेच दिया था।

इस प्रकार राष्ट्रवादी सेनाओ को दिये गये अमरीकी सैनिक सामानो का बहुत बडा भाग, इस प्रकार के आत्मसमर्पण तथा विमुखताओ के कारण, साम्यवादी हाथो मे पहुँच गया। जैसे-जैसे परिस्थिति बिगडती गयी, कुओ-मिन्ताग पर अविश्वसनीय भ्रष्टाचार तथा बढते हुए आतकवाद का राज्य छा गया। जैसे जैसे उसकी समस्याएँ बढती गयी, वैसे वैसे उसका नेतृत्व अत्यावश्यक आर्थिक तथा राजनीतिक सुधारो की ओर न बढकर प्रतिक्रिया-वाद की ओर बढता गया। इससे असाम्यवादी सुधारक, नरमवादी तथा बुद्धिजीवी वर्ग धीरे-धीरे वाम पक्ष की ओर झुकने लगे।

१९४७ की गर्मियो मे जनरल वेडमेयर को एक विशेष कार्य से चीन भेजा गया। ११ जून, १९५१ को सिनेट की समिति के समक्ष उनसे पूछा गया कि चीन का क्यो पतन हुआ ? उन्होने जवाब दिया, "मुख्यतया मनोबल के अभाव के कारण। युद्ध-सामग्री का अभाव नही था। मेरे विचार से यदि वे चाहते तो यागटीजी की रक्षा झाडुओ से कर सकते थ।"

च्याग की एक अत्यन्त प्रबल समर्थक अमरीकी पत्रिका "टाइम" ने जन-रलिस्मो के फारमोसा भाग जाने के बाद ताइपेह मे राष्ट्रीय विधानसभा मे उनके कथन का इस प्रकार उद्धरण दिया है, "मै स्वय अपने को दोषी कहूँगा। मुख्य-भूमि पर विनाशकारी सैनिक पराजय का कारण कम्यूनिस्टो की अपार शक्ति नही थी, बल्कि सगठनात्मक पतन, अनुशासनहीनता तथा पार्टी सदस्यो का हीन मनोबल था।"

अनेक अमरीकियो ने विश्वासपूर्वक यह मान रखा था कि चीनी अपने धार्मिक विश्वास तथा घनिष्ठ पारिवारिक बधनो के कारण साम्यवाद को कभी स्वीकार नही करेगे ; परन्तु प्रबल क्रान्तिकारी शक्ति तथा माओ और उसके साथियो के अनुनय-विनय के सामने ये बाधाएँ नगण्य सिद्ध हुईं।

हर हालत मे चीन की क्रान्तिकारी शक्ति, जो सर्वप्रथम तायपिगो के दिनो मे प्रकट हुई थी और बाद में सुन यात सेन की क्रान्तिकारी गतिविधियो तथा रचनाओ द्वारा फिर से ताजी हो गयी थी, अन्त मे च्यांग के हाथो से माओ के

हाथ मे जा पहुँची। प्राय. पश्चिमी विचारो द्वारा उत्पादित तथा संवर्धित यह गतिशीलता, अपने लिए कोई स्थान चाहती थी। साम्यवादी अपने उद्देश्यो की पूर्ति के लिए उसको चतुरता से प्रयोग में लाने के लिए तैयार थे। जब राष्ट्रवादी अयोग्यता तथा भ्रष्टाचार से चीनी जनता की राजनीतिक आशाएँ लुप्त हो गयी, तब उन्होने अपने पुनर्जीवन के लिए उपलब्ध एकमात्र साधन के रूप में साम्यवाद को स्वीकार कर लिया।

जापानी आक्रमण ने वास्तव में इस बात के निश्चय में सहायता दी कि वैकल्पिक प्रजातान्त्रिक सभावनाओ के समाप्त हो जाने पर साम्यवाद ही एक मात्र उपलब्ध साधन था। इस प्रकार सिंहावलोकन करने पर यह समझना कठिन है कि जब तक चीन के दस लाख गाँवो में राजनीतिक तथा आर्थिक सुधारो के व्यापक कार्यक्रम को अमल मे न लाया जाय, तब तक चीन मे किस प्रकार साम्यवादी विजय को पहले से रोका जा सकता था। यह कार्यक्रम १९४० से पूर्व, जब कि साम्यवादियो के साथ द्वितीय सयुक्त मोर्चा समाप्त हो गया था, शुरू हो जाना चाहिए था।

जमीन्दारो और युद्ध–प्रभुओ से प्राप्त होनेवाले उसके राजनीतिक और आर्थिक समर्थन पर इस प्रकार के कार्यक्रम का जो विपरीत प्रभाव पडता, उसके अतिरिक्त, निधि, कर्मचारियो, उत्पादन और रेलमार्गों के अभाव के कारण च्याग को कदाचित् यह असभव प्रतीत हुआ।

जब जापान के साथ युद्ध का अन्त हुआ, तो सयुक्त राज्य अमरीका की पदाति सेना, नौ सेना तथा वायु सेना द्वारा गम्भीर और व्यापक हस्तक्षेप ही एक मात्र मार्ग रह गया था , परन्तु १९४५ तक, जैसा कि हम देख चुके हैं, राजनीतिक दृष्टि से अमरीकी हस्तक्षेप इतना असभव था कि इसकी बुद्धिमत्ता पर विचारविनिमय के लिए भी हम लोगो को नही बुलाया गया। कुछ अमरीकी राजनीतिज्ञ, जिन्होने बाद में चीन के दु खद पतन से व्यक्तिगत राजनीतिक लाभ उठाने की कोशिश की, उस समय तत्काल अमरीकी सैन्य विघटन पर अत्यधिक जोर दे रहे थे।

चीनी नीति पर हमारा दलगत मतभेद अमरीका को बहुत महँगा पडा। अन्य बातो के साथ उसने उस महत्वपूर्ण शिक्षा पर भी पर्दा डाल दिया है, जिसे हमको मध्य विश्व के लोगो के साथ सफल व्यवहार करने के लिए ग्रहण करना है।

गाँवो की दरिद्रता की पृष्ठभूमि में, उन किसानो पर सफलतापूर्वक प्रभाव

डाल कर, जो एशिया मे शक्ति के गहरे और स्थायी स्रोत है, माओ ने विजय प्राप्त की। माओ ने यह समझ लिया था कि किसानो के उत्साह को जगा कर वह एक ऐसी शक्ति पैदा कर सकता है, जो सुसज्जित और विशाल सेनाओ को भी चुनौती देकर अन्त मे पराजित कर सकती है। उसने समर्पित, संगठित और सुपथप्रदर्शित अल्पसख्यको के हाथ मे निहित इतिहास-निर्मात्री कल्पना-शक्ति मे अपना प्रमुख विश्वास रखा और विजय प्राप्त की।

जसाकि हम बाद मे देखेगे, उसकी विजय के अभिप्रायो को समझने में हमारी निरन्तर विफलता ने उस नाटकीय, परन्तु पूर्वज्ञात पराजय मे काफी योग दिया, जो पाँच वर्षो बाद हिन्दचीन मे साम्यवादी किसानो के हाथो हुई।

तेरहवाँ प्रकरण

चीन और शीत युद्ध

पेकिंग मे नया शासन स्थापित भी न हो पाया था कि फरवरी, १९५० मे मास्को मे माओ और स्तालिन ने एक तीस वर्षीय मैत्री की सधि पर हस्ताक्षर की घोषणा कर दी। चार महीने बाद कोरिया के साम्यवादियो ने ३८ वी समानान्तर रेखा को पार कर दिया, सातवे जहाजी बेडे ने फारमोसा को घेर लिया और सयुक्त राष्ट्रसघ की सेनाएँ युद्ध मे उतर आयी। अक्तूबर में चीनी साम्यवादियो ने स्वय यालू नदी के पार हमला कर दिया और इतिहास मे पहली बार चीनी और अमरीकी सैनिक एक-दूसरे की सगीनो के आमने-सामने आ गये।

यह सब उन लोगो के लिए बहुत घबराहट की बात थी, जिन्होने आशा की थी कि पैकिग और मास्को युद्ध के लिए समान आधार नही बना सकेगे। किसानो के सुधार पर माओ के अधिक बल देने और कुछ क्षेत्रो मे निजी सम्पति बनाये रखनेवाली आर्थिक नीति पर उसके नरम वक्तव्यो ने काल्पनिक उडान को प्रोत्साहन दिया था। कुछ ऐसे भी लोग थे जो यह सोच रहे थे कि एक बार सत्तारूढ होने पर माओ मार्क्सवादी सिद्धान्तो को ठुकरा देगा और अपनी अन्तरराष्ट्रीय नीतियो को रूसी नीतियो के सदृश हो जाने से बचायेगा।

परन्तु ये आशाएँ मिथ्या सिद्ध हुईं। चीनी स्थिति से मेल न खाने पर सद्धान्तिक विचारों को अलग करने मे माओ सर्वदा स्वय लेनिन का उद्धरण देता रहा। लेनिन ने एक बार लिखा, "मार्क्सवाद के सार्वभौमिक सत्य और चीनी क्रान्ति के ठोस व्यवहार पर अपने निर्णय को आधारित करते हुए, चीनी कम्यूनिस्ट पार्टी को स्पष्टत' स्वय अपनी जटिल समस्याओ का स्वतत्र अध्ययन करना था।"

इस प्रकार के मानदण्डो के बारे मे कोई कठोरता नही थी और लचीली नीतियो का पालन करते हुए माओ प्रत्येक अवसर पर लेनिनवादी सिद्धान्तो के प्रति अपनी मौखिक आस्था व्यक्त करता रहा।

क्रेमलिन की नीतियो के प्रति पर्याप्त असन्तोष होते हुए भी माओ ने स्तालिन को विश्व-क्रान्ति का नेता मानने मे कभी हिचक नही दिखायी। इस तरह जब अप्रैल, १९४१ मे क्रेमलिन एशिया मे जापानी आक्रमण के प्रबल विरोध से

हट कर स्पष्ट रूप से उसके परिणामो को स्वीकार कर लेने की नीति पर आ गया, तब माओ ने, मास्को के इस विचित्र रवैये के लिए स्तालिन को स्पष्टत क्षमा कर दिया। जब जापानी सेनाएँ दक्षिण-पूर्व एशिया तथा पर्ल हार्बर पर आक्रमण की तैयारियाँ कर रही थी, तब सोवियत रूस ने जापान के साथ मित्रता और तटस्थता की सन्धि कर ली, जिसका "इजवेस्तिया" ने बडे उत्साह के साथ इस प्रकार स्वागत किया—"अनेक कठिन अनुभवो से निकलने के बाद सोवियत-जापान-सम्बन्ध निश्चय ही एक नयी स्थिति मे प्रवेश कर रहे है, जिनके लाभप्रद सिद्ध होने की आशा है।"

उसके फल का नमूना शीघ्र ही प्राप्त हुआ। साठ दिनो मे ही, जापान के साथी नाजी जर्मनी ने सोवियत सघ पर आक्रमण कर दिया। आठ महीनो के भीतर ही जापानियो ने पर्ल हार्बर पर हमला कर दिया और इस प्रकार योरोप में रूस के नये पश्चिमी मित्रो के प्रयत्नो को निर्बल बनाते हुए अपनी सेनाओ को दक्षिण पूर्वी एशिया की ओर भेज दिया।

सोवियत चालो से माओ के दुखी होने के अन्य व्यक्तिगत कारण भी थे। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद स्तालिन को चीन पर च्याग के प्रभुत्व का इतना विश्वास था कि चीनी-सोवियत मैत्री-सधि के साथ सलग्न सोवियत नोट मे, जिस पर अगस्त, १९४५ मे मास्को मे हस्ताक्षर हुए थे, इस बात की स्वीकृति थी कि चीन की केन्द्रीय सरकार के रूप मे राष्ट्रीय सरकार को नैतिक तथा भौतिक सभी प्रकार की सहायता प्रदान की जायगी। अक्तूबर, १९४७ तक स्तालिन उन शक्तियो से अनभिज्ञ-सा मालूम होता रहा, जिनको माओ बडी कुशलता से सगठित कर रहा था, परन्तु यथार्थवादी माओ मे प्रशसा तथा प्रतीक्षा करने की सामर्थ्य थी।

यह कहने मे उसका कुछ भी नही लगा, जैसाकि उसने स्तालिन की साठवी वर्षगाठ पर कहा, "मार्क्स आज नही है और इसी तरह एन्जिल्स तथा लेनिन भी नही है। यह बहुत बडी बात है कि मानवता के बीच आज स्तालिन है। अगर स्तालिन न होता तो निर्देश देने के लिए कौन होता? और चूकि वह हमारे बीच है, सभी कुछ ठीक से चल सकता है।" यह एक प्रकार से ऐसे व्यक्ति की व्यर्थ, किन्तु सामयिक खुशामद थी, जिसने चीनी क्रान्ति की शक्ति को कभी भी ठीक से नही समझा।

कोरिया-युद्ध ने रूसी और चीनी नीतियो को फिर एक ही धक्के मे एकत्र कर दिया। उस युद्ध मे चीनी साम्यवादियो के प्रवेश के कारण काफी मतभेद

के विषय रहे हैं। इसके लिए स्पष्टत यही कारण है—यालू नदी के किनारे अमरीकी सेनाओ के पडाव की सभावना से चीनियो की यथार्थ आशंका, चीनियो को अपनी सीमाओ से बाहर उलझाए रखने के रूसी प्रयत्न, घरेलू कठिनाइयो से जनता के ध्यान को हटा कर एक विदेशी शत्रु के विरुद्ध देशभक्तिपूर्ण एकता का पेकिंग के लिए अवसर, औद्योगिक आधार के रूप में मञ्चूरिया पर नियत्रण की आवश्यकता और उस पर रूसी प्रभुत्व से बचाने का प्रयास तथा समस्त एशिया मे चीनी सैनिक तथा राजनीतिक प्रतिष्ठा की स्थापना का अवसर।

जैसा कि हम अमरीकियो को अनुचित प्रतीत होता है, एशिया के अधिकाश असम्यवादी प्रेक्षको की यह सोचने की प्रवृत्ति है कि मास्को के अतिरिक्त, अन्य सभी बाहरी देशो से सम्बन्ध टूट जाने के कारण, चीन ने इस मान्यता पर कार्य किया कि हम लोगो ने उन्हे नष्ट कर देने का दृढ सकल्प कर लिया है। जो भी सही कारण रहे हो, साम्यवादियो ने स्वय चीन पर अपने अधिकार को सुदृढ बनाने के लिए युद्ध का उपयोग किया।

१९५२ के अन्त तक युद्ध चीनी सरकार पर कदाचित् भारी बोझ हो गया था। अक्तूबर, १९५२ में, जब कि मै नयी दिल्ली में था, चू एन ली न पैंकिग में भारतीय राजदूत को सकेत किया था कि चीनी सरकार सयुक्त राष्ट्र में भारतीय प्रतिनिधि द्वारा प्रस्तुत शान्ति-प्रस्ताव को अनुकूल दृष्टि से देखती है।

भारत सरकार के नेता और नयी दिल्ली स्थित अधिकाश राजदूत मेरी ही तरह विश्वस्त थे कि चीनियों ने रूस के भारी दबाव के कारण ही इस शान्ति-प्रस्ताव को ठुकराया था। इस दबाव का नाटकीय रूप युद्ध-बन्दियो के सम्बन्ध में भारतीय प्रस्ताव को विशिन्स्की के "सडा हुआ प्रस्ताव" कहने से प्रकट हो जाता है।

रूस और चीन की सौदेबाजी में दोनो की स्थिति को बराबर बनाने में स्वय स्तालिन की मृत्यु ने सहायता की। जब तक स्तालिन जीवित था, माओ को, "मानवता के महान नेता" के उसी सिंहासन पर नही बिठाया जा सकता था, परन्तु मालेन्कोव और चू एन ली स्तालिन की शव-मजूषा के पीछे-पीछ साथ ही साथ चले और विशाल मकबरे की सीढियो पर कन्धे से कन्धा मिलाकर कदम-ब-कदम चढे थे।

१९५० में चीनी-सोवियत समझौते के समय का पूर्व-व्यवस्थित छाया-चित्र

'प्रवदा' ने प्रकाशित किया, जिसमे स्तालिन, माओ तथा मालेन्कोव को एक-साथ प्रदर्शित किया गया था। दिसम्बर, १९५३ मे माओ का जन्मदिवस इतने सज-धज से मनाया गया जितना रूस के किसी वर्तमान शासक को कभी नसीब नही हुआ। माओ की चुनी हुई रचनाएँ मास्को और पैकिंग में एक साथ प्रकाशित हुई। १९५५ मे पाँचवे ग्रन्थ के निकलने पर रूसी समाचारपत्रों मे अपने प्रख्यात एशियाई साथी की प्रशसा मे होड़-सी लग गयी।

माओ ने भी नये रूसी नेतृत्व के प्रति अपने विश्वास तथा मैत्री की प्रतिज्ञा द्वारा प्रत्युत्तर दिया। 'प्रवदा' मे अपने एक विशेष लेख मे उसने कहा कि नये शासक, साथी स्तालिन के उद्देश्य को निस्सन्देह जारी रखने मे समर्थ होगे, जिससे साम्यवाद का महान कार्य सुन्दर रीति से आगे बढ सके।"

चीन और रूस दोनो देशों मे गुरुमत्र देने के प्रमुख साधन—समाचार-पत्र और रेडियो, सार्वजनिक भाषण और स्कूली कार्यक्रम ने रूस और चीन की एकता की एक ठोस तस्वीर प्रस्तुत की है। साधारण व्यक्ति जो कुछ भी देखता और सुनता, उससे इसी निर्णय पर पहुँचता कि कार्य और विचार मे पूर्ण मतैक्य है।

दोनों देशों के बीच व्यक्तियों के आदान-प्रदान का दुतर्फा मार्ग विस्तृत होता जा रहा है। न केवल सोवियत मशीने, बल्कि सोवियत नियोजक, तत्रज्ञ, तथा निपुण कारीगर भी चीन भेजे जा रहे है। उसके बदले मे चीनी विशेषज्ञ और विद्यार्थी, प्रशिक्षण तथा शिक्षण के लिए रूस भेजे जा रहे है। सोवियत विश्वविद्यालयों मे विदेशी छात्रों मे सबसे बडी सख्या अब चीनियो की ही है।

चीन मे रूसी भाषा को अधिक से अधिक चीनियो को यथासभव शीघ्र सिखा देने का जबरदस्त प्रयत्न चल रहा है। "रूसी भाषा लेनिन की भाषा और समाजवादी की कुजी है" चीनी सोवियत मैत्री सघ (साइनो-सोवियत फ्रेण्डशिप असोसिएशन) के महा मत्री, चियेन शुन जुई ने घोषणा की—"रूसी सीख लेने पर सोवियत-चीनी मित्रता के मार्ग से सबसे बडा रोडा हट जायगा।" जिन क्षेत्रों मे सोवियत अनुभव चीनी आवश्यकताओं के अनुकूल होगे, वहा सोवियत नमूनों का निस्सन्देह प्रयोग किया जायगा। इस प्रकार, दिसम्बर, १९५४ मे पेकिंग मे होनेवाली विधान सभा की कम्यूनिस्ट प्रतिरूप, नेशनल पीपुल्स काग्रेस के सदस्यो ने एक विधान स्वीकार किया, जिसके अन्तर्गत पैतीस मत्रियों की एक राज्यपरिषद द्वारा देश का शासन होगा। प्राप्त सूचनाओ से पता चलता है कि इनमे से सोलह मत्रालय सोवियत शासन-प्रणाली का अनुपालन कर रहे

है। चीन की पचवर्षीय योजना न केवल टेकनीक मे, बल्कि औद्योगिक विकास पर सबसे अधिक बल देने मे भी सोवियत नमूने को ही प्रतिबिम्बित करती है।

इन्ही समानान्तरो के कारण अमरीकी ऐसा सोचते मालूम होते हैं कि चीन साम्यवादी अल्बानिया का एक विशाल पिछलग्गू रूप है। यह बडी भारी भूल है। क्रेमलिन को पैकिंग के साथ बराबरी का अथवा लगभग बराबरी का सुलूक करना चाहिए और चीनी साम्यवादी बडे कठोर सौदेबाज है। मास्को-सरकार चीनी महत्वाकाक्षाओं को किस हद तक सन्तुष्ट करना चाहती है, उसका प्रमाण पोर्ट आर्थर बन्दरगाह को वापस देना और १९५४ के पतझड में अपनी चीनी यात्रा के दौरान मे बुलगानिन तथा ख्रुशेव द्वारा दी गयी अन्य रियायते है।

यदि समान शत्रु तथा समान विचारधारा का स्वाभाविक बल कमजोर भी हो जाय, तो पेकिंग को उचित मार्ग पर रखने के लिए मास्को के पास सम्प्रति कम से कम एक महत्वपूर्ण साधन है। औद्योगीककरण के अपने महत्वाकाक्षापूर्ण कार्यक्रम के लिए शस्त्रास्त्र, कच्चे माल तथा तात्रिक सहायता के लिए चीन अभी भी रूस पर बुरी तरह निर्भर है।

पैकिंग-शासन की घरेलू सफलता तथा एशिया मे अभीष्ट प्रतिष्ठा की प्राप्ति के लिए इस कार्यक्रम की सफलता अत्यावश्यक है। यह सब समझबूझ कर अधिक सभव है कि रूस चीन के साथ एक नाजुक सतुलित नीति का ही पालन करे, जो चीन की औद्योगिक विस्तार की भूख को सन्तुष्ट करते हुए उस पर इतना नियत्रण रखे कि वह रूस के लिए खतरा न बन जाय।

× × ×

१९५१ और १९५५ के बीच मुझे बीसों ऐसे लोगों से बातचीत करने का अवसर मिला, जो साम्यवादी चीन देख आये थे। उनमे अग्रेज, भारतीय, पाकिस्तानी, बर्मी, हिन्देशियाई तथा जापानी भी थे। उनमें सरकारी अफसर, शिक्षक, सामाजिक कार्यकर्ता, क्लबों की औरते और इन्जीनियर भी थे। उनमे से अधिकाश विवेकशील और मर्यादापसन्द लोग थे, जो सहयात्री नही, आगन्तुक थे और जिनको साम्यवादी समझाने—बुझाने के लिए अत्यधिक उत्सुक थे।

उनकी रिपोर्टों मे आश्चर्यजनक समानता है। उनमे से अधिकाश का कथन है कि पेकिंग से प्राचीन हास्य, शोभा और आकर्षण लुप्त हो चुके हैं और उनका स्थान अनाकर्षक एव समर्पित एकरूपता ने ग्रहण कर लिया है। मार्गों पर काफी तगडे और रूखे सैनिक दिखायी पडते है। मजदूर बिना छुट्टी के

सप्ताह मे छ दिन और प्रति दिन आठ घण्टे काम करते हैं और उन्हे औसत मासिक वेतन लगभग तेईस डालर के बराबर मिलता है।

नागरिक सेवा से लेकर सोवियत निर्मित कीमती यत्रों के कारखानो के निरीक्षण-कार्य तक के दायित्व तथा महत्वपूर्ण पद अधिकाश मे युवकों तथा युवतियो को सौपे गये है। उनके नये दायित्वों के साथ वर्तमान शासन को जारी रखने का प्रमुख निहित स्वार्थ भी है।

दफ्तरो तथा कारखानों की दीवालों पर असख्य प्रचार-पत्र लटकते दिखायी देते हे। इनमे कुछ भयानक व्यग-चित्र भी हैं, जिनमे जन-सेना के सेनानियो की जबर्दस्त सगीनो द्वारा फारमोसा (ताइवान) से वालस्ट्रीट के साम्राज्य-वादियो का सफाया करते हुए दिखाया गया है।

अमरीका शत्रु है। पश्चिम–विरोधी शत्रुता को, जो गत एक शताब्दी की दासता से उत्पन्न हुई थी, अब जानबूझकर सयुक्त राज्य अमरीका के विरुद्ध सचालित किया जा रहा है। सयुक्त राज्य अमरीका, जो चीन का कभी बड़ा मित्र था, जो चीन के हजारो युवकों का शिक्षक और चीनी प्रादेशिक एकता का घोषित सरक्षक था, आज 'कागजी शेर' के रूप मे परिणत कर दिया गया है, जो ऐसी चीजों का प्रतीक है, जिनकी कोई भी गौरवशाली प्राचीन जाति क्षुब्ध होकर कटु निन्दा करेगी।

सम्भवत मुख्य चीन के अधिकाश निवासी अब भी यही विश्वास करते है कि कोरिया-युद्ध अमरीका ने छेडा था और देशव्यापी महामारी फैलाने के लिए उसने रोग के कीटाणुओं का प्रयोग किया। वास्तव मे कीटाणु-युद्ध का धोखा, चीनी अधिकारियो द्वारा, स्वास्थ्य सुधार से लेकर पश्चिम-विरोधी एकता प्राप्त करने तक के लिए खडा किया गया था। विदेशी यात्रियों को यह बतलाया जाता है कि चीन अमरीका का, उसके "युद्ध करने के पाशविक तरीकों" के प्रति कितना कृतज्ञ है। कहा जाता है कि अमरीका द्वारा गिराये गये कीटाणु-बम के कारण ही वहा के नगरों की सफाई की गयी तथा घातक कीडो के उन्मूलन मे नाटकीय अभिरुचि दिखायी गयी।

अमरीका के प्रति घृणा और कोरिया-युद्ध की सैनिक आवश्यकताओं ने अपने विशाल प्रदेश पर अधिकार को सुदृढ करने, प्राचीन परिवार-प्रणाली को छिन्न-भिन्न करने, दुनिया की लडनेवाली सबसे बडी सेना का निर्माण करने और कृषिप्रधान राष्ट्र को प्रबल औद्योगिक शक्ति मे परिणत करने

के हेतु कठोर कार्रवाई के लिए स्वीकृति प्राप्त करने मे पैकिंग—सरकार की बडी सहायता की।

चीन मे ईसाई धर्म-प्रचार-आन्दोलन को समाप्त करने के लिए व्यवस्थित प्रयत्न किये गये है। अप्रैल, १९५३ में हागकाग के सीमावर्ती स्टेशन पर मैने छ. हजार निष्कासित धर्म-प्रचारकों मे से कुछ को लोहे के पुल को पार करते देखा, जो पश्चिम जाने के लिए लौट रहे थे। १९५५ तक चीन में शायद चारसौ से अधिक धर्म-प्रचारक न रह गये होंगे और जो थे भी, वे अधिकतर या तो जेलो में थे या घर पर ही नजरबन्द थे।

वर्षों तक चीन मे ईसाई धर्म-प्रचार-आन्दोलन चीनी समाज मे पश्चिमी शिल्पकला और जीवन-मूल्य स्थापित करने का प्रमुख साधन रहा है। चीनी जीवन और विकास मे बहुमूल्य योगदान देने वाले तेरह ईसाई कालेज और विश्वविद्यालय थे। मिशन स्कूलों ने वैज्ञानिक कृषि प्रणाली, जन—स्वास्थ्य, साक्षरता और दस्तकारी उद्योग को प्रारम्भ करने में नेतृत्व किया है। चीन में आधुनिक औषधि तथा चिकित्सालयों का सूत्रपात धर्मप्रचारकों द्वारा ही किया गया था। धर्म परिवर्तित लोगों मे मेथाडिस्ट च्याग काई शेक भी थे।

लेकिन जैसा कि हमने अभी देखा, ईसाई धर्म के प्रचार में सर्वदा पश्चिमी प्रभुत्व के साथ उसकी एकात्मकता, उसकी विभिन्न शाखाओ में दु खद प्रति-स्पर्धा तथा ईसाई धर्मावलम्बी अनेक कुओमिन्ताग नेताओ की भ्रष्टता बाधक रही है। ईसाई धर्म से इतनी आशा नही की जा सकती थी की वह एक ऐसी जबर्दस्त योजना बनायेगा, जो जनता की दरिद्रता की विकट समस्याओ, ग्रामीण सम्पत्ति-स्वामित्व के प्राचीन आदर्शों तथा सकलित अन्यायो के लिए, जिनके भडाफोड में स्वय ईसाई धर्म ने काफी सहायता की थी, व्यावहारिक उत्तर होगा।

कुछ भी हो, पिछले तीस वर्षों में एक बहुत बडी और बढती हुई सख्या में शिक्षित ईसाइयो और आदर्शवादी चीनियो की, जिन्होन 'यथास्थिति' को ठुकरा कर 'नये चीन' के निर्माण की आवश्यकता महसूस की थी, आँखें खुल गयी और चर्च से दूर हट कर या तो वे साम्यवादी दल में शामिल हो गये अथवा उनमें से बहुतो ने इटली और फ्रास के अपने समकक्षियो की तरह दोनो में सम्मिलित रहने में कोई विरोध नही पाया।

१९४५ तक ईसाई शिक्षाप्राप्त सैकडो चीनी युवको ने येनान तक पहुंचने के लिए खतरों का मुकाबला किया और "कडुए घूट" पिये। ईसाई विश्व-

विद्यालयो के भूतपूर्व छात्र लाल गुरिल्ला सेना मे भरती हो गये, माओ त्से तुग के प्रति वफादार बन गये और नये शासन मे आज वे महत्वपूर्ण पदो पर है। कुछ ने न केवल विदेशी धर्म-प्रचारको के वर्तमान निष्कासन मे मदद की, बल्कि उन चीनी ईसाई पादरियो को सजा दिलाने मे भी मदद की, जिन्होने साहस के साथ साम्यवादियो द्वारा नवनिर्मित उन कठपुतली चर्चो का विरोध किया, जिनका निर्माण पेकिंग ने केवल प्रचार के लिए किया था।

इन नास्तिको ने, जो आज चीन मे सत्तारूढ है, अपनी आवश्यकता के लिए धर्म का उपयोग करने मे भी झिझक नही दिखायी। माओ ने कहा, "यदि धर्म जन-गणराज्य मे हस्तक्षेप नही करता, तो जन-गणराज्य भी उसमे हस्तक्षेप नही करेगा, केवल उन मौको को छोडकर, जब राज्य की सेवा के लिए, उसकी जरूरत होगी।

कम्यूनिस्टो द्वारा बौद्धधर्म की प्रशसा के कदाचित् अनेक कारण हो सकते है। बौद्धधर्म से ही विकसित लामावाद का केन्द्र अशान्त तिब्बत के गर्भ मे है। सिक्याग और बाहरी मगोलिया मे लाखो नये बौद्ध है और दक्षिण मे चीन के सामरिक दृष्टि से महत्वपूर्ण धान-सम्पन्न पडोसी प्रदेशो मे उनकी सख्या और भी अधिक है।

आजकल हाल ही मे मरम्मत किया हुआ पैकिंग का सुशोभित लामा-मन्दिर विशिष्ट दर्शनीय स्थान ह और सरकार द्वारा सस्थापित अखिल चीनी बौद्ध सस्था (आल-चाइना बुधिस्ट असोसिएशन) अपने श्रद्धालुओ से अपनी "मातृभूमि तथा विश्वशान्ति की रक्षा के हेतु सभी बौद्धो की एकता के लिए" कार्य करने की अपील करती है।

धर्म के इस प्रकार दुरुपयोग से यह बात छिपी नही है कि सरकार ने जानबूझकर चीनी जीवन के नतिक तथा सदाचार सम्बधी आधारो को बदलने तथा "नयी नतिकता" स्थापित करन का प्रयास किया है। समान कार्यक्रम की ४२ वी धारा मे इस बात की व्यवस्था है कि "पितृभूमि के प्रेम, ज़नता के प्रेम, विज्ञान-प्रेम, श्रम-प्रेम और सार्वजनिक सम्पत्ति की सुरक्षा को सभी देशवासियो की सार्वजनिक भावना के रूप मे बढाने का प्रयत्न किया जायगा।" ये 'पँाच प्रेम' आज जन-गणराज्य मे नागरिकता के आधार है।

सामूहिक कार्य पर निरन्तर बल देकर व्यक्ति को राज्य के अधीन बना दिया गया है। परिवार को राज्य-हितो की पूर्ति के लिए सचालित किया जाता है और वर्ग-चेतना प्रत्येक राजनीतिक कार्य का आधार बना दी गयी ह। क्रान्ति

के मित्रो के प्रति आचरण का एक मापदण्ड है और इसके दुश्मनो के लिए, जिन्हे विनष्ट ही कर देना चाहिए, दूसरा मापदण्ड है।

महिलाओ की स्थिति विभिन्न प्रकार से सुधरी है। फिर भी, पारिवारिक आस्थाओ को हर सभव ढग से समाप्त किया जा रहा है और माँ-बाप के विरुद्ध बच्चो से गवाही की आशा की जाती है। अगस्त, १९५१ में, चीनी साम्यवादी समाचारपत्रो के अनुसार यह उदाहरण पेश करने के लिए कि जनता के दुश्मनो के साथ क्या किया जाता है, च्याग काई शेक के एक भूतपूर्व सैनिक साथी की साम्यवादी पुत्री ने यह माँग की कि उसके पिता को मृत्युदण्ड दिया जाय। चीनी रेडियो पर प्राय इस प्रकार की घटनाएँ प्रसारित की जाती हैं। पारस्परिक जासूसी और चुगलखोरी की आदतो को प्रोत्साहन दिया जाता है। पेकिग का 'पीपुल्स डेली' (दैनिक समाचारपत्र) दल के सदस्यो से अपील करता है कि प्रत्येक अन्य सदस्य पर, यहाँ तक कि अधिक से अधिक जिम्मेदार व्यक्तिपर भी व्यवस्थित, कडी तथा नियमित निगरानी रखी जाय।

माओ ने एक बार स्वतत्र व्यवसाय के प्रति विनम्र मित्रता की बात कही थी, किन्तु पार्टी के आन्दोलनकारियों ने जनता के क्षोभ को व्यापारियो के विरुद्ध उकसाने का सगठित प्रयास करके उसे झूठा सिद्ध कर दिया है। गाँवो में अवैध मृत्यदण्ड देने की भावना का पोषण बडी सावधानी से किया गया है। "प्रति-क्रान्तिकारी अभियान के दमन में" सार्वजनिक रूप से फाँसी देने के उद्देश्य से जमीन्दारो को चुनने के लिए व्यावसायिक लोकनायको की टुकडियाँ गावो में भेजी गयी। दिमागी सफाई के नये-नये तरीके अपनाये गये।

कोरिया-युद्ध के समय समाचारपत्रो की सख्या दो हजार से घटा कर ५३ कर दी गयी और प्रत्येक को सख्त हिदायत दी गयी कि वह कम्यूनिस्ट पार्टी के मुखपत्र, पेकिंग 'पीपुल्स डेली' की नीति का अनुसरण करे। जिस प्रकार रूस में इतिहास के पृष्ठो से अलोकप्रिय अशो को निकाल दिया जाता था, उसी प्रकार यहा भी किया गया। लाखो पुस्तके जब्त कर ली गयी और उन्हें या तो जला दिया गया या कागज बनाने के लिए गला दिया गया। चीन में रहनेवाले पश्चिमी लोगो में से अधिकाश को या तो जबरदस्ती निकाल बाहर किया गया या जेलो में ठूस दिया गया, या वे चुपचाप गायब ही हो गये।

सैन्यवादी एकता के इस कार्यक्रम का साधन साम्यवादी दल है। कोरिया-युद्ध के दौरान में जब ये घटनाएँ चरमोत्कर्ष पर थी, तब दल के खूब दीक्षित सदस्यो की सख्या ६०लाख तक पहुँच गयी, जिनके ऊपर तीस लाख पक्के जवान

साम्यवादी थे, जो दलगत सगठन मे नवजीवन डालने वाले थे।

फरवरी, १९५१ मे नये विधान की इक्कीस धाराएँ स्वीकृत हुईं, जिनमे मृत्यु, आजीवन कारावास या नजरबन्दी के लिए व्यवस्था की गयी थी। जो लोग राजनीतिक मुकदमे के आडम्वर अथवा उन्मत्ततापूर्ण सार्वजनिक फाँसियो से बच गये थे, उनके पुनर्वास के साधन के रूप मे श्रम-शिविर स्थापित किये गये, जहाँ जबर्दस्ती काम कराया जाता था।

'टाइम्स आफ इडिया' के सम्पादक, फ्रैंक मोरायस ने अपनी चीन-यात्रा के बाद अनुमान लगाया कि १९५२ के मध्य तक २० लाख व्यक्तियो को फाँसी दी गयी। मैंने अन्य भारतीय प्रेक्षको को ५० लाख का अनुमान लगाते हुए सुना है।

जब साम्यवादी चीनी प्रतिनिधियो से सफाई माँगी जाती है, तो वे साफ-साफ कह देते है कि जनता ने प्रतिक्रान्तिवादी शक्तियो के विरुद्ध बदला लेने का अपना पवित्र कर्तव्य निभाया और फिर वे दूसरी बाते करने लग जाते है। १९४९ मे लिखे एक लेख मे माओ ने स्पष्टरूप से अपने राजनीतिक दर्शन के इस पक्ष पर प्रकाश डाला है—'क्रान्तिकारी लोगो के लिए प्रजातत्र और प्रतिक्रियावादियो के लिए तानाशाही, इन दोनो को जब एक साथ मिला दिया जाता है तब जनता की प्रजातत्रात्मक तानाशाही का रूप बनता है।'

चौदहवाँ प्रकरण

पेकिंग का सन्तुलन-पत्र

अधिकाश पश्चिमी लोग पूछ सकते है कि किस प्रकार के लोगो को ऐसे आतक पर आधारित कार्यक्रम की ओर आकृष्ट किया जा सकता है? फिर भी दुनिया की राजनीति मे इस नयी शक्ति के व्यापक प्रभाव को इन्कार नही किया जा सकता। दुर्भाग्य से अमरीकियों ने इस बात को कम से कम समझा है, यद्यपि उन्हे पेकिंग की विशेष शत्रुता के लिए चुन लिया गया है और इसीलिए उनको और भी सतर्क रहने की जरूरत है।

चीन की आधुनिक सफलताएँ रक्तसिचित हैं, फिर भी वे प्राप्त की जा रही है। चीन निस्सन्देह महान् विश्व-शक्ति के रूप में प्रकट होने जा रहा है। उसकी ये पाँच सफलताए साफ प्रकट है'—

(१) आधुनिक चीनी इतिहास में साम्यवादी सरकार सर्वप्रथम सगठित और कुशल शासन की व्यवस्था कर रही है। देश का शासन ऐसे व्यक्तियो द्वारा सचालित हो रहा है, जो कठोर अनुशासन के अन्तर्गत है, वे चाहे नागरिक हो या सनिक। बहुतो को कोई वेतन नही दिया जाता, केवल निवास और भोजन, आवश्यक कपडे, कुछ सिगरेट और उनके बच्चो को नि.शुल्क शिक्षा तथा डाक्टरी सहायता दी जाती है। नि.स्वार्थी चीनी युवक विदेशो से लौट कर कठोर और सयमी जीवन व्यतीत कर रहे है।

एक निष्कासित कथोलिक पादरी ने पेकिंग-सरकार की शक्ति को कम समझने के विरुद्ध चेतावनी देते हुए लिखा है, "प्रशासन नितान्त ईमानदार है। मै सोचता हूँ कि वर्तमान शासन में किसी चीनी अधिकारी को खरीदना पश्चिमी देश में किसी पदाधिकारी को खरीदने की अपेक्षा अधिक कठिन होगा।"

यदि वेतन दिये भी जाते है, तो बहुत ही कम। कहा जाता है कि माओत्से तुग को १५० डालर से कम मासिक वेतन मिलता है और उसके मातहत काम करने वालो को और भी कम। एक स्तम्भित भारतीय अधिकारी ने मुझे एकबार बताया, "माओ के पास केवल एक सूट है और उसकी पत्नी साप्ताहिक मजदूरी पर काम करती है।"

इस सयम से उत्पन्न होने वाली चीजो में है एकता, व्यवस्था, अधिक स्वच्छ

सड़के और उचित कर-वसूली। मक्खियो, लुटेरो, वैश्याओ और चण्डू-पियक्कडो की समाप्ति की व्यापक चर्चा अखबारो मे की गयी है। विचारशील विदेशी प्रेक्षक भी इसी निष्कर्ष पर पहुँचे है।

नयी व्यवस्था, स्वच्छता तथा उत्साह की प्रशसा करने वाले एक भारतीय पदाधिकारी से मैने पूछा, "१९५५ का पेंकिंग, हिटलर के पोलण्ड पर आक्रमण के पूर्व १९३९ के बर्लिन से भिन्न है, इसे आप ठीक-ठीक कसे बतायेंगे ? क्या उस समय जर्मनी विदेशी यात्रियो के लिए इतना ही आकर्षक नही था ? आप क्यो सोचते है कि चीन उतना ही खतरनाक नही है ?" उसने स्वीकार किया कि मेरी बात मे कुछ तथ्य है, परन्तु उसने अनुरोध किया कि चीन की भौतिक प्रगति अथवा जनता पर सरकार के पूर्णाधिकार को कम भी न समझा जाय।

(२) व्यापक अनुभवहीनता, रूसी टेकनीक को आत्मसात करने की कठिनाइयो और १९५४ की बाढ जैसी अप्रत्याशित दुर्घटनाओ के बावजूद प्रथम चीनी पचवर्षीय योजना (१९५३-५७) के अन्तर्गत चीन औद्योगीकरण की ओर निरन्तर बढता जा रहा ह। चीन के इस महत्वपूर्ण कार्यक्रम और उसके भारतीय प्रतियोगी के कार्यक्रम की तुलना आनेवाले प्रकरण मे करूँगा।

(३) चीन की सेनाओं के आधुनिकीकरण मे त्वरित एव चमत्कारपूर्ण प्रगति की जा रही ह। १९५४ मे सभी के लिए सैनिक प्रशिक्षण प्रारम्भ किया गया। लाल सेना की टुकडियो को शीघ्रता के साथ उच्च कोटि के आधुनिक हथियारो से सुसज्जित किया जा रहा है। नयी चाले काम मे लायी जा रही है।

सेनाध्यक्ष, जनरल मैक्सवैल टेलर ने, कोरिया मे सिओल के अपने दफ्तर में, जबकि वे सयुक्त राष्ट्र सघ की सेना के सेनापति थे, एक बार मुझसे कहा, "कोरिया–अभियान के परिणामो में से इस एक परिणाम को जल्दी नही भुलाया जा सकेगा कि हमने चीनियो को आधुनिक युद्ध की कला सिखा दी है।" इसके साथ यह भी कहना उचित होगा कि कोरिया मे अमरीकी सेनाओ को भी एक नये प्रकार के युद्ध का ज्ञान हुआ।

विपुल सैन्य-शक्ति के अतिरिक्त चीन ने एशिया की सबसे प्रबल हवाई सेना भी तैयार कर ली है। वायु सेनाध्यक्ष (एअर फोर्स चीफ आफ स्टाफ) जनरल नाथन ट्विनिंग ने कहा, "विश्व मे यह चौथी सब से बडी शक्ति

ह।" १९५५ के अनुमानों से ज्ञात होता है कि चीन के पास ८५० रूसी लडाकू जैट विमान हैं, जिनमे से कम से कम ६५० 'मिग-१५' है। यह भी विश्वास किया जाता है कि उनके पास सौ से अधिक 'इल–२८' जेट बमवर्षक हैं।

कहा जाता है कि चीनी चालक, टी-वी-४ के विमान-दल के साथ, जो सोवियत अणु बमवर्षक का प्रारम्भिक नमूना है, प्रशिक्षण प्राप्त कर रहे हैं। अन्य पुराने ढग के हवाई जहाजो को मिलाकार कुल सख्या दो हजार तक पहुँच जाती है। पर्याप्त चालक (आजकल २४०० प्रतिवर्ष के हिसाब से प्रशिक्षित हो रहे हैं) उन्हें उडाने के लिए तैयार हैं। वास्तव में संघर्ष की स्थितियो मे चीनी हवाई सेना का प्रभाव केवल रूस के हवाई जहाज देने की इच्छा पर निर्भर नही करेगा, बल्कि प्रशिक्षित चीनी उडाको की प्राप्ति पर भी निर्भर करेगा।

(४) साम्यवादी विशाल शिक्षा-कार्यक्रम को पूरा करने में बडे अध्यवसाय से दो दृष्टियो से जुटे हुए है, एक तो निरक्षरता-निवारण और दूसरे सिद्धान्त की शिक्षा। सास्कृतिक कार्यक्रम सर्वदा राजनीतिक प्रचार और आर्थिक पुनर्निर्माण–योजनाओ के साथ सयोजित रहते है।

वैज्ञानिको और टैकनीशियनों का प्रशिक्षण भी बहुत अधिक बढा दिया गया है। खबर है कि आज चीन के विश्वाविद्यालयो में ढाई लाख पूर्व-स्नातको मे से आधे से अधिक इजीनियरिंग पढ़ रहे है।

पेंकिग-रेडियो से चीन की सफलताओं को प्रायः खूब बढ़ा-चढ़ा कर समस्त एशिया में अनेक भाषाओ तथा बोलियो में प्रसारित किया जाता है। ऐसे प्रचार ने चीनी सीमा के बाहर भी नये शासन के लिए काफी समर्थन प्राप्त कर लिया है। स्याम, बर्मा, हिन्देशिया तथा अन्य स्थानो में १ करोड ४० लाख चीनी उसके विशेष लक्ष्य रहे है। अब चीन मे लगभग 'दस हजार' संख्या बाहरी विद्यार्थियो की बतायी जाती है।

रूस की भाति समसामयिक चीन के अध्ययन से सीधे यह निष्कर्ष निकलता है कि राष्ट्रीय शक्ति न केवल स्थूल सैनिक बल, महत्वपूर्ण भौगोलिक स्थिति तथा औद्योगिक क्षमता का जटिल योग है, बल्कि उन मनोवैज्ञानिक एव सैद्धान्तिक तत्वो का भी योग है, जो किसी राष्ट्र के आन्तरिक नैतिक मनोबल और पडोसियो के प्रति अपने आकर्षण का निर्माण करते है। आज साम्यवादी चीन में इन्ही महत्वपूर्ण तत्वो का, जिनको प्राय. अनेक अमरीकी

नीति-निर्माता कम महत्व देते हैं, बहुत मेहनत और होशियारी के साथ, चीन को प्रबल एकता तथा गतिशीलता प्रदान करने के लिए, प्रयोग किया जा रहा है।

(५) चीनी राष्ट्रीय शक्ति का यह सगठन एक नये शासन-ढाँचे मे कार्यान्वित किया जा रहा है। सितम्बर, १९५४ मे राष्ट्रीय जन-सभा (नेशनल पीपुल्स काग्रेस) मे चीन का नया सविधान समाजवाद की दिशा मे सक्रमण को सुविधाजनक बनाने के उद्देश्य से नयी प्रशासनिक कार्रवाइयो के साथ स्वीकृत हुआ, जिससे विशेषकर सोवियत और अन्य पिछलग्गू साम्यवादी अतिथियो को बडा हर्ष हुआ।

नये सविधान मे कम्यूनिस्ट चीन को श्रमिक वर्ग द्वारा सचालित तथा मजदूरो और किसानो की मैत्री पर आधारित, जनता का प्रजातत्रात्मक राज्य बनाया गया है। मध्यवर्गीय तत्वो को राज्य के सविधान की मौलिक परिभाषा मे कही भी स्थान नही दिया गया है।

लाल-शासन के प्रथम चार वर्षो मे देश का विभाजन क्षेत्रीय-प्रान्तीय समुदायो मे किया गया, जिसकी प्रशासनिक समितियाँ गृह-युद्ध की सेनाओ के कम्यूनिस्ट सेनापतियो द्वारा सचालित थी। जून, १९५४ मे सरकारी परिषद ने इस क्षेत्रीय विभाजन को समाप्त कर दिया और उसके स्थान पर केन्द्रीय सरकार और प्रान्तो के बीच सीधे शासन की कडी पुन जोड दी गयी। १९५४ मे दल के कठोर महामत्री, शक्तिशाली लीउ शाओ ची ने एक अशुभ बात कही "प्रान्तीय शासक अपने दायरे से बाहर होते जा रहे हैं।"

मार्च, १९५५ मे पेकिग की घोषणा हुई कि दो चोटी के सदस्य, काओ काग और जाओ शू शीह, दल के प्रति द्रोही थे और उन्हे अपमानजनक ढग से निकाल दिया गया। कहा जाता है कि काओ काग ने, जो मञ्चूरिया के औद्योगिक प्रतिष्ठान का प्रमुख था और जिसका पचवर्षीय योजना मे प्रमुख हाथ था, आत्महत्या कर ली। प्रारम्भ मे, वह शेन्सी प्रान्त मे गुरिल्लाओ का उस समय नेता था, जब 'लम्बी यात्रा' मे बचे हुए लोगो ने सर्वप्रथम वही अपना सदरमुकाम स्थापित किया था। मार्च, १९५३ मे, जब मैने भारत छोडा, तब वह चीन की महान शक्ति और माओ का सम्भाव्य उत्तराधिकारी माना जाता था। साम्यवादी चीनी नेतृत्व से उसका हटाया जाना प्रथम महान परिवर्त्तन था।

१९५५ को गर्मियो मे हुफेग की कुछ स्वतंत्र ढग की साहित्यिक सस्था की भी सरकारा द्वारा तीव्र भर्त्सना हुई और अनुशासन की कार्रवाई की गयी।

स्पष्टतः शासन में अधिकाधिक सैद्धान्तिक कट्टरता आ गयी । उदाहरण के लिए, चीनी साम्यवादी इतिहास को, बोरोडीन मिशन की असफलताओं तथा तत्कालीन अधिकृत सोवियत नीति के साथ माओ की मौलिक असहमति के उल्लेखो को निकाल कर, फिर से लिखा गया है।

यद्यपि राष्ट्रीय जन-सभा (National People's Congress) को "राज्य-शक्ति के उच्चतम साधन" का स्थान प्राप्त है, तथापि नियत्रण दल के हाथो में ही रहता ह । उच्च कोटि के साम्यवादी ही आज सभी उच्चतम सरकारी पदो पर आसीन है, जिनमें गणराज्य के अध्यक्ष, जनसभा की स्थायी समिति के उपाध्यक्ष, राज्यपरिषद के प्रधान मत्री, सर्वोच्च न्यायालय के अध्यक्ष तथा एटर्नी जनरल भी है।

माओत्से तुग को चार वर्षों के लिए फिर गणराज्य का राष्ट्रपति चुन लिया गया है। वह दल का निर्विरोध नेता बना हुआ है। वह राष्ट्रीय प्रतिरक्षा परिषद का भी औपचारिक अध्यक्ष है और सर्वोच्च राज्य-सम्मेलन का भी। जनरल चू तेह को माओ के एकमात्र सहायक पद के लिए चुना गया है और कम से कम इस समय तो वह माओ का उत्तराधिकारी मालूम होता है।

× × ×

इन नये नेताओं को अभी एक बहुत बडी बाधा को पार करना ह। अन्तत' यह भी हो सकता है कि यही बाधा इनके किये-किराये को चौपट कर दे और उनके विशाल राष्ट्रीय परिवर्तन को उलटपलट दे। वह बाधा है चीनी किसान, जिसने माओ को सत्ता प्रदान की और जो किसी दिन उसको समाप्त भी कर सकता है।

चीन के ५८ करोड २० लाख लोगो में से ४७ करोड गाँवो में रहते हैं। आज उनके पास जमीन है, इसलिए नही कि जेफर्सन के छोटे काश्तकार मालिको की ग्राम-आर्थिक योजनानुसार पेकिंग कुछ करना चाहता था, बल्कि इसलिए कि माओ जानता था कि भूमि-वितरण के द्वारा वह हमेशा के लिए ग्रामीण जमीन्दारो तथा अधिक समृद्ध किसानो की शक्ति नष्ट कर देगा और सत्ता की दिशा में बढने में वह तत्काल किसानो का सामूहिक समर्थन प्राप्त कर सकेगा।

यह पूरा कर चुकने के बाद, माओ के सामने एक और धर्म-सकट है। एक ऐसा राष्ट्र, जहाँ अधिकतर लोग जमीन पर निर्वाह करते हो, कठोर राजनीतिक और आर्थिक बन्धनों से मुक्त ग्राम-समाज हो, कभी न कभी स्वतंत्र

राष्ट्र बन सकता है। चीन के मामले मे यह वर्तमान केन्द्रित साम्यवादी सरकार के अन्त का कारण बन जायगा।

इसके अलावा, स्वतत्र ग्राम-समाज, बढती हुई औद्योगिक आबादी तथा सेना के लिए अपना अतिरिक्त अनाज उसी हालत मे देगा, जब किसान को इसके बदले मे अच्छा स्वास्थ्य, कल्याणकारी सेवाएँ और रोजमर्रा के इस्तेमाल की चीजे खूब मिलती रहे। सोवियत सहायता के बावजूद चीन की उत्पादन-क्षमता बहुत सीमित है। इसलिए यह पचवर्षीय योजना के अनुसार भारी उद्योगो के शीघ्र विस्तार को बिल्कुल धीमा कर देगी।

इस स्थिति के कारण माओ को अपने उन मौलिक वचनो को, जिनसे गृह-युद्ध-काल मे चीनी किसानो का निर्णायक समर्थन प्राप्त हुआ था, भग करना पड़ेगा। अधिक स्वतत्रता के बजाय, ग्राम्य चीन पर और अधिक राजनीतिक तथा आर्थिक नियत्रण लगाना पडेगा। सामूहिक उत्पादक सहकारी मण्डल के शीघ्र विकास के लिए एक विशिष्ट पद्धति अपनायी गयी है। १९६० तक समस्त चीन मे इस सगठन को फैला देने की योजना है, जो उत्पादन, मूल्य-निर्धारण तथा सभी कृषि-उत्पादनो के बाजार पर कठोर नियत्रण की व्यवस्था करती है।

एक पीढी पूर्व, जिन सकटो से स्तालिन किसी प्रकार रूस मे पार पा सका था और जो आज भी सोवियत सघ की एक बडी कमजोरी के रूप मे है, उनकी अपेक्षा माओ की नयी-सरकार के सामने और भी बडे सकट है। १९१७ मे बोलशेविको ने एक ऐसी रूसी कृषि-पद्धति अपनायी, जिसने अपने अन्यायो के साथ-साथ युद्ध के पूर्व, निर्यात के लिए नियमितरूप से काफी गल्ला पैदा किया। जैसा कि १९२० के दशक मे हुआ, यदि स्तालिन द्वारा नियत्रित सामूहिक खेती का उत्पादन और भी नीचे गिर गया होता, तो भी क्रेमलिन को मालूम था कि उत्पादन कम से कम इतना अवश्य होगा जो रूसी जनता को खिलाने के लिए पर्याप्त होगा।

इसके विपरीत, चीन उस उत्पादन मे कमी को सहन करने की स्थिति मे नही है, जो अतीत मे इसी प्रकार के ऐतिहासिक नियत्रणो के बाद आरम्भ हुआ। अधिक से अधिक चीन अपनी आवश्यकता भर के लिए उत्पादन बढा सकता ह। न्यूयार्क राज्य की जितनी आबादी ह, उतनी चीन मे हर साल बढ जाती ह।

चावल और अनाज की उत्पादन-वृद्धि के लिए अधिक गुजाइश नही है।

पहले ही से चीन में एक एकड भूमि में औसतन दो हजार पौंड चावल पैदा होता है, जो भारतवर्ष की औसत उपज का दुगुना है। चीन के अधिकाश भागो मे ठडी जलवायु ने साल मे दो फसलों को असभव बना दिया ह। इसका मतलब यह ह कि सावधानी के साथ प्रति एकड उत्पादन मे वृद्धि, जो उसकी बढती हुई आबादी के लिए आवश्यक होगी, रोजमर्रा के इस्तेमाल की चीजो की पूर्ति तथा समुन्नत सेवाओ के रूप में प्रोत्साहन देने पर भी, एक हद तक पहुँच कर रुक जायगी। खेती के लिए नयी जमीन बहुत ही सीमित है।

पचवर्षीय योजना के अनुसार खाद्यान्न-उत्पादन में १० प्रतिशत वृद्धि औद्योगीकरण के लक्ष्यो की पूर्ति के लिए आवश्यक है। यदि यह वृद्धि नही हुई तो क्या होगा?

एक पुलिस-राज्य बिना परीशानी के जबर्दस्त अशान्ति को ठिकाने लगा सकता है; किन्तु यहाँ तो अनावृष्टि के वर्ष आते ही रहते हैं और दीर्घ-पीडित चीनी किसानो की सहन-शक्ति की भी एक सीमा है। इसके अलावा एशिया में चीन की प्रतिष्ठा का भी तो प्रश्न है। चीन की खेती में गिरावट या एक प्रथम श्रेणी का सकट भारत, जापान तथा अन्यत्र साम्यवाद की बदनामी का कारण बनेगा।

यह ध्यान देने योग्य बात है कि जो अनेक एशियावासी चीन गये और जिनसे मुझे बातचीत करने का मौका मिला, उनमें से किसी ने भी सरसरी निगाह से अधिक चीनी गावों को नही देखा। उनका कहना है कि जो कुछ उन्होने देखा, वह आकर्षक जान पडा; परन्तु उन्होंने स्वीकार किया कि प्रदर्शन के लिए कुछ नमूने स्थापित कर लेना आसान ह। मैंने एक बार एक गैर-कम्यूनिस्ट एशियाई देश के चीन-स्थित राजदूत से पूछा कि उसने ग्रामीण चीन का कितना भाग देखा है? " बहुत कम " उसने स्वीकार किया। मैंने पूछा—"क्या किसानो के क्षेत्रीय और राष्ट्रीय समुदाय सगठित किये जा रहे है?" "नही, बिलकुल नही।", उसने मुस्कराते हुए जवाब दिया—"माओ ने रूसी इतिहास अच्छी तरह पढ लिया ह और उसे वहा के कुलक याद हैं।"

भारत में, जैसा कि हम देखेंगे, प्रजातन्त्रात्मक सरकार के लिए, जिसने इसके क्रान्तिकारी इतिहास का अध्ययन किया ह, किसानो का कल्याण प्रथम महत्व का ह। औद्योगिक विकास को उच्च प्राथमिकता प्राप्त है, परन्तु यह व्यापक रूप से समझा जाता है कि एक स्वतत्र स्थिर समाज के लिए स्वतंत्र स्थिर ग्राम आवश्यक है और इसीलिए वे सर्वप्रथम आते हैं।

हर हालत मे चीनी किसान, जिसने साम्यवादियो को सत्ताधारी बनाया, चीन के भविष्य के लिए एक बड़े प्रश्न-चिन्ह के रूप मे है। आज वह नारो और उत्तेजनाओ के बीच, चीन के नये रूप को आश्चर्यचकित हो कर देख रहा होगा। अपने गाँव की चाय की दूकान पर उसे माओ की नयी-नयी नीतियाँ कभी कभी क्रान्ति के वायदो की खोखली आवाज प्रतीत होती होगी। अन्ततोगत्वा किसान जो कुछ निर्णय करेगा, वही चीन का भाग्य-निर्णायक होगा।

यह अस्वाभाविक नही है कि हम जो प्रजातत्र का पक्ष लेते है और साम्यवादी आक्रामक अभिप्रायो से डरते है, यह आशा कर सकते है कि किसानो का बढता हुआ असन्तोष पेकिग की नीतियो को नम्र बना देगा, किन्तु परिस्थिति जटिल है। क्या पेकिग की निराश और त्रस्त सरकार नरमी या विस्तार की ओर मुडेगी ?

क्या बर्मा, स्याम, कम्बोडिया, वियतनाम, मलाया और सुमात्रा की सम्पन्न किन्तु अपेक्षाकृत खाली जमीन की ओर सैनिक अभियान का उग्र प्रलोभन होगा? अगर ऐसा होता है तो विश्व-सघर्ष निश्चित है। अन्यथा चीन के पश्चिम की ओर के साम्यवादी साथी पर भारी राजनीतिक दबाव डाला जा सकता है, जिसके साइबेरिया के अधिकाश विस्तृत मैदानो ने शायद ही कभी हल का मुह देखा हो। क्या यह मास्को के नीति-निर्माताओं के लिए गहरी चिन्ता का नया स्रोत नही है ?

एक बात निश्चित है। जो धर्मसकट माओ के समक्ष है वह विश्व के मामलो मे चीन के भावी योग के मूल प्रश्न तक और निश्चित ही एशिया मे साम्यवादी सिद्धान्त की यथार्थता तक पहुँचता है। यदि माओ ग्रामीण नियत्रण के अपने कार्यक्रम को तेज कर देता है, तो उसे किसानो मे अशान्ति के खतरे का सामना करना पडेगा, जो अन्तत भयानक लपटो मे परिणत हो सकता है और जो कम से कम, खाद्यपूर्ति की कमी को और बढा देगा। यदि वह गति धीमी कर देता है तो अपनी सयोजित अर्थव्यवस्था के भारी जूए मे वह हार सकता है। कम्यूनिस्ट नेतृत्व मे काफी खीचातानी और उलटफेर के बिना इस प्रश्न का समाधान असम्भव है। १९५५ मे बहु-प्रचारित एक लेख मे पैकिग के मार्क्स-लेनिन इस्टीटयूट के प्रोफेसर, हुशेग ने लिखा है कि चीन सक्रान्ति—काल मे प्रविष्ट हो चुका है और सशर्त आत्मसमर्पण करनेवालो तथा प्रतिक्रियावादियो के बावजूद उसको देश के औद्योगीकरण को बढाने और धीरे-धीरे कृषि के समाजवादी परिवर्तन के कार्य को पूरा करना है। उसने तीखेपन के साथ और

कहा, "जो कोई भी यह भूल जाता है, वह साम्यवादी नही है।" यहाँ स्पष्टत. एक मार्क्सवादी एक सर्वहारा की तलाश मे है।

अन्य लोग, जिनमे कदाचित् चीन की विशाल सेनाओ के, जिनमे किसान युवक भी भर्ती है, मनोबल के लिए चिन्तित सेनापति भी है, ऐसी सैद्धान्तिक बातो से भयभीत हो, यह अभियोग लगा सकते है कि क्रान्ति का वर्तमान अस्तित्व उन लोगो के कारण खतरे में है, जो मार्क्स की जीर्णशीर्ण पुस्तकों से अभी भी चिपके हुए है।

परन्तु यह तो अटकलबाजी है और केवल एक बात निश्चित है कि चीन पर आज ऐसे सगठित, आत्मविश्वासी तथा महत्वाकाक्षी लोगों के समुदाय का नियन्त्रण है, जो बुनियादी आर्थिक निर्माण के लिए, जिसे अर्धविकसित सभी देश चाहते है, मानवीय मूल्य की चिन्ता किये बिना अत्याचार तथा बल-प्रयोग करने के लिए तैयार है।

स्पष्ट है कि माओ और उसके समर्थक अल्पकालिक रूप में नहीं सोच रहे है। १९५४ की जन-सभा (पीपुल्स काग्रेस) इस कोलाहलपूर्ण जयजयकार के साथ विसर्जित हुई– "वान सुई, वान सुई"–दस हजार वर्ष, दस हजार वर्ष।

चौथा भाग

गांधी का विकल्प

जब मै रूस की ओर देखता हूँ तो वहाँ का जीवन मुझे प्रभावित नही करता। मै बाइबिल की भाषा मे कहूँगा कि सारी दुनिया पाकर भी मनुष्य को क्या मिलेगा, यदि उसने अपनी आत्मा खो दी। यत्र का एक पुर्जा मात्र बन जाना मानव-सम्मान के विरुद्ध है। मै चाहता हूँ कि प्रत्येक व्यक्ति समाज का पूर्ण उत्साही और पूर्ण विकसित सदस्य बने।

मोहनदास करमचन्द गाँधी

पन्द्रहवाँ प्रकरण

भारतीय प्रस्तावना

मार्च, १९२३ मे लेनिन ने कहा था, "सघर्ष का परिणाम अन्ततोगत्वा इस बात पर निर्भर करता है कि रूस, भारत और चीन में विश्व की अधिकाश आबादी है और निश्चित रूप से यह बहुमत, अप्रत्याशित तेजी से अपनी-अपनी स्वतत्रता की लडाई मे खिच आया है। अतएव विश्व-सघर्ष के अन्तिम परिणाम के सम्बध में कोई शका नहीं रह सकती। इस अर्थ में समाजवाद की अन्तिम विजय पूर्णरूपेण और बिना किसी शर्त के सुरक्षित है।"

२६ वर्ष बाद रूस और चीन एक सयुक्त साम्यवादी मोर्चे पर खिच आये थे, परन्तु भारत ने, अपने दो शक्तिशाली पडोसियों से दोस्ती का नाता रखते हुए और उनकी भौतिक सफलताओं के प्रति एक हद तक सराहना की भावना रखते हुए भी, अपने स्वतत्र मार्ग पर ही चलने का निश्चय किया। इससे भी अधिक महत्वपूर्ण बात तो यह है कि इस सन्देश के द्वारा कि परिवर्तन, उन्नति और विकास के लिये हिंसा अनिवार्य नहीं है, मार्क्स और लेनिन के सिद्धात के मूलतत्व को चुनौती देने वाली एक नयी प्रकार की क्रान्ति भारत में हुई।

ऐसी क्रान्ति कैसे सभव हुई और वह भारत में ही क्यों हुई? इस प्रश्न के उत्तर के लिए, जैसा कि राष्ट्रपति राजेन्द्रप्रसाद तथा उनके असंख्य देश-वासियों ने, जब मै वहा १९५१ मे सर्वप्रथम गया, मुझे बतलाया कि भारत के गौरवाशाली अतीत के बारे मे कुछ जानना चाहिए। आज भी भारत में प्रतिदिन प्रत्येक व्यक्ति उसी के साथ जी रहा है।

किपलिंग के कथन के विपरीत होते हुए भी, पूर्व और पश्चिम शताब्दियों से एक-दूसरे से मिलते आ रहे है। अधिकाश अमरीकियों ने अपने छात्र जीवन में एक स्थान पर पढा है कि एक प्रसिद्ध योरोपवासी, महान सिकन्दर ३२५ ई० पू० अपने विश्व-साम्राज्य को मिस्त्र के सिकन्दरिया से लेकर दिल्ली के पश्चिम-उत्तर मे अमृतसर तक बढाते हुए भारत पहुँचा था और कहा जाता है कि वहाँ पहुँच कर वह रोया कि अब जीतने के लिए दुनिया में कोई स्थान बाकी नही रह गया।

भारत आने के बहुत पहले मैने कुछ पंक्तियाँ सुनी थीं, जिन्हें मुझे बार-बार

सुनना पडा। वे अधिकांश भारतीय विद्यार्थियो को मालूम है और वे सिकन्दर की भारत-यात्रा के सम्बध मे एक भिन्न उत्तेजनात्मक प्रतिक्रिया प्रस्तुत करती है –

"पूर्व प्रभजन के समक्ष झुका,
धैर्यपूर्ण, गम्भीर उपेक्षा मे
सैनिक-दल की गर्जना को जाने दिया,
और फिर लीन हो गया विचार मे।"

अहिसा का आधुनिक दोषारोपण? शायद! भारत की स्वय अपनी प्राचीन युद्ध-परम्परा की टीका? सभव है। चाहे जो कुछ भी हो, भारतीय दृष्टि-कोण का यह लोकप्रिय एव विशिष्ट प्रतीक मुझे आकर्षक लगा।

सिकन्दर के आगमन के बहुत पहले, आर्यो के प्रारम्भिक आक्रमणों के पश्चात् योरोप और भारत में एक सामान्य जातीय कडी स्थापित की जा चुकी है। भारत मे आजकल काकेशियन आकृतिया, जो कभी-कभी पश्चिमी यात्रियो को चकित कर देती है, यद्यपि इतिहास तथा जिज्ञासा के अतिरिक्त ये बाते अप्रासगिक है, इस बात की प्रमाण है कि भारतीय तथा पाकिस्तानी शारीरिक बनावट मे, अन्य एशियावासियों की अपेक्षा हमसे अधिक निकट है।

भारत मे सिकन्दर तथा अग्रेजो के आगमन के बीच भारतीय इतिहास के दो हजार वर्षो की पश्चिमी इतिहास की पुस्तको मे अधिकतर उपेक्षा की गयी है। तथापि आज अनेक भारतीय, भारतीय इतिहास के प्रारम्भिक काल की ओर निहार रहे है, यह जानते हुए भी कि भारतीय धर्म, दर्शन तथा नैतिकता की अधिकाश मौलिक कल्पनाओ का विकास और प्रतिपादन तीसरी शताब्दी (ईसा के बाद) के पूर्व ही हुआ था।

इस प्रकार सिकन्दर के बाद प्रथम शताब्दी मे सम्राट अशोक का विशाल साम्राज्य अफगानिस्तान से मैसूर तक, जिसमे मध्य भारत का दकन तथा दक्षिण भारत का अधिकाश भाग सम्मिलित था, फैला हुआ था। एच जी वैल्स ने एक बार लिखा कि कौन्स्टेन्टाइन तथा चार्लमेग्ने के नाम सुनने की अपेक्षा आज भी अधिकाश जीवित लोग अशोक की याद करते रहते है।

परन्तु अशोक का सम्मान उसके आदर्शो के विस्तार के लिए अधिक होता है, न कि उसके साम्राज्य-विस्तार के लिए। हिन्दू समाज के प्राचीन चतुर्वर्ण व्यवस्था मे पुरोहित ब्राह्मण वर्ग के बाद दूसरी कोटि मे योद्धा क्षत्रिय वर्ग के अस्तित्व ने प्राचीन भारतीय समाज मे सस्था के रूप मे युद्ध के महत्व को

सिद्ध कर दिया है।

इस सदर्भ मे छठी शताब्दी ईसा पूर्व, बौद्ध धर्म जाति-व्यवस्था तथा हिन्दू धर्म के उत्तरोत्तर ह्रास पर आक्रमण करने के लिए एक सुधार-आन्दोलन के रूप मे प्रकट हुआ था। हिंसा के प्रबल विरोध के साथ उसने धीरे-धीरे अपने प्रभाव को, नेहरू के शब्दों मे 'ताजी हवा के समान समस्त भारतवर्ष म फैला दिया।' २५०० वर्ष बाद मोहनदास गाँधी की याद दिलाने वाली भाषा में बुद्ध ने कहा था, "घृणा से घृणा शान्त नही होती। यह एक शाश्वत नियम है। हमे क्रोध को प्रेम से, छल को सत्य से, बुराई को भलाई से और लोभ को उदारता से जीतना चाहिए।"

बौद्ध प्रभाव से अशोक ने युद्ध का त्याग कर दिया। दरबार में शाकाहार अपनाया गया। अशोक इतना सच्चा बौद्ध था कि वह एक भिक्षुक बन गया और वह इतना पक्का धर्मप्रचारक था कि उसने ६४,००० बौद्ध महन्तो को अपने व्यक्तिगत वेतन-भोगियों में रखा था। उन्हें आदेश था कि वे बलपूर्वक धर्म परिवर्त्तन न करे, बल्कि देश–विदेश में शान्तिपूर्वक सदोपदेश द्वारा धर्म-प्रचार करे।

तीन शताब्दी पूर्व स्वय बुद्ध ने अपने शिष्यों को बतलाया था कि उन्हे क्या शिक्षा देनी है–सभी देशों में जाओ और यह महान उपदेश दो कि गरीब और धनी, नीच और ऊँच सभी एक हैं, और जिस प्रकार समुद्र में सभी नदियां मिल जाती है, उसी प्रकार सभी जातियाँ इस एक धर्म में मिल जायं।

भारत के प्रधान मत्री बनने के बहुत पूर्व, नेहरू ने लिखा था कि राष्ट्रीय सास्कृतिक पृष्ठभूमि की कसौटी यह है कि वह किस प्रकार के नेताओं के प्रति अपनी श्रद्धा अर्पित करती है। गाँधीजी से दो हजार वर्ष से भी अधिक पहले करोड़ों भारतवासियों ने बुद्ध और अशोक के प्रति अपनी श्रद्धा अर्पित की थी।

बुद्ध के बाद शताब्दियों तक आक्रमणों के क्रम तथा सघर्ष और विभाजन चलते रहे। भारत एक बार फिर गुप्त साम्राज्य के महान युग (३२०–४८० ई) में उठा। बाद की शताब्दियों का संक्षिप्त वर्णन यह प्रकट कर देगा कि भारतीय सस्कृति और उसका प्रभाव व्यापकरूप से दक्षिणपूर्वी एशिया में फैल गया और अन्त में 'महान भारत' पूर्व और उत्तर में फैला, जिन्हे आज हिन्देशिया, मलाया, कम्बोडिया, लाओस, बर्मा और स्याम कहते है, जहा उसने चीन की विस्तारवादी शक्ति से मिल कर उसे रोक दिया। उसकी शाखाएँ फिलिपाइन्स तक भी पहुँच गयी थी।

चीन के साथ भारत के ऐतिहासिक सम्बन्ध, उन स्थानों के अतिरिक्त जहाँ उनके प्रतिस्पर्धी आर्थिक और सास्कृतिक स्वार्थ दक्षिणपूर्व एशिया मे मिलते थे, अन्यत्र सदैव सीमित ही थे। यद्यपि आजकल दिल्ली और पेकिंग मे प्राचीन सास्कृतिक सम्बन्धों की बडी चर्चाएँ रहती है, फिर भी ये सास्कृतिक सम्बन्ध थोडे से भारतीय बौद्ध भिक्षुओं की चीन-यात्रा और उससे भी कम चीनी बौद्ध भिक्षुओं की भारत-यात्रा तक ही सीमित रहे। धीरे-धीरे एक हजार वर्ष की अवधि मे धार्मिक और व्यापारिक सम्पर्क बढे, परन्तु जैसा कि कभी-कभी दावा किया जाता है, "दीर्घकालीन और घनिष्ठ सम्बन्धों" से वे बहुत दूर थे।

मुस्लिम विजेताओं के निरन्तर आक्रमणों ने १३ वी शताब्दी तक हिन्दू सम्राटों और राजाओं के प्रभुत्व को विच्छिन्न कर दिया। इस युग मे प्राचीन वैभव के अनेक साक्ष्य विनष्ट कर दिये गये—उदाहरण के लिए बिहार मे नालन्दा विश्वविद्यालय, जिसमे कभी ३० हजार छात्र रहते थे, जला दिया गया। दीर्घकालीन मुस्लिम प्रभुता महान उदार मुगल सम्राट अकबर के शासनकाल (१५५६–१६०५) मे चरमोत्कर्ष पर थी।

अकबर की मृत्यु के पाँच वर्ष पूर्व, महारानी एलिजाबेथ ने ईस्ट इण्डिया कम्पनी को फरमान दिया और ब्रिटिश प्रवेश-काल उच्च सैनिक टेक्नीक की सहायतासे प्रारम्भ हो गया। अधिक समय नही बीत पाया था कि अंग्रेज, डच, पुर्तगाली तथा फ्रासीसी व्यापारी तथा साहसिक लोग भारत मे अपना-अपना गढ बनाने के लिए लडने लगे। अगली शताब्दी के मध्य तक, ब्रिटेन की भुता स्थापित हो गयी।

भारतीयो ने मुझसे दुख के साथ कहा है, "तुम अमरीकियो ने उस समय अपनी स्वतत्रता प्राप्त की, जब हमने अपनी खो दी"। एक विचित्र सयोग है कि जिस लार्ड कार्नवालिस ने यार्कटाउन मे वाशिगटन के समक्ष अपनी तलवार समर्पित की थी, वही बाद मे भारत में ब्रिटिश गवर्नर जनरल बना।

उसके और उसके उत्तराधिकारियों के कुशल निर्देशन मे भारत उपनिवेशवाद का एक बडा उदाहरण बन गया। बाद मे लेनिन के अनेक सिद्धान्तों का यह आधार बना, औद्योगिक इग्लैण्ड का सलग्न वृहद् कृषि-क्षेत्र, ब्रिटिश कारखानों के लिए कच्चे माल का उत्पादक और साथ ही तैयार ब्रिटिश माल के लिए विश्वसनीय और लाभदायक बाजार।

जैसा कि मनुष्य के लिए स्वाभाविक है, बहुत-सी अच्छी बाते भी प्राय भुला दी गयी और अधिकाश भारतीयों के लिए ब्रिटिश उपनिवेशवाद के साथ

उनके दो शताब्दियों के अनुभव की स्मृतियो में, आर्थिक दासता के सकलित क्षोभ, ब्रिटिश औद्योगिक क्रान्ति की निर्यातित विपदा, सस्कृतियों का अनिवार्य सघर्ष और गोरों की वर्णगत महत्ता के चिन्ह मौजूद हैं। कटु स्मृति का यह अवशेष यह समझने मे सहायता करता है कि आज क्यों भारतीयों के लिए और साधारणतया एशियावासियों के लिए उपनिवेशवाद उस साम्यवाद से भी अधिक क्षोभकारक है, जिसका चीन के बाहर बहुत कम एशियावासियों को साक्षात् अनुभव है।

भारत के हाल के सफल अहिसात्मक स्वातत्र्य सघर्ष की पार्श्वभूमि मे यह याद रखना आवश्यक है कि ब्रिटिश शासन को उखाड फेंकने के उसके प्रथम प्रयत्न हिंसात्मक और रक्तपातपूर्ण थे। चीन में तायपिंग विद्रोह के शुरू होने के सात वर्ष बाद, १८५७ मे, ब्रिटेन की भाडे की सेना बगाल के सिपाहियों में महान भारतीय विद्रोह भडक उठा।

सन् १७५७ के प्लासी-युद्ध में क्लाइव ने केवल नौ सौ योरोपीय सैनिकों तथा दो हजार सिपाहियों से इग्लैण्ड की महान विजय प्राप्त की थी। सात वर्षों के भीतर ही छोटे-छोटे सैनिक विद्रोह प्रारम्भ हो गये थे। बाद मे १८२४ में, जब ४७ वी पदाति सेना ने बर्मा मे प्रवेश करने से इन्कार कर दिया, तब ब्रिटिश तोपखाने ने उन्हे उडा दिया, परन्तु दमन से केवल फूट बढी। १८४४ में सात भारतीय रेजिमेण्टों ने विद्रोह किया और उनको भी बडी कठोरता से दबा दिया गया।

१८५० के दशक में भारतीय राष्ट्रवादी अपनी शक्ति महसूस करने लगे थे। उस समय ब्रिटिश अफसरों के मातहत दो लाख ५७ हजार भारतीय सैनिक ३६ हजार योरोपीय सैनिकों से बहुत अधिक थे। पदच्युत भारतीय नरेश बडी दिलचस्पी से क्रीमियन युद्ध की प्रगति देख रहे थे और यह आशा कर रहे थे कि ब्रिटेन का प्राचीन शत्रु रूस, भारत में ब्रिटिश शासन का अन्त कराने में सहायता करेगा।

जब १८५६ मे, नया गवर्नर जनरल लार्ड कैनिंग भारत के लिए रवाना हुआ तब वह चिन्तित था। उसने कहा—"भारतीय आकाश के स्वच्छ और शान्त होते हुए भी उसमें एक छोटा सा बादल प्रकट हो सकता है, जो मनुष्य के हाथ से बडा नही होगा, परन्तु जो धीरे धीरे बढकर अन्तत फूट सकता है और हमारा सर्वनाश कर सकता है।"

एक वर्ष उपरान्त बगाल मे वह बादल फूट पड़ा जब कि हिन्दू

सिपाहियों को पता लगा कि कारतूसो मे गाय और सूअर की चर्बी लगी रहती है। अभ्यास पर गयी हुई १९ वीं बगाल पदाति सेना ने उन कारतूसों का प्रयोग करने से इन्कार कर दिया, जिनको उन्होने सभी भारतीयों को ईसाई बनाने का एक ब्रिटिश षडयत्र समझा।

इसी चिनगारी से शीघ्र ही सारे बगाल मे लपट फैल गयी। उत्तर-मध्य भारत मे अन्य भारतीय सेनाओं ने विद्रोह कर दिल्ली की ओर कूच कर दिया और भूतपूर्व मुगल बादशाह को भारत का नया बादशाह घोषित कर दिया। इनको दबाने के लिए भेजी गयी भारतीय सेनाएँ भी उनसे मिल गयी। कुछ समय के लिए ऐसा लगा कि अपनी अल्पसख्या और सबसे अलग हो जाने के कारण अग्रेज परास्त हो जायेगे, परन्तु उत्तर मध्यभारत के कुछ ही भागो मे किसानो तथा छोटे-छोटे दूकानदारो ने इस विद्रोह का साथ दिया। जब सिखो और गुरखों के नये दस्ते उनकी सहायता को पहुँच गये, तब युद्ध का ज्वार अग्रेजो के पक्ष मे पलट गया।

बहुत से भारतीय इसे अपनी आजादी की पहली जग मानते है और झासी की रानी, जो एक युवती राजकुमारी थी और जिन्होने अपने राज्य मे विद्रोह का झडा खडा कर अपनी सेनाओ का नेतृत्व करते हुए वीरगति प्राप्त की, जैसे देशभक्तों की प्रशंसा करते हैं। नेहरू ने अपनी पुस्तक, 'भारत की खोज' (डिसकवरी आफ इण्डिया) मे इस विद्रोह को एक सामन्तवादी विस्फोट माना है, जिसका नेतृत्व सामन्तों तथा उनके अनुयायियो ने किया और जिसको विदेशी–विरोधी भावना का व्यापक तथा पूर्ण समर्थन प्राप्त था। सामन्तों को व्यापक क्षेत्र मे जनता की सहानुभूति प्राप्त थी, परन्तु वे अयोग्य और असगठित थे और उनके पास कोई रचनात्मक आदर्श या सामुदायिक हित न था। इतिहास में उन्होंने अपना भाग पूरा कर लिया था और भविष्य मे उनके लिए कोई स्थान न था।"

१८५७ के असफल विद्रोह से भारतवासी सीखने लगे, जैसाकि नेहरू ने बाद मे कहा, "सामन्ती व्यवस्था के दिन लद चुके है, उसके लिए युद्ध से स्वतत्रता नही मिलेगी।" दुर्भाग्य से १८५७ में, अग्रेजो ने यह नही सीखा कि हिंसा और प्रतिशोध की भावना से वफादारी नही पैदा होगी। नेहरू ने बताया है कि किस प्रकार उनके शहर, इलाहाबाद मे ब्रिटिश सैनिकों तथा 'सिविलियनो' ने 'खूनी निर्णय' किये, या सैकडों भारतवासियों को बिना किसी प्रकार का मुकदमा चलाये फाँसी पर लटका दिया।

उन्होंने लिखा है कि कतिपय स्पष्टवादी तथा सम्माननीय ब्रिटिश इतिहासकारों ने समय-समय पर पर्दाफाश किया है और उस समय विशाल पैमाने पर व्याप्त जातीय उन्माद तथा अवैध मृत्युदण्ड देने की प्रवृत्ति की एक झाकी दिखायी है। कोई भी यह सब भुला देना चाहेगा, क्योंकि यह एक भयानक चित्र है, जो नाजीवाद और आधुनिक युद्ध द्वारा स्थापित बर्बरता के नये स्तरो के अनुसार भी मानव का निकृष्टतम रूप प्रदर्शित करता है। यदि हम विरोध करते तो हमें एक साम्राज्यवादी जाति के 'सिंह गुणों' का स्मरण कराया जाता।

भावी प्रधान मत्री ने अन्त में कहा, "एक भारतीय की हैसियत से यह सब लिखने में मुझे शर्म आती है, क्योंकि इसकी स्मृति से चोट पहुँचती है और इससे भी गहरी चोट इस बात से लगती है कि इस अपमान को हमनें इतने समय तक कैसे सहन किया। मै इसके लिए किसी भी प्रकार का प्रतिरोध पसन्द करता, उसका परिणाम चाहे जो भी होता।"

परन्तु अन्ततोगत्वा जो प्रतिरोध किया गया, वह विशेष प्रकार का था और इसने भारतीय क्रान्ति को एक विशेष प्रकार की क्रान्ति बना दिया।

सोलहवाँ प्रकरण

अफ्रीका से एक नये प्रकार की क्रान्ति

१८५७ के सैनिक 'विद्रोह' के बारह वर्ष बाद और विक्टोरिया के उस साम्राज्य की सम्राज्ञी बनने के ८ वर्ष पूर्व, जिसमे सूर्य कभी नही डूबता था, पश्चिमी भारत मे, समसामयिक क्रान्तिकारी निकोलाइ लेनिन तथा सुन यात सेन के जन्म के दो वर्ष के भीतर ही मोहनदास गाँधी का जन्म हुआ।

गाँधी का जन्म वकीलो तथा सरकारी कर्मचारियो के परिवार मे हुआ और लेनिन की भाति ही उन्हे भी वकील के रूप मे शिक्षित किया गया। लेनिन की तरह गाँधी के विचार भी अनेक मिश्रित स्रोतों से प्राप्त थे, जिनमे पश्चिमी प्रभाव भी शामिल थे। गाँधी कानून के अध्ययन के लिए इगलैण्ड गये और बाद मे उन्होंने इन वर्षो के अग्रेजी प्रभावो के प्रति प्राय सम्मान व्यक्त किया।

लेनिन की भाँति ही गाँधी को भी निराशाजनक दरिद्रता के बीच अपने पेशेवर जीवन के साथ चलना कठिन मालूम हुआ। लेनिन को जार की पुलिस ने साइबेरिया भेज दिया और गाँधी स्वय कुछ भारतीय व्यापारियो के सलाहकार के रूप मे दक्षिण अफ्रीका गये।

भारत के एक न्यायालय मे, जब वे पहली बार एक दस डालर के मामले मे पैरवी कर रहे थे तब वे जज के सामने सकोचवश बोल भी न सके और लोगो की हँसी के बीच उन्हे कचहरी से बाहर निकल जाना पडा। एक ब्रिटिश एजेण्ट के घर से निकाल दिये जाने के बाद, जहाँ वे अनिच्छापूर्वक अपने भाई के लिए सहायता माँगने गये थे, उन्होंने निश्चय कर लिया कि वे फिर कभी नही सहायता माँगेगे और न कभी अग्रेजो के चापलूस बन कर रहेगे।

अपने विश्वासो के अनुसार रहने का साहस उनका स्वर्णिम नियम बन गया। उन्होने कहा, "मानव समाज मे अर्थात् स्वतत्रता-प्रिय समाज मे कायरो के लिये कोई स्थान नही है।"

दक्षिण अफ्रीका मे उनके साहस की परीक्षा जातीय भेदभाव से हुई, जिसे गोरे योरोपियनों ने भूरे भारतीयो तथा काले अफ्रीकियो पर लाद रखा था। पश्चिमी पोशाक पहने गाँधी ने, योरोपियनो के लिए सुरक्षित रेल के डिब्बे मे यात्रा करने का आग्रह किया। जब उन्होने वहाँ से हटने से इन्कार किया तो उन्हे जबर्दस्ती बाहर निकाल दिया गया।

ट्रेन रवाना हो गयी। ठडी रात मे प्लेटफार्म पर बैठकर उन्होंने अपने-आप से पूछा, "मैं अपने अधिकारों के लिए लडू या भारत वापस चला जाऊ?" रात मे बहुत देर के बाद वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि भारत वापस जाना कायरता होगी।

पहुँचने के एक सप्ताह के अन्दर ही गाँधी ने प्रिटोरिया के सभी भारतीयो की एक सभा बुलायी। वे उनकी हालत की एक तस्वीर खीचना चाहते थे।

२४ वर्ष की उम्र मे, जनता के सम्मुख अपने प्रथम भाषण मे उनकी झिझक चली गयी थी। जो व्यक्ति अपने अधिकारो के लिए लडना चाहता था, उसको उन्होने एक नयी सलाह दी। उन्होंने सुझाव दिया कि हमारा पहला कदम होना चाहिए योरोपियनो की सही आलोचना का उत्तर देना और अपनी त्रुटियों को सुधारना। उन्होंने विशिष्ट रूपसे भारतीयो से अनुरोध किया कि वे सफाई की आदतें डाले, जातीय तथा धार्मिक भेदभाव दूर करे और व्यापार मे भी सत्य बोले। इस ठोस नीव के आधार पर उन्हे अपने अधिकारो के लिए शान्ति, किन्तु दृढता के साथ लडना चाहिए।

एक धनवान व्यापारी ने उदास होकर कहा, "यह देश आप जैसे आदमियो के लिए नही है। रुपया कमाने के लिए हम अपमान सहना बुरा नही मानते और इसीलिए तो हम यहाँ पर है।" परन्तु गाँधी के साहस तथा नये दृष्टिकोण ने भारतीय समुदाय को उद्वेलित कर दिया।

वर्षोपरान्त गाधी का कार्य सफलता के साथ पूरा हो गया। धैर्यपूर्ण बातचीत के द्वारा उन्होने अदालत के बाहर विभिन्न पक्षों मे समझौता कराया। उनका विश्वास था कि वकील का यही कर्त्तव्य है। जब वे भारत के लिए रवाना होने की तैयारी कर रहे थे, तभी योरोपीय धारासभा ने अचानक एक कानून पास कर भारतीयों के मत देने के सीमित अधिकार को भी रद्द कर दिया। गाँधी ही ऐसे व्यक्ति जान पडे, जिन्हे इस भेदभाव के प्रतिरोध का मार्ग मालूम था। उनसे सहायता माँगी गयी। उन्होंने एक महीने तक रुकने की स्वीकृति दे दी, किन्तु वहा वे बीस वर्ष तक रह गये।

चूकि उनके विचारों ने अफ्रीका, भारत तथा अन्य स्थानों में अगले पचास वर्षों में एक अपार शक्ति का सचार किया, इसलिए यह अत्यावश्यक है कि, कम से कम सामान्य रूप मे उन्हे समझने की हम कोशिश करे कि वे विचार क्या है और किस प्रकार बडे व्यावहारिक ढंग से उनके अनुभव तथा दर्शन से उनका विकास हुआ?

१८९४ मे गाधी ने नेटाल भारतीय काग्रेस का सगठन किया और बाद मे उसी प्रकार की सस्थाएँ ट्रान्सवाल और केपटाउन मे भी स्थापित हुई। पहले तो ऐसा प्रतीत हुआ कि उनका कार्यक्रम अफ्रीका मे उसी प्रकार के वार्षिक आवेदनो की पुनरावृत्ति करना होगा, जिनके द्वारा उस समय भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस भारत मे अग्रेजो पर निष्फल प्रहार कर रही थी।

परन्तु शीघ्र ही नये तत्व उभर आये। गाँधी ने जहाँ एक ओर योरोपियनो से भारतीयो के लिए लोकतान्त्रिक अधिकारो की अपील की, वहाँ दूसरी ओर उन्होने अपने लोगो मे अभूतपूर्व रचनात्मक सेवा का कार्य आरम्भ किया।

नेटाल भारतीय काग्रेस ने घरेलू स्वच्छता, व्यक्तिगत आरोग्य और उत्तम मकानो की आवश्यकता पर व्याख्यानो तथा शिक्षा-क्रमो की व्यवस्था की। गाँधी ने कहा कि अनेक भारतीयो की गन्दगी तथा निम्न कोटि के घरो को, जिन्हे योरोपियनो ने उन्हे अलग रखने का बहाना बना रखा है, स्वय भारतीयो को दूर करना होगा। इसको पूरा करने के लिए उन्हे मिल कर काम करना सीखना चाहिए। निरक्षर तथा निम्नवर्ग के मजदूरो के बच्चो के लिए, जिनकी संख्या समाज मे सबसे अधिक थी, उन्होने नेटाल भारतीय शिक्षण संघ की स्थापना की, जिसका खर्च हाल मे सगठित काँग्रेस के चन्दे से चलता था।

धीरे-धीरे रचनात्मक सेवा पर बल और अन्याय के लिए व्यक्तिगत तथा तात्कालिक दायित्व ने गाँधी के जीवन मे क्रान्ति पैदा कर दी। उन्होने अपनी कुलीनवर्गीय आदतो को छोड दिया और गरीबो की पोशाक तथा उनकी साधारण जीवन-प्रणाली अपनायी। उन्होने अपना शहर का मकान भी छोड दिया और देहात के खेतो मे चले गये, जहा बिना किसी ऊँच-नीच के भेदभाव के सभी भारतीयो के लिए सर्वदा द्वार खुला रहता था।

गाँधी ने कहा कि अधिकाश जनतन्त्रवादी तथा उदारवादी एव हिंसात्मक क्रान्ति मे विश्वास करने वाले भी यह सोचते हैं कि, जब तक वे शासन की बागडोर, मत या बल से प्राप्त नही कर लेते, तब तक उन्हे सुधारो के लिए प्रतीक्षा करनी पडेगी। उन्होने सन्देह प्रकट किया कि जो आज छोटे-छोट सुधारो के लिए, जो उनकी पहुँच मे हैं, उत्सर्ग करने के लिए तैयार नही हैं, वे बाद मे बडे-बडे सुधारो के लिए कैसे तैयार हो सकेगे? उन्होने पूछा, "नालियो की आवश्यक सफाई के लिए स्वराज आने तक क्यो रुका जाय?"

जनतत्रवादी रचनात्मक सेवा के इस नये साधन के अतिरिक्त, गाँधी पहले के क्रान्तिकारियो की अपेक्षा एक भिन्न तथा अधिक कठिन लक्ष्य की खोज

मे थे। न केवल अपने विरोधियो को शक्ति से न जीतने की उनकी इच्छा थी, बल्कि वे उनको मत-पत्रो की बाढ मे भी फँसा कर नही छोड देना चाहते थे। वे उनको बदलना चाहते थे—या यो कहिए कि उनसे बातचीत करके या उनको समझा-बुझाकर सत्य को मनवाना चाहते थे, या उनकी बात स्वय मानना चाहते थे।

औपनिवेशिक शासन के अत्याचार तथा आर्थिक शोषण से न तो वे सर्वहारा अधिनायकतत्र का निर्माण करना चाहते थे और न बहुमत के प्रजातंत्रात्मक अत्याचार की स्थापना करना चाहते थे, प्रत्युत उनका उद्देश्य था, सब के हित के लिए-कार्य करने वाले समान नागरिको की समाज-रचना। उनका तर्क सचमुच ही उन क्रान्तिकारियों को विचित्र-सा लगा जो विश्वास करते थे कि हिसा ही एक मात्र यथार्थवादी मार्ग है।

उन्होने आग्रह किया कि एक अच्छे समाज के लिए यह आवश्यक है कि प्रत्येक व्यक्ति अपने पडौसी में विश्वास रखे और समझाने-बुझाने की प्रणाली के प्रति सम्मान रखे। सत्य की खोज के लिए यह मान्यता आवश्यक है कि पूर्ण सत्य किसी एक व्यक्ति, एक दल, एक वर्ग, एक जाति के पास नही है और चूँकि सभी मानवीय विचार एकागी है, इसलिए प्रत्येक दृष्टिकोण को व्यक्त करने की स्वतत्रता मिलनी चाहिए तथा उस पर विचार और उसका सम्मान होना चाहिए, भले ही प्राय उसका विरोध हो और उसे ठुकरा दिया जाय। उन्होने कहा, "सत्य की खोज के लिए मनुष्य को स्वतंत्र होना चाहिए। सत्य उसको मुक्त कर देगा।"

सत्य की इस कल्पना से उन्होने अहिंसा अथवा प्रेम का सहज निष्कर्ष निकाला, जिसको निष्क्रिय प्रतिरोध (Passive Resistance) का गलत नाम दिया गया। उनके लिए बाइबिल के उपदेश— अपने लिए दूसरो से जो करवाना चाहते हो वही दूसरो के साथ भी करो; जो तुम्हारे दाहिने गाल पर चाँटा मारता है उसके सामने बायाँ भी फेर दो, अपने पडौसी से उतना ही प्रेम करो, जितना अपने से करते हो —धार्मिक नेताओ द्वारा दुहराये जाने वाले नारे मात्र नही थे, बल्कि राजनीतिक कार्य के लिए आवश्यक और व्यावहारिक सिद्धान्त थे। ईसा के उपदेश (सर्मन आन दी माउण्ट) के अनुसार जीवन-यापन से कोई भी अपने विरोधी में श्रेष्ठ भावना जागृत कर सकता है और इस प्रकार मन और मस्तिष्क की एकात्मकता की ओर बढ सकता है, जो एक श्रेष्ठ मानव समाज के लिए आवश्यक है।

इन सिद्धान्तो का पालन करते हुए उन्होने जानबूझ कर अपने शत्रु से लाभ उठाने का यत्न नही किया। १८९१, मे जब एक बार दक्षिण अफ्रीकी गोरो की भीड के हाथ उन्हे लगभग अवैध मृत्यु-दण्ड मिल चुका था, तब उन्होने उसके नेताओ को दण्ड दिलाने से इन्कार कर दिया, यद्यपि सरकार उन्हे दण्ड देने के लिए तैयार थी। १८९९ मे, जब बोअर-युद्ध मे अग्रेज बहुत बुरी तरह फँस गये थे, तब गाँधी ने आदोलन को बन्द कर दिया और ग्यारह सौ भारतीयो का चिकित्सा-स्वयसेवक-दल बनाया, जिनमे से बहुतो को लेकर वे लडाई के मोर्चे पर सेवा करने के लिए गये। इसके लिए उन्हे और अन्य छत्तीस भारतीयो को 'साम्राज्य युद्ध तमगे' मिले।

गाँधी का विश्वास था कि सर्वदा समझा-बुझाकर सम्मानपूर्ण समझौते के लिए प्रयत्न करना चाहिए, अपने उद्देश्यो को इस सीमा तक निश्चित कर देना चाहिए कि वह विरोधी के स्वीकार करने की शक्ति मे हो और तमाम विश्वासघात के बावजूद, विरोधी के शब्दो तथा उसके इरादो मे विश्वास बनाये रखना चाहिए। उन्होने कहा, "इसके पीछे यह विश्वास है कि 'नीरो' भी बिलकुल हृदयहीन नही था।"

जब गॉधी ने भारतीयो से दक्षिण अफ्रीका के प्रधान मत्री, जान क्रिश्चियन स्मट्स के मौखिक आश्वासन पर आधारित समझौते को स्वीकार कर लेने के लिए कहा, तो उनमे से कुछ उग्र लोगो ने तर्क प्रस्तुत किया कि स्मट्स पहले ही हमको अनेक बार धोखा दे चुका है। गाँधी ने जवाब दिया, "अहिंसा मे विश्वास रखने वाला भय को तिलाजलि दे देता है।"

गाँधी ने कहा, "विरोधी यदि बीस बार भी धोखा देता है, तो अहिंसक सिपाही को इक्कीसवी बार विश्वास करने के लिए तैयार होना चाहिए, क्योकि मानवीय प्रकृति मे पूर्ण विश्वास ही उनके सिद्धान्त का सार है।"

समझौता करने की अपनी इच्छा के साथ गाँधी यह भी मानते थे कि, कुछ ऐसे शाश्वत सिद्धान्त है, जिनमे समझौता के लिए कोई गुजाइश नही होती और उनके पालन के लिए जीवनोत्सर्ग के लिए भी तैयार रहना चाहिए ; परन्तु शासित की स्वीकृति पर आधारित समाज के प्रति वचनबद्ध होने के कारण, गाँधी ने सिद्धान्तो के नाम पर दूसरो की जान लेने के साधारण हिसात्मक मार्ग को अस्वीकार कर दिया।

वे टालस्टाय से सहमत थे, जिन्होने १९०५ के असफल रूसी विद्रोह के बाद लिखा कि रूस मे जो कुछ चल रहा है, वह मानवीय एकता के साधन के

रूप मे हिसा के प्रयोग की व्यर्थता और हानि का प्रमाण है। टाल्स्टाय ने लिखा, "यद्यपि ईसाई दुनिया मे असख्य क्रान्तिया तथा क्रान्तिकारी हो चुके है, फिर भी, बहुसख्यको पर कुछ लोगो का प्रभुत्व, भ्रष्टाचार, मिथ्याचार, उत्पीडन का भय, दासता, क्रोध और जनता की निर्ममता, ये सारी बाते पूर्ववत् बनी हुई है और फैलती तथा विकसित भी होती जा रही है।

टाल्स्टाय की रचनाओ मे अपनी अहिंसा के लिए 'युक्तिसगत आधार' देख कर ही गाँधी ने टाल्स्टाय को अपना गुरु माना। फिर भी, गाँधी ने यह महसूस किया कि टाल्स्टाय की हिंसा की अस्वीकृति पहला कदम मात्र थी। अन्याय के विरुद्ध एक प्रकार की सामूहिक तथा क्रान्तिकारी सघर्ष की आवश्यकता उन्होने देखी। उन्होने लिखा, "शान्तिप्रियता की अपेक्षा सच्चाई अधिक महत्वपूर्ण है।"

गाधी ने निष्क्रियता और विवशता की अपेक्षा युद्ध और पराजय को अच्छा समझा। वे पलायन और कायरता के बजाय 'रक्तपात' को भी सहन कर सकते थे। उन्होने कहा, "मेरा तो विश्वास है कि जहाँ कायरता और हिंसा में से किसी को चुनना हो, वहाँ मे हिसा के लिए सलाह दूँगा।"

चूँकि गाँधी ने सत्य और न्याय के लिए सघर्ष का एक नया मार्ग ढूँढ निकाला, एसा मार्ग, जिससे हिसावादी क्रान्तियो के भ्रष्टाचार से बचा जा सकता था, इसलिए उनको मार्ग के चुनाव की कोई आवश्यकता नही पडी। उन्होने कहा, "मेरी कल्पना की अहिंसा दुष्टता के विरुद्ध हिंसात्मक प्रतिरोध की अपेक्षा अधिक क्रियाशील और संघर्षशील है। हिंसा का रूप ही दुष्टता को बढ़ाने वाला है।"

भारतीयो में केवल रचनात्मक सेवा और योरोपियनो से प्रतिवेदन के द्वारा दक्षिण अफ्रीका में भारतीयो के अधिकारो की प्राप्ति के लिए निरन्तर प्रयासो की विफलता के कारण ही, गाँधी अहिंसात्मक सघर्ष की इस नयी कल्पना पर पहुँचे। चूँकि वे भारतीयो से संख्या में (१० १ के अनुपात में) कही अधिक थे, इसलिए व्यावहारिक दृष्टि से भी सफल हिंसा के लिए दरवाजे बन्द थ और मतदान द्वारा विरोधी को अपदस्थ करने की सामान्य लोकतान्त्रिक आशा भी नही थी। इस धर्मसकट की स्थिति से एक नयी युक्ति निकली।

× × ×

१९०६ में यारोपियनो ने जब एशिया-विरोधी नया कानून लागू कर दिया तब गाँधी ने अपने अनुयायियो से उस कानून का खुले आम और शान्तिपूर्वक

उल्लंघन करने के लिए कहा। तुरन्त ही तीन हजार से भी अधिक लोगो न ऐसा करने की शपथ ली। सामूहिक सविनय अवज्ञा का जन्म हुआ और गाँधी पहली बार जेल गये।

उन्होने समझाया कि यह नया मार्ग क्यो अपनाया गया। "१९०६ तक मैंने केवल तर्क के प्रभाव पर भरोसा किया। मुझसे अधिक शायद ही किसी ने इतन आवेदन-पत्र भेजे होगे और इतने कोरे तर्क स्वीकार किये होगे और मैं इस मौलिक निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि यदि आप सचमुच कोई महत्वपूर्ण कार्य करना चाहते है, तो केवल तर्क से काम नही चलेगा, आपको हृदय भी प्रभावित करना पडेगा।"

उन्होने आगे कहा, "तर्क का प्रभाव अधिकतर मस्तिष्क पर पडता है, परन्तु हृदय पर प्रभाव कष्ट-सहन का पडता है। वह मनुष्य के आन्तरिक ज्ञान का द्वार खोल देता है। मानव जाति का चिह्न कष्ट सहन है, तलवार नही।"

यह जानते हुए कि वे राजनीतिक कार्य के परम्परागत लोकतान्त्रिक दृष्टि-कोण को नयी सीमाएँ प्रदान कर रहे है, गाँधी ने लिखा, "ब्रिटिश इतिहास के ऊपरी अध्ययन ने हमको यह सोचने के लिए मजबूर किया कि सारी सत्ता ससद के द्वारा जनता मे आती है। सत्य तो यह है कि सत्ता जनता मे निहित है।"

१८९४ मे उन्होने यह प्रदर्शित करना प्रारम्भ कर दिया कि आवेदनो की राजनीति को ठोस रूप प्रदान करने के लिए मानव-सेवा मे सगठित गैर-सरकारी प्रयत्नो की आवश्यकता है। अब १९०६ में उन्होने निश्चय किया कि अन्याय का शान्तिपूर्ण प्रतिरोध दूसरा पक्ष है। उन्होने लिखा, "सविनय अवज्ञा शक्ति का भण्डार है।" उन्होने थोरियो के शब्द को हिन्दी मे 'सत्याग्रह' नाम दिया, जिसका मोटे तौर पर अर्थ होता है 'आत्मबल'। उन्होने सच्चाई के लिए सस्कृत शब्द 'सत्य' और खूब जोर से पकड़ने के लिए 'आग्रह' शब्द लिया।

उन्होने समझाया कि सत्याग्रह का अर्थ दुष्ट के समक्ष समर्पण नही है, बल्कि इसका अर्थ अत्याचारी की इच्छा के विरुद्ध अपनी सम्पूर्ण आत्मा को लगा देना है। उनका विश्वास था कि सत्याग्रह के द्वारा, किसी भी अकेले व्यक्ति के लिए, अपने सम्मान, अपने धर्म, अपनी आत्मा की रक्षा के लिए अन्यायपूर्ण साम्राज्य की समूची शक्ति को चुनौती देना और उस साम्राज्य के पतन अथवा उसके पुनरुद्धार के लिए नीव डालना सम्भव है।

गाधी के सामूहिक सविनय अवज्ञा के प्रयोग के परिणामस्वरूप स्मट्स की जेले

हजारो भारतीयो से खचाखच भर गयी। गाँधी ने कहा कि स्वतंत्र व्यक्तियो को उसी प्रकार जेल जाना सीखना चाहिए, जिस प्रकार दूल्हा अपनी नवविवाहिता पत्नी के कक्ष में प्रवेश करता है। जब कभी कोई कानून आत्मा के विरुद्ध हो, तो जेल जाकर कोई व्यक्ति अनुचित कानून का विरोध कर सकता है और कानून के प्रति सम्मान भी बनाये रख सकता है।

उन्होने कहा कि इससे अधिक और क्या सम्मान प्रकट किया जा सकता है कि अल्पसख्यक बहुसख्यक से कहे, "हम तुम्हारे कानून का पालन नही कर सकते, क्योकि उसे हम अन्यायपूर्ण समझते है, परन्तु हम तुम्हारे कानून बनाने के अधिकार को स्वीकार करते है। जब तक हम इस कानून के बदलने के लिए तुम्हे नही मनवा लेगें, हम जेल मे ही रहेगे। हम आशा करते है कि हमारी जेल में उपस्थिति तुम्हे फिर से सोचने के लिए विवश करेगी।"

जब स्मट्स ने फिर विचार किया, कैदियो को छोड दिया और कानून में सशोधन करने की प्रतिज्ञा की, तो गाँधी की नयी संघर्ष-प्रणाली विजयी होती दिखायी दी, परन्तु योरोपियनो के दबाव के कारण स्मट्स को अपनी प्रतिज्ञा भग करनी पडी और तब गाँधी ने तुरन्त ही अपने अनुयायियो को दूसरी बार कष्ट सहन के लिए आह्वान किया। जेलें फिर भर गयी, परन्तु इस बार यह क्रम कई वर्ष तक चलता रहा।

धीरे-धीरे पहले के उत्साही लोगो को और जेल जाना उचित नही मालूम हुआ और अधिकाश लोगो ने गाँधी का साथ छोड दिया। १९१२ में उन्होंने दु ख के साथ भारत में अपने मित्रो को लिखा, "मेरे कार्य का जहाँ उत्साह के साथ अनुसरण किया जा रहा था, अब अधिक से अधिक ६६ और कम से कम १६ व्यक्ति रह गये हैं, जो लडते जायेंगे, चाहे उन्हे आजीवन कैद ही क्यो न मिले।"

शीघ्र ही सख्त नये जातीय आध्यादेश जारी किये गये, जिनसे सत्याग्रह की अग्निपरीक्षा के लए नयी तत्परता पैदा हुई। गाँधी नें अपनी शिष्याओ को कोयले की खानो में मजदूरो से हडताल कराने के लिए भेजा। उनका पुराना जादू लौटता प्रतीत हुआ और हजारो मजदूरो ने हडताल कर दी।

उन्होने तब भारतीयों को कानून तोडने के उद्देश्य से 'एशियाई' पार-पत्र (पासपोर्ट) के बिना राज्य की सीमाओं के पार चलने के लिए बुलाया। उन्हें फिर आशातीत सफलता मिली।

२८ अक्तूबर, १९१३ को जब गाँधी की पाँच हजार से भी अधिक बड़ी शान्ति-सेना नेटाल के मैदान के पार चली, तब उनके साथ इतने अधिक आदमी

थे, जितने प्लासी मे क्लाइव के साथ, वैलीफोर्ज मे वाशिंग्टन के साथ और बोयका मे बोलिवर के साथ भी नही थे। ट्रान्सवाल की सीमा पर गाँधी को सशस्त्र पुलिस का सामाना करना पडा। वे उनकी बन्दूको की परवाह न कर सीधे आगे बढे और उनके हजारो निहत्थे लोगो ने उनका अनुसरण किया। पुलिस बिना गोली चलाये ही वापस चली गयी।

यद्यपि गाँधी स्वय बन्दी हुए, तथापि अनुशासित अहिसात्मक अभियान जारी रहा। अन्त मे सरकार ने कूच करने वालो को बन्दी बना लिया और मजदूरो को उन खानो मे काम पर वापस भेज दिया, जो न्यूकैसिल जेल की बाहरी अग मानी जाती थी।

प्रथम विश्व-युद्ध के कुछ ही सप्ताह पूर्व स्मट्स फिर झुका, जाँच-पडताल के लिए एक आयोग की नियुक्ति की, कैदियो को छोड दिया और गाँधी की अधिकाश शर्तो को स्वीकार कर लेने का वचन दिया। इस बार उसने अपने वचन का पालन किया। तदुपरान्त दक्षिण अफ्रीका यूनियन पार्लमेण्ट (South African Union Parliament) ने 'इण्डियन रिलीफ बिल' पास किया और उन कतिपय विशिष्ट अधिकारो का आश्वासन दिया, जिनके लिए गाँधी लडे थे।

गाँधी के सघर्ष तथा कष्टसहन के कार्यक्रम का अनेक भारतीयो तथा कुछ योरोपियनो पर भी गहरा प्रभाव पडा। स्मट्स के एक सेक्रेटरी ने समझाते हुए कहा, "मै आपके आदमियो को पसन्द नही करता और उनको सहायता देने की कतई परवाह नही करता, परन्तु मै करू तो क्या? आप हमको जरूरत के दिनो मे मदद देते है। हम आप पर हाथ कैसे उठा सकते है? मै प्राय यही चाहता हूँ कि आप लोग अग्रेज हडतालियो की तरह हिसा करे और तब हम बताये कि आप लोगो के साथ कसे निबटा जाय, परन्तु आप तो दुश्मन को भी कष्ट नही पहुँचाते . और यही पर हम बिल्कुल बेबस हो जाते है।"

सघर्ष के प्रारम्भिक दिनो मे स्मट्स ने कहा था, "एशियाई कैन्सर को, जिसने दक्षिण अफ्रीका के जीवन-तत्वो को खा डाला है, दृढता के साथ नष्ट कर देना है।" तथापि सघर्ष के समाप्त होने के पूर्व स्मट्स ने गाँधी के पढन के लिए जेल मे पुस्तके भेजी और गाँधी ने भी बदले मे, जोहान्सबर्ग के बाहर अपने टालस्टाय-आश्रम मे बनी, एक जोडी चप्पल भेजी।

बाद मे गाँधी की ७० वी वर्षगाठ पर स्मट्स ने उन्ही चप्पलो को यह

दिखाने के लिए भारत वापस भेजा कि 'एक पुराने दोस्त' ने उन्हे हिफाजत से रखा था। उसके साथ एक पत्र मे स्मट्स ने लिखा था, "मै ऐसे महान पुरुष के जूतो मे खडा होने योग्य भी नही हूँ।"

दलगत राजनीति के इतिहास के कठोर न्याय मे, गाधी के अहिंसात्मक प्रयत्न अफ्रीका मे निर्णयात्मक ढग से सफल नही थे। उसके चालीस वर्ष बाद भी 'पृथक्करण' कानून के रूप मे जातीय भेदभाव दक्षिण अफ्रीकी समाज पर बढते हुए विकारकारी कोढ के समान है। जबकि गाँधी अफ्रीका में अपने नये ढंग के अहिंसात्मक क्रान्तिकारी प्रयत्न का प्रयोग कर रहे थे, सुन यात सेन के अनुयायियो ने इसके विपरीत मञ्चू राज्यवश को बलपूर्वक उखाड़ फेंका। १९०५ की अपनी दुर्भाग्यपूर्ण क्रान्ति में भाग लेने के बाद लेनिन अपनी बोलशैविक पार्टी का पुनर्गठन सैनिक आधार पर कर रहा था, जिसके भाग्य मे रूसी राज्य पर कब्जा करना बदा था।

फिर भी गाँधी ने अपनी अहिंसात्मक प्रतिरोध-प्रणाली के सर्वोत्तम प्रदर्शन के लिए सर्वदा अफ्रीका की ओर देखा। चूकि उनके प्रयास भारतीय अल्पसख्यको तक ही सीमित थे, जिनका अनुपात १० १ का था, इसलिए भारत मे उन्हे और भी बडी बाधाओ का सामना करना था। वहाँ उन्हे अपने देश के विशाल तथा शक्तिशाली बहुसख्यको के साथ काम करना था, और अपनी नयी प्रणाली की महान् शक्ति को इस प्रकार प्रदर्शित करना था कि लोगों को पूर्ण विश्वास हो जाय। अब यही बात कि गाँधीवादी क्रान्ति का सूत्रपात दक्षिणी अफ्रीका में हुआ, इस बात की सूचक है कि उसका अन्तिम क्षेत्र भारत तक ही सीमित नही रहेगा।

सत्रहवाँ प्रकरण

भारत में गांधीवाद का प्रयोग

१८५७ के सनिक विद्रोह के बाद भीषण आतक के समय से भारत मे बहुत-कुछ हो चुका था। उस भीषण दमन ने ब्रिटिश पार्लमैण्ट को अगले वर्ष ही भारत मे सुशासन के लिए एक कानून पास करने के लिए विवश कर दिया। इस कानून ने औपचारिक ढग से शासन को ईस्ट इण्डिया कम्पनी के हाथो से सम्राज्ञी के हाथो मे सौप दिया।

तब पार्लमेण्ट के विधान से ही कम्पनी की सेनाएँ शाही सेना मे मिला दी गयी। उसका गवर्नर जनरल रानी का वाइसराय हो गया और १८७७ मे दिल्ली मे शानदार दरबार हुआ, जिसमे विक्टोरिया भारत की सम्राज्ञी घोषित की गयी।

फिर भी विक्टोरिया के मुकुट मे यह सर्वाधिक जाज्वल्यमान रत्न शायद ही सुरक्षित था। उनके उत्तराधिकार-काल मे एक अग्रेज सिविल सर्वेण्ट, एलन औक्टेवियन ह्यूम सात भागो की रिपोर्ट के अध्ययन से इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि भारत मे बढता हुआ राजनीतिक असन्तोष भूमिगत होता जा रहा है। उसने निश्चय किया कि हिंसात्मक विद्रोह के स्थान पर कोई विकल्प शीघ्र ही आवश्यक है।

कुछ भारतीयो का आज भी यही कहना है कि ह्यूम असन्तोष के लिए केवल एक सुरक्षा-पट खोलना चाहते थे, जिससे ब्रिटिश राज यहा अच्छी तरह कायम रह सके। यदि यह ठीक मान लिया जाय तो भी उसने अनजाने ही उस क्रान्ति के लिए एक यत्र स्थापित कर दिया, जिसने अन्ततोगत्वा भारत को स्वतंत्र कर दिया।

चाहे कुछ भी हो, १८८३ मे कलकत्ता विश्वविद्यालय के स्नातको के समक्ष उसने अपना प्रस्ताव रखा कि इस पूरे उपमहाद्वीप के प्रमुख भारतीय, एक गैर-सरकारी वार्षिक ससद 'इण्डियन नैशनल कांग्रेस' मे एकत्र हुआ करे। उसने कहा "यदि पचास सच्चे और अच्छे आदमी भी स्थापको के रूप मे मिल जायँ तो इसकी स्थापना हो सकती है। काम कैसे किया जाय, यह लोग जानते हैं।"

बम्बई में आयोजित कांग्रेस के प्रथम अधिवेशन में सम्पादको, वकीलो,

प्रोफेसरो तथा व्यापारिक नेताओ के सम्मुख प्रारम्भिक शब्द कहने के लिए ह्यूम उपस्थित था ही। एक ब्रिटिश इतिहासकार के अनुसार, "सैनिक विद्रोह के बाद वाले वर्षों मे, प्रतिक्रिया की दुर्भाग्यपूर्ण कार्रवाइयो ने रूसी दमन के तरीको को अपना कर भारत को एक क्रान्तिकारी विप्लव के समीप ला दिया था और श्री ह्यूम का इसमे हस्तक्षेप के लिए प्रेरित होना बिल्कुल सामयिक था।"

किन्तु कॉंग्रेस को मालूम हो गया कि सरकार से आवेदन करने से भारत की समस्याओं तथा सघर्षों का अन्त नही हो सकेगा। १९१५ मे जब गाँधी वापस आये तो हिंसा की शक्ति बढ चुकी थी और स्वय कॉंग्रेस स्वशासन की अपनी माँग मे काफी सघर्षशील बन चुकी थी। गाँधी के आगमन से कॉंग्रेस धीरे-धीरे नये प्रकार की क्रान्ति का साधन बनने वाली थी, जिसका प्रयोग गाँधी ने अफ्रीका मे किया था।

यह ठीक है कि उस समय गाँधी अकेले ही महत्वपूर्ण भारतीय क्रान्तिकारी न थे। उनके विचार शायद ही कभी बिना चुनौती के मान्य हुए, परन्तु यदि भारतीय क्रान्ति किसी की कही जा सकती थी, तो वह गाँधी की ही थी और उनकी यही कहानी क्रान्ति के हमारे सर्वेक्षण के लिए महत्वपूर्ण ह।

भारत में गाँधी ने अपना प्रथम लघु सत्याग्रह १९१७ के वसन्त ऋतु में शुरू किया, जबकि उसके कुछ ही महीनो बाद रूसी क्रान्ति को अपने हाथ मे करने के प्रयत्न मे लेनिन पेट्रोग्रैड पहुँचा। चीन उस समय युद्ध-प्रभुओ के अपूर्ण सघर्ष में उलझा हुआ था, जिसमें सुन की क्रान्ति विफल हो चुकी थी।

जब तक गाँधी ने भारतीय राष्ट्रीय कॉंग्रेस को अपने हाथ में कर उसे अहिंसात्मक क्रान्ति का साधन नही बना दिया, तब तक साम्यवादी यह दावा करते रहे कि नये सोवियत राज्य ने आखिरकार यह सिद्ध कर दिया कि उसने वर्ग-सघर्ष से एक विज्ञान का निर्माण किया है। कुछ भारतीय पहले ही प्राचीन मार्ग से मास्को यह पता लगाने जा रहे थे कि क्या सचमुच लेनिन ने ऐसा कोई उपाय ढूढ निकाला है, जिससे सामन्ती किसानो की शक्तियो को प्रवाहित कर एक पिछडे हुए समाज को बीसवी शताब्दी मे बढाया जा सकता है।

गाँधी ने देखा कि साम्यवाद को भारत में पका-पकाया क्षेत्र मिल जायगा। जनता की दरिद्रता और शोषण ने पूरे उप-महाद्वीप को पश्चिमी साम्राज्य की श्रृंखला में एक बहुत ही कमजोर कड़ी बना दिया था—एक ऐसी कड़ी जिसे

तोडने का उपाय, लेनिन सोचता था कि, उसके पास है। शिक्षित युवको मे, और विशेषकर बगाली युवको मे बढती हुई क्रान्तिकारी प्रवृत्ति ने लेनिन जैसो के दल के लिए स्वाभाविक आधार प्रदान कर दिया था। १९१२ मे एक अक्खड युवक ने वाइसराय पर उस समय बम फेका, जब वे सुसज्जित हाथी पर बठ कर दिल्ली मे प्रवेश कर रहे थे। सुभाष बोस ने, जिन्होने द्वितीय विश्व-युद्ध के समय अग्रजो की जेल से भागकर युद्ध मे जापानियो का साथ दिया था, एक अग्रेज शिक्षक पर, जिसने कहा जाता है कि भारत का तिरस्कार किया था, अपने कुछ साथी छात्रो के साथ आक्रमण कर और उसे घायल कर लोगो का ध्यान आकृष्ट कर लिया था।

प्रथम विश्व-युद्ध ने हजारो भारतीय सेनाओ को मध्यपूर्व और योरोप मे भेज कर क्षोभ को और भी बढा दिया था। पश्चिमी विज्ञान और टेक्नालोजी के विकास ने, जिसे उन्होने अपनी आँखो देखा था, नमक-मिर्च लगाकर दी गयी उनकी रिपोर्टो के साथ, भारत मे क्रान्तिकारी उत्तेजना को और भी बढा दिया।

गाँधी जानते थे कि भारत मे कम्यूनिज्म का अर्थ अग्रेजो के पलायन तथा एक भारतीय सरकार की स्थापना से कही अधिक होगा। यह एक सुसगठित मौलिक सामाजिक क्रान्ति होगी, जिसमे किसानो से अपने सामन्ती बधनो को तोडने, जमीन्दारो की हत्या करने और जमीन पर कब्जा करने के लिए कहा जायेगा। ऐसी स्थिति मे गाधी को मालूम था कि १८५७ के विद्रोह की भाँति बिखरे हुए प्रारम्भिक हिसात्मक विस्फोटो की अपेक्षा इसमे कही अधिक प्रभाव तथा शक्ति होगी।

परन्तु वे साम्यवाद के आधार, हिसा के सिद्धान्त के कट्टर विरोधी थे। उन्होने साम्यवाद के बारे मे एक बार बोलते हुए कहा था कि यह क्रूरता एक दिन ऐसी भयानक अराजकता पैदा करेगी, जैसी हमने कभी न देखी होगी।

यह आशा रखना कि ऐसी हिसा से या दल की तानाशाही से, जिसे साम्यवाद प्रथम कार्रवाई के रूप मे प्रस्तावित करता है, एक अच्छा समाज प्रकट होगा, उनके लिए इसी प्रकार का कथन था कि हमें बबूल के पौधे से गुलाब का फूल मिलेगा। उनका कहना था कि साम्यवाद यह भूल जाता हैं कि वह जिस औषधि का प्रयोग करना चाहता है, वह रोग से भी भयकर है।

तथापि गाधी ने साम्यवाद को एक प्रकार से उन लोगो के लिए, जो यह विश्वास करते थे कि बिना रक्तपात के क्रान्तिकारी परिवर्तन हो जायगा,

स्वागत-योग्य चुनौती के रूप में समझा। उन्होंने कहा कि जो उत्प्रेरणा आज समस्त ससार में फैल रही है, वह एक महान सकेत है। अराजकता की शक्ति के रूप में यह भयानक है, परन्तु इसके पीछे एक पवित्र उद्देश्य है, वह सुधार चाहती है, वह न्याय और समानता का शासन स्थापित करना चाहती है।

उनको यह बात उत्साहवर्धक लगती थी कि विश्व के लोग क्रान्ति के लिए तैयार है और सभी शोषित, उत्पीडित एव उपेक्षित लोग प्राचीन व्यवस्था का अन्त चाहते है। वे साम्यवादियो से इस बात पर सहमत थे कि रोग अवश्य ह, जिसके उपचार की आवश्यकता है। वे इस बात से भी सहमत थे कि शासन-परिवर्तन ही पर्याप्त नही है। ऐसी क्रान्ति होनी ही चाहिए जो हर समाज तथा हर गाँव तक पहुँचा दी जाय, परन्तु क्रान्ति के रूप के सम्बंध में वे साम्यवाद से अपनी पूरी शक्ति के साथ असहमत थे।

सर्वत्र अन्याय के विरुद्ध सघर्ष की जिम्मेदारी के प्रति गाँधी की व्यक्तिगत स्वीकृति तथा उसके लिए कुछ करने का उनका दृढ संकल्प कोई नयी बात न थी। सभी युगो में धार्मिक नताओ ने सदैव यही निर्णय किया कि वे अपने भाइयो के संरक्षक बनेंगे; परन्तु आधुनिक विज्ञान तथा टैक्नालोजी ने वह साधन प्रदान किया है, जिससे दरिद्रता और अन्याय के अन्त के लिए और अधिक दायित्वपूर्ण कार्य, राजनीतिक तथा आर्थिक दृष्टि से व्यावहारिक है।

यद्यपि गाधी स्वय, आधुनिक टैक्नालोजी के अनेक पक्षो के प्रति सदेहशील थे, तथापि भारत में उनके प्रथम प्रयत्नो का उद्देश्य, न्याय के लिए व्यावहारिक सभावनाओ के प्रति लोगो को जागरूक करना था। भारत के दरिद्रो के साथ एक हो जाने के लिए, उन्होंने किसानो की मामूली पोशाक अपनायी, हिन्दुस्तानी भाषा का प्रयोग किया, सर्वदा केवल तीसरे दर्जे में यात्रा की (क्योकि कोई चौथा दर्जा न था) और अपना घर गाँवो की झोंपड़ियो में बनाया। शिक्षित वर्ग और उनके नेताओ के लिए, जो पाश्चात्य रंग में रगे नगरो में रहते थे, भारत के छ लाख गाँवो से दूर मानो किसी दूसरे महाद्वीप में हो—इतनी दूर जितने साधारण रूसी जनता से जारशाही के कुलीनवर्ग थे—यही सदेश था, "गाँवो मे जाओ"।

गाँधी को इस बात का दु.ख था कि भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस अधिकतर शिक्षितो और धनाढचो की पार्टी थी। गाँवो में इसकी जड़ो का फैलाव नही था और उदार आन्दोलन, प्रदर्शन तथा आवेदनों के द्वारा स्वराज्य का लक्ष्य प्राप्त करने के अतिरिक्त और कोई कार्यक्रम नही था। गाँधी ने काँग्रेस को चेतावनी दी,

"स्वतत्र भारत मे नई दिल्ली के महलो और गरीब मजदूर वर्ग की दयनीय झोपडियो का भेद एक दिन भी नही टिकेगा, जबकि गरीब भी उसी सत्ता का उपभोग करेगा, जिसका देश का सबसे धनवान व्यक्ति करता है।"

जब वे काँग्रेस के एक वार्षिक अधिवेशन मे प्रथम बार गये तो उन्होने देखा कि, कैम्प की टट्टियो की कोई परवाह नही करता। जब उनके साथी काँग्रेस कार्यकर्त्ताओ ने कहा कि यह तो शूद्रो या अछूतो का काम है तब उन्होने झाडू उठा कर स्वय सफाई कर दी।

जिस क्रान्ति की उन्होने कल्पना की, उसे सर्वप्रथम क्रान्तिकारी के जीवन मे ही प्रारम्भ होना चाहिए । शिक्षित तथा रचनात्मक व्यक्तियो के ऐच्छिक सयम और अनुशासनपूर्ण ग्रामसेवा से किसानों और मजदूरो मे जागृति पैदा होगी। इस सम्पर्क से प्रजातत्रात्मक तथा शान्तिपूर्ण क्रान्ति का उद्भव होगा जिससे रामराज्य और स्वराज्य अर्थात् 'सुराज और स्वराज' दोनो प्राप्त हो सकेगे।

धीरे-धीरे गाँधी ने काँग्रेस को, उसके राजनीतिक कार्य मे दो अन्य 'विस्तार', जिनको उन्होने दक्षिण अफ्रीका मे विकसित किया था, जोड देने के लिए समझाया, वे विस्तार थे रचनात्मक सेवा तथा अहिंसात्मक संघर्ष। उन्होने एक चौदह सूत्री रचनात्मक कार्यक्रम प्रस्तुत किया, जिसमे सीधे सम्पर्क द्वारा अस्पृश्यता-निवारण, सभी धार्मिक विश्वासो के प्रति सहिष्णुता, स्वच्छता, महिला-सुधार, ग्रामोद्योग को प्रोत्साहन, खादी का प्रयोग और दैनिक सूत-कताई, लोकतात्रिक अनुशासन इत्यादि भी शामिल थे। उनका विश्वास था कि पूर्ण क्रान्ति के लिए ऐसा कार्यक्रम आवश्यक है।

गाँधी का विचार था कि व्यक्तिगत रूप से इस कार्यक्रम को कार्यान्वित करने और प्रत्येक गाँव मे उसे चालू करने से भारत के गरीब और अमीर सभी मे प्रजातत्रात्मक आदतों तथा प्रवृत्तियो का निर्माण होगा। उन्होने कहा कि भारत को अग्रजों ने नही जीता, उसे हमने उन्हे दे दिया। जब हम अपने पर शासन करना सीख जाय तभी स्वराज है। इसलिए वह हमारी हथेली मे ही है।

सविनय अवज्ञा आन्दोलन प्रारम्भ करने मे भी उन्हे विलम्ब नही हुआ। बिहार मे, जब नील बगान के शोषित मजदूरो ने अपनी दुर्दशा की ओर उनका ध्यान आकृष्ट किया, तो उन्होंने ध्यानपूर्वक छानबीन करने का निश्चय किया। अधिकारियों ने जिला छोड़ देने के लिए उनके पास हुक्मनामा भेज दिया।

उन्होंने उसका उल्लघन किया, गिरफ्तार हुए और मुकदमे में अपने को दोषी स्वीकार किया।

उनकी गिरफ्तारी से सारे जिले के भडक उठने की आशका से उन्हे छोड दिया गया। उनके बीस हजार भूमिहीन किसानों से सूचना एकत्र कर लेने के बाद, ब्रिटिश सरकार ने एक जाँच-समिति नियुक्त करना स्वीकार किया और अन्त मे उनके गम्भीरतम अभाव-अभियोग दूर किये गये।

युद्ध-काल मे किये गये व्यापक सुधारों की प्रतिज्ञाओं को भग कर१९१९ मे ब्रिटिश सरकार ने नागरिक स्वतत्राओ पर नये प्रतिबध लगा दिये। गाँधी ने तुरन्त ही देश से अपनी इस प्रतिज्ञा मे साथ देने के लिये कहा, "हम गम्भीरता के साथ प्रतिज्ञा करते है कि हम विनम्रतापूर्वक इन कानूनों का पालन करने से इन्कार करेगे और हम यह भी निश्चय करते है कि सघर्ष मे निष्ठा के साथ हम सत्य का पालन करेगे और जीवन, व्यक्ति अथवा सम्पत्ति के प्रति हिसा नही करेगे।"

काँग्रेस ने स्वय इस प्रयोग मे शामिल होने का निर्णय किया। राष्ट्रीय उत्साह बढा और अग्रेजों ने हिसा-द्वारा प्रतिकार किया। अमृतसर में जनता की एक सभा मे जब लोगो ने तितर-बितर होने से इन्कार किया, तो अग्रेज जनरल ने अपनी सेना को गोलियाँ चलाने की आज्ञा दे दी और एक हजार से अधिक लोग मारे गये।

तब गाँधी ने अग्रेजो के साथ पूर्ण असहयोग के लिए आवाहन किया, जिसमें ब्रिटिश उपाधियो, नौकरियों तथा माल का बहिष्कार भी शामिल था। ब्रिटिश-विरोधी बगाली आतकवादियो से उन्होने कहा, "मैं हिसावादियो को भी इस शान्तिपूर्ण असहयोग की परीक्षा के लिए आमत्रण देता हूँ।"

जब गाँधी के प्रथम सविनय अवज्ञाकारियों ने जेल जाना शुरू किया, तब भारत के उमडते हुए विद्रोह का समाचार रूस भी पहुँचने लगा।वहाँ उसने लिओन ट्राट्स्की की कल्पना को भी जागृत किया। १९१९ की गर्मी में, केन्द्रीय साम्य-वादी समिति के समक्ष एक ज्ञापन में ट्राट्स्की ने भारत की होनहार क्रान्तिकारी स्थिति की ओर सकेत किया और सुझाव पेश किया कि रूसी साम्यवाद का दबाव अब पश्चिम की अपेक्षा पूर्व की ओर जाना चाहिए।

ट्राट्स्की का विचार था कि लाल सेना के लिए, तत्कालीन सोवियत हगरी की अपेक्षा भारत का मार्ग सरल और छोटा रहेगा। उसने केन्द्रीय समिति को, एक साथी लाल अफसर की मार्फत अपनी योजना भेजी, जिसमे उसका

सुझाव था कि अग्रेजो के विरुद्ध युद्ध करने के लिए घुडसवारो की एक पलटन मध्य एशिया होकर, औपनिवेशिक भारत की सहायता के लिए भेजी जाय।

परन्तु गाँधी अपने अनोखे और नये तरीकों का सफल प्रयोग करते प्रतीत हो रहे थे। अपनी जेल-कोठरी से युवक जवाहरलाल को यह महसूस हुआ कि देश एक ही प्रहार मे स्वतत्रता के लिए तैयार है। पचास हजार से अधिक भारतीयो को अहिंसात्मक अवज्ञा आन्दोलन के लिए जेल की सजाएँ दी गयी थी।

उसी समय उत्तर प्रदेश मे एक कॉंग्रेसी जुलूस भडक उठा और उसने २२ पुलिस-मैनों को मार डाला। गॉधी ने बहुत ही निराश हो कर सम्पूर्ण आन्दोलन को स्थगित कर दिया, उपवास किया और कॉंग्रेस को फिर से गॉवों की सेवा का रचनात्मक कार्य करने का निर्देश दिया। उन्होने कहा कि मैने यह विश्वास करके कि भारतीय जनता अहिसात्मक युद्ध के अनुशासन के लिए तैयार है, 'हिमालय' जैसी बडी भूल की।

जेल मे नेहरू तथा उनके साथियो ने आन्दोलन के स्थगन का क्रुद्ध होकर विरोध किया, परन्तु गाँधी शान्त रहे। उन्हे छ वर्ष की सजा दी गयी और उन्होने प्रसन्नतापूर्वक जेल से लिखा, "मै एक पक्षी की भाँति प्रसन्न हूँ। हस्ताक्षर, मो क गाँधी, न ८२७।"

गाँधी ने न्यायालय मे कहा, "मै जानता था कि मै आग से खेल रहा हूँ। मैने जोखिम उठायी और यदि मुझे रिहा कर दिया गया तो मै फिर वही करूँगा।" १९२४ मे रिहा होने के बाद गाँधी ने निश्चय किया कि दूसरे आन्दोलन और कष्टसहन के पूर्व देश को कुछ वर्षो तक गॉवो मे रचनात्मक सेवा करने की आवश्यकता है। उनका विश्वास था कि इस प्रकार की सेवा उनके अहिसात्मक सिपाहियो के लिए उतना ही आवश्यक प्रशिक्षण है, जितनी फौज के लिए 'परेड' और अन्य अभ्यास।

गाँधी ने उन कॉंग्रेस-नेताओ द्वारा अपनी नीति की आलोचनाओं को अस्वीकार कर दिया, जो तत्काल स्वतत्रता-प्राप्ति के लिए पूर्ण सघर्ष चाहते थे। गाँधी का उद्देश्य केवल अग्रेजो को भगा देना नही था, बल्कि इस प्रकार भगाने का था जिससे भारतीय स्वय शासन करने के लिए भी तैयार रहे। वे "बिना अग्रेजी के अग्रेजी शासन" से कुछ अधिक चाहते थे, जिसको उन्होने कहा कि वह 'शेर का स्वभाव है, न कि शेर।'

एक बडे राष्ट्र के जीवन के सभी अगों मे वे नैतिक अहिंसात्मक क्रान्ति चाहते थे, जिसके अन्त मे जाति, अस्पृश्यता तथा ऐसे ही अन्य अधविश्वास

विनष्ट हो जाय, हिन्दू-मुसलमानो की भेद-भावना अतीत की बात हो जाय और अग्रेजों या योरोपियनो के विरुद्ध शत्रुता का भाव पूर्णतया विस्मृत हो जाय। एक सामाजिक क्रान्ति का उद्देश्य "जातिहीन तथा वर्गहीन समाज" की रचना होनी चाहिए, जिसमे विकेद्रित लोकतात्रिक ग्राम-गणराज्य हों।

गाँधीने कहा, "जब तक स्वतत्रता के प्रयास मे काँग्रेस अहिसा के सिद्धान्तों का पालन और सेवा नही करती, जिसके प्रति अनेक नेता केवल मौखिक आस्था दिखाते है, तब तक हम भारत को उस समय से सुखी नही पायेगे जिस समय हम पैदा हुए थे।" वे यह नहीं सोचते थे कि काँग्रेस अचानक उन सिद्धान्तो का पालन करना सीख जायगी, जबकि वह सत्ता की भ्रष्ट करनेवाली स्थितिमे रहेगी। इसके अतिरिक्त कि हम अपने ही जीवन के प्रत्येक अग मे क्रान्ति का प्रतिनिधित्व करे, उनके लिए सामाजिक क्रान्ति लाने का दूसरा कोई मार्ग नही था।

× × ×

१९३० तक जनता का क्रान्तिकारी जोश फिर धीरे-धीरे बढ रहा था। ब्रिटिश साम्यवादियों के एक सगठन-मिशन ने भारतीय साम्यवादी दल की स्थापना की और उसने मजदूर आन्दोलन मे अपनी जड जमा ली। इसके नेताओं पर, जिनमे भारत मे रहनेवाले कुछ ब्रिटिश साम्यवादी भी थे, षडयत्र के आरोप में मुकदमे चलाये गये और उन्हे लम्बी-लम्बी सजाएँ दी गयी।

गाँधी ने देखा कि जेल-यात्रा के प्रति उन्होंने जो प्रतिष्ठा पैदा की थी, वही साम्यवादियों की शक्ति-वृद्धि मे सहायक हो रही है। इसके अतिरिक्त, काँग्रेस के उग्रवादी लोग भी गाँधी के तरीकों को चुनौती दे रहे थे। सुभाष बोस जैसे युवक अपने-आप जेल जा रहे थे। राजनीति के पंडित के नाते गाँधी जानते थे कि सेवा और संघर्ष के विकल्पों मे से सघर्ष का समय आ गया है।

२६ जनवरी, १९३० को काँग्रेस ने स्वतत्रता की घोषणा ऐसी शब्दावली मे की, जिससे अमरीकी भी परिचित थे, "हमारा विश्वास है कि यह भारतीयो का अविच्छेद्य अधिकार है "। १७७६ के अमरीकी घोषणापत्र से उद्धृत अनुच्छेदो के साथ यह घोषणा-पत्र सारे देश मे बडी-बडी सभाओं मे पढा गया—"यदि कोई सरकार किसी राष्ट्र को इन अधिकारो से वचित करती है और उस पर अत्याचार करती है तो जनता को भी उसको उलट देने या नष्ट कर देने का अधिकार है।"

भारत ने नयी लड़ाई शुरू करने के लिए गाँधी के सुझावो की प्रतीक्षा की।

उसकी कम से कम माँगे वाइसराय के नाम एक पत्र में लिख दी गयी। उनमे सभी राजनीतिक कैदियो की रिहाई, किसानो के लगानो मे कमी, ग्रामीण नमक-उत्पादन पर से प्रतिबन्ध उठाना और नमक-कर की समाप्ति आदि मागे शामिल थी।

गाँधी ने लिखा, "गरीबो की दृष्टि से मै नमक-कर को सबसे अधिक अन्याय-पूर्ण मानता हूँ। चूकि स्वतत्रता आन्दोलन देश के गरीबो के लिए है, इसलिए इसकी शुरुआत इसी बुराई से की जायगी। जब तक वाइसराय उनकी माँगो को स्वीकार नही करता, तब तक वे नमक-कानून तोडते रहेगे और सभी भारतीयो से वसा ही करने के लिए कहेगे।

काँग्रेस के शहरी नेताओ ने, जिनके लिए नमक-प्रतिबन्ध का कोई अथ नही था, पहले तो अपनी आशकाएँ प्रकट की। नेहरू ने लिखा, "हम लोग चकित थे और उस साधारण नमक के साथ राष्ट्रीय आन्दोलन को समझ नही सके।"

जब गाधी ने घोषणा की कि १२ मार्च, १९३० को वे अपना अहमदाबाद-आश्रम छोडेगे और दो सौ मील की पदल यात्रा कर, समुद्र-तट पर, दण्डी ग्राम जायगे और वहाँ ब्रिटिश कानून की परवाह न करते हुए नमक बनायेगे, तब नेहरू ने कहा, "नमक अचानक एक रहस्यमय शब्द बन गया—शक्तिशाली शब्द।"

गाँधी ने प्रतिज्ञा की कि जबतक स्वराज नही मिल जायगा, तब तक वे अपने प्रिय आश्रम मे नही लौटेग। उन्होने कहा, "हम भूखो, नगो और बेकारो की ओर से यह कार्य कर रहे है। हम ईश्वर के नाम पर कूच कर रहे है।"

चौबीस दिनो तक सारा देश सास रोके खडा रहा। दण्डी-यात्रा मे दो सौ भारतीय ग्राम-पदाधिकारी अपने मूल्यवान सरकारी पदो से त्यागपत्र देकर सघर्ष मे शामिल हो गये। रास्ते भर, हजारो विभिन्न पेशो के लोग, सड़क के दोनो किनारो पर, तेजी के साथ चलन वाले अपने महात्मा के दर्शन के लिए खडे थे, और वे अपने विचित्र साथी क्रान्तिकारियो से हँसी-मजाक करते हुए तथा अपनी छडी घुमाते हुए चले जा रहे थे।

५ अप्रेल की रात मे, जत्था समुद्र के किनारे पहुँच गया। गाँधी ने कहा, "ईश्वर ने चाहा तो, मै अपने साथियो सहित कल प्रात साढे छ बजे वास्तविक सविनय अवज्ञा आन्दोलन प्रारम्भ कर दूँगा।" सूर्योदय के समय अपनी नियमित प्रार्थना-सभा के बाद उन्होने समुद्र मे स्नान किया, फिर नमक के किनारे पहुँचे और एक मुट्ठी नमक उठाया।

मानव के एक विशालतम साम्राज्य को चुनौती देकर ईश्वर के महासागर से इस नमक उठाने के साधारण कार्य का भारतीय किसानो पर स्वतत्रता के बारे में इतना अधिक प्रभाव पडा जितना स्वतत्रता-घोषणा-पत्रो के असख्य वाचनो का भी नही पडा। नेहरू ने कहा, "ऐसा प्रतीत होता था, मानो किसी ने एक झरने को अचानक मुक्त कर दिया है। जब हमने जनता के अपार उत्साह और दावाग्नि की भाति नमक-निर्माण के प्रसार को देखा तब हम अत्यन्त लज्जित हुए।"

यद्यपि नेहरू सहित हजारो व्यक्ति गिरफ्तार हुए, फिर भी गाँधी स्वतत्र रहे। उन्होने वाइसरय को लिखा कि मै सरकारी नमक-डिपो पर अहिंसात्मक धावा बोलना चाहता हूँ। दो दिनो के बाद उनकी गिरफ्तारी ने सविनय अवज्ञा आन्दोलन को और भी बढा दिया। शीघ्र ही लगभग एक लाख भारतीय, जिनमें १२,००० मुसलमान भी थे, जेल गये और इससे कही अधिक सख्या मे लोगो ने शान्तिपूर्वक घुडसवार पुलिस के लाठी-प्रहार सहन किये।

नमक-अभियान, जिसकी गाँधी ने योजना बनायी थी, उनकी अनुपस्थिति में भी चलता रहा। यह भारतीय क्रान्ति की ऐतिहासिक घटना हो गयी। २,५०० स्वयसेवको ने पूर्ण अहिसा की प्रतिज्ञा की और सामूहिक धावे में भाग लिया। छोटी-छोटी टुकडियाँ उस कँटीले तारो से घिरे क्षेत्र की ओर बढती गयी, जहाँ हथियारो से लैस सेना नमक की रक्षा के लिए तैनात थी। जन-सागर की प्रत्येक लहर को पुलिस की लाठियों के प्रहार से वही गिरा दिया जाता था।

शीघ्र ही बेहोश लाशो से वहाँ की रक्तरजित धरती पट गयी। फिर भी गाधीवादी सीधे उस निषिद्ध क्षेत्र की ओर अपनी रक्षा मे हाथ उठाये बिना बढते जाते। दिवस के अवसान तक तीन सौ व्यक्ति बुरी तरह घायल हुए और दो मर गये। पूर्ण अहिसा के अनुशासन का पालन हुआ और गाँधी अपनी जेल की कोठरी में प्रसन्न थे।

सबसे अधिक खुशी उन्हे इस समाचार से हुई कि, पश्चिमोत्तर प्रान्त के विशालकाय मुस्लिम नेता, 'सीमान्त गाँधी' गफ्फार खाँ ने अनुशासित सविनय अवज्ञा आन्दोलन में खूखार पठानों का सफल नेतृत्व किया। पुलिस के क्रूरतापूर्ण व्यवहार पर भी इन लोगो ने, जिनकी परम्परा सैनिक हिंसा थी, प्रतिकार में हाथ भी नही उठाया।

लन्दन 'डेली हेराल्ड' के भारत-स्थित संवाददाता ने लिखा, "इस स्पष्ट

स्वीकृति से कि जेल मे बन्द महात्मा भारतीय आत्मा का अवतार है, भयानक विनाश से बचा जा सकता है।"

तब वाइसराय लार्ड इरविन ने, जो बाद मे लार्ड हेलीफैक्स हो गये, बिना किसी शर्त के काँग्रेसी नेताओ को मुक्त कर दिया और गाँधी को बातचीत के लिए बुलाया। विन्स्टन चर्चिल इस खबर से प्रसन्न न थे।

चर्चिल ने कहा, "राजद्रोही, मिडिल टैम्पल का वकील, पूर्व मे प्रख्यात ढग का ढोंगी फकीर, अर्धनग्न गाँधी वाइसराय भवन की सीढियो पर कदम रखे, वह भी ऐसी हालत मे जबकि वह अभी भी सविनय अवज्ञा के विद्रोहात्मक आन्दोलन का सगठन एव सचालन कर रहा है, और बराबरी की हैसियत से सम्राट के प्रतिनिधि के साथ बातचीत करे, यह भयानक और घृणास्पद बात है।"

गाधी का इरविन के साथ, जो स्वय बड़े सहिष्णु तथा धार्मिक वृत्ति के आदमी थे, समझौता हो गया। सघर्ष स्थगित कर दिया गया और गाँधी ने भारतीय स्वायत्त शासन सम्बन्धी लन्दन मे होने वाले दूसरे गोलमेज सम्मेलन मे सम्मिलित होने का आमत्रण स्वीकार कर लिया। इसकी पहली बैठक एक वर्ष पूर्व कॉग्रेस नेताओ के प्रतिनिधित्व के बिना हुई थी।

इस बार भारतीयो को स्वायत्त शासन मे और अधिक हिस्सा देने के लिए ब्रिटिश सरकार तैयार थी, परन्तु गाँधी की न्यूनतम शर्तो को स्वीकार करने के लिए तैयार न थी। अन्त मे उन्हे अपनी असफलता की घोषणा करनी पडी और अधिक सेवा तथा सघर्ष के लिए भारत लौटना पडा। इरविन के स्थान पर दूसरे व्यक्ति को वाइसराय बनाया गया, जिसमे कल्पना का अभाव था। उसने चर्चिल के सख्ती के नुस्खे का प्रयोग करने की सरकारी नीति अपनायी। जब गाँधी स्वदेश लौटे तो उन्होने देखा कि अनेक काँग्रेसी नेता जेलो मे ठूँस दिये गये है।

उसी समय ब्रिटिश सरकार ने अछूतो के लिए पृथक निर्वाचन की घोषणा कर दी। लन्दन मे ही गाँधी ने प्रतिज्ञा की थी कि वे ऐसी कार्रवाई का, अपने जीवन की बाजी लगा कर भी विरोध करेगे। उन्होने देखा कि औपनिवेशिक शासन के विरुद्ध मोर्चो और सघर्षो से देश को हटा कर, एक बार फिर राजनीतिक और सामाजिक निर्माण के कार्य की ओर उसे लगा देने का मौका आ गया है।

उन्होने आमरण अनशन आरम्भ किया, जिसको तोडने की शर्त यह थी कि ब्रिटिश सरकार अपनी इस योजना को वापस ले, जो भारत को स्थायी रूप से

विभाजित कर देगी और अछूतो को हमेशा के लिए जाति-बहिष्कृत कर देगी। उन्होने कहा कि तलवार के स्थान पर अहिंसावादी क्रान्तिकारी सैनिक का यह अन्तिम अस्त्र है।

छ दिनो तक राष्ट्र में फिर हलचल मच गयी। अछूतो के लिए हिन्दू मन्दिरो के दरवाजे पहली बार खोल दिये गये और सवर्ण तथा अछूत नेताओ ने इस भेदभाव को समाप्त कर देने का पवित्र समझौता किया।

नेहरू ने, जिन्होने पहले राजनीतिक युद्ध के स्थगन को "बैठते हुए दिल" से स्वीकार किया था और कहा था कि वे उनके इस एक पक्षीय प्रश्न के लिए अन्तिम बलिदान से परेशान हो गये है, बडी भारी उथल-पुथल देखी और लिखा, "यरवदा जेल में बैठा हुआ यह छोटा-सा आदमी कैसा जादूगर है! वह इस बात को भली भाँति जानता है कि जनता के हृदय को आन्दोलित करने के लिए क्या करना चाहिए।"

गाधी का जीवन अब पूर्णत: ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल के निर्णय पर निर्भर था। एक सप्ताह के निराहार के पश्चात् जेल के डाक्टरो ने कह दिया कि अब मरीज ख़तरनाक स्थिति मे पहुँच गया है। तभी शाही मन्त्रिमण्डल ने अपने गम्भीर निर्णय को अचानक बदल कर अपने मुख्य शत्रु को बचा लिया।

गाँधी ने कहा, "व्रत शिथिल आत्माओ में हलचल पैदा कर देता है और प्रेमी हृदयो को कार्य की ओर प्रेरित करता है।" उन्होन अछूतो का नाम हरिजन अर्थात् 'ईश्वर-पुत्र' रखा और कहा कि मेरा जीवन उन्ही के हाथ में है। जेल से मुक्त होने के कुछ महीनो बाद उन्होंने उन लोगो की ओर से पदल यात्रा प्रारम्भ की और वे देश के कोने-कोने में पहुँच गये।

नमक-अभियान ने स्वतन्त्रता नही दिलायी, परन्तु गाँधी को भारतीय जनता में बढते हुए स्वावलम्बन और इगलैण्ड तथा पश्चिम में व्यापक समझदारी और समर्थन के बढते हुए साक्ष्य से बड़ी प्रसन्नता हुई। १९३१ में लन्दन-सम्मेलन के अवसर पर उनकी यात्रा के समय अनेक अग्रजो ने जो उनका शानदार स्वागत किया और उनके अनशन के समय उनकी जीवन-रक्षा के लिए जो आन्दोलन किया, उससे उनको इसका सर्वप्रथम अनुभव हुआ।

जवाहरलाल नेहरू के पिता न द्वितीय महान आन्दोलन के समय अपनी मृत्यु-शया पर पडे-पडे देवदूत की भाँति कहा था, "मै अब जा रहा हूँ, महात्माजी। मैं स्वराज देखन के लिए यहाँ नही रहूँगा, परन्तु मैं जानता हूँ कि आपने उसे जीत लिया है और वह शीघ्र ही आपके पास होगा।"

अठारहवाँ प्रकरण

मानव समाज के पंचमांश को स्वाधीनता

प्रत्यक्ष सघर्ष के पक्षपाती सुभाष बोस ने १९३३ मे आन्दोलन के स्थगन को गाधी की "पराजय की स्वीकृति" कहा था, तथापि स्थगन के बाद ही अग्रेजो ने १९३५ का भारत-सरकार-कानून बनाया और प्रान्तो को स्वायत्त शासन के पर्याप्त अधिकार प्रदान किये गये। यद्यपि अग्रजो ने इसे किसी भी तरह गाँधी के लिए' रियायत के रूप मे नही समझा, तथापि शायद ही किसी ने सन्देह किया कि यह शक्तिशाली राष्ट्रीय आन्दोलन का परिणाम है, जिसका नेतृत्व लगभग २० वर्षो से गाँधी ने किया था। १९३७ मे सीमित मताधिकार के आधार पर प्रान्तो मे निर्वाचन भी हुए और काँग्रेस, मुस्लिम बहुमतवाले पश्चिमोत्तर प्रान्त सहित, नौ प्रान्तो मे विजयी हुई।

यद्यपि गाँधी ने कोई भी पद स्वीकार नही किया, तथापि उनकी काग्रेस पार्टी ने प्रान्तीय सरकारो का निर्माण किया और पहली बार राजनीतिक दायित्व का अनुभव किया। दस वर्ष बाद, ब्रिटिश सरकार भारत से बिल्कुल चली गयी और भारतीय क्रान्ति की उपनिवेश-विरोधी स्थिति समाप्त हुई।

साम्यवादियो ने गाधी को अपने ढग की वर्ग-क्रान्ति के लिए सर्वदा बाधक माना। उनके १९३९ के 'इण्टरनेशनल' ने दल के सदस्यो को "भारत मे गाँधी-वादी" जैसी उन प्रवृत्तियो से लडने के लिए निर्देश दिये, जो कि निष्क्रियता सिखाने वाली और वर्गयुद्ध का खण्डन करने वाली कही जाती थी। साम्य-वादियो के लिए गाधीवाद, "प्रतिक्रियावाद की ओर लौटना" था।

अभी १९५४ मे 'ग्रेट सोवियत इन्साइक्लोपीडिया' (विशाल सोवियत ज्ञान-कोश) के नये सस्करण मे गाँधी को प्रतिक्रियावादी, "शोषको का वशज", और "धार्मिक आस्थाओ से लाभ उठानेवाला" बताया गया ह, "जिसने जनरजनात्मक ढग से साधको की नकल की और जिसने दक्षिण अफ्रीका मे जुलूओ के विरुद्ध ब्रिटिश साम्राज्यवाद के साथ सक्रिय सहयोग किया।"

इस कटुता से कदाचित् यह परिलक्षित होता है कि जब तक गाँधी जीवित रहे, भारत के साम्यवादियो को व्यापक जनसमर्थन प्राप्त करने मे कभी सफलता नही मिली और उसके बाद भी ठोस समर्थन नही प्राप्त हो सका। गाँधी के कुछ गुणो को अपना कर उन्होने भी कुछ प्रभाव पैदा करने की कोशिश की।

वे गुण थे– अन्याय के प्रति चिन्ता, गरीबो से मिलजुल कर रहना और कष्ट सहन के लिए तत्परता।

१९४७ मे, जब अग्रेजो ने भारत छोडने का निश्चय किया तब यह मानना कठिन न था कि मुश्किल से ११० पौण्ड वजन का यह नाटा आदमी, जिसके हाथ मे केवल एक लम्बी लाठी और सत्याग्रह का अस्त्र था, स्वाधीनता-प्राप्ति के लिए अधिकतर जिम्मेदार था। इसमे भी सन्देह नही कि भारत और ब्रिटन की मित्रता का, जिस पर राष्ट्रमण्डल का पुनर्निमार्ण हुआ, मूल आधार भी वही अस्त्र था, जिससे गाधी ने सघर्ष का सचालन किया था।

उपनिवेश-विरोधी क्रान्ति का यह कितना विचित्र तथा वैभवशाली चरमोत्कर्ष है! एक ओर भारत की रग-विरगी सैनिक रैजिमेन्टो के और दूसरी ओर स्काटिश हाईलण्डर्स के सामूहिक बैण्ड 'गाड सेव द किग' (ईश्वर राजा की रक्षा करे) की धुन बजाते हुए! सम्राट का ध्वज ध्वज-दण्ड से नीचे उतर रहा है और स्वतत्र भारत का केसरिया, हरे और सफेद रग का झण्डा, जिसके बीच में गाँधी का चर्खा है, गर्व के साथ ऊपर चढ रहा है। साथ ही दोनो बण्ड उस राष्ट्रीय गान की धुन बजा रहे हैं, जो कभी केवल क्रान्तिकारियो द्वारा गाया जाता था।

भारत के अनेक भागो में इसी दृश्य की पुनरावृत्ति हुई। प्रत्येक स्थान पर ब्रिटिश गवर्नरो, प्रशासको, शासनाधिकारियो तथा अन्य लोगो की उत्साही भीड जयघोष के साथ स्वागत कर रही थी और उस समय सम्राट के चचेरे भाई वाइसराय माउण्टवैटन, जिन्होने आकर यह घोषित किया था कि वे भारत के अन्तिम वाइसराय होगे, से अधिक लोकप्रिय कोई व्यक्ति नही दिखायी दे रहा था। माउण्टबैटन ने नेहरू को प्रधान मत्री बनाया और नेहरू ने सम्राट से माउण्टबेटन को स्वतत्र भारत का प्रथम गवर्नर जनरल नियुक्त करने की प्रार्थना की।

ब्रिटेन और भारत की जो मित्रता आज असाम्यवादी जगत की स्थिरता में इतना अधिक योग दे रही है, वह दोनो राष्ट्रो की जनता तथा नेताओ की उदारता तथा शिष्टता की परिचायिका ह। जब औपनिवेशिक सरकार अपने निकृष्टतम रूप में थी, तब विरोध की प्रथम ध्वनियाँ ब्रिटिश लोकसभा में ही सुनायी देती थी। गाँधी ने स्वय कहा था कि अनेक बातो में उन्होने अंग्रेजो से नियमितता, मितभाषिता, आरोग्य, स्वतत्र विचार और निर्णय-पालन के गुण सीखे। आज भारतीय जनता स्पष्टता के साथ एक कानून के अन्तर्गत एक

सगठित राष्ट्र की स्थापना मे ब्रिटेन के योगदान को स्वीकार करती है।

गाँधी की अहिंसात्मक प्रणाली की सफलता ब्रिटिश विवेकशीलता के प्रति कदाचित् उतना ही सम्मान है। क्रान्ति के एक अनुभवी काँग्रेस सदस्य ने एक बार मुझसे कहा, "जिस आतक ने कभी दया नही दिखायी, जिसने कभी समझौता नही किया, जो कभी सदिग्ध-निश्चय न था, ऐसा आतक हमको पीस डालता। ब्रिटिश आतक इतना क्रूर कभी नही था कि उसे जीता न जा सके।"

अग्रेजो ने प्राय महानता प्राप्त की है, किन्तु इतनी महानता कभी नहीं प्राप्त की जितनी उन्होने दक्षिण एशिया मे अपने सत्ता छोडते समय गौरव तथा निर्णयात्मकता का प्रदर्शन कर प्राप्त की। भारतीय स्वतत्रता के प्रारम्भ-काल मे ही ब्रिटेन ने उसी शालीनता के साथ बर्मा और लका को भी छोड दिया। भारत मे उसने पाकिस्तान को जन्म दिया। भारत मे, काँग्रेस की प्रत्यक्ष शक्ति के कारण, ५८४ छोटे और बडे राजाओ ने अपनी-अपनी रियासतों को नये भारतीय सघ मे मिला देना मजूर कर लिया और उसके बदले मे केवल पेन्शन का वायदा स्वीकार किया, ऐसा वायदा जिसको नेहरू-सरकार तीव्र विरोध के सामने बडी कठिनाई से कायम रख सकी है। हदराबाद और काश्मीर मे सशस्त्र सघर्ष हुए; परन्तु आश्चर्य तो यह है कि पचास काश्मीर नही उठ खडे हुए।

इन असाधारण सफलताओ के मिलने पर भी १५ अगस्त, १९४७ के स्वतत्रता-दिवस-समारोह के दृश्य से गाँधी बहुत दूर थे और उस समय प्रार्थना, कताई तथा उपवास मे व्यस्त थे। उनके लिए तो भारत–विभाजन और उसके उपरान्त हिन्दू-मुसलमानो के दगों ने इस स्वतत्रता को एक महान पराजय मे परिणत कर दिया था। उन्होने कहा, "मुझे काट डालो, किन्तु भारत को नही", परन्तु और अधिक हिन्दू-मुस्लिम दगों से बचने के लिए काँग्रेस के नेताओ ने अनिच्छापूर्वक पाकिस्तान-निर्माण के ब्रिटिश प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया।

प्रारम्भिक गाधीवादी सघर्ष मे मुसलमानो ने महत्वपूर्ण भाग लिया था। परन्तु अग्रेजो द्वारा दोनो धर्मो के लिए निर्धारित पृथक निर्वाचन, अपने लिए पृथक धार्मिक राज्य बनाने के मुसलमानो के दृढ सकल्प तथा १९३७ के सीमित स्वशासन के अन्तर्गत सत्ताधारी काग्रेस की भूलो ने हिन्दू-मुस्लिम एकता को धीरे-धीरे समाप्त कर दिया।

१९४६ में कलकत्ता मे प्रथम दंगे के बाद पुलिस कार्रवाई तथा दगाई

क्षेत्रों मे गाधी की यात्राओ ने दगों पर नियत्रण करनें मे सहायता पहुँचायी। विभाजन ने फिर पजाब में दगो की एक नयी लहर पैदा कर दी, जहाँ एक बडे प्रान्त को कृत्रिम सीमाओं द्वारा बाँट दिया गया और जहाँ लाखो आतक-ग्रस्त मुस्लिमों, हिन्दुओं तथा सिखों को सीमा के पार छोड दिया गया, था उन्हे भगा दिया गया।

गाँधी ने अनुभव किया कि उनके सिद्धान्तो को न तो लोगो ने समझा और न स्वीकार किया। १९२५ मे ही उन्होने कहा था, "मै जानता हूँ कि मैं अधिकाश शिक्षित लोगों को अपने साथ ले चलने मे असमर्थ हूँ।" तीस वर्ष बाद एक वयोवृद्ध गाँधीवादी ने, जो एक भारतीय राज्य के मुख्य मत्री है, मुझ से कहा, "हममे से बहुतों के लिए सत्याग्रह धर्म था; परन्तु दूसरों के लिए यह केवल एक सफल टेकनीक था।"

१९४२ मे, जब "भारत छोडो" आन्दोलन मे अहिंसात्मक तरीके प्रभावहीन प्रतीत हो रहे थे, तब उग्रवादी युवक समाजवादियों ने, अग्रेजो के विरुद्ध नही, बल्कि ब्रिटिश सम्पत्ति के विरुद्ध प्रत्यक्ष कार्रवाई प्रारम्भ कर दी थी। उन्होंने विचित्र भूमिगत आन्दोलन शुरु कर दिया था और महीनो तक अनेक गावों में हथियारों के बल पर स्वराज्य स्थापित कर लिया था।

१९३८ मे, गाँधी के स्पष्ट विरोध के बावजूद, सुभाष बोस को फिर काँग्रेस का अध्यक्ष चुना गया। उन्होंने ही भारत को आजाद कराने के लिए उसी तरह आजाद हिन्द फौज की स्थापना की, जिस तरह वाशिंगटन ने अमरीका की स्वतंत्रता के लिए की थी। सिंगापुर से लम्बी यात्रा के बाद इस सेना ने जापानी सेनाओं की जबर्दस्त प्रगति के समय कुछ भारतीय सीमाओं में भी प्रवेश किया।

जेल में गाँधी इस बढती हुई हिंसात्मक शक्ति के कारण बडे उद्विग्न थे और जब युद्ध के बाद लौटने पर सुभाष के फौजी नेताओ का सारे देश में राष्ट्र-नायको की भाँति स्वागत हुआ, तब गाँधी को महसूस हुआ कि उनका प्रभाव घटता जा रहा है। सयुक्त भारत के लिए और सघर्ष करने के उनके प्रस्ताव को स्वीकार करने के बजाय, जब काँग्रेस ने विभाजन स्वीकार करने का निर्णय किया, तो उन्होंने विजयोत्सव मनाने का कोई कारण नही देखा। भारतीय क्रान्ति मे अनेक तत्व थे और कभी-कभी अगाँधीवादी तत्व इस शताब्दी के अनिवार्य जन-आन्दोलनो तथा रक्तपात के कतिपय निकृष्टतम काण्डों में सामने आ गये।

गाँधी का अन्तिम सत्याग्रह कुछ-कुछ अपने अनुयायियो के विरुद्ध भी था। स्वतत्रता के चार महीनो बाद काश्मीर मे युद्ध छिड जाने के बावजूद हिन्दू-मुस्लिम कटुता को दूर करने तथा पाकिस्तान को भारतीय खजाने से हिस्सा दिलाने के लिए गाँधी ने आमरण अनशन कर दिया।

उन्होने कहा था, "यदि स्वतत्रता-सग्राम मे मै बच गया, तो सभव है कि मुझे अपने ही देशवासियो के साथ अहिंसात्मक सग्राम करना पडे।" छ दिनो के बाद, नयी सरकार ने पाकिस्तान के लिए ५५ करोड रुपये (२५ करोड डालर) सयुक्त भारत के खजाने से देना स्वीकार कर लिया, जो उसे विभाजन के उपरान्त मिले थे और हिन्दू-मुस्लिम नेताओ ने एक-दूसरे के धर्म के प्रति सद्भावना बनाये रखने की प्रतिज्ञाएँ की। यह अनशन इतना सफल प्रतीत हुआ कि गाँधी मे नया आत्मविश्वास पैदा हुआ और वे १२५ वर्षो तक जीने की आशा करने लगे।

उन्होंने पहले स्वतत्रता को अपना लक्ष्य बनाया। फिर हिन्दू-मुस्लिम झगडे को दूर करने की ओर उन्होंने ध्यान दिया और अब उन्होने कहा कि वे शीघ्र ही सामाजिक तथा आर्थिक मामलो पर ध्यान देगे और अपनी कार्य-प्रणाली से इस प्रकार की समानता और विकेन्द्रीकरण की स्थापना करेगे, जो स्वराज को परिपुष्ट करेगा। उन्होंने प्रश्न किया, "इस दरिद्रता के रहते स्वतत्रता कहाँ है ? यदि मै जीवित रहा तो मेरा काम राजनीति को सुधारना होगा।"

३० जनवरी, १९४८ को अपना अनशन तोडने के दस दिन बाद, जब अपनी नियमित प्रार्थना-सभा मे वे असुरक्षित ही जा रहे थे तभी उनको तीन गोलिया लगी और उनका प्राणान्त हो गया। हिन्दुओं की उन्मादपूर्ण धमकियो और कुछ दिन पूर्व बम फेके जाने के बावजूद, उन्होने पुलिस के सरक्षण को अस्वीकार कर दिया था।

नये प्रधान मत्री जवाहरलाल नेहरू उनकी धधकती चिता के पास बैठे। उनके पास ही बैठे थे, भूतपूर्व वाइसराय माउण्टबेटन तथा लेडी माउण्ट बेटन। उनके चारों ओर आँसुओं की नदी की तरह विशाल भीड उमड रही थी। बाद में जब उनका भस्म गगा नदी मे प्रवाहित किया गया, तब गगा के तट पर चालीस लाख से अधिक लोग एकत्र हुए थे। लोगों का कहना है कि इतिहास मे किसी अन्य अवसर पर इतनी बडी भीड इकट्ठा नही हुई।

सयुक्त राष्ट्र-सघ मे सम्राट के प्रतिनिधि ने असहायो, अनाथो तथा गरीबों

के इस मित्र की मृत्यु पर शोक प्रकट करते हुए भविष्यवाणी की थी कि गाँधी की श्रेष्ठतम सफलताएँ तो अभी आगे आनेवाली है।

जनरल मैकआर्थर ने, जो उस समय जापान मे सर्वोच्च सेनापति थे, कहा, "सभ्यता के विकास को यदि कायम रखना है, तो सभी लोग गाँधी के इस विश्वास को अन्ततोगत्वा अपनाये बिना नही रह सकते कि विवादास्पद मामलो को तय करने के लिए शक्ति का व्यापक प्रयोग न केवल मूलत गलत है, प्रत्युत स्वय उसमें आत्मविनाश के कीटाणु भी सन्निहित है।"

गाँधी ने जनता में विश्वास किया था और उसकी शक्ति को दिखा भी दिया था। उन्होंने अहिंसात्मक प्रत्यक्ष कार्रवाई द्वारा शान्तिपूर्ण परिवर्तन की सभावना को सिद्ध कर दिया था। वे जानते थे कि केवल सरकार में परिवर्तन की आवश्यकता नही, बल्कि मानव के पारस्परिक व्यवहार तथा सम्बधो में मौलिक परिवर्तन की आवश्यकता है। यह बात कि लोग उनकी सभी माँगों के अनुसार कार्य नही कर सके, केवल यही सिद्ध करता है कि वे मनुष्य ही थे।

यह तर्क प्रस्तुत किया जा सकता है कि गाँधी ने अपने समकालीन क्रान्तिकारियों की अपेक्षा शक्ति का अधिक सफलतापूर्वक और स्थायी प्रभाव के साथ प्रयोग किया। क्या उन्होंने २०वी सदी की सर्वश्रेष्ठ एवं पूर्ण क्रान्ति को प्रस्तुत नही किया? उदजन बम के युग में क्या यह आशा करना बहुत अधिक होगा कि गाधी की क्रान्ति इस शताब्दी की शेष क्रान्तियों के लिए आदर्श बनेगी?

उन्निसवाँ प्रकरण

नव भारत का उदय

दक्षिण एशिया, अफ्रीका, मध्यपूर्व और दक्षिणी अमरीका के कुछ भागो के लोग, जो अभी भी 'यथा स्थिति' को चुनौती दे रहे है, पूर्ण जनतान्त्रिक क्रान्ति के गाँधीवादी आदर्शों को किस हद तक अगीकार करेगे, अधिकतर इस बात पर निर्भर करता है कि, ३७ करोड भारतीय किस प्रकार अपने महात्मा के कार्य को पूरा करते है।

जैसा कि हम देख चुके है, गाधी औपनिवेशिक शक्ति को निकाल बाहर करने, अथवा थोडे से विदेशी नेताओ के बदले देशी नेताओ को रखने अथवा आर्थिक विकास करने के अतिरिक्त और भी कुछ चाहते थे। गाँधी की क्रान्ति मे राष्ट्रीय स्वतत्रता और आर्थिक विकास पर विशेष आग्रह था, परन्तु उसके साथ ही मानवता के मूलभूत नैतिक तथा आध्यात्मिक पुनरुद्धार के आधार पर मानवीय गौरव के विस्तार पर भी आग्रह था।

गाँधी की मृत्यु के साथ, भारत मे गाँधीवाद एक सक्षेत्र (Prism) से निकलता हुआ दिखाई देता है और सक्षेत्र के दूसरी ओर निकल कर वह अनेक प्रकाश-किरणो मे बिखर जाता है। प्रत्येक किरण मे गाँधी का कुछ-न-कुछ गुण है, किन्तु किसी मे भी वह केन्द्रित शक्ति नही है, जिसने एक साम्राज्य को उखाड फेका। भारत आज भी उचित मार्ग के लिए आत्मान्वेषण के आन्तरिक सघर्ष मे उलझा हुआ है।

जब ब्रिटिश सेनाएँ वापस चली गयी, तब राष्ट्रीय स्वतत्रता-सग्राम मे विजय प्राप्त हुई, परन्तु राष्ट्रीय एकता की भावना के विकास के मार्ग मे अभी भी भारी बाधाएँ मौजूद है। स्वतत्र भारत की अनेक समस्याओ मे से हमे पूर्ण क्रान्ति की आशा से दो समस्याओ पर अधिक ध्यान देना है, मानवीय गौरव और आर्थिक विकास।

विभाजन के बाद नेहरू-सरकार ने धर्मनिरपेक्ष राज्य के निर्माण के लिए बडी सरगर्मी से और पर्याप्त सफलता के साथ काम किया, जिससे भारत के साढे चार करोड मुसलमान सुरक्षित रह सके और नागरिकता के सम्पूर्ण अधिकारो का उपभोग कर सकें। ६० लाख से अधिक हिन्दू शरणार्थियो को शान्तिपूर्वक आत्मसात् कर लिया गया। आज भारत-सरकार तथा

विश्वविद्यालयो में अनेक ऊँचे पदो पर मुसलमान है।

१९५० में नया सविधान लागू किया गया, जिसने अमरीकी तथा ब्रिटिश अनुभवो से बहुत कुछ ग्रहण कर, हमारे जसे अधिकारो के विधान के साथ संसदीय शासन की स्थापना की।

गाँधी के "ईश्वर-पुत्र" हरिजनो को पूर्ण वैधानिक अधिकार प्राप्त है। १९५५ में बनाये गये विधान में कहा गया है कि उनके प्रति यदि कोई किसी भी रूप में भेदभाव का व्यवहार करता है, तो उस पर जुर्माना किया जा सकता है और छ· महीने तक जेल की सजा दी जा सकती है। महिलाओ का, जिनका भारत में आर्थिक दर्जा हमेशा नीचा रहा है, उद्धार किया गया है और अब कम से कम कानूनी तौर पर उन्हे वे सभी अधिकार प्राप्त है, जो ससार के किसी भी प्रजातंत्रात्मक देश में उन्हे प्राप्त है। यद्यपि पहले बाल-विवाह एक सामान्य प्रथा थी और औसतन हर लडकी तेरह वर्ष की होते-होते ब्याह दी जाती थी, अब हिन्दू लडकियो के लिए १५ वर्ष और लडको के लिए १८ वर्ष की कानूनी पाबदी लगा दी गयी है।

१९५१ के अन्त में मेरे भारत पहुँचन के बाद ही, नये गणतंत्र ने सार्व-भौमिक मताधिकार के आधार पर अपने प्रथम राष्ट्रव्यापी निर्वाचिन का सचालन किया। प्रजातंत्र के सबसे बडे निर्वाचन में १० करोड से अधिक लोगो ने शान्ति के साथ मतदान दिया। अमरीका के राष्ट्राध्यक्ष के निर्वाचन की अपेक्षा कहीं अधिक सख्या में मतदाताओ ने मतदान में भाग लिया।

नेहरू-सरकार की कॉंग्रेस पार्टी ने, जिस पर गाँधीवादी संघर्षों के उत्तराधिकार की छाप है, ४५ प्रतिशत मत प्राप्त किये और मोटे तौर पर ७३ प्रतिशत ससदीय सीटें प्राप्त की। विरोध पक्ष विभिन्न दलों में विभाजित था, प्रजा और समाजवादी दल (अब प्रजासमाजवादी दल) ने १६ प्रतिशत मत प्राप्त किये, परन्तु उसे बहुत कम सीटें मिली; साम्यवादियो को केवल ५ प्रतिशत मत मिले, परन्तु तेलगाना में, जो अब आध्र राज्य का भाग है, उन्हे काफी सीटें मिली। उग्र दक्षिणपक्षी रूढिवादी हिन्दू दलों को ५ प्रतिशत मत मिले और छिटपुट स्वतत्रो तथा स्थानीय दलो ने शेष मत प्राप्त किये। नेहरू की कॉंग्रेस पार्टी ने केन्द्रीय तथा लगभग सभी राज्य-सरकारों में अपना दृढ अधिकार जमाये रखा।

एक पीढी के हिंसा, सशस्त्र विद्रोह और भूमिगत कार्य ने, जसा कि चीन में हुआ, इस प्रकार के निर्वाचन को असभव बना दिया होता। ब्रिटिश कानून

के प्रभाव ने गाँधी की अहिंसावादी प्रणाली से मिलकर, अनुनय-विनय मे विश्वास को दृढ बना दिया था और जनता के लिए स्वायत्तने शासन की आदतो की स्थापना की।

× × ×

आर्थिक क्षेत्र में भी प्रगति बहुत ही आशाप्रद रही है। १९५१ मे आर्थिक विकास के लिए पचवर्षीय योजना का सूत्रपात हुआ। लक्ष्य-पूर्ति की तिथि अप्रैल, १९५६ रखी गयी।

मार्च, १९५३ मे, जब मैंने राजदूत के रूप मे भारत छोडा, बहुतो ने महसूस किया कि आयोजन के उद्देश्य बहुत ही महत्वाकाक्षापूर्ण है। साम्यवादी चीन के उत्तरी भाग के विकास—कार्यक्रम की ईर्ष्यालु टीकाएँ की गयी, जहाँ समझौते और अनुनय-विनय की लोकतात्रिक प्रणाली के लिए काम को धीमा करने की आवश्यकता नही थी और न स्वतत्र मतदाताओ की अप्रसन्नता का कोई भय था।

दो वर्ष बाद जब मै भारत फिर गया तब काफी परिवर्तन हो चुके थे। मैंने प्राय: सर्वत्र आत्मविश्वास की भावना पायी, जो इस ज्ञान से उत्पन्न हुई थी कि प्रथम पचवर्षीय योजना के अधिकाश लक्ष्यो से अधिक काम हो गया ह। आध्र के विशेष निर्वाचन मे आर्थिक समस्याओ पर लडने वाले साम्यवादियो को गहरी हार खानी पडी और सन्देह करने वाले भी यह मानने लग गये थे कि कम से कम अभी तक तो भारतीय प्रजातत्र सफल रहा।

इसका मतलब यह नही कि अब प्रचुर मात्रा मे समस्याएँ और प्रश्न नही रह गये है। अभी भी आधे से अधिक भारतीय परिवार २५० डालर से कम वार्षिक आय पर गुजर कर रहे है। भारतीय कारखानो मे मजदूर औसतन प्रतिदिन, १ डालर से कम पाता है और मध्यप्रदेश जसे राज्यो मे एक प्राथमिक शिक्षक २० डालर मासिक से अधिक नही पाता। लाखो व्यक्ति आशिक रूप से या पूर्ण रूप से बेकार है। यद्यपि खाद्यान्न का उत्पादन काफी अधिक है, तथापि एक साधारण ग्रामवासी को अपर्याप्त और अत्यन्त असतुलित भोजन मिलता है।

जब हम उस दूरी को सोचते है, जो अभी भारत को पूरी करनी है, तो चिन्ता का गम्भीर कारण उपस्थित हो जाता है। किन्तु जब हम स्वतत्रता के बाद भारत द्वारा तय की गयी दूरी को सोचते है, तो किसी हद तक विश्वास उत्पन्न हो जाता है। यह विशेष महत्वपूर्ण है, क्योकि आज भारत जिस आर्थिक विकास के क्षेत्र मे सलग्न है, उसे इतिहास हमारी शताब्दी का युद्ध समझ सकता है।

दो विशालकाय अर्ध-विकसित देश, चीन और भारत, जिनमें ससार की ४० प्रतिशत जनता बसती है, औद्योगिक विकास की गति और प्रणाली मे भाग्यपूर्ण प्रतिस्पर्धा कर रहे है। लोकतान्त्रिक तथा एकतन्त्रवादी आर्थिक विकास के अन्तरो और परिणामो को व्यावहारिक रूपसे प्रदर्शित किया जा रहा है। एशियाई मामलो के अधिकाश छात्रो न इस स्पर्धा की विशालता तथा इससे सलग्न जोखिमो को समझ लिया है। युद्ध से कुछ छोटे, किन्तु किसी भी घटना से अधिक इन प्रयोगो के परिणाम इस बात का निर्णय करेगे कि शेष अर्द्धविकसित विश्व कौन-सा मार्ग अपनाये।

भारत के प्रजातत्र होने के कारण उसे अनेक ऐसी समस्याओ का सामना करना है, जिनकी चीन अधिकतर उपेक्षा कर सकता है। इस प्रकार सबसे महत्व की बात यह है कि भारत-सरकार अपने वर्तमान मतदाताओ को प्रसन्न रखे अथवा अपने सबसे बडे राजनीतिक क्षेत्र को खो दे। कतिपय भ्रामक सीमाओ के अन्तर्गत पेकिंग-सरकार मतो पर आधारित न होने के कारण, सख्त तरीको का प्रयोग कर सकती है।

हम देख चुके है कि रूस और चीन मे, दैनिक उपभोग की वस्तुओ को अन्य सुविधाओ के बदले प्राप्त करने और न्यूनतम सम्भव मूल्यो पर नगर के मजदूरो के लिए अधिकतम खाद्यान्नपूर्ति के लिए प्रयास करके किसानो का बुरी तरह शोषण किया जा रहा है। साम्यवादियो का आग्रह विशेषरूप से औद्योगिक विकास पर ह।

एकतन्त्रवादी प्रणाली के अन्तर्गत भी इस मार्ग मे खतरे तो है ही। भारत जैसे प्रजातन्त्र में इसका परिणाम सीधा राजनीतिक विस्फोट होगा। भारत में ७५ प्रतिशत लोग गाँवो में रहते हैं और उनके समर्थन के बिना कोई भी लोक-तान्त्रिक शासन समाप्त हो जायगा। स्वतत्र एशियाई समाज के आधार की रचना के लिए, भारत की प्रथम पचवर्षीय योजना में ग्राम-विकास पर बहुत अधिक बल दिया गया है।

प्रजातांत्रिक तथा एकतान्त्रिक प्रणाली के भेद दोनो देशों की योजना-प्रक्रिया में स्पष्ट रूप से परिलक्षित है। भारत ने प्रधान मत्री नेहरू की अध्यक्षता में एक योजना-आयोग की स्थापना की। केन्द्रीय और राज्य-सरकारों के विभिन्न अधिकारियो, सलाहकार-मण्डलो तथा विशेषज्ञो से १५ महीनो तक परामर्श चलता रहा, जिसके अन्त मे पचवर्षीय योजना का प्रारूप सारे देश मे वितरित किया गया।

व्यापक विचार-विनिमय तथा वादविवाद के प्रकाश मे सशोधित योजना कुछ महीनो बाद भारतीय लोकसभा द्वारा भारत के आर्थिक प्रयास के लिए 'नीलपत्र' आयोजन के रूप मे स्वीकृत हुई। निस्सन्देह इसमे हमारे युग की महानतम लोकतान्त्रिक ग्राम्यक्रान्ति का प्रस्ताव था।

इसके विपरीत, यद्यपि हम चीन के योजना-कार्यक्रम के तत्र के बारे में कुछ नही जानते, तथापि इस बात से हम निष्कर्ष निकाल सकते है कि दिसम्बर, १९५२ मे पेकिंग से घोषित चीन की पचवर्षीय योजना, परिस्थितियो के अनुसार रूस की प्रथम योजना की कार्बन-प्रतिलिपि मात्र है। जिस प्रकार रूस के आयोजको ने अन्नोत्पादक, किन्तु अशान्त यूक्रेन की अवहेलना की, उसी प्रकार चीन ने कदाचित् चावल के सर्वोत्तम उत्पादक क्षेत्र दक्षिणी चीन की, जो सब से कम वफादार था, अवहेलना की।

चीनी योजना मे सिंकियाग तथा मञ्चूरिया जैसे सुरक्षित एव भीतरी प्रान्तो के विकास पर अधिक बल दिया गया, जिस प्रकार रूस ने ट्रान्स-यूराल के निर्माण पर विशेष बल दिया था। भारत की भाँति विस्तृत और निश्चित लक्ष्य निर्धारित न कर, जिनके आधार पर प्रगति का निर्णय किया जा सकता है और आलोचना की जा सकती है, पाँच वर्षों के लिए कुछ व्यापक उद्देश्य बना लिये गये, जिनमे केन्द्रीय सरकार की बदलती हुई राजनीतिक अथवा आर्थिक आवश्यकताओ के अनुसार सशोधन होते रहे।

जिन तरीको से ये योजनाएँ कार्यान्वित की जाती है, उनके भेद भी बिल्कुल स्पष्ट है। लोकतान्त्रिक तथा एकतान्त्रिक, दोनो ही देशो मे समान रूप से आर्थिक विकास की बुनियाद पूँजी-निर्माण की प्रक्रिया है। आर्थिक दृष्टि से प्रत्येक स्वस्थ राष्ट्र को अपने उत्पादन से कम खर्च करना चाहिए, जिससे कुछ बचत बनी रहे और जिसका उपयोग नये कारखानो के निर्माण और अन्य उत्पादक सुविधाओ मे हो सके। यहाँ चीन, जिसमे एकतत्रवादी सरकार का कठोर नियत्रित प्रशासन-यत्र है, भारतीय नेताओ से अधिक सुविधाजनक स्थिति मे प्रतीत होता है, क्योकि भारतीय नेता लोकतान्त्रिक जनमत के प्रति उत्तरदायी है।

दैनिक उपयोग की वस्तुओ की उत्पादन-क्षमता को सीमित करने के लिए, भारत प्राय पूर्णत करों पर निर्भर करता है। भारतीय किसान के लिए बाजार बिलकुल खुले हुए है। कर से हुई आय, घाटे के बजट, विदेशी ऋण और अनुदानों से प्राप्त धन से रेलो, गोदियों, जल-विद्युत-कारखानो, सिंचाई-

बाँधो के निर्माण तथा मलेरिया-नियत्रण और अन्य महत्वपूर्ण सेवाओं के लिए आर्थिक व्यवस्था की जाती है।

चीन में भी कर वास्तव मे आय का एक प्रमुख साधन है, परन्तु इसकी पूर्ति सरकार-नियन्त्रित उद्योगों से प्राप्त ठोस मुनाफों से की जाती है। वहाँ ८० प्रतिशत भारी उद्योग, ६० प्रतिशत हलके उद्योग, ९० प्रतिशत बैंक-उद्योग, ५० प्रतिशत फुटकर व्यापार और ८० प्रतिशत थोक व्यापार सरकार के नियत्रण मे है। अन्य सभी साम्यवादी राज्यों की तरह चीन मे भी "उधार" और "ऐच्छिक योगदान" का महत्व है, जिसका, साधारण अर्थ है, बचत का अधियाचन या बलात् श्रम।

विश्वस्त आकडे पाना तो कठिन है, परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि विनियोग के लिए इन तरीकों से प्राप्त चीन की आन्तरिक बचत उसकी वार्षिक राष्ट्रीय आय की १६ प्रतिशत तक पहुँच जाती है, जबकि भारत में जनतात्रिक तरीकों से अभी तक केवल ७ प्रतिशत तक पहुँच पायी है।

जैसा कि हमने पिछले प्रकरणों मे देखा है, चीन की आर्थिक योजना का उद्देश्य लोगो के उत्सर्ग को ध्यान में रखे बिना चीन को एक आधुनिक औद्योगिक शक्ति के रूप मे परिणत करना है। वहा भारी उद्योगो को प्राथमिकता प्रदान की गयी है, जब कि रोजमर्रा की चीजों के उत्पादन और कृषि को गौण स्थान प्राप्त है।

इसके विपरीत भारत की प्रथम पचवर्षीय योजना इस उद्देश्य से बनायी गयी है कि जीवन-स्तर कुछ ऊँचे हो और कृषि-विकास को स्थगित करने के बजाय उच्च प्राथमिकता प्रदान की गयी है। दोनों ही अर्थतंत्रों में खाद्यान्न तथा अन्य कृषि-उत्पादन को निरन्तर बढाने की घोर आवश्यकता है। इसके लिए भारत में किसानो को हर प्रकार से प्रोत्साहन दिया जा रहा है, जबकि चीन मे किसानो को सख्त नियत्रणो में रखा जा रहा है।

भारतीय योजना के अनुसार, अप्रैल, १९५६ तक सिंचाई और कृषि के लिए लगभग २ अरब २० करोड डालर के अतिरिक्त विनियोग की आवश्यकता है। चीन मे, जहाँ की जनसख्या २० करोड अधिक है, यह तुलनात्मक अक १ अरब ६० करोड डालर है; परन्तु विद्युत और उद्योग में बिल्कुल विपरीत स्थिति है। भारत में २ अरब ३० करोड डालर की लागत है, जबकि चीन में वह ६ अरब २० करोड डालर तक पहुँच रही है।

क्या लोकतात्रिक भारतीय योजना मानव-कल्याण का विशिष्ट उद्देश्य

रखते हुए दीर्घकालिक आर्थिक विकास के लिए आवश्यक औद्योगिक आधार बना सकेगी ? क्या चीन गाँवों मे रहने वाले ४५ करोड चीनियों की सहनशीलता और पुलिस-नियत्रणो की प्रभावशाली सीमाओं को किसी जगह भग किये बिना औद्योगिक विस्तार की अपनी द्रुत गति को कायम रख सकेगा ? समस्त एशिया, अफ्रीका और दक्षिणी अमरीका के अर्ध-विकसित देश, जो इसी प्रकार की समस्याओ मे उलझे हुए है, भारत और चीन की प्रतिस्पर्धा की ओर ध्यानपूर्वक देख रहे है।

× × ×

एक चीज तो साफ नजर आती है। १९५५ तक पचवर्षीय योजना के प्रारम्भ मे की गयी आशाओ की तुलना मे भारतीय प्रगति कही अधिक हुई। यद्यपि एक स्वस्थ ग्राम-समाज के लिए अत्यन्त आवश्यक भूमि-सुधार अभी किसी भी प्रकार पूर्ण नही हुआ, तथापि वह काफी आगे बढा है। बडी-बडी अधिकाश जमीन्दारिया समाप्त कर दी गयी है। आज भारतीय किसान एक बहुत बडे अनुपात मे छोटे-छोटे मालिक के रूप में है और अपनी जमीन पर काम करते है। जमीन्दारों को दिये जाने वाले मुआवजे का जोड अन्तत एक अरब डालर तक पहुँच जायगा।

कृषि-उत्पादन के लाभ उत्साहवर्धक है, क्योंकि १९५३ के उत्पादन से १९५५ मे २० प्रतिशत की वृद्धि हुई है। १९५४ मे अच्छी वर्षा के कारण भारत एक लम्बे अर्से के बाद खाद्यान्न मे स्वावलम्बी बन गया। परिणाम-स्वरूप प्रतिवर्ष २५ करोड डालर से ५० करोड डालर तक की विदेशी मुद्रा, जो पहले विदेशों से गेहूं और चावल मँगाने के लिए निर्धारित की जाती थी, अब कारखानों के विदेशी उपकरणो, रेलो के रोलिंग स्टाक, ट्रको तथा अन्य आवश्यक चीजों की खरीद के लिए उपलब्ध है। १९५६ मे सिंचाई की सुविधाओं के कारण वर्षा के अभाव मे भी पर्याप्त खाद्य-उत्पादन-स्तर कायम रखा जा सकेगा।

चूकि जल भारत का जीवन-रक्त है, पचवर्षीय योजना ने सिंचाई को ही प्राथमिकता प्रदान की। पहली अप्रैल, १९५६ की लक्ष्य-तिथि तक सिंचाई वाली भूमि में कुल १ करोड ६७ लाख एकड की असाधारण वृद्धि हो जायेगी। यह वृद्धि जापान की कुल जमीन से, जिस पर खेती होती है, अधिक है और सयुक्त राज अमरीका की समस्त सिंचित भूमि से कुछ ही कम है।

भारतीय ग्राम-विकास का कार्यक्रम, जिसमें केवल खाद्यान्न-उत्पादन ही नही है, प्रत्युत जनस्वास्थ्य और शिक्षा भी शामिल है, एक ऐसा कार्यक्रम है, जिसके अध्ययन मे मैंने बहुत समय लगाया और जिसकी बुनियादो से मुझे विश्वास है। उसकी प्रगति शायद सबसे अधिक उत्साहवर्धक रही है।

फरवरी, १९५५ मे मैंने मुलुग सामुदायिक विकास योजना देखी, जिसमें ७५ गाँव और ६८ हजार लोग है और जो पूर्वी हैदराबाद के तेलगाना खण्ड में अवस्थित है। यही १९४८ मे साम्यवादियों ने अपना 'खूनी' विद्रोह किया था, जबकि उसी समय बर्मा, फिलिपाइन्स और हिन्देशिया में भी साम्यवादी उपद्रव हो रहे थे। यह एक ऐसा क्षेत्र था, जहाँ कुछ जमीन्दारों के पास बहुत अधिक जमीन थी और अधिकाश लोगों के पास या तो जमीन बिल्कुल नही थी और यदि थी भी, तो बहुत ही कम। जबकि साम्यवादियों ने जमीन्दारों को मार भगाया और जमीन का वितरण किया, कई हजार व्यक्ति मारे गये और अनेक गाँव जला दिये गये। भारतीय सेना के दो डिवीजनों तथा राज्य की पुलिस ने अन्त में शान्ति स्थापित की। १९५२ में मुझे सावधान किया गया कि मैं उस क्षेत्र से दूर रहूँ, क्योंकि बिना सशस्त्र सरक्षक के वहाँ की यात्रा निरापद नही थी।

उत्पात के चिन्ह अभी भी सर्वत्र विद्यमान है। घात में बैठे विद्रोहियो से बचने के लिए, सडक के दोनों ओर के जगलों को, पाँच-पाँच सौ गज पीछे तक काट कर साफ कर दिया गया है। जहाँ दिखायी पड़ने वाले स्मरण-चिन्ह अपर्याप्त थे, योजना के सचालक ने अपने ब्योरे में इस प्रकार की आलोचना की

"यह गाव साम्यवादियों द्वारा बिल्कुल नष्ट कर दिया गया था।"

"यहाँ पर जमीन्दार और उसका परिवार मार डाला गया था।"

"केवल दो वर्ष पूर्व यहाँ पर हमारे कार्यकर्त्ताओं को धमकी दी गयी थी कि वे या तो २४ घण्टे में भाग जाँय या अपनी जान से हाथ धोयें।"

"इस जिले भर में प्रत्येक घर के सामने हँसिया और हथौडेवाला लाल झण्डा था।"

१३० वर्ग मील के दायरे में, २ गाँवों और ६८,००० लोगों के यहाँ लाल झण्डों और तनी भृकुटियो के स्थान पर हमने मैत्रीभाव, उत्साह और ठोस सफलताएँ पायी। ८० प्रतिशत जमीन अब उन्ही की थी, जो उसे जोतते थे। मलेरिया की घटनाएँ घट कर ६० प्रतिशत से २ प्रतिशत रह गयी थी। ६ से ११ वर्ष तक के बच्चों मे आधे से अधिक स्कूलों में पढते थे। गावों की सडके

खूब साफसुथरी थी और उनके किनारे-किनारे नालियाँ बनी थी। तीन नये गाँवों का आमूल निर्माण हुआ था। गाँव के लोगों ने सभी काम अपने सुधार के लिए वेतन पर किये थे।

१९५५ के वसन्त मे भारतीय ग्राम-विकास-योजना ने १००,००० से अधिक गावों को, जिनमे ८ करोड की आबादी है, अपने अन्तर्गत ले लिया। दुनिया मे अपने ढग का यह महानतम प्रयत्न था। हमारी ही ग्राम-विस्तार-सेवा के नमूने पर आधारित प्रत्येक समुदाय को आधुनिक कृषि-प्रणाली, अच्छे बीज और खाद के प्रयोग, जन-स्वास्थ्य के मूल तत्व, मलेरिया-नियंत्रण, स्वच्छ जल और ऐच्छिक श्रम द्वारा स्कूलों के निर्माण की सलाह दी जाती है।

एक प्रशिक्षित कार्यकर्ता के मातहत इन योजनाओं की व्यवस्था के लिए पाँच या छ गाँव होते है। कृषि, जन-स्वास्थ्य तथा शिक्षा-विशेषज्ञ विशिष्ट परिस्थितियो मे सहायता के लिए उपलब्ध होते है।

यह बात जानते हुए कि मनुष्य केवल रोटी के लिए नही जीता, इन योजनाओ मे एक समाज शिक्षण-सचालक की भी व्यवस्था है, जो ग्रामीण नृत्य, कला तथा अन्य सास्कृतिक कार्यक्रमो का सगठन करता है। योजनाओं के अनुसार इस बहुपक्षी विकास कार्यक्रम के अन्तर्गत भारत के सभी गाँव १९६१ तक आ जायगे।

प्रशिक्षण और प्रशासन का बोझ बहुत बडा है। फोर्ड-फाउण्डेशन-निधि की सहायता से ४६ सुसज्जित स्कूलो की स्थापना की गयी है, जिनमें से प्रति वर्ष पाँच हजार प्रशिक्षित कार्यकर्ता और कई हजार प्रशासक तथा जन-स्वास्थ्य, कृषि, सिचाई, इञ्जीनियरिंग, शिक्षण, समाजकार्य, धाय के कार्य तथा सास्कृतिक कार्यों के विशेषज्ञ बाहर निकलते है।

जन-स्वास्थ्य के क्षेत्र मे भी बहुत अधिक सफलता प्राप्त की गयी है। मलेरिया से प्रभावित सभी क्षेत्रो मे वर्ष मे दो बार डी डी टी के छिड़कने का कार्य भी ग्रामविकास-योजना का एक भाग है। परन्तु मानव-जीवन और उत्पादन-क्षमता पर मलेरिया के भयानक प्रभाव के कारण यह उचित समझा गया कि मलेरिया को निर्धारित तिथि १९६१ के पूर्व, १९५७ मे ही देश से निकाल बाहर करने का प्रयत्न किया जाय। सामान्यत मलेरिया फसल काटने के समय मे फैलता है, जिससे भारत के कुल वार्षिक उत्पादन की ६ प्रतिशत हानि होती है।

१९५३ मे मलेरिया-ग्रस्त क्षेत्रों को १९० जिलों में विभाजित किया गया और प्रत्येक जिले मे १० लाख की आबादी है। राष्ट्र भर में १८,७५० आदमियो को प्रशिक्षित किया गया और घर-घर तथा गाँव-गाँव में डी डी टी का छिडकाव प्रारम्भ हुआ।

१९५४ मे एक सौ जिलो मे, जिनकी कुल आबादी १० करोड है, अमरीकी चतुर्थ कार्यक्रम (अमेरिकन पाइन्ट फोर) द्वारा प्रदत्त डी डी टी. पूर्ण रूप से और दो-दो तीन-तीन बार छिडकी गयी। १९५५ में डी. डी. टी छिड़कने का कार्य १३ करोड ६० लाख लोगों की आबादी तक पहुँच गया। १९५७ तक सभी १९० जिले पूरी तरह से शामिल हो जायेंगे। १९५५ तक प्रतिवर्ष औसतन १० करोड मलेरिया-रोगियों की सख्या घट कर ढाई करोड तक पहुँच गयी।

यद्यपि प्रथम पचवर्षीय योजना का विशेष ध्यान ग्राम-विकास-कार्य की ओर ही रहा है तथापि उद्योग मे भी काफी ठोस प्रगति की गयी है। १९५२ और १९५५ के बीच औद्योगिक उत्पादन ३७ प्रतिशत बढ गया।

भारतीय रेलो का आधुनिकीकरण शीघ्रता से हो रहा है। १९५५ तक भारत में रेल के डिब्बों का निर्माण छ हजार से बारह हजार तक हो गया है। दो हजार और इजिन बढाये गये, जिनमें से एक तिहाई भारतीय कारखानो मे ही बनाये गये थे। अप्रैल, १९५६ तक जल-विद्युत-उत्पादन मे भी योजना के अनुसार ५१ प्रतिशत की वृद्धि होगी।

इस विकास-योजना-कार्यक्रम के ९३ प्रतिशत पर भारत की आन्तरिक सम्पत्ति से खर्च हो रहा है, जिसे मुख्यत' भारी करों के रूप में प्राप्त किया जाता है। शेष धन, विश्व-बैंक के ऋणों, कोलम्बो-योजना के अनुदानो और चतुर्थ कार्यक्रम से प्राप्त होता है। अर्थशास्त्रियों तथा वित्तविशेषज्ञों के लिए यह आश्चर्य की बात है कि युद्धोत्तरकालीन मुद्रा-स्फीति १९५५ तक अधिक नही बढ़ी। मुख्यत अच्छी फसलों के कारण १९५२ के मूल्यों की अपेक्षा १९५५ के मूल्यों मे कुछ कमी आ गयी।

ऐसा सभव मालूम होता था कि कुछ अपवादों के अतिरिक्त पचवर्षीय योजना के लक्ष्य अप्रैल, १९५६ तक या तो पूरे हो जायगे या कुछ और अधिक हो जायगे। चीनी प्रतिस्पर्धा को ध्यान में रखते हुए द्वितीय पंचवर्षीय योजना में औद्योगीकरण पर अधिक बल दिया जायगा और सधे हुए ढग से ग्राम-विकास तथा उन्नति को कायम रखने और बढ़ाने का प्रयत्न किया जायगा।

आशा की जाती है कि भारत का आज का महत्वपूर्ण औद्योगिक उत्पादन १९६१ तक दुगुना हो जायगा। यह भी अपेक्षित है कि तब तक फौलाद का उत्पादन ५० लाख टन तक पहुँच जायगा। पर्ल हार्बर-काण्ड के पूर्व जापान का लगभग यही उत्पादन था।

यह एक बहुत ही महत्वाकाक्षापूर्ण कार्यक्रम है। १९५५ मे मैने जो अनुकूल वातावरण देखा था, उसके कायम रहने पर क्या भारत अपने लक्ष्य तक पहुँच सकेगा ? १९५५ मे भारत अपनी साधारण उपज का ९३ प्रतिशत खुद ही खपा गया, जो केवल जनता के जीवन-निर्वाह मात्र के लिए ही पर्याप्त था। विकास और विस्तार के लिए इसमे से केवल ७ प्रतिशत ही बचा।

निरन्तर विस्त.र तथा वर्तमान भारी करो के जारी रहने के परिणाम-स्वरूप, १९६१ तक खपत उपज की ८८ प्रतिशत से अधिक नही हो पायेगी, जिससे १२ प्रतिशत के महत्वपूर्ण अश को अन्य सुविधाओ मे लगाया जा सकेगा। क्या बिना राजनीतिक विस्फोट के प्रजातत्र द्वारा यह अत्यधिक 'पेट कटाई' बर्दाश्त हो सकेगी ?

यह उतने ही उपयुक्त अनेक प्रश्नो मे से एक है, जो मुझे आशा है, प्रत्येक वस्तुवादी प्रेक्षक के मस्तिष्क मे उठेगा। दूसरा है, क्या आज की योग्य नागरिक सेवा (Civil Service) प्रशासन के लिए इतनी अधिक विस्तृत हो सकेगी कि छ वर्षो मे वह भारत के उन सभी गावों तक पहुँच जाय, जिनकी जनसख्या सयुक्त राज्य अमरीका की दुगुनी है ? इसके लिए चार लाख से अधिक प्रशिक्षित पुरुषो और महिलाओ की आवश्यकता होगी।

इसके अलावा, किसी समाज पर राजनीतिक दबाव का समय, जैसा मै पहले कह चुका हू, सभव है तब तक न आये, जब तक वह भयकर दरिद्रता मे डूबा हुआ हो, बल्कि उस समय आये जब वह एक अधिक उन्नत और अच्छे जीवन की सभावना को महसूस करे और यह अनुभव करने लगे कि उसकी उन्नति और भी तीव्र गति से होनी चाहिए। यदि जनता की बढती हुई आशाएँ, चाहे वे कितनी भी अनुचित क्यो न हो, अधिक समय तक अतृप्त रह जाय, तो उसके राजनीतिक परिणाम क्या होगे ? असफलताओ को कम समझने वाले लोकप्रिय वक्ताओ की कमी न रहेगी।

प्रतिवर्ष भारतीय विश्वविद्यालयों से पचास हजार युवक और युवतिया स्नातक बनकर निकलती है, जिनमे से अधिकाश के पास 'कला' (Arts) की डिग्री होती है और जिनमे राष्ट्रोत्थान के कठिन कार्य के प्रति उदासीनता

होती है। क्या ऐसे साधन निकाले जा सकते है, जिनसे इन युवा स्नातको को गाँवों, कारखानों तथा गदी बस्तियों में जरूरी कामों को उत्साह और परिश्रम के साथ करने के लिए तैयार किया जा सके? अथवा वे केवल हिसाकी राजनीति की ओर आकृष्ट हो हताश और क्षुब्ध बुद्धिजीवी के रूप में पार्श्वरेखा पर ही खडे रहेगे ? क्रान्तियो का नेतृत्व प्राय भूखे किसानो द्वारा नही, बल्कि उन हताश मध्यवर्गीय बुद्धिजीवियों द्वारा होता है, जिन्होंने अपने जीवन में शायद ही कभी एक दिन भी भूख बरदाश्त की होगी।

भारत के भूमि-सुधार कार्यक्रम से लाभ हुआ है। क्या वर्तमान उन्नति राजनीतिक दृष्टि से विरोधी शक्तिशाली जमीन्दारों के विरोधों के बावजूद कायम रहेगी ? यदि नही, तो अधिक उत्पादन के पुरस्कार अधिक लोगों को न मिलकर कुछ ही लोगों को प्राप्त होंगे और साम्यवादी आन्दोलनकारियों को एक अवसर प्राप्त हो जायगा।

कुछ उल्लेखनीय अपवादों को छोडकर, भारतीय उद्योगपतियों ने छोटी-छोटी लाभ की इकाइयों द्वारा दीर्घकालीन विस्तार की अपेक्षा सट्टेबाजी द्वारा शीघ्र लाभ पर विशेष ध्यान दिया है। कुछ लोगों ने तो कर देने मे भी बेईमानी की है। इन प्रवृत्तियों ने भारत मे निजी पूजीवाद को बदनाम कर दिया है। क्या भारत की निजी स्वामित्व-प्रणाली में पुनरुज्जीवन का सचार किया जा सकता है, जिससे वह विकास की योजनाओं में महत्वपूर्ण योग दे सके ?

नौकरी और काम देने की संभावनाओं को तेजी से बढाना बहुत आवश्यक है और यहाँ शिथिलता अत्यन्त खतरनाक होगी। औद्योगिक विकास आवश्यक है, किन्तु यह अन्तिम समाधान नही है। दुनिया की ६०% मोटरकारे अमरीकी कारखानों में १३ लाख मजदूरों द्वारा बनायी जाती है। भारत के लाखो बेकारों या अर्ध-बेकारों को मुख्यत गाँवों में मकान-निर्माण, सडक-निर्माण, दस्तकारी तथा ग्रामोद्योगों में लगाया जा सकता ह। वर्तमान योजना अपर्याप्त प्रतीत होती है।

इनमें से सबसे महत्वपूर्ण प्रश्न ह, 'क्या विकास की प्रक्रिया में राष्ट्रीय गौरव और व्यक्तिगत योग की भावना को कायम रखा और बढाया जा सकता है?'. सरकार और जनता के बीच परस्पर स्वीकृत वह साझीदारी होनी चाहिए, जो राष्ट्र को संगठित रखती है और वर्तमान कार्य के लिए आध्यात्मिक शक्ति तथा उत्तेजना की भावना प्रदान करती है। गाधी की भूमि में यह एक विशेष प्रासंगिक चुनौती है।

वास्तव मे गाधी की भावना क्या थी? क्या उनकी सफलता भारत के दीर्घकालिक इतिहास मे केवल क्षणिक और अस्थायी है? क्या गाँधी का कार्यक्रम केवल स्वतत्रता प्राप्त करने की एक प्रणाली मात्र था? क्या गाँधी ने भारत के भावी विकास के लिए कोई गतिशील, स्थायी तथा मौलिक सचालन-शक्ति छोडी?

इन आशाओ के साथ कि भारत न केवल अपनी कठिन समस्याओ का समाधान करेगा, बल्कि अपने आदर्श से एक भौतिक तथा प्राय प्रमत्त विश्व के समक्ष एक नवीन मार्ग प्रस्तुत करेगा, मै एक अमरीकी की हैसियत से स्वीकार करता हूँ कि मुझे प्राय निराशा के अवसर देखने को मिले है।

एक उदाहरण काश्मीर का है। भारत मे राजदूत होने के नाते काश्मीर समस्या के कानूनी तथा राजनीतिक पहलुओ को ध्यानपूर्वक समझने का मेरा दायित्व रहा है। मेरा विश्वास था कि इस प्रश्न पर भारतीयो का सदैव औचित्यपूर्ण कानूनी दावा रहा ह।

तथापि, नवम्बर, १९४७ मे, भारत-सरकार ने वचन दिया था कि जैसे ही काश्मीर की भूमि से सभी विदेशी सेनाएँ हटा ली जायगी, वहाँ जनमत लिया जायगा। १९५५ तक यह जनमत नही लिया गया और अब जनमत की सभावना भी बहुत कम दिखायी देती है।

१९५३ के ग्रीष्मऋतु मे, काश्मीर के प्रधान मत्री शेख अब्दुल्ला की गिरफ्तारी के बाद अमरीका-विरोधी प्रचार-आन्दोलन को, जो बडी होशियारी से सगठित किया गया मालूम होता था, देख कर मै व्यग्र हो उठा। आकस्मिक अमरीकी भ्रमणार्थियो पर गुप्तचर होने का आरोप लगाया जाने लगा। यहा तक कि एडलाई स्टीवेन्सन भी, जो वहाँ कुछ दिनो के विश्राम के लिए गये थे, इस दोषारोपण से न बच सके। उत्तरदायी समाचार-पत्रो ने उन्हे अमरीकी गुप्तचर बताया, जो काश्मीरी पर्वतो मे गुप्त हवाई अड्डे के निर्माण को योजना बनाने के लिए गये थे।

भारत ने अमरीका के नीति-निर्माताओ को मास्को और पेकिग के साथ व्यवहार मे 'कुछ ढुलमुल' बता कर अनुचित नही किया, परन्तु क्या भारत पर यह दायित्व नही है कि वह अपने पडोसी पाकिस्तान से समझौते के लिए और अधिक सुदृढ प्रयत्न करे?

यद्यपि भारतीय नेताओ का यह कहना ठीक हो सकता है कि पाकिस्तान को सतुष्ट करने के लिए वे 'आधा रास्ता' तय कर चुके है, किन्तु क्या यह

पर्याप्त है ? भारत को एक महान राष्ट्रीय नेता का वरदान प्राप्त है, उसे एकता पैदा करने वाली राजनीतिक पार्टी मिली है और पाकिस्तान की अपेक्षा कही अधिक प्रबल सरकार का लाभ प्राप्त है। इन परिस्थितियो मे क्या गाँधी पाकिस्तान के लिए 'आधे रास्ते' तक जाकर रुक जाते ? पाकिस्तान के साथ अच्छे व्यवहार के लिए मुसलमानो की ओर से गाँधी का अन्तिम अनशन स्वय इस प्रश्न का उत्तर है।

इसके अतिरिक्त क्या गाँधी का भारत विश्व के समक्ष नागरिक स्वतत्रता के प्रति पूर्ण सम्मान का आदर्श प्रस्तुत करने के लिय बाध्य नही था ? जो शेख अब्दुल्ला काँग्रेस दल के अधिकाश लोगो के मित्र थे, वे आज १९५५ मे भी बिना मुकदमा चलाये जेल में बन्द है, यद्यपि भारत ने वर्षों से अब्दुल गफ्फार खा को उसी प्रकार कैद रखने पर पाकिस्तान की आलोचना की है। १९५५ में भारत वापस आने से पूर्व मैंने १९५१-५३ से भी अधिक भ्रष्टाचार की बाते सुनी, इस बार भारत के कुछ राज्यो के मत्रि-पद के अधिकारियो पर भी अभियोग थे। कुछ राज्य-विधान-सभाओ मे जमीदारो के कक्षो की गतिविधियाँ भी अपमानजनक बतायी गयी।

स्वतत्रता के अपने दीर्घकालीन सग्राम मे और उसके नेताओ द्वारा प्रस्थापित सिद्धान्तो में भारत ने स्वय अपने लिए उच्च स्तर प्रस्तुत किये थे। यदि भारत को उसके मित्र उन्ही मापदण्डो से जाँचें तो क्या उन्हे दोषी ठहराया जायगा ?

× × ×

जब फरवरी, १९५५ में दक्षिण भारत में मद्रास राज्य के गाँधीग्राम में एक ग्राम प्रशिक्षण-केन्द्र म मैं गया, तब ये प्रश्न मेरे मस्तिष्क में थे। यहाँ पर लगभग तीन सौ युवक और युवतियाँ ग्राम-सेवा के लिए, जिसे गाँधीजी ने समझा और प्रोत्साहित किया था, अपने-आपको तैयार कर रही थी। हम सूर्यास्त की प्रार्थना में उपस्थित थे। बडी भावप्रवणता तथा मिठास के साथ हमने गाये जाने वाले भजनो को सुना। इनमें से कुछ तो आधुनिक थे और कुछ प्राचीन वैदिक साहित्य से लिये गये थे। बाइबिल, कुरान और गीता से भी कुछ अश पढे गये। सब में मानवीय एकता पर और व्यक्ति की महत्ता पर, चाहे वह किसी भी, जाति, धर्म अथवा वर्ण का हो, बल दिया गया था।

उसी रात हमने उन लोगो से बातचीत की, जो गाँधी के बहुत निकट रह चुके थे और जो उनकी सफलताओ तथा विफलताओ में भाग ले चुके थे। मैंने बताया कि मैं उनके उस आध्यात्मिक त्याग से कितना प्रभावित था, जिसका

एक रूप हमने अभी स्कूल मे ही देखा और मैने उनसे पूछा कि भविष्य के लिए इसकी व्याख्या वे किस प्रकार करते है ?

उनमे से एक ने कहा, "भारत आनेवाले वर्षो मे अपने महान गौरव के दिन देखेगा। यदि नेहरू न होते तो शायद हम राष्ट्र के रूप में जीवित न रह पाते। उनकी निष्ठा और राजनीतिक कुशलता ने हमको एकता के सूत्र मे बाँधा और हमारा नेतृत्व किया। उनके साहस ने उन धार्मिक उग्रवादियो को पीछे फेक दिया, जिनका रोष हमे निगल गया होता।"

उसने आगे कहा, "परन्तु भारत के लिए नेहरू अपनी सारी महत्ता के साथ आधे रास्ते पर ही है। नेहरू के सेवानिवृत्त होने अथवा उनके देहावसान के बाद भारत और भी अधिक गाँधीवादी हो जायगा।"

मुझे याद था कि नेहरू के सभाव्य उत्तराधिकारियो मे दो नाम प्राय लिये जाते थे, एक तो बम्बई राज्य के मुख्य मत्री मोरारजी देसाई का और दूसरा जयप्रकाश नारायण का, जो समाजवादी दल के भूतपूर्व अध्यक्ष और विसकोन्सिन विश्वविद्यालय के 'ग्रेजुएट' है।

मै उन्हे वर्षो से जानता हूँ और उनके साथ मेरी मुलाकाते स्मरणीय अनुभवो के रूप मे है।

मुझे कॉग्रेस के नये अध्यक्ष उ न ढेबर से हुई अपनी बातचीत भी याद आयी। वे भी गाँधी के एक सच्चे और योग्य अनुयायी है, जिन्होने दल के भीतर की भ्रष्टता को निर्मूल करने और जन-कल्याण के प्रति गाँधीवादी आस्था को काँग्रेस मे पुन. लाने का अपना दृढ सकल्प बताया।

उडीसा में विनोबा भावे के साथ मेरी पत्नी के निवास के दिन का स्पष्ट वर्णन भी याद था—"भारत का पद-यात्री सन्त", जिसको जमीन्दारो ने स्वेच्छा से, भूमिहीनो मे वितरण के लिए ४० लाख एकड भूमि दे दी। उसने उनके साढे तीन बजे प्रात कालीन यात्रारम्भ, प्रात कालीन प्रार्थना और उनके प्रति उन हजारो लोगो की भक्ति-भावना का वर्णन किया, जो उनसे दिन मे मिलते और बाते करते थे।

गाँधी की मृत्यु के बाद हैदराबाद मे साम्यवादियो ने हजारो एकड जमीन छीन कर लोगो मे वितरित की थी। साधक विनोबा, जिन्हे गाँधी ने एक बार अहिसा के प्रथम आदर्श के रूप मे चुना था, १९५१ मे हैदराबाद गये और वहाँ पर उन्होने प्रतिज्ञा की कि वे गाँधीवादी प्रणाली से भूमिहीनो की समस्या का समाधान करेगे।

हदराबाद के एक गाँव में उन्होने छोटे-बड़े जमीन्दारो से यह समझने की अपील की कि भूमिहीन भी उनके भाई है और भूमि मे उनका भी भाग होना चाहिए। एक जमीन्दार ने जमीन दे दी और भूदान की तीर्थ-यात्रा प्रारम्भ हो गयी।

विनोबा ने सबसे अपनी भूमि का छठा भाग मानो उनके छठे बेटे को देने के लिए माँगा। इसी सन्देश के साथ भूमिहीनो के लिए भूमि एकत्र करने के लिए उन्होने १९५१ मे भारत की यात्रा शरू कर दी। भारत भर के कई हजार गाँधीवादी कार्यकर्त्ता, जो पृथक-पृथक केन्द्रो में कार्य कर रहे थे, उस विचारधारा के समर्थन मे एकत्र हो गये।

१९५५ मे हमने अनुभव किया कि भूदान-आन्दोलन समस्त भारत में नतिक पुनर्जागरण को अभिव्यक्त कर रहा है। भारत जैसे परस्पर विरोधी तत्वो से पूर्ण विस्तृत देश मे व्यक्तिगत अनुभवो के आधार पर किसी को शीघ्र कोई सामान्य निर्णय नही करना चाहिए, चाहे वे अनुभव कितने भी स्पष्ट क्यो न हो। यह कह चुकने के बाद, मै फिर कहूँगा कि अपने स्वय के ज्ञान तथा भारत मे अपन जीवन से हमे बडा प्रोत्साहन मिला। गम्भीर और समृद्ध आध्यात्मिक जीवन की देदीप्यमान सभावनाएँ, जो स्वतत्रता की बडी सफलता के बाद के वर्षों मे कुछ धूमिल सी हो गयी थी, फिर चमकने लगी है। भारतीय जनता नैतिक मूल्यो पर अधिकाधिक सोचने लगी है।

गाँवो और देहातो में दस-पन्द्रह मील चल चुकने के बाद विनोबा हर रात को खेत जोतने वालो के साथ अपनी आत्मिक एकता के प्रतीक स्वरूप फावड़ा उठाते थे। वे जमीदारो को दिखाते थे, जैसा कि गाँधी ने अग्रेजो को दिखाया था, कि उनके द्वारा 'उत्पीडित' लोग नही, बल्कि वे स्वय अपने अन्याय और अत्याचार सबसे अधिक भोगते है।

विनोबा के नतिक प्रभाव का पता कुछ इस बात से चलता है कि समाजवादी नेता जयप्रकाश नारायण ने भूदान के लिए तथा आधुनिक प्रजातन्त्रात्मक भारत के अहिंसात्मक विकासके लिए जीवन दान दिया है। विनोबा के सहायक के रूप मे वे अनेक भारतीय युवकों को इस काम मे खीच रहे है। वे उनको विशेषकर लाखो एकड़ भूमि के वितरण तथा ग्रामदान के सैकडो गाँवो के पुनर्गठन में लगा रहे है।

न तो जयप्रकाश नारायण और न विनोबा ही भूदान को भूमिसुधार-विधान का विकल्प मानते है, बल्कि इसके विपरीत उन दोनो व्यक्तियों का तो यह

कहना है कि भूदान से एक आवश्यक वातावरण का निर्माण होगा और गाँधी-वादी शक्ति अर्थात् विश्वस्त जनता के शक्ति-स्त्रोत को मुक्त करके उचित विधान बनाया जा सकेगा।

जो यह सिद्धान्त स्वीकार करते है कि साम्यवाद अन्ततोगत्वा एक और अधिक शक्तिशाली विचार से ही परास्त किया जा सकता है, वे इस क्षीण-काय, वृद्ध पुरुष में एशिया की महानतम प्रजातन्त्रात्मक शक्ति का दर्शन कर सकते है। विनोबा का कथन है कि, हम साम्यवादियो के इस विचार से सहमत नही है कि बिना हिंसा के क्रान्ति नही हो सकती। हम विश्वास करते है कि भारत जैसे देश मे और प्रजातन्त्रात्मक शासन-व्यवस्था मे मतदान द्वारा, बिना हिसा के क्रान्ति पूरी की जा सकती है।

विनोबा ने आगे कहा, "स्वराज्य प्राप्त करके इसकी सामर्थ्य को सिद्ध कर चुकने के बाद गाँधीवाद को काल्पनिक और अव्यवहारिक नही कहा जा सकता। साम्यवाद ने भी, सम्प्रति प्राचीन चीन मे जान फूक कर अपनी शक्ति को सिद्ध कर दिया है। इससे कुछ कार्यकर्त्ताओ को दोनो पद्धतियो मे समन्वय करने का प्रलोभन मिलता है। सच्ची बात तो यह है कि इन दोनो सिद्धान्तो का समन्वय असभव है। दोनो मे मौलिक भेद है। सूर्य की तरह यह स्पष्ट है कि दोनो एक दूसरे के विरोधी है।"

१९५५ मे, भारत मे हमारी अन्तिम रात को राष्ट्रपति ने हमे राष्ट्रपति-भवन मे १९२९ और १९३० के गाँधी के जीवन तथा प्रयासो को चित्रित करने वाली एक फिल्म देखने के लिए आमत्रित किया था। उस फिल्म में बड़े नाटकीय ढग से, विशाल जनसमूह, पुलिस-प्रहार के सम्मुख अनुशासनपूर्ण अहिंसा, गाँधी के विदेशी वस्त्र के बहिष्कार के फलस्वरूप लकाशायर मे बेकार वस्त्र-मजदूरो की भीड़ तथा ब्रिटेन-यात्रा के समय उन्ही के बीच गाँधी की पद-यात्रा और उनके उल्लासपूर्ण स्वागत के दृश्य दिखाये गये थे।

हमारे अतिरिक्त, दर्शकों की सख्या लगभग चालीस थी, जिसमें गाँधी के स्वतंत्रता प्राप्त करने के साधन काँग्रेस पार्टी की कार्यकारिणी के सदस्य भी शामिल थे। उनमे से बहुतेरे चित्र मे युवा रूप मे दिखायी दिये, जो आस्था के साथ अपने महात्मा के निर्देश और प्रेरणा पर कार्य कर रहे थे। बाद मे उसी रात को प्रीतिभोज के समय नेहरू ने गाँधी द्वारा छोडी गयी विरासत और अपने तथा अपने साथियो पर पड़े दायित्व के बारे मे स्वाभाविक रूप से बातचीत की।

उसी समय मुझे उन ग्राम-कार्यकर्त्ताओ के निष्ठावान चेहरे याद आये, जो मैंने गाँधीधाम, हैदराबाद मे उनके स्कूलो मे और ग्रामो मे काम करते समय देखे थे। मै सोचता हूँ कि जो भावना उनमे भरी जा रही है, उससे न केवल भारतीयो की स्वतत्रता तथा विकास का आश्वासन प्राप्त हो सकता है, प्रत्युत समुद्र पार करोडो लोगो को भी प्रथ-प्रदर्शन प्राप्त हो सकेगा।

क्या विनोबा के शब्द सत्य हो सकेगे ? उन्होने पूछा, "मार्क्स और गाँधी के सिद्धान्तो के तुलनात्मक अध्ययन से बढकर हमारे लिए और क्या आकर्षक चीज हो सकती है ? लेनिन मार्क्स मे समाया हुआ है और टालस्टाय की छाया गाँधी पर पडती है। दोनो सिद्धान्त आमने-सामने एक-दूसरे को निगल जाने के लिए उद्यत है।"

ऊपर से तो यही मालूम हो सकता है कि अखाडे मे उतरे हुए दो प्रतिद्वन्द्वियो मे, एक ओर रूसी नेतृत्व मे साम्यवादी है और दूसरी ओर सयुक्त राज्य अमरीका के नेतृत्व मे पूजीवादी, परन्तु सैद्धान्तिक दृष्टि से पूजीवादियो की शक्ति क्षीण हो गयी है और यद्यपि अपनी सैन्य-शक्ति के कारण पूजीवाद प्रबल प्रतीत होता ह, तथापि मै उसे साम्यवाद के प्रतिद्वन्द्वी के रूप मे जीवित नही मानता। मै विश्वास करता हूँ कि अन्ततोगत्वा गाँधीवाद के साथ ही साम्यवाद को अपनी ताकत की आजमाइश करनी होगी।

अमरीकी विनोबा के इस तीखे आरोप को स्वीकार नही करेगे कि हमने अपना लोकतान्त्रिक विश्वास खो दिया है, परन्तु यह हमारे क्रान्ति के सिद्धान्तो पर पुर्नविचार के लिए हमे विवश करेगा कि हमने उन सिद्धान्तो का कहा तक पालन किया है और विनोबा जैसे व्यक्ति हममे क्यो कमियाँ देख रहे हैं। इस बीच साम्यवाद के मुकाबले यदि गाँधीवाद ने एक नये क्रान्तिकारी विकल्प का निर्माण किया तो यह बहुत ही महत्वपूर्ण लक्षण होगा, क्योकि यह मानवीय गौरव की कल्पना पर आधारित एक विकल्प है।

बीसवाँ प्रकरण

भारत और शीतयुद्ध

भारतीय स्वतत्रता सग्राम मे गाँधी के महान नेतृत्व की कहानी और नये भारतीय राष्ट्र की सामाजिक और आर्थिक उन्नति को अधिकाश अमरीकी सहानुभूति और प्रशसा की दृष्टि से देखते है, परन्तु सभव है कि उनके मस्तिष्क मे अन्तरराष्ट्रीय मामलो मे भारतीय नीति के सम्बध मे कुछ भ्रम हो। वे जानना चाहते है कि भारत पृथकतावादी है या तटस्थ, अमरीका-विरोधी है या केवल साम्यवाद का पक्षपाती? उन्हे भारत के दो विशाल पडोसियो, रूस और चीन के प्रति भारत के रुख से विशेष रूप से चिन्ता है।

प्रधानमत्री नेहरू के रुखो के कारण यह चिन्ता होती है। यह एक महत्व-पूर्ण बात है, क्योकि नेहरू के विचारो ने अधिकाश भारतीयो के परराष्ट्र-नीति सम्बधी विचारो को, १९२५ के काग्रेस के वार्षिक अधिवेशन के समय से ही, जब अन्तरराष्ट्रीय प्रश्नो के अध्ययन और सस्था के समक्ष सिफारिश पेश करने के लिए परराष्ट्र-विभाग की स्थापना हुई, प्रभावित कर रखा है।

कदाचित् १९२७ इससे भी अधिक महत्वपूर्ण तिथि ह। १५ जनवरी, १९५५ को मद्रास मे सवाददाताओ मे भाषण करते हुए नेहरू न स्वय कहा था कि मद्रास का १९२७ का काग्रेस-अधिवेशन इस परराष्ट्र-नीति का जनक था, जिसका पालन स्वतत्रता के बाद से किया जा रहा है। नेहरू ने कहा, कि तटस्थता और प्रत्येक राष्ट्र के साथ मैत्रीपूर्ण सम्बध और सभी देशो की स्वतत्रता के प्रति हमारा सामान्य दृष्टिकोण अथवा उपनिवेश-विरोध की हमारी परराष्ट्र बीति उसी समय से प्रारम्भ हुई। नेहरू ने कहा कि यह याद रखना जरूरी है, क्योकि इसका अर्थ यह है कि हमारी परराष्ट्र-नीति अचानक प्रस्फुटित नही हो गयी, बल्कि यह हमारे वर्षो के चिन्तन-मनन का स्वाभाविक परिणाम ह।

यद्यपि किसी सत्ताहीन दल के प्रस्ताव उसके सत्तारूढ होने पर विदेश-नीति के साथ सर्वदा मेल नही खाते, तथापि यह कहना उचित ही होगा, जैसा कि नेहरू ने कहा, कि वर्तमान भारत-सरकार की कम से कम एक पीढी से अपनी एक ही परराष्ट्र-नीति रही है।

नियमित रूप से काग्रेस दल के प्रस्तावों मे उपनिवेशवाद-विरोधी तथा जाति-विरोधी सिद्धान्तो का समावेश होता आया है। १९२८ मे काग्रेस ने

च्यागकाई शेक के चीन को, पूर्ण राष्ट्रीयता प्राप्त कर लेने और विदेशी प्रभुत्व के युग को समाप्त कर देने के लिए, कुछ असामायिक बधाइयाँ भेजी।

१९३६ मे, कृष्ण मेनन ने, जो १९५५ मे भारत के भ्रमणशील राजदूत थे, काग्रेस को एक रिपोर्ट भेजी थी, जिसमे लिखा था कि साम्राज्यवाद ही युद्ध के जारी रहने का कारण है और शान्ति के लिए उसका उन्मूलन अत्यावश्यक है।

काग्रेस स्पष्ट रूप से फासिस्टों के आक्रमण के विरुद्ध थी और १९३६ में उसने स्पेन के लिए, जो फासिस्ट शक्तियों तथा विदेशी भाडे की सेनाओं द्वारा समर्थित एक सैनिक गुट से लड रहा था, अपनी गहरी सहानुभूति और चिन्ता व्यक्त की। एक वर्ष बाद शघाई मे जापानी सेनाओ के उतरने पर काग्रेस ने लोगों से, चीनियो के प्रति सहानुभूति प्रदर्शित करने के लिए, जापानी माल का बहिष्कार करने के लिए कहा। १९३८ मे योरोप मे साम्राज्यवादी युद्ध की तैयारियों की निन्दा की गयी और जब युद्ध प्रारम्भ हो गया तब नाजी आक्रमण के विरुद्ध भी उसी प्रकार का दृष्टिकोण अपनाया गया।

उस समय भी, जब भारतीय सेनाएँ ब्रिटेन की ओर से युद्ध कर रही थी, उपनिवेशवाद के विरुद्ध जोर मे कमी नही आयी। मार्च, १९४६ में, भारत से अग्रेजों के जाने के १७ महीने पूर्व काग्रेस ने, हिन्देशिया, मञ्चूरिया, हिन्दचीन, ईरान और मिस्र से विदेशी सेनाओं को तुरन्त वापस लेने की माँग की, जब कि इस बात पर भी बल दिया गया कि एशिया की स्वतत्रता की समस्या का मूल तत्व भारत है और उसी की स्वतत्रता पर अनेक देशो की स्वतत्रता और विश्व-शान्ति निर्भर है।

उसी वर्ष के सितम्बर में सवाददाताओ के समक्ष श्री नेहरू ने उस भारतीय नीति को स्पष्ट किया, जिसका वह एक स्वतत्र राष्ट्र की हैसियत से पालन करेगा और नेहरू ने भी उल्लेखनीय दृढता के साथ उसका पालन किया। उन्होंने कहा कि पराराष्ट्र-नीति के क्षेत्र मे भारत एक स्वतत्र नीति का अनुसरण करेगा और एक-दूसरे के विरुद्ध गठित गुटों की दलगत राजनीति के चक्कर में नही पडेगा। वह परतत्र राष्ट्रो के लिए स्वतत्रता के सिद्धान्त का पालन करेगा और चाहे जहाँ भी हो, जातीय भेदभाव का विरोध करेगा। वह एक राष्ट्र द्वारा दूसरे राष्ट्र के शोषण के बिना अन्तरराष्ट्रीय सहयोग, एव सद्भावना के लिए अन्य शान्तिप्रिय राष्ट्रो के साथ मिलकर काम करेगा।

नेहरू ने सयुक्त राष्ट्र सघ को भारत के सम्पूर्ण और स्पष्ट सहयोग का वचन दिया और यह भी वचन दिया कि वह संयुक्त राष्ट्र में अपनी भौगोलिक

स्थिति, आबादी तथा शान्तिपूर्ण प्रगति के अनुसार पूरी शक्ति से भाग लेगा। उन्होंने कहा कि भारतीय प्रतिनिधि सदैव यह स्पष्ट करेगा कि भारत सभी उपनिवेशो तथा परतत्र देशों की स्वतत्रता तथा उनके आत्मनिर्णय के पूर्ण अधिकारों का समर्थक है।

भारतीय परराष्ट्र-नीति का यह उतना ही स्पष्ट सामान्य व्यक्तव्य है, जितना कही भी हो सकता है। भारत के स्वेच्छा से ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल से सबद्ध रहने की एक नयी बातके अतिरिक्त, पिछले दशक में यह कभी भी जारी की गयी होती। भारतीय परराष्ट्र-नीति की पृष्ठभूमि और सोवियत यूनियन तथा साम्यवादी चीन की घटनाएँ तथा प्रवृत्तिया, इन दोनो के सदर्भ मे अपने साम्यवादी पडोसियो के प्रति भारतीय नीति कई वर्षो से काफी स्पष्ट रही है।

द्वितीय विश्व-युद्ध के दौरान मे स्वतत्रता-सग्राम की अन्तिम स्थितियो में भारतीय साम्यवादियो ने अधिकाश जनता से शत्रुता मोल ले ली थी, क्योंकि मास्को की आज्ञा पर उन्होने ब्रिटिश विजयके लिए वाइसराय को पूर्ण समर्थन प्रदान किया था। जब कि गाँधी और नेहरू भारत की विशाल अहिसात्मक हडतालो के प्रमुख नेता थे, साम्यवादियो ने, हडताले तोडने वालो के रूप में अग्रेजो की सहायता की थी। इस प्रकार भारत मे साम्यवादियो ने बड़े ही महत्वपूर्ण मौके पर भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन का विरोध किया और फलतः वे बदनाम भी हो गये।

अधिकाश भारत मे साम्यवाद-विरोधी भावना ने उस समय और भी जोर पकडा, जब स्वतत्रता के कुछ ही दिनो बाद, हैदराबाद के तेलगाना क्षेत्र में उन्होंने अपने हिंसात्मक कारनामों का प्रदर्शन किया। हम देख चुके है कि इस विद्रोह को, जो कि अन्तरराष्ट्रीय साम्यवाद की विश्वव्यापी चाल का एक अग था, कठोर सैनिक शक्ति द्वारा दबा दिया गया और इसमें काफी खर्च किया गया। १९५१ म जब मै भारत आया, तब एक अधिकारी ने शेखी बघारते हुए कहा, "हमारी सरकार ने रूस के अतिरिक्त सभी देशों की अपेक्षा अधिक साम्यवादियों को जेलो मे बन्द कर रखा है।"

उन दिनों से साम्यवादी दल ने अपनी चालो में बहुत-कुछ परिवर्तन किये है, यद्यपि वह अभी भी मास्को से निर्देशन ग्रहण करता है। कभी-कभी वह अहिंसा का भी समर्थन करता है, परन्तु उसका यह दावा फरवरी, १९५५ मे आन्ध्र के चुनाव मे, फिर झूठा साबित हो गया। काग्रेस दल के नेताओं की

सम्पत्ति जला दी गयी और व्यक्तिगत हिसा की धमकियों से वातावरण गूज उठा, क्योकि साम्यवादी अगॉधीवादी ढंग से राज्य की विधान-सभा का चुनाव जीतने के लिए निकल पडे थे।

इन ज्यादतियो के लिए अधिकाश भारतीय सोवियत सघ को दोषी ठहराते है, क्योकि सामान्यत ऐसा विश्वास किया जाता है कि सोवियत नेतृत्व के निर्देश पर ही भारतीय साम्यवादी कार्य करते है। चीन की मुख्य भूमि पर साम्यवादियों की अन्तिम विजय तक यह निर्देश बिल्कुल स्पष्ट था। माओ की शीघ्रगामी विजय के कारण भारतीय तथा अन्य पिछलग्गू देशों के साम्यवादियों को मास्को की उदासीनता बर्दाश्त करनी पडी। माओ की प्रारम्भिक सफलताओ के प्रति, मास्को और अन्य पिछलग्गू साम्यवादी देशो की भाति, भारतीय कम्यूनिस्ट पार्टी ने भी उदासीनता प्रदर्शित की। इस प्रकार, जुलाई, १९४९ मे भी, जब कि माओ की सेनाओ ने अधिकाश चीन को पदाक्रान्त कर डाला था, भारतीय साम्यवादी समाचारपत्र उन्हे तिरस्कार के साथ "भूमि-सुधारक" के रूप मे प्रचारित कर रहे थे। उसी महीने मे एक अधिकृत घोषणा के अनुसार, भारत के साम्यवादी दल ने मार्क्सवाद के आधिकारिक स्रोतो के रूप मे मार्क्स, एञ्जिल्स, लेनिन और स्तालिन को स्वीकार किया। इनके अतिरिक्त, उसने मार्क्सवाद के नये स्रोतों का पता नही लगाया है।

ब्रिटेन, भारत, बर्मा और पाकिस्तान द्वारा माओ-सरकार की स्वीकृति के कुछ ही पूर्व जनवरी, १९५० तक, मास्को की आज्ञाओं पर भारतीय साम्यवादियो ने 'माओवाद' को भी साम्यवाद का उचित रूप मान लिया था। जून, १९५५ मे, नेहरू की मास्को-यात्रा के दो दिनो बाद भारतीय साम्यवादी दल ने अचानक ही अपनी कॉंग्रेस-विरोधी स्थिति को वापस ले लेने की घोषणा कर दी। यह बात इस कथन की पुष्टि करती है कि मास्को अभी भी भारतीय साम्यवादी दल की गतिविधियो का निर्देशन करता है, यद्यपि मेरी राय मे, आन्ध्र में कडी हार खाने के बाद भारतीय साम्यवादियों को और कोई अन्य विकल्प नही रह गया था।

इन विरोधी तत्वों को सन्तुलित करने के लिए सोवियत यूनियन को उस साल कम से कम तीन लाभ प्राप्त थे। उनमे से एक है, उपनिवेशवाद सम्बधी रूढिगत मार्क्सवादी-लेनिन का दृष्टिकोण, जिसने भारतीय नेताओं पर पहले अच्छा प्रभाव डाला था। दो बड़े युद्धो के दरम्यान साम्राज्यवाद सम्बन्धी

प्राय सभी अन्तरराष्ट्रीय सम्मेलनो मे, जबकि भारतीय नेताओं के मस्तिष्क मे स्वतत्रता का विचार सर्वोपरि था, सोवियत प्रतिनिधियो ने हमेशा अपने को उपनिवेशवाद का विरोधी घोषित किया। जैसा कि हम देख चुके हैं, उप-निवेश-विरोधी हित का यह निरन्तर मौखिक अनुमोदन उस समय आया, जबकि रूढिवादी दबावो को, जिनका ज़ारो ने रूसी पडोसियो के विरुद्ध प्रयोग किया था, क्रेमलिन ने कुछ समय के लिए ढीला कर दिया।

क्रेमलिन का दूसरा लाभ, जिस पर मैंने सक्षेप मे एक पिछले प्रकरण म विचार किया है, अधिकाश शिक्षित भारतीयो का उन तत्वो से असाधारण रूप से अपरिचित होना है, जिन्होंने शीत युद्ध के अवरोध को पदा किया। १९४५-५५ के दशक मे, जब कि पश्चिम स्तालिन की कठोर नीतियो का अनुभव कर रहा था, भारत अग्रेजो की अन्तिम वापसी, साम्प्रदायिक दगो तथा नये राज्य के निर्माण के स्मरणीय कार्यो मे व्यस्त था। सोवियत सघ ने जिस शीत युद्ध की चालो का पोलैण्ड, ईरान, यूनान, तुर्की, जर्मनी और कोरिया मे अनुसरण किया, उनसे अमरीका ने शिक्षा ग्रहण की, किन्तु उसे भारत में या तो पढा ही नही गया या पढा भी गया तो बिल्कुल सरसरी निगाह से।

१९५५ में नयी दिल्ली मे विश्व मामलो की भारतीय परिषद (Indian Council of World Affairs) के सम्मुख मैंने एक व्याख्यान दिया, जिसमे मने उन १४ मुख्य बातो की एक तालिका बतायी, जिनके आधार पर अमरीकी परराष्ट्र-नीति, जैसाकि मैंने अनुभव किया, युद्धोत्तर काल मे निश्चित रूप से ठीक-ठीक प्रदर्शित हो चुकी है। जो बाते मैंने कही, उनमे से अधिकाश मेरे श्रोताओ के लिए बिल्कुल नयी थी।

तीसरी बात, जो आशिक रूप से सोवियत कार्रवाई की व्यापक अनभिज्ञता के परिणामस्वरूप है, यह दृढ विश्वास है कि मास्को की चाहे कुछ भी गलतियाँ हो, वह हृदय से शान्ति चाहता है। उदाहरण के लिए, अनेक असाम्यवादी भारतीय यह मानते हैं कि वर्तमान आणविक प्रतियोगिता अमरीका की पदा की हुई ह, जिसको हम अमरीकी नही छोडेगे। नेताओ में भी कुछ ही ऐसे है, जिन्हे अणु-नियत्रण सम्बन्धी अचेसन-लिलियन्थाल-बारुच योजना याद है। सोवियत सघ के और अधिक निरस्त्रीकरण और तनाव को कम करन के स्पष्ट दावो ने गहरा प्रभाव डाला है और समझौते के लिए सच्ची इच्छा व्यक्त करने की मास्को की पूर्व अस्वीकृतियाँ या तो बडी जल्दी भुला दी गयी है या उपेक्षित की गयी है।

यह बडे आश्चर्य की बात होगी, यदि हम यह विचार न करे कि अगले दशक मे सोवियत रूस ने भारत को अपने पक्ष मे करने के लिए कितने जबर्दस्त प्रयत्न किये है। मास्को शक्ति के नये विस्तारो को समझता है और इसीलिए वर्तमान विश्व-सदर्भ मे वह भारत के व्यापक महत्व को स्वीकार करता है। चीन के कठिन नियत्रण की दृष्टि से भी भारत की सन्तुलन-शक्ति को क्रेमलिन समझता है। इन चाटूक्तियो के प्रति दिल्ली की क्या प्रतिक्रिया होगी, यही एक स्पष्ट प्रश्न है।

फिर भी, इसमे सन्देह नही कि उसने साम्यवादी चीन के उद्भव का भारतीयो मे साम्यवाद के प्रति सम्मान उत्पन्न करने मे उपयोग किया। विश्व के रगमच पर नये होने के कारण भारतीय साम्यवादी दल के हाल के वर्षो के अप्रिय कारनामो के उत्तरदायित्व से चीन भारतीयो की दृष्टि से बच जाता है।

यद्यपि १९५१-५३ मे मै इन भारतीय दृष्टिकोणो से परिचित था, तथापि १९५५ तक उन्होने गहरी जडे जमा ली। न केवल सरकारी नेताओ में, बल्कि अधिकाश शिक्षित भारतीयो मे भी, 'नये चीन' के प्रति एक प्रकार का उत्साह तो नही, किन्तु आश्चर्यजनक मात्रा मे सहिष्णुता का भाव था।

अधिकाश भारतीय जानते है कि माओ तथा उनके साथियो ने किस प्रकार अपने विपक्षियो को हिसा से समाप्त किया और नैतिक सिद्धान्तो के प्रति उनकी कितनी घृणा है, परन्तु वे चीन मे उन एशियाई लोगो को भी देखते है, जिनका पश्चिमी लोगो द्वारा दीर्घकाल तक शोषण और अपमान हुआ, जिन्होने सुन यात सेन और च्याग काई शेक के मातहत उपनिवेशवाद के विरुद्ध युद्ध किया और अन्तमे माओ के नेतृत्वमे उसको मार भगाया तथा जो आज आधुनिक अर्थव्यवस्था के निर्माण के लिए सघर्ष कर रहे है। यदि पारस्परिक स्वार्थ के इन तत्वो को भौगोलिक सदर्भ मे रख कर देखा जाय तो चीन के प्रति भारत की नीति आसानी से समझ मे आ जाती है।

चुकिंग मे, १९४० मे च्याग काई शेक से भेट के समय नेहरू ने कहा था, "मै अपने को, प्राचीन परम्परा का एक अग मानते हुए भी, इन दो ऐतिहासिक प्राचीन देशो तथा सभ्यताओ को जोडने वाली एक और कडी के रूप मे समझता हूँ।" १९५४ में जब वे पेकिग गये, तब उन्होने लगभग इसी प्रकार की बात कही।

सिद्धान्तो में गम्भीर मतभेदो के बावजूद, नेहरू और उनके साथी तथा अन्य

शिक्षित भारतीय चीन की ओर कही अधिक आशा से देखते है, जिसको अधिकांश अमरीकी तथ्यो के आधार पर बहुत उचित नही मानते। सचमुच यह भारत का चीन के साथ विवाह करने के प्रयत्न जैसा मालूम होता है, जो इस आशा से किया जा रहा है कि सभव है, भारत चीन को नरम दृष्टिकोण अपनाने के लिए प्रभावित करे। भारतीय परराष्ट्र-नीति के मूल मे यही आकाक्षा छिपी है और सभी कठिनाइयो के बीच मे यह नेहरू की सबसे बड़ी बाजी है।

× × ×

इस जटिल और प्राय भावात्मक पृष्ठभूमि पर हमको अमरीका और अमरीकी नीति के प्रति भारतीय दृष्टिकोण को समझने की कोशिश करनी चाहिए। चीन के प्रति उसकी धारणा की भाँति अमरीका के प्रति भी उसकी धारणा धुँधली है। अपने सग्राम के प्रारम्भिक दिनो से ही उसन अमरीका को पश्चिमी औपनिवेशिक शक्तियो की साधारण निन्दा से अलग रखा है। उसे ज्ञात था कि अमरीका प्रथम बडा राष्ट्र ह, जिसने योरोपीय शक्ति के प्रभुत्व को समाप्त कर दिया। सौ वर्षो से अमरीका न, कुछ विशष अपवादो को छोड़कर, पराधीन देशो के स्वशासित होने के प्रयत्नो का समर्थन किया है। अप्रैल, १९४० मे नेहरू ने अमरीका के बारे मे लिखा, "इस महान प्रजातत्रात्मक देश के साथ, जिसने साम्राज्यवाद, फासिज्म, हिंसा, आक्रमण और निकृष्टतम कोटि की अवसरवादिता से पूर्ण इस ससार मे अकेले ही लोकतात्रिक स्वतत्रताकी मशाल को जलाये रखा, भारतीय विचार अधिकाधिक मिलते गये।"

युद्ध-काल मे भारतीय स्वतत्रता के लिए अमरीका के समर्थन को अधिकाश भारतीयो ने निश्चित ही मान लिया था। अमरीकी सरकार के दो उच्च प्रतिनिधि ब्रिटिश सरकार के अनुरोध पर वापस बुला लिये गये थे, क्योकि वे भारत में काग्रेस दल की स्वतत्रता की माँग का समर्थन करते थे।

तथापि आज शिक्षित भारतीय को अमरीका एक पहेली प्रतीत होता है। जापानी शासन से पूर्वी एशिया को मुक्त करने, फिलीपाइन्स को स्वतत्र करने के वचन को पूरा करने और अन्त मे हिन्देशिया की स्वतत्रता का समर्थन करने के बाद उसे ऐसा प्रतीत होने लगा कि अमरीका उन सिद्धान्तो से अधिकाधिक दूर हटता जा रहा है, जिन्होने भारत के लोकतात्रिक प्रवक्ताओ को अनुप्रणित किया था।

भारतीय यह बताने से कभी बाज नही आते कि जिन एशियाई राष्ट्रो से

हमने सम्बन्ध स्थापित किये है, उनमे स्वतत्र निर्वाचन के आधार पर बनी सरकारे नही है और जबकि हमारे बहुत से उत्तरी अटलाटिक सधि सगठन (नाटो) के साथियो के पास अफ्रीका और एशिया मे भी उपनिवेश है, जिनसे वे मजबूती से चिपके हुए है।

सैनिको को सार्वजनिक वक्तव्य से रोकने वाली ब्रिटिश परम्परा मे पले भारतीय सैनिक, अधिकारियो के युद्ध-भाषणो, प्रेस-कान्फ्रेन्सो तथा अखबारी इश्तेहारो की भरमार से चौक गये है।

अग्रेजो के प्रस्थान से मध्य पूर्व और दक्षिण पूर्व एशिया में उत्पन्न राजनीतिक तथा सनिक रिक्तता अथवा ब्रिटिश नेतृत्व मे भारतीय सेना की नि शक्तता, भारतीयो को विशेष चिन्तित नही करती, परन्तु जब अमरीका इन रिक्तताओ की पूर्ति करने का प्रयास करता है तो वे हमको ऐसे मित्र के रूप मे नही देखते, जो साम्यवाद को रोके हुए है और जिससे कि वे स्वतत्रतापूर्वक अपने राष्ट्र का विकास कर सके है, बल्कि वे समझते है कि हम नयी औपनिवेशिक चाल चल कर अनधिकार प्रवेश करना चाहते है।

इस आरोप पर जब हम अपना क्षोभ प्रकट करते है, तब उन्हे ब्रिटिश उपनिवेशवाद की उद्दण्डता याद आ जाती है। जब उनको और उनके नेताओ को हम अपना पक्ष और नेतृत्व ग्रहण करने के लिए बुरा-भला कहते है, तो उनको और भी बुरा लगता है और वे हमसे पूछते है, तो क्या १९३० के दशक मे अग्रेजो की सहायता मे आपकी असमर्थता का यह मतलब था कि आप नाजियो के पक्षपाती थे ?

सयुक्त राज्य अमरीका और चीन के प्रति ये परस्पर विरोधी दृष्टिकोण एक साथ मिलकर एक विकट आदर्श प्रस्तुत करते है, जिससे कोई निष्कर्ष निकालना बहुत कठिन है।

आधुनिक भारत के नेताओ ने बहुत पहले से निस्सन्देह प्रजातत्रात्मक स्वतत्रता के प्रति अपनी व्यक्तिगत तथा राजनीतिक निष्ठा स्थापित कर दी है। जिन घटनाओ की हम चर्चा कर आये है, उनसे अर्थात् भारतीय क्रान्ति की कहानी से, नये राज्य के उदार प्रजातत्रात्मक सविधान से, उसके राजनीतिक तथा ससदीय जीवन की शक्ति से और उसके आर्थिक विकास के ढग से यही सिद्ध होता है।

जहा भारत के राष्ट्रीय हितो का निश्चित रूप से प्रश्न आया है, वहाँ उसने उनके सरक्षण के लिए बडी दृढता के साथ अपना सकल्प व्यक्त किया है। इस

प्रकार हिमालय की सीमा पर नेपाल, सिकिम और भूटान राज्यों की अखण्ड-नीयता का उसने आश्वासन दिया है और इस बात पर कोई सन्देह नही करता कि इस आश्वासन का उद्देश्य चीनियो के अनधिकार प्रवेश को रोकना है।

यह भी बिल्कुल स्पष्ट प्रतीत होता है कि उत्तर से सैनिक आक्रमण की दशा मे भारतीय सेनाएँ, बर्मा की सेनाओ का और मुझे विश्वास है कि, पाकिस्तान की सेनाओ का भी समर्थन करेगी। यद्यपि अन्तमे चीन द्वारा तिब्बत की विजय मान्य की गयी, तथापि दिल्ली मे वह बहुत ही चिन्ता का कारण बनी रही।

यदि चीनी नीति स्पष्टत्त विस्तारवाद की हो जाती है तो भारत और उसके पडोसियो को भी अपनी नीति निर्धारित करनी पडेगी। मुझे विश्वास है कि बहुत सभव है, जिस स्थान पर भारत अपनी प्रतिरक्षा की रेखा खीचेगा, वह वही होगा, जहाँ ६०० ई और १२०० ई के बीच चीनी और भारतीय सस्कृति तथा राजनीति के प्रबल प्रभावो का दक्षिण पूर्व एशिया मे सगम हुआ था और जो कम्बोडिया, लाओस, स्याम और बर्मा की उत्तरी सीमा पर है। अपनी सीमाओं से दूर एशिया की सैनिक समस्याओ पर भारत की स्थिति तब तक तटस्थता की ही रहने वाली है, जब तक कोई स्पष्ट और सीधा आक्रमण न हो। इससे यह परिलक्षित नही होता कि भारत "साम्यवाद का पक्षपाती" है। इनमे से कुछ अत्यन्त महत्वपूर्ण समस्याओ पर भारत के विचारपूर्ण निर्णय, अधिकाश अमरीकियों के विचारो की अपेक्षा बहुत अधिक सही निकलते जा रहे है।

कोरिया मे विराम-सधि का प्रश्न एक उदाहरण है। जून, १९५० मे, दक्षिणी कोरिया पर प्रारम्भिक साम्यवादी आक्रमण को आक्रमक कार्य कह कर सयुक्त राष्ट्र सघ द्वारा की गयी निन्दा का भारत ने समर्थन किया। इडोन (Indon) में मैकार्थर की विजय के तीन महीने बाद चीनी सरकार ने पैकिंग स्थित भारतीय राजदूत को चेतावनी दी कि यदि सयुक्त राष्ट्र सघ की फौजे ३८ वी समानान्तर रेखा पार करेगी तो चीन युद्ध मे शामिल हो जायगा।

नयी दिल्ली न उसी रेखा पर युद्ध बन्द करने का अनुरोध किया। चेतावनी की परवाह न करते हुए हम उत्तरी भाग मे कूद पडे। चीनी लाल सेना तुरन्त ही यालू के पार जा पहुँची। तीन वर्ष बाद हमने लगभग ३८ वी समानान्तर रेखा पर ही अन्त मे समझौता करने का निश्चय कर लिया। इस बीच ९६,०००, अतिरिक्त अमरीकी और न जाने कितने अधिक चीनी और कोरियावासी मारे

गये या घायल हुए।

भारतीय नेताओं ने बताया कि उन्होने असाम्यवादी दक्षिणी कोरिया को साम्यवादी आक्रमण से बचाने के सिद्धान्त का समर्थन किया और वे हम से उसी समय अलग हुए, जब उन्होने समझा कि कोरिया को बलपूर्वक एक करने का प्रयत्न करके हम उस सिद्धान्त की अवहेलना कर रहे है।

भारत ने बार-बार हिन्दचीन मे फ्रासीसी औपनिवेशिक राज्य के समर्थन की निरर्थकता के लिए चेतावनी दी। जनवरी, १९५४ में नेहरू ने जब समझौते की बात कही तो उत्तरदायी अमरीकियो ने उन पर "साम्यवादी सहानुभूति" का आरोप लगाया और कहा कि वे हो ची मिन्ह को आसन्न पराजय से बचाना चाहते है। तीन महीने बाद दायेनबीनफू (Dienbenphu) का पतन हुआ और फ्रास की सारी सेना को लाल नदी के डेल्टा मे सैनिक विपत्ति का सामना करना पडा।

अप्रैल, १९५५ मे क्वेमोय और मात्सु के मामले मे भारत ने अमरीका से नरम होने का प्रबल अनुरोध किया। यह नीति अन्त मे राष्ट्रपति आइसनहावर के व्यक्तिगत बुद्धिमत्तापूर्ण निर्णय से लागू हुई। भारत ने बन्दी अमरीकी उडाकुओं को छुडाने के लिए भी चीन के साथ मध्यस्थता करने में सहायता की। यद्यपि उसने फारमोसा पर चीन के कानूनी अधिकार का समर्थन किया है, तथापि उसने चू के सामरिक वक्तव्यो के सम्मुख भी इस मामले के शान्तिपूर्ण समाधान का निरन्तर समर्थन किया है।

अनेक वर्षों मे तथा जटिल और भावात्मक पृष्ठभूमि मे भारत की विदेश-नीति के इन पहलुओ का रूप बना है। चाहे ठीक हो या गलत, भारतीय नेता निष्ठा के साथ यह विश्वास करते है कि ये नीतियाँ सही-सही उनकी आवश्यकताओ और उद्देश्यों को परिलक्षित करती है। इन अनेक अत्यधिक महत्वपूर्ण आवश्यकताओं मे से एक आवश्यकता उसके आर्थिक सकट से पैदा होती है। भारत को शान्ति की अवधि की घोर आवश्यकता है, जिसमे वह अपने साधन-स्त्रोतो को विकसित कर सके और अपनी प्रजातत्र प्रणाली की प्रभावोत्पादकता सिद्ध कर सके।

भारतीय नेता प्राय पूछते है, "यदि साम्यवादी भारत को ले ले तो आपके विचार से वे कहाँ से आयेगे? यदि आप यह सोचते हों कि वे खैबर के दर्रे से होकर रूस से आयेंगे या आसाम के पर्वतो से होकर चीन से, तो यह आपकी भूल है।"

वे आगे कहते है, "यदि साम्यवादी भारत मे लोकतान्त्रिक शक्तियों को हरा देते है, तो यह हार कलकत्ते की गन्दी बस्तियो मे और हैदराबाद के पिछडे गाँवों मे होगी। भारतीय प्रजातत्र का उत्थान या पतन उसकी सैनिक शक्ति पर नही निर्भर करता, बल्कि जो कुछ हम करते है या नही करते, उसी पर निर्भर करता है।"

इन तथा अन्य भारतीय दृष्टिकोणो से हम चाहे जो भी निष्कर्ष निकाले, मेरे विचार से भारतीय परराष्ट्र-नीति को अपने ही राष्ट्रीय उद्देश्यो और शीत युद्ध की अपनी व्याख्या के आधार पर समझना गलत होगा। केवल नेहरू के मुख्य समर्थक होने के कारण भारत को "तटस्थतावादी" मानना अमरीकियों की भूल होगी। एशिया, अफ्रीका और दक्षिण अमरीका के अर्धविकसित देशों मे भी न्यूनाधिक मात्रा मे यही स्थिति व्याप्त है और किसी भी तरह यह केवल उन्ही तक सीमित नही है। जापान, इटली, फ्रास और जर्मनी मे भी बहुत काफी अल्पसख्यक तटस्थता को राजनीतिक कार्यक्रम का आवश्यक अग मानते है।

यदि मध्यवर्ती विश्व को आणविक अस्त्र रखने वाले देशो के दो गुटो से इसी प्रकार दूर खीचने का साधारण प्रयास जारी रहा तो भारत का स्थान बहुत महत्वपूर्ण हो जायगा। परिणामस्वरूप भारत का मूल्याकन उसके दावो के आधार पर होना चाहिए, रूसी या अमरीकी गुट मे शामिल होने वाले उम्मीदवार के रूप मे नही, बल्कि विश्व के दूसरे विशालतम राष्ट्र के रूप मे, विशालतम प्रजातत्र के रूप मे और अभी हाल में स्वतत्र हुए तथा शीघ्र ही स्वतत्र होने वाले एशिया और अफ्रीका के राष्ट्रो के प्रमुख नेता के रूप मे।

अधिकाश विचारवान भारतीय चीन की मौलिक शक्ति को जानते है और उसके सम्बध मे चिन्तित हैं, किन्तु चूकि उनके साम्यवादी ढग के साम्राज्य-वाद का प्रत्यक्ष अनुभव नही रहा है, अत वे उतनी चिन्ता नही करते जितना हम सोचते है कि उन्हे चिन्ता करनी चाहिए। इसके अतिरिक्त उनका यह भी विश्वास हैं कि जो बन्धन रूस और चीन को एक साथ बाँधे हुए है, वे अटूट नही है।

वे कहते ह, "आपकी नीतियाँ मास्को और पेकिंग को एक ही मानती जान पडती ह। यह तो पराजयवाद की बात है और यह उन ऐतिहासिक शक्तियो की अनभिज्ञता प्रदर्शित करती है जो कभी न कभी अपने आप को प्रदर्शित करेगी। हम रूस और चीन के लिए सचार का मार्ग खुला रख कर तनाव को ढीला रखने में सहायता करते है अन्यथा उसका परिणाम युद्ध हो सकता है। कौन

जानता है कि साम्यवाद ग्रामीण चीन मे असफल हो सकता है ? तब शायद माओत्सेतुग हम से बिल्कुल भिन्न विचार ग्रहण करने के लिए वाध्य होगे।

अब हम सर्वोपरि उस तथ्य की ओर ध्यान देते है, जिसका अत्यन्त महत्व है और वह है इस बात की सम्भावना कि भारत और चीन सार्वजनिक वक्तव्यो तथा सद्भावनापूर्ण यात्राओ के जाल से एशिया के नेतृत्व के लिए प्रतिद्वद्वी के रूप मे प्रकट होगे, ऐसी प्रतिद्वद्विता, जिसको भारत मे अधिकाधिक स्वीकार किया जा रहा है। हो सकता है कि यह स्पर्धा दोस्ती के दावो के साथ चले और सेना की अपेक्षा आर्थिक और सामाजिक रूपो मे अभिव्यक्त हो और अच्छे के ही लिए हो।

किसी भी हालत मे, सद्भावना के ये वक्तव्य उस अन्तर्निहित तर्क को नही मिटा सकते, जो चीन और भारत को एशिया और अफ्रीका के अर्धविकसित महाद्वीपो के नेतृत्व के लिए अनिवार्यत प्रतिद्वद्वी बना देता है। जब हम भारत की स्थिति और बडे प्रश्नो के प्रति उसके दृष्टिकोणो का सर्वेक्षण करते है, जिनका सम्बध युद्धोत्तर काल मे अर्धविकसित और औपनिवेशिक राष्ट्रो से है, तब यह स्पष्ट हो जाता है कि उसने चुनौती स्वीकार कर ली है।

सयुक्त राष्ट्र सघ मे, वह उपनिवेशवाद का लडाकू और कट्टर शत्रु सिद्ध हो चुका है और अभी भी परतत्र राष्ट्रो के स्वाधीनता के अधिकारो का समर्थक है। इस स्थिति के कारण वह प्राय इस अमरीकी दृष्टिकोण से टकरा जाता है कि आत्मनिर्णय के सिद्धान्त को समसामयिक यथार्थ राजनीति के सामने छोड देना चाहिए। फिर भी सर्वोपरि, मै यही सोचता हूँ कि एक और प्रजातत्रवादी देश का होना हमारे हित मे ही है, जो स्वतत्रता का पक्ष उन मौको पर ग्रहण करता रहा है, जब सही या गलत, हमे महसूस हुआ है कि हमने स्वतत्रताका पक्ष न ग्रहण करके उस क्षेत्र को छोड दिया है।

फिर, भारत ने कोलम्बो-शक्तियो की नियमित बैठको के आयोजन मे भी मुख्य रूप से भाग लिया है, जिनमे, पाकिस्तान, बर्मा, लका, हिन्देशिया और भारत शामिल है। एशियाई और अफ्रीकी शक्तियो के बाण्डुग-सम्मेलन के सूत्रपात करने वालो मे भारत भी था, जिसके परिणाम महत्वपूर्ण सिद्ध हो सकते है। हमारे सुझाव पर १९५५ मे, अमरीकी सहायता-निधि के सहकारी प्रादेशिक उपयोग के प्रश्न पर, जैसा कि हमारे विदेश-सहायता-कार्यक्रम में सोचा गया था, विचार-विनिमय करने के लिए उसने शिमला मे एशियाई सरकारो का एक सम्मेलन बुलाने की जिम्मेवारी अपने ऊपर ले ली।

इन तथा अन्य तरीको से भारत ने एशिया और अफ्रीका के देशो के बीच स्थायी और आत्मविश्वासपूर्ण अन्तर-सरकारी सम्बधो के विकास मे बहुत ही महत्वपूर्ण भाग लिया है। उसकी आबादी, अनन्त साधन-स्रोत तथा उसके नेतृत्व का दीर्घकालिक प्रशिक्षण, इस बात का विश्वास दिलाते है कि उसका यह रूप बना रहेगा। उन्ही क्षेत्रो मे साम्यवादी चीनी नेतृत्व को ठुकराये बिना यह नही चल सकता।

विशाल आबादी, समृद्ध साधन-स्रोत, आकर्षक गाधीवादी विरासत, स्वतंत्रता के बाद शान्तिपूर्ण प्रगति का अखण्ड आलेख और लोकतात्रिक आदर्श के प्रति अटल निष्ठा पर भारतीय नीति निर्भर कर सकती है। भारत मे पढनेवाले अनेक अफ्रीकी विद्यार्थियो ने इस प्रभाव का अनुभव किया है। १९५४ मे जब अफ्रीकी विद्यार्थी कॉंग्रेस के सम्मुख दिल्ली मे नेहरू ने नये अफ्रीका के लिए भारतीय अनुभवो की सार्थकता पर दिल्ली मे भाषण किया तब सभी ने बड़े ध्यान से सुना।

उन्होने चेतावनी दी, "क्रान्तियाँ अपने बच्चो को भी खा जाती है"। परन्तु उन्होने यह विचार प्रस्तुत किया, "शायद भारत ने उस दूषित चक्र को तोडने का मार्ग ढूढ लिया है। जब भारत और इग्लैण्ड मे समझौते का समय आया, तब हम लोग शान्ति के साथ अलग हो गये और कटुता का चिन्ह भी न रहा। सही तरीके से कार्य करने मे यही गुण है।

"गाँधीजी ने सर्वदा यही कहा कि साध्य से साधन अधिक महत्वपूर्ण है, क्योकि गाँधीजी के इसी आग्रह तथा आदर्श का ही फल था कि एक अग्रेज भारतीय भीड मे से निकल जाय और उस पर कोई हाथ न उठाये। यह अनुशासन की बात और मानसिक वृत्ति थी, जिसकी शिक्षा उन्होने हमे दी। मै नही समझता कि आप लोग अन्यत्र कही ऐसे द्वेषरहित राष्ट्रीय आन्दोलन का उदाहरण पा सकेगे।

"मै चाहता हूँ कि आप इस पर सोचे, क्योकि मुझे भय है कि अफ्रीका के रक्तपात के मार्ग पर जाने और हानि उठाने की सम्भावना है और मै नही कह सकता कि अपना रचनात्मक और निर्माणात्मक जीवन शुरू करने के पूर्व इसमे एक या दो पीढी बीत जायगी।"

नेहरू ने स्वीकार किया कि अफ्रीका की परिस्थितिया भिन्न है, परन्तु उन्हे विश्वास था कि, ये शान्तिपूर्ण तरीके जितने भारत के लिए उचित, उपयुक्त और अत्यन्त व्यावहारिक थे, अफ्रीका के लिए उससे भी अधिक उप-

योगी और व्यावहारिक सिद्ध होगे और उसका सुफल अफ्रीका को मिलेगा और हिंसा का कोई भी मार्ग सम्भवत गम्भीर कठिनाइयो की ओर ले जायगा।

उन्होने कहा कि नतिक तथा व्यावहारिक दोनो ही दृष्टियो से हिसा गलत होगी। उन्होने यह नही माना कि अफ्रीका मे व्यापक एकता और "रचनात्मकता तथा निर्माणात्मकता" तभी प्राप्त की जा सकती है, जब ऐसे तरीको को अपनाया जायगा जो विघटन के बजाय एकता स्थापित करने मे सहायक होगे।

इस प्रकार प्रधान मत्री की ध्वनि मे शेष अर्धविकसित देशो तथा उपनिवेशो के लिए भारत की प्रासगिकता की धारणा व्यक्त थी। ये नम्र तथा सतुलित शब्द हमारे उबा देने वाले सघर्ष मे अनुपयुक्त प्रतीत हो सकते है, परन्तु कोई जल्दबाज व्यक्ति ही कहेगा कि वे अथवा कोई राष्ट्र, जो इनके प्रति निष्ठावान होगे, मनुष्य और उसके मन को प्रभावित करने मे शक्तिहीन होगे।

पाँचवाँ भाग

बाण्डुंग से चुनौती

इस सम्मेलन की सफलता इस बात से नही नापी जायगी कि हम अपने लिए क्या करते है, प्रत्युत इससे नापी जायगी कि हम समस्त मानव जाति के लिए क्या करते है। हमारी शक्ति हमारी ऐतिहासिक दृष्टि तथा भविष्य के निर्माण के महत्वपूर्ण उद्देश्य से नि सृत है। यदि यह उद्देश्य क्षोभ और प्रतिहिंसा की भावना से कलकित है तो यह सम्मेलन क्षीण और विस्मरणीय वस्तु सिद्ध होगा।

इसीलिए हमें आघात या मानसिक पीडा से नही, बल्कि अपनी सामान्य आशाओं से शक्ति प्राप्त करनी चाहिए। यदि उस शक्ति की कसौटी हमारी क्षमा करने की योग्यता हो, तो कहा जा सकता है कि हम अपने युग के महान पुरुष है।

कार्लोस रोमुलो

बाण्डुग सम्मेलन मे फिलीपाइन्स के प्रतिनिधि

इक्कीसवॉ प्रकरण

नये एशिया और नये अफ्रीका का सम्मेलन

रक्तरजित क्रान्तिया, जिन्होने रूस और चीन को उलट दिया और शान्तिपूर्ण क्रान्ति, जो भारत के स्वरूप को बदल रही है, ये सब वर्तमान विश्वव्यापी उथल-पुथल के विशालतम तथा अधिकतम नाटकीय प्रदर्शन है। मनीला से केपटाउन तक फैले हुए मध्यवर्ती विश्व म एक जागृति उत्पन्न हो रही है, जिसने पहले ही एशिया और अफ्रीका के मानचित्रो को बदल दिया है और आने वाले वर्षो मे और भी परिवर्तन अवश्यभावी है।

अप्रैल, १९५५ मे हिन्देशिया के बाण्डुग मे हुए सम्मेलन की अत्यधिक महत्वपूर्ण स्थिति की दृष्टि से इस जागृति के स्वरूप पर विचार किया जा सकता है। इस सुन्दर पर्वतीय नगर मे २९ राष्ट्रों और डेढ अरब लोगो के प्रतिनिधि, आक्रा, अदिसअबाबा, काहरा, बगदाद, नई दिल्ली, कराची, काबुल, बकाक तथा एशिया और अफ्रीका की अन्य राजधानियो से ससार की स्थिति पर विचार-विनमय के लिए एकत्र हुए।

इस अवसर पर बाण्डुग के प्रमुख मार्ग का नाम एशिया-अफ्रीका-मार्ग रख दिया गया था और सम्मेलन की बैठको के स्थान का नाम, पुराने कनकोर्डिया-क्लब से, जो पहले डच पदाधिकारियो के लिए सुरक्षित था, 'गेडुक मेरडेका' अथवा स्वतत्रता-भवन रख दिया गया। हिन्देशिया के राष्ट्रपति सुकर्ण ने अपने विशेष भाषण मे एशिया और अफ्रीका के स्वतत्रता-सग्रामो के लिए प्रेरणा-स्वरूप चीन और रूस की क्रान्तियो का जिक्र न कर अमरीकी क्रान्ति की चर्चा की थी।

उसके उद्धरण मसीहा, बुद्ध या वेदो से नही लिये गये थे, बल्कि लौगफैलो की कविता "दि मिड नाइट राइड आव पाल रीवैरे" से लिये गये थे। सुकर्ण ने अपने श्रोताओ को याद दिलाते हुए कहा कि बाण्डुग-सम्मेलन, अमरीकी क्रान्ति के प्रारम्भ, "ससार भरमे सुनी गयी बदूको की आवाज," की १८० वी वर्षगाँठ के साथ हो रहा है।

हिन्देशिया के राष्ट्रपति ने प्रतिनिधियों को बतलाया कि जो सग्राम, १८० वर्ष पूर्व प्रारम्भ हुआ था, उसमे अभी पूर्ण विजय प्राप्त नही हुई है और यह विजय तब तक नही प्राप्त होगी जब तक हम अपने ससार का सर्वेक्षण

करके यह नही कह देते कि उपनिवेशवाद मर गया है। एशिया और अफ्रीका के विस्तृत क्षेत्र आज भी स्वतत्र नही है। उन्होंने सम्मेलन से अपील की कि इस बात का प्रमाण दिया जाय कि एशिया और अफ्रीका का पुनर्जन्म हुआ है, इतना ही नही, नये एशिया और नये अफ्रीका का जन्म हुआ है।

बाण्डुग मे इस शताब्दी की तीन महान क्रान्तियो मे से दो क्रातिया एक ही रगमच पर मिली, जिनकी ओर शेष एशिया और अफ्रीका के श्रोताओ ने ध्यान-पूर्वक देखा और जो आज भी अपने ढग से परिवर्तन के लिए प्रयत्नशील है।

एक क्रान्ति का प्रतिनिधित्व साम्यवादी चीन के प्रधान मत्री, चू एन ली कर रहे थे। भारतीय उपमहाद्वीप की गाँधीवादी क्रान्ति का प्रतिनिधित्व न केवल प्रधान मत्री नेहरू कर रहे थे, बल्कि एक प्रकार से पाकिस्तान, लका और बर्मा के प्रधानमत्री भी कर रहे थे, जिनकी स्वतत्रता भारत को सम्मान-पूर्वक छोडने के ब्रिटिश निर्णय का सहज परिणाम थी। शासन की रोजमर्रा की प्रणालियों मे अनुपम योग्यता रखने वाले बर्मा के ऊ नू ने, जो स्वय एक सयमी बौद्ध है, अहिसा मे गाधी की कुछ निष्ठा अपनायी थी और महत्वपूर्ण आध्यात्मिक पुनरुत्थान मे अपने देश का नेतृत्व किया था।

१९४७ मे, जब नयी दिल्ली मे अनधिकृत एशियाई सम्बन्ध-सम्मेलन हुआ था, तब सोवियत एशियाई गणराज्य भी आमत्रित थे और उन्होने अपने प्रतिनिधि भी भेजे थे, परन्तु इस बार सोवियत सघ को बिल्कुल ही नही बुलाया गया। साम्यवादी चीन के अभ्युदय मात्र से सोवियत सघ एशिया की शक्ति के रूप मे बहुत कम प्रतीत हो रहा था।

योरोप और एशिया का अधिकाश अनामत्रित श्वेत-जगत बाण्डुग की ओर कुछ भय से देख रहा था। अफ्रीका मे और एशिया के कुछ भागो मे उप-निवेशवाद के विरुद्ध तीव्र क्षोभ और एशियाई साम्यवाद का उद्भव इस ओर सकेत कर रहे थे कि ये दो प्रश्न ससार के अश्वेत लोगो के इस प्रथम साधारण सम्मेलन मे कितने विस्फोटक हो सकते है।

१९४५ की गर्मियो मे, जब युद्ध का अन्त हुआ, तब भी चीन, जापान और स्याम के अतिरिक्त समस्त एशिया, अधिकाश अफ्रीका, वेस्ट इण्डीज के कुछ भाग और मध्यवर्ती तथा दक्षिणी अमरीका पर औपनिवेशिक साम्राज्य का प्रभुत्व था। विश्वके २ अरब ३० करोड लोगों मे से ८५ करोड लोग तब भी योरोपीय उपनिवेशवाद के अन्तर्गत थे और केवल ८ करोड साम्यवाद के अन्तर्गत।

दस वर्ष बाद ढाई अरब लोगो के ससार मे ये आकडे उलट गये। सोवियत

संघ, साम्यवादी चीन और उनके पिछलग्गुओं की कुल सख्या ८५ करोड से काफी ऊपर पहुँच गयी। हिसात्मक या अहिंसात्मक विद्रोह के परिणाम-स्वरूप ६५ करोड भूतपूर्व औपनिवेशिक जनता स्वतत्रता तथा सामान्यत प्रजा-तत्रात्मक ढग के शासन के अन्तर्गत प्रकट हुई है। और लोग भी शीघ्र ही स्वतत्र होने वाले है। योरोपीय उपनिवेशवाद के अन्तर्गत अब केवल १८ करोड लोग रह गये है।

इन आकडो का प्रभाव भयजनक था और पश्चिमी राजधानियो मे बहुत से ऐसे लोग थे जो आशकित थे कि बाण्डुग मे साम्यवादी शक्ति की प्रगति को और भी बल मिलेगा। ऐसी भी आशकाएँ थी कि चू एन ली उपनिवेश–विरोधी स्मृतियों को और भी प्रज्ज्वलित करेगे और सम्मेलन को विश्वव्यापी आधार पर पश्चिम-विरोधी तथा अमरीका-विरोधी प्रदर्शन मे परिणत कर देगे।

कुछ लोगो ने चेतावनी दी कि यह कही बिल्कुल जातीय रूप न ग्रहण कर ले। चूकि केनिया में एक स्थानीय जातीय युद्ध चल रहा था और दक्षिण अफ्रीका का आकाश जातीयता के गरजते हुए काले बादलों से आच्छादित था, इसलिए इस अश्वेत-सम्मेलन मे, जिसमे दो महाद्वीपो के अधिकाश भाग शामिल थे, इस बात की सम्भावना प्रतीत होती थी।

कदाचित् इसी घबराहट के परिणामस्वरूप अमरीकी सरकार ने सम्मेलन के लिए बधाई-पत्र तक नही भेजा और विदेश-विभाग के एक पदाधिकारी ने एक काँग्रेसमैन को लिखे गये एक पत्र मे सरकारी रुख का बडे गलत शब्दो मे वर्णन करते हुए कहा कि यह हमारी "उदार उदासीनता" है, परन्तु हम उदासीन तो बिल्कुल ही नही थे। अमरीकी समाचारपत्रो ने सम्मेलन के महत्व को पहले से ही ठीक-ठीक समझ लिया था और इस एशियाई घटना को सदा की अपेक्षा कही अधिक महत्वपूर्ण मान कर अधिक सख्या मे अमरीकी सवाददाता बाण्डुग गये थे।

अनेक एशियाई और अफ्रीकी प्रतिनिधि, जो पश्चिम से घनिष्ठ सम्बध रखते है, लन्दन और वाशिंगटन की भाँति ही आशकित थे। फिलीपाइन्स के जनरल रोमुलो ने कहा कि बाण्डुग-सम्मेलन के प्रमुख उद्देश्यो मे से एक यह भी था कि उस 'जातिगत मैत्री' के पोषण को रोका जाय, जो कभी बढकर सारे विश्व को प्रकम्पित कर सकती है।

परन्तु ऐसा कुछ न हुआ। हा, अटलाटिक राष्ट्रो के चिन्तित प्रेक्षको को कई कठोर साम्यवाद-विरोधी भाषण सुनने का अवसर मिला और बडे जोरों के

साथ यह याद भी दिलायी गयी कि अमरीका ने फिलीपाइन्स को स्वाधीन करने सम्बन्धी अपने वचन को पूरा किया।

राष्ट्रपति सुकर्ण की मुख्य वार्ता मे यह भी कहा गया कि भूतपूर्व औपनिवेशिक जगत को यह समझना चाहिए कि उनकी क्रान्ति एक नयी स्थिति मे पहुँच गयी है। उन्होने कहा, "मै आपसे निवेदन करता हूँ कि हम केवल उस प्रथम-कोटि के उपनिवेशवाद पर ही विचार न करे, जिसे हम हिन्देशियावासियो तथा अन्य भाइयो ने एशिया और अफ्रीका के विभिन्न भागों मे देखा है, बल्कि उपनिवेशवाद राष्ट्र के भीतर ही छोटे, परन्तु विदेशी समुदाय द्वारा आर्थिक बौद्धिक एव शारीरिक नियत्रण की आधुनिक पोशाक मे भी है। यह बहुत ही चतुर और प्रबल शत्रु है और अनेक रूपो मे प्रकट होता है। जहाँ कही, जब कही और जैसे भी यह प्रकट हो, उपनिवेशवाद एक बुराई है, जिसका ससार से मूलोच्छेद कर देना चाहिए।"

विभिन्न स्थितियो मे उपनिवेशवाद की उनकी व्याख्या न केवल योरोपीय आर्थिक शोषण पर लागू प्रतीत होती थी, बल्कि घरेलू सामन्तवाद और अन्तर-राष्ट्रीय साम्यवाद पर भी। तुर्की, ईरान, लीबिया, इराक, पाकिस्तान, लका, स्याम और फिलीपाइन्स के प्रतिनिधियो द्वारा दिये गय भाषणो मे उपनिवेश-वाद के नये रूपो में वह साम्यवादी रूप भी शामिल था, जिसके वे विरुद्ध थे।

इराक के विदेश-मंत्री डाक्टर अल-जमाली ने पूर्वी योरोप और मध्य एशिया पर साम्यवादी आक्रमण के इतिहास का सिंहावलोकन किया और कहा कि साम्यवादियो ने ससार के सामने एक नये प्रकार के उपनिवेशवाद को ला रखा है, जो पुराने की अपेक्षा कही अधिक भयावह है। लका के प्रधानमंत्री, सर जान कोटलावाला ने प्रतिनिधियो से पूछा, "यदि हम उपनिवेशवाद के विरुद्ध एक है, तो क्या यह हमारा कर्तव्य नही हो जाता कि हम जिस प्रकार पाश्चात्य साम्राज्यवाद का विरोध करते है, उसी प्रकार सोवियत उपनिवेशवाद का भी करे?"

यद्यपि इन भाषणो ने अनेक पश्चिमी प्रक्षको को काफी आश्वस्त किया, तथापि इस तथ्य से आँख नही मूद लेनी चाहिए कि पश्चिम के अच्छे से अच्छे मित्र के पास उस योरोपीय उपनिवेशवाद के बारे मे बोलने के लिए एक भी मीठा शब्द न था, जो आज भी एशिया, अफ्रीका और दक्षिणी अमरीका में उनकी छाती पर सवार है।"

साम्यवाद-विरोधी, साम्यवाद-समर्थक, तटस्थ और स्वतत्र सभी ने बाण्डुग

से अन्त मे सर्वसम्मति से यही विज्ञप्ति प्रकाशित की, "उपनिवेशवाद अपने सभी रूपो मे एक बुराई है, जिसका शीघ्र ही अन्त कर देना चाहिए।"

प्रतिनिधियो ने मुख्यत पश्चिमी इरियन (डच न्यू गाइना) के मामले में हिन्देशिया के पक्ष का समर्थन किया और हिन्देशिया के साथ यथासम्भव शीघ्र अपने समझौते को कार्यरूप मे परिणत करने के उद्देश्य से फिरसे बातचीत शुरू करने के लिए नीदरलैण्ड-सरकार से अनुरोध किया। उत्तरी अफ्रीका के राष्ट्रो को आत्मनिर्णय के अधिकार की अनवरत अस्वीकृति की ओर सकेत करते हुए प्रस्ताव मे कहा गया कि, एशिया-अफ्रीकी सम्मेलन, अल्जीरिया, मोराक्को और ट्यूनिशिया के लोगो के आत्मनिर्णय के अधिकारो के समर्थन की घोषणा करता है और फ्रान्सीसी सरकार से अनुरोध करता है कि अविलम्ब इस प्रश्न को शान्तिपूर्ण ढग से सुलझाया जाय। अदन के मामले मे भी सम्मेलन ने यमन के पक्ष का समर्थन करने का निश्चय किया, जहाँ लाल सागर के मुहाने पर ब्रिटेन का अड्डा कायम है।

नये और अल्पपरिचित साम्यवादी साम्राज्यवाद की स्पष्ट भर्त्सनाओ के बावजूद, पुराने ढग के उपनिवेशवाद के बन रहने के भय की ओर बाण्डुग मे सभी ने सबसे अधिक सकेत किया और इस तथ्य को कम महत्व का समझना खतरनाक होगा। यह भय न केवल उपनिवेशवादी शक्तियो पर सीधे आक्रमण से प्रकट था, बल्कि भूत और वर्तमान दोनो में, औपनिवेशिक सम्बन्धो के साथ जातीय भेदभाव और आर्थिक विकास का अभाव जिस स्वाभाविक ढग से जुडा हुआ है, उससे भी प्रकट होता था।

इन तथा अन्य समस्याओ के सुलझाने के अनेक साधन और उपाय थे और सम्मेलन मे विभिन्न राजनीतिक विचारो मे तीव्र मतभेद भी प्रकट हुए। एशिया और अफ्रीका मे अनेक राजनीतिक विचार-धाराए है; हिसा और शान्ति की, साम्यवाद, प्रजातत्र और सामन्तवाद की, तटस्थता और गाँधीवाद की, इनके अलावा कुछ और भी है और ये सब एक दूसरे से मिल भी जाती है।

तथापि यह कदाचित् महत्व की बात है कि साम्यवादी तथा सामन्तवादी, दोनो एशिया, प्रजातत्र के विचारो और शक्तियो का कम से कम मौखिक समर्थन करना आवश्यक समझते है। न केवल "मानवीय मौलिक अधिकारो और सयुक्त राष्ट्र सघ के घोषणा-पत्र के सिद्धान्तो और उद्देश्यो के प्रति सम्मान का पहला सिद्धान्त स्वीकृत हुआ, बल्कि वक्तव्य मे सयुक्तराष्ट्र के मानवीय

अधिकारो के घोषणा-पत्र को और भी विशेषरूप से समर्थन प्राप्त हुआ।

जब कि ससार के "मूक" लोग अन्त मे अपनी आवाज बुलद कर पाते है तो वे, जैसा कि हम आगे अधिक विस्तार से देखेगे, उन्ही निश्चित प्रजातत्रात्मक उद्देश्यो की मूलत पुष्टि करते है, जिनके लिए हम अपने राष्ट्र के जन्म से ही प्रयत्नशील है। चू एन ली न उस सस्था को पूर्ण समर्थन देने की आवश्यकता क्यो समझी, जिसने कोरिया में साम्यवादी आक्रमण के विरुद्ध युद्ध का नेतृत्व किया और जिसने अभी भी उनकी सरकार को बहिष्कृत कर रखा है? स्वेच्छाचारी सामन्तवादी शासनो के प्रतिनिधियो ने भी अधिकारो के उस विधेयक का समर्थन क्यो किया, जिसका कार्यान्वय उनकी वर्तमान शासनप्रणाली का ही अन्त कर दता?

मुझे विश्वास है कि इसका उत्तर उपनिवेश-विरोधी क्रान्तियो के रूप और इतिहास मे मिलेगा। उस इतिहास मे मुख्यत उत्तरी अटलाटिक राष्ट्रो के साथ 'रगीन' जातियो के सघर्ष है। उस सघर्ष से कही मौलिक लोकतात्रिक महत्वाकाक्षाओ का जन्म हुआ, जो एशियाई और अफ्रीकी क्रान्तियो के मूल मे कार्य कर रही है और उसी कहानी मे यह जानने की कुञ्जी है कि इन अपूर्ण क्रान्तियो का भविष्य अराजकता और साम्यवाद का है अथवा शान्ति, कानून और प्रजातत्र का।

बाईसवाँ प्रकरण

औपनिवेशिक क्रान्तियों की समीक्षा

एशिया का पश्चिम के साथ बडे पैमाने पर सामना धर्म-युद्ध की यात्राओ से प्रारम्भ हुआ, जब कि काफी सख्या मे योरोपियन पहले पहल पूर्व की ओर गये। वहाँ उनको अपनी सभ्यता से भी अधिक समृद्धिशाली सभ्यताएँ मिली और पूर्व की सम्पत्तियाँ शीघ्र ही हजारो साहसिक यात्रियो और शाही अन्वेषको को चुम्बक की तरह खीचने लगी।

१३ वी शताब्दी मे कुबलाई खान के कल्पित चीन-सम्बन्धी मार्कोपोलो के वृत्तान्तों ने पश्चिम को एशिया की ओर जाने के लिए और भी उत्साहित किया। शीघ्र ही ऊँटो के स्थल-मार्गो के साथ साहसिक जहाजो की होड लग गयी। भारत की अपार सम्पत्ति को ही ढूढते-ढूढते कोलम्बस अमरीका से जा टकराया।

प्रगट रूप से धर्म और व्यापार ही उस समय की प्रेरक शक्तियाँ थी। वास्को डि गामा कुमारी आशा अन्तरीप (केप आफ गुड होप) का चक्कर लगा कर और हिन्द महासागर को पार करके कुछ वर्षों बाद भारत पहुँचा। उसने कहा, "हम ईसाइयो और मसालो की तलाश मे आये है।" १६ वी और १९ वी शताब्दी के मध्य, दक्षिणी अमरीका, अफ्रीका, भारत उपमहाद्वीप, मलाया प्रायद्वीप, इण्डीज (अब हिन्देशिया) वस्तुत विश्व के आधे दक्षिणी भाग का अधिकाश, पश्चिमी औपनिवेशिक प्रभुत्व के अन्तर्गत आ गया।

१८७४ तक, जब स्टेनली कागो के किनारे-किनारे अफ्रीका के मध्यभाग तक पहुँचा, जो अभी तक पश्चिमी उपनिवेशवाद के लिए अन्तिम अविजेय क्षेत्र था, अधिकाश इतर-योरोपीय जगत आधे दर्जन पश्चिमी साम्राज्यो मे विभाजित हो गया। उस समय के एशिया के मानचित्र गुलाबी, नीले, हरे, लाल, नारगी, पीले रगों मे यह प्रकट करते थे कि आधा एशिया और लगभग सम्पूर्ण अफ्रीका, बडी सफाई के साथ ब्रिटेन, स्पेन, बेलजियम, जर्मनी, फ्रास, पुर्तगाल और नीदरलैण्ड मे बँटे हुए थे।

औपनिवेशिक लूट के लिए इस होड ने लेनिन के साम्राज्यवादी युद्ध के सिद्धान्त के लिए कच्ची सामग्री प्रदान की, जिस पर हम विचार कर चुके है। वस्तुत बहुतों के लिए यह सही ही मालूम होती है। इसी ने इस गर्वोक्ति

को भी जन्म दिया कि ब्रिटिश साम्राज्य में कभी सूर्यास्त नहीं होता।

परन्तु अन्त मे सूर्यास्त होने लगा और आज अफ्रीका ही एकमात्र महाद्वीप है, जहाँ पश्चिमी ढग का प्राचीन उपनिवेशवाद कायम है। एशिया मे मलाया, हागकाग, मकाओ, उत्तरी बोर्निओ, गोवा, पश्चिमी न्यूगिनी और दक्षिणी अमरीका के गाइना को छोडकर, शेष औपनिवेशिक क्षेत्रो ने २० वी शताब्दी के उत्तरार्द्ध तक किसी न किसी प्रकार पश्चिमी शासन से अपने को मुक्त कर लिया।

विश्व की एक तिहाई जनता द्वारा स्वतत्रता प्राप्त करने की कहानी—वह कहानी जिसमे दक्षिणी अमरीका भी शामिल है—रूस और चीन मे जो कुछ हुआ, उससे कम महत्वपूर्ण नही है। हा, सख्या और वर्तमान सैद्धान्तिक प्रभाव की दृष्टि से भारतीय उपमहाद्वीप की क्रान्ति एक बडी घटना है। जैसा कि हम देख चुके है, गाँधीवादी सग्राम एक सामूहिक, अहिंसात्मक और प्रत्यक्ष सघर्ष का आदर्श था, जो औपनिवेशिक विद्रोह के इतिहास के लिए और सचमुच विश्व के इतिहास के लिए बिल्कुल नयी चीज थी।

सीरिया, लेबनान, लीबिया और फिलीपाइन्स जैसे कभी के पराजित राष्ट्रो के दूसरे आदर्श है, जो बिना विशेष रक्तपात के स्वतत्र हो गये। मिस्र और कुछ हद तक, इराक भी, पश्चिमी औपनिवेशिक बन्धनों से समझौते द्वारा ही मुक्त हुए थे, परन्तु सघर्ष तो उन्हे भी करना ही पडा था।

गोल्डकोस्ट, सूडान और नाइजेरिया मे, ब्रिटेन की "रचनात्मक त्याग" की विवेकपूर्ण नीति के कारण, जिसका सफल अनुभव भारत, पाकिस्तान, बर्मा और लका मे प्राप्त हुआ, बिना हिंसा के स्वतत्रता आ रही है। सच पूछा जाय तो नाइजेरिया और गोल्डकोस्ट में अफ्रीकियों के बीच "हमको गाँधी बनना चाहिए" का नारा व्यापक रूप से लोकप्रिय रहा है और वहाँ के राष्ट्रीय सग्राम में अधिकतर भारतीय सग्राम के अनुभवो से काम लिया गया है।

परन्तु औपनिवेशक विश्व के बाहर और भीतर सामान्यरूप से क्रान्तियों में शान्तिपूर्ण प्रणाली की परम्परा नही रही है। उदाहरण के लिए, १०७५ में हमारी खुद की क्रान्ति कुछ अहिसक नही थी। कुछ वर्षों पूर्व जब पोर्टो रीको के गवर्नर लुई मुनोज मेरीन काग्रेस समिति के समक्ष प्रश्नो का उत्तर दे रहे थे, तो उस समय उनसे पूछा गया कि क्या आप अपने देश को हिंसात्मक ढग से स्वतंत्र कराना चाहते है ? उन्होने मुस्कराते हुए उत्तर दिया कि मै जनरल वाशिंगटन और क्रान्तिकारी सेना के प्रति असम्मान का भाव नही

रखता, मैं आशा करता हूँ कि पोर्टो रीको के मामले मे शान्तिपूर्ण ढग ही पर्याप्त होगे। ऐसा ही हुआ।

परन्तु औपनिवेशिक विश्व मे सशस्त्र विद्रोह का आदर्श आज तक प्रचलित है। बाण्डुग-सम्मेलन से सात वर्ष पूर्व हिन्देशिया के देहातो मे ही बहुत अधिक रक्तपात हुआ था। नये गणराज्य ने दो मोर्चों पर लड कर ही स्वतत्रता प्राप्त की।

भारत की भाँति ही हिन्देशिया मे राष्ट्रवादियो को व्यवस्थित रूप से जेलो मे ठूसा गया और जेलयात्रा परिचय-पत्र बन गयी थी। नये हिन्देशिया गणराज्य के नेता सुकर्ण, शहरयार और हट्टा डच सरकार के साथ समझौता करके शान्ति-पूर्ण ढग से स्वतत्रता प्राप्त करना चाहते थे, पर द्वितीय विश्व-युद्ध के अन्त मे स्पष्ट हो गया कि डच, भारत मे ब्रिटेन के विपरीत, किसी-न-किसी बहाने हिन्देशिया से चिपके ही रहना चाहते थे।

जब, गणराज्य की सेनाएँ, जिनको कुछ हथियार जापान से प्राप्त हो गये थे और वापस जाने वाली डच सेनाएँ, जिनके पास अमरीकी हथियार थे, युद्ध के लिए आमने-सामने डट गयी, तब हिन्देशियाई साम्यवादियो ने मौका पा कर एक सेना का सगठन किया और सितम्बर, १९४८ मे नयी क्रान्तिकारी सरकार पर हमला कर दिया। यदि डच सेनाओ ने उसी समय आक्रमण कर दिया होता तो शायद उन्होने अटलाटिक राष्ट्रो के सम्मुख, साम्यवाद के विरुद्ध हिन्देशिया के सरक्षक के रूप मे सफलता के साथ अपने को प्रस्तुत कर दिया होता।

परन्तु डच रुक गये। नये गणराज्य की वफादार सेनाओं ने मोर्चा लिया और तुरन्त ही साम्यवादी विद्रोह को कुचल दिया। लगभग नौ हजार साम्यवादियो और उनके अनुयायियो को गणतत्री सरकार ने कैम्प जेलो मे बन्द कर दिया। कुछ सप्ताहो बाद, जब डचो ने अन्त मे आक्रमण कर दिया तो गणराज्य की सेनाओं ने तुरन्त ही लगभग दो सौ साम्यवादी नेताओ का काम तमाम कर दिया, जिससे उनके स्वतत्र होने का कोई प्रलोभन न रह जाय।

स्थिति स्पष्ट हो जाने पर और 'नाटो' के माध्यम से भी डच शक्ति के निष्फल हो जाने पर अन्त मे अमरीका ने राष्ट्रपति सुकर्ण और हिन्देशियाई राष्ट्रवादियो का पूर्ण समर्थन किया। सयुक्तराज्य अमरीका के भूतपूर्व सिनेटर और उत्तरी कैरालिना विश्वविद्यालय के अध्यक्ष डा फ्रैंक ग्राहम ने बातचीत मे प्रमुख रूप से भाग लिया और अन्त में १९४९ मे डचो को हटाने में सफलता मिली।

हिन्दचीन मे उपनिवेश-विरोधी क्रान्ति भडक उठी और एक अत्यन्त खर्चीले गृह-युद्ध मे परिणत हो गयी। हिन्देशिया की भाँति जापानियों के चले जाने के बाद स्थानीय राष्ट्रवादियों ने स्वतत्र गणराज्य की घोषणा कर दी। यद्यपि राष्ट्रपति रुजवेल्ट ने यह कह कर कि हिन्दचीनी लोगो को उनकी स्वतत्रता मिलनी चाहिए, अमरीकी शकाओं को प्रकट किया, तथापि फ्रान्सीसी सेनाओ ने १९४५-४६ के पतझड और जाडे मे पुन युद्ध-क्षेत्र मे प्रवेश किया।

जापानियों के विरुद्ध युद्ध मे मास्को-दीक्षित साम्यवादी हो ची मिन्ह ने, जो अपने को कट्टर वियतनामी राष्ट्रवादी कहते थे, गुरिल्ला सेनाओं का नेतृत्व किया था। चतुर और आत्मत्यागी हो ची मिन्हको अमरीकी 'ओ एस एस' ने जापानियों की अधिकार जमाने वाली सेनाओ को परेशान करने मे बहुत ही विश्वसनीय साथी माना था।

उस समय भी हो ची मिन्ह (वह, जो चमकता है) का जीवन उल्लेखनीय था। क्षीणकाय, झुकी हुई कमर, शरीर और आत्मा की कल्पनातीत सहन-शक्ति वाले हो ची मिन्ह ने सारे विश्व का भ्रमण किया था। फ्रास मे केबिन बाय, लन्दन मे बावर्ची और मोण्टमाट्रे मे फोटोग्राफर का काम भी उन्होने किया था। १९१९ मे भाडे का सूट पहने और वुडरो विल्सन के सभी राष्ट्रो के आत्म-निर्णय के सिद्धान्त से प्रेरित होकर वे पेरिस के शान्ति-सम्मेलन मे वियत-नाम की स्वतत्रता के लिए अपील करने के उद्देश्य से हाजिर हुए। मित्रराष्ट्रो ने उनको सुनने से इन्कार कर दिया और उन्हे विश्वास हो गया कि विल्सन के १८ सूत्र एशियावासियो के लिए नही है।

१९२२ मे हो ची मिन्ह मास्को मे लेनिन, ट्राटस्की और बुखारिन से मिले। वहाँ वे मार्क्सवाद की अन्तरराष्ट्रीय शाला मे सम्मिलित हुए। १९२५ मे हो ची मिन्ह बोरोडिन के साथ दुभाषिए के रूप मे कैण्टन गये। १९२७ मे मास्को लौटने पर उन्होंने हिन्दचीन साम्यवादी दल का सगठन किया, जो कौमिण्टर्न मे शामिल हो गया।

परन्तु इस सोवियत प्रशिक्षण के बावजूद, बहुतेरे जानकारो का यही विश्वास रहा कि हो ची मिन्ह क्रोधी, घमण्डी, बडे ही व्यक्तिवादी, एशियाई राष्ट्रवादी है, जिन्होने वियतनाम की स्वतत्रता की स्थापना को अपना प्रथम लक्ष्य बना रखा था। इस लक्ष्य-पूर्ति के प्रयत्नो मे उन्हे पश्चिमी जेलो का भी मजा चखना पडा। १९३१ मे फ्रासीसी आज्ञा पर अग्रेजों ने उन्हे हागकाग जेल मे रख दिया। अठारह महीने जेल के सीकचो मे बन्द रहने के बाद वे तपेदिक से मृतप्राय

हो गये थे।

१९४५ मे हो ची मिन्ह ने वियतनाम के लिए तत्काल स्वतत्रता की माँग की। बातचीत के दौरान मे, जो पेरिस मे शुरू हुई थी, उन्होने सभी को, जो उनसे मिला, मोहित कर लिया, जिस प्रकार चू एन ली ने बाद मे १९५४ मे जनेवा मे और १९५५ मे बाण्डुग मे अपने प्रतिरोधियो की अनिच्छित प्रशसा प्राप्त कर ली थी।

फिरभी, हो ची मिन्ह ने गृह-युद्ध की धमकी देने मे सकोच नही किया। समुद्रपार के प्रदेशो के लिए फ्रान्सीसी सोशलिस्ट मत्री मेरियस माउतेत से उन्होने कहा, "यदि हमको लडना ही पडेगा तो हम लडेग। यदि आप हमारे दस आदमियो को मारेगे तो हम आपके एक आदमी को मारेगे, परन्तु अन्त में आप ही इससे ऊब जायेंगे।"

१९४६ के समाप्त होने के पूर्व ही एक फ्रान्सीसी युद्ध-पोत ने हैफोग शहर पर गोलाबारी कर चार हजार व्यक्तियो को मार डाला और युद्ध शुरू हो गया। आठ वर्ष बाद, १९५४ तक हो ची मिन्ह की भविष्यवाणी सही साबित होती दिखायी दी। फ्रान्सीसी थक गये। दियनबियनफू का पतन हुआ और शीघ्र ही हो ची मिन्ह की बडी-बडी तस्वीरे हनोई की भूतपूर्व फ्रासीसी उत्तरी राजधानी मे सडको की शोभा बढाने लगी।

यह था प्रथम उपनिवेश-विरोधी सफल विद्रोह, जिसका नेतृत्व साम्यवादियो ने किया। हिन्दचीन ही मे साम्यवादी क्यो सफल हुए, जब कि अन्यत्र वे असफल रहे? इसके बहुत से कारण थे।

प्रारम्भ से ही फ्रासीसियो ने अपने प्राचीन वभव के अवशेषो से चिपके रहने का दृढ निश्चय कर लिया था और इस प्रयत्न मे उन्होने बदनाम जापानी पिट्ठू, वियतनाम के सम्राट बाओदाई का सहारा लिया। एशियाई जीवन के नये तथ्यो की सर्वथा अमान्यता ने हो ची मिन्ह के राष्ट्रीय आन्दोलन के सगठन-कार्य को अपेक्षाकृत आसान बना दिया।

युद्ध प्रारम्भ होने के चार वर्ष बाद फ्रेंच यूनियन की तीन लाख से अधिक सेना के पास सामग्री का अभाव था, वह बुरी तरह दबी हुई थी और योग्य फ्रान्सीसी सेनापतियो की इस तीव्र गति से बलि दी जा रही थी कि उसकी क्षतिपूर्ति फ्रान्स की सैनिक अकादमी भी नही कर सकती थी और इसीलिए अमरीका की सहायता की आवश्यकता पडी।

अमरीका की गति साँप-छछूदर की सी थी। हिन्दचीन पर औपनिवेशिक

अधिकार था और हम अपने इतिहास मे हमेशा से उपनिवेशवाद के विरुद्ध रहे है, परन्तु हम योरोप मे शक्ति-सतुलन को दृढ बनाने के लिए फ्रास को एक महान शक्ति बनाये रखने के लिए भी चिन्तित थे। एशिया मे साम्यवाद के प्रसार से हम और भी अधिक परेशान थे। हिन्दचीन पर कब्जा करने के बाद दक्षिणपूर्व के समृद्ध एशिया पर जापानियो की द्रुतगामी विजय की स्पष्ट स्मृतिया होते हुए भी हम फ्रास की प्रबल सहायता के लिए इच्छा न होते हुए भी जा पहुँचे।

फ्रास स्वय मार्शल-योजना के अन्तर्गत जितनी मदद पाता था, उसकी अपेक्षा कही अधिक हिन्दचीन के युद्ध मे खर्च कर रहा था और १९५० और १९५४ के बीच फ्रासीसियो के उपयोग के लिए सैनिक सामग्री मे सयुक्त राज्य अमरीका ३ अरब डालर खर्च कर चुका था। अप्रैल, १९५३ मे, जब मै आखिरी बार सेगाँव गया, उस समय अमरीकी पोतो से प्रतिदिन औसतन दस हजार टन माल उतरता था।

एक बार जब फ्रासीसी साम्यवादियो को हराने और व्यवस्था स्थापित करने मे सफल हुए तो हमने आशा की कि अब वे हिन्दचीन को स्वतत्र करना स्वीकार कर लेगे। अधिकाश एशियावासियो और अधिकाश अमरीकियो को, जो उस समय एशिया मे कार्य कर रहे थे, ऐसा महसूस हुआ कि इस जुए मे हार निश्चित है। युद्ध मे जीतने का केवल एक ही मार्ग था और वह यह था कि हिन्दचीन मे शीघ्रता से अत्यावश्यक और बहुत पहले से वचनबद्ध आर्थिक और राजनीतिक सुधार किये जाय, साथ ही पूर्ण स्वतत्रता की स्पष्ट प्रतिज्ञा की जाय और उस स्वतत्रता की प्राप्ति और रक्षा के लिए एक प्रबल वियतनामी सेना का विकास और प्रशिक्षण किया जाय।

परन्तु साम्यवाद-विरोधी राष्ट्रवादी नेताओ को अमरीकी आग्रह पर दी गयी रियायते विद्वेषपूर्ण, अपर्याप्त और विलम्बित थी, क्योकि इन रियायतो के बाद प्राय अनिवार्यरूप से फ्रासीसी सघ की सेनाओ पर साम्यवादी विजय प्रारम्भ हो गयी, वे फ्रासीसी निष्ठा की अपेक्षा साम्यवादी शक्ति का न्यूनाकन करती प्रतीत होती थी।

दुराग्रही फ्रास ने अत्यन्त प्रारम्भिक ग्राम-सुधारों का समर्थन करने से भी इन्कार कर दिया और इस प्रकार अपने पक्ष को और भी कमजोर बना दिया। अगस्त, १९५२ मे, अपने सेगाँव के कार्यालय मे फ्रासीसियो द्वारा नियत्रित वियतनामी प्रधान मत्री ने स्पष्टत स्वीकार किया कि हो ची मिन्ह

ने अधिकाश ग्रामीण जनता का समर्थन प्राप्त कर लिया है। उसने कहा कि जब उसकी सेना ने एक गाँव पर अधिकार कर लिया तो उसने सब कर्जे रद्द कर दिये और भूमि जोतनेवालो को दे दी। यदि फ्रासीसियों ने उसी गाँव पर फिरसे अधिकार प्राप्त कर लिया तो उन्होने जमीन्दारो तथा महाजनो को फिर सत्ताधारी बना दिया। इस प्रकार किसानों को कम्यूनिस्टो का समर्थन करने के लिए हर तरह से प्रोत्साहन मिला।

अन्त मे फ्रासीसी, अपनी अरक्षा के कारण, एक बडी वियतनामी प्रतिरक्षा-सेना बनाना नही चाहते थे। इसका मतलब था कि साम्यवाद को रोकने के लिए, मजबूत स्वदेशी लडाकू टोलिया, जैसा कि यूनान और कोरिया मे उपलब्ध थी, यहाँ न मिल सकी और युद्ध का सारा बोझ विदेशी सेना के कन्धों पर आ पडा।

परिस्थिति की विडम्बना देखिये कि जिन प्रमुख राजनीतिक नारो ने फ्रासीसियो को हराने मे कम्यूनिस्टो की सहायता की, वे स्वय फ्रासीसी क्रान्ति के नारे थे। बेसिल (Bastıll) के पतन से लेकर दियनबियनफू के पतन तक, इन नारो का मार्ग तूफानी, खूनी और दु खपूर्ण ही रहा है। साम्यवादियो द्वारा उनका भ्रष्ट रूप कदाचित् पेरिस की फासियों के आतक की अपेक्षा कही अधिक भयानक था, परन्तु शायद वह उसी का एक प्रकार था।

अधिकाश प्रेक्षक, जिन्होने भारतीयों, बर्मियो, लकावासियो या पाकिस्तानियो मे स्वतत्रता की भयानक इच्छा देखी थी, इस बात पर एकमत थे कि यदि गाधीवादी मार्ग असफल हो गया होता तो, चाहे साम्यवादी नेतृत्व होता या अन्य, हिंसाका यह रूप सीधे दक्षिणी एशिया के उस पार तक फैल गया होता।

अनेक अवसरों पर मैने इस समस्या पर नेहरू तथा ऊ नू जैसे एशियाई नेताओ से विचारविनिमय किया है। सभी को विश्वास है कि यदि अग्रेजो के साथ समझौते के शान्तिपूर्ण प्रयत्न असफल हो जाते तो उनको और भी हिंसात्मक तरीको से नृशसतापूर्वक बाहर निकाल दिया जाता।

तेईसवाँ प्रकरण

अफ्रीका का जागरण

बाण्डुग-सम्मेलन के गलियारो मे अफ्रीकी प्रतिनिधि तथा पर्यवेक्षक अपने एशियाई सहयोगियों की भाति जानते थे कि उनकी महान और कठिन समस्याओ का शान्तिपूर्ण समाधान निश्चित नही था।

काग्रेसी आदम क्लेटन पोवेल ने, जो पर्यवेक्षक के रूप मे बाण्डुग गये थे, दक्षिणी अफ्रीका के निग्रो प्रतिनिधियो के शब्दो का उद्धरण देते हुए कहा, "हम अधिक दिनो तक प्रतीक्षा नही कर सकते। अब हमको बन्दूके मिल ही रही है। यदि हम उनको स्वीकार कर लेते है, तो आधुनिक युग के इतिहास का सबसे बडा हत्याकाण्ड उपस्थित हो जायगा।"

जोहान्सबर्ग (दक्षिणी अफ्रीका) के मोजेज कोटाने ने, उस अफ्रीकी राष्ट्रीय काग्रेस का प्रतिनिधित्व करते हुए, जिसने अभी तक गाँधी की अहिसावादी प्रणाली का पालन किया था, सम्मेलन को अशुभ चेतावनी दी, "हम डूब रहे है और हम किसी भी तिनके का सहारा ले लेगे, जो हमे मिल जायगा।"

जबकि ये प्रतिनिधि बाण्डुगमे अपने देशवासियों के प्रति सहानुभूति प्राप्त करने के प्रयत्न कर रहे थे, तभी पृथक्करण-कार्यक्रम दक्षिणी अफ्रीका मे तेजी से चल रहा था, जिसके अन्तर्गत जोहान्सबर्ग के हजारो अफ्रीकानिवासी गोरों के नगर से बाहर बारह मील दूर जबर्दस्ती निकाल कर भेजे जा रहे थे।

पहले से ही दक्षिणी अफ्रीकी कानून अफ्रीकियो को ऐसा कोई व्यवसाय करने से रोकता है, जो उन्हे गोरो की बस्ती के सम्पर्क मे लाता है। अश्वेतो के लिए निर्धारित क्षेत्र के अतिरिक्त, अन्य क्षेत्रो मे कोई व्यापार करने से भी वह उन्हे रोकता है। कोई भी अफ्रीकी अपने प्रान्त से दूसरे प्रान्त में नही जा सकता और न कोई गोरा किसी अफ्रीकी को दायित्वपूर्ण पद पर या किसी कुशल कार्य मे नियुक्त कर सकता है। ये प्रतिबध सभी अफ्रीकियों पर लागू होते हैं, चाहे झाडियो मे रहने वाले आदिवासी हो या ब्रिटेन मे शिक्षा-प्राप्त डाक्टर।

अप्रैल, १९५५ मे, जब कि प्रतिनिधिगण वाण्डुग-सम्मेलन मे व्यस्त थे, ससार के दूसरी ओर दक्षिण अफ्रीकी बण्टू-शिक्षा-विधान लागू किया जा

रहा था। इस विधान के अनुसार राष्ट्रवादी सरकार उन सब चर्च स्कूलों को अपने आधीन कर लेगी, जो कभी अधिकांश अफ्रीकी विद्यार्थियों की शिक्षा के एक मात्र साधन थे और इस "उदार कला" की शिक्षाके स्थान पर कुछ साधारण कारीगरी तथा प्राचीन बण्टू संस्कृति की शिक्षा देगी। इन प्रतिबन्धों का उद्देश्य यह था कि अफ्रीकी प्रारम्भिक से अधिक शिक्षा न ग्रहण कर सके।

'देशी मामलों' के मंत्री जिस शिक्षण या मताभिव्यक्ति को 'देशद्रोहात्मक' समझेंगे, वह दण्डनीय अपराध होगा, जिसमें अपील के लिए भी अधिकार नहीं होगा। इसीलिए शायद अफ्रीकी गोरे राष्ट्रवादी यह समझते हैं कि उनके उद्देश्य की दृष्टि से सबसे अधिक 'देशद्रोहात्मक' पुस्तक 'डास कैपिटल" नहीं, बाइबिल है और इसीलिए चर्च स्कूलों पर प्रतिबन्ध लगाया जा रहा है।'

बाण्डुंग में एकत्र प्रतिनिधि दक्षिण अफ्रीका की इन अशुभ प्रवृत्तियोंको समझ रहे थे और वे जानते थे कि भूतपूर्व प्रधानमंत्री मलान के कठोर जातिवादी विश्वासों को, उसके और अधिक उग्रवादी उत्तराधिकारी प्रधान मंत्री स्ट्रिडम के अन्तर्गत कई गुनी शक्तिसे बढाया जा रहा है। दक्षिणी अफ्रीका सम्बन्धी प्रस्ताव सर्वसम्मति से स्वीकृत हुआ और उसमें स्थिति को स्पष्ट शब्दों में बताया गया, "यह सब न केवल मानवीय अधिकारोंका पूर्ण उल्लंघन है, बल्कि सभ्यता के मौलिक मूल्यों तथा मानवीय सम्मान का निषेध भी है।"

यदि सच्चे अर्थ में अफ्रीका का प्रश्न हमें उपनिवेश-विरोधी विद्रोह का अंग न भी प्रतीत हो, क्योंकि वहाँ विदेशी शासन का नहीं, बल्कि जातिभेद-मूलक स्थानीय शासन का विरोध किया जा रहा था, तथापि भूतपूर्व गोरे उपनिवेशवादियों के लघु अल्पमत का यह शासन एशियाइयों और अफ्रीकियों को उपनिवेशवाद का निकृष्टतम प्रदर्शन प्रतीत होता है। दक्षिण अफ्रीका की घटनाएं विश्व की शेष औपनिवेशिक समस्याओं के समाधान में हिंसात्मक अथवा शान्तिपूर्ण परिवर्तन की सम्भावनाओं को प्रभावित करेंगी।

गांधी के पुत्र मणिलाल ने अहिंसक प्रतिरोध के आन्दोलन को चलाने में उसी प्रकार सहायता की, जिस प्रकार स्वयं महात्मा ने पहले-पहल अफ्रीका में सत्याग्रह-प्रणाली का आधी शताब्दी पूर्व आविष्कार किया था। दुर्भाग्य से अभी तक, गांधीवादी प्रतिरोध को पुलिस की क्रूरता द्वारा कुचला गया है। यदि दक्षिण अफ्रीकी निराश होकर शान्तिपूर्ण तरीकों को छोड दे तो सारा अफ्रीका प्रतिहिंसा की भावना से प्रज्ज्वलित हो उठेगा और अफ्रीका

के अधिक आशापूर्ण भागो मे भी मर्यादा की शक्तिया अत्यन्त क्षीण हो जायगी।

पश्चिमी अफ्रीकी विद्यार्थियों के सम्बध मे कहा जाता है कि वे दक्षिणी अफ्रीकी सरकार के विरुद्ध स्वतत्रता का सग्राम चलायेंगे। अफ्रीका और भारत मे मैं अफ्रीकी युवको से मिला, जिन्होने मुझे बडी गम्भीरता से बताया, "अब हम बहुत अधिक दिनो तक चुपचाप दक्षिण अफ्रीका मे इस बर्बरता को देखते नही रहेगे।" वस्तुत मै किसी ऐसे बाहरी जानकार पर्यवेक्षक को नहीं जानता, जो दक्षिण अफ्रीका मे आने वाले दस वर्षो को गम्भीर निराशा की दृष्टि से नही देखता।

× × ×

समस्त अफ्रीका मे ५५ लाख गोरे है। दक्षिणी अफ्रीका मे एक करोड अफ्रीकी है, जबकि २५ लाख गोरे है, जो आपस मे अग्रेज और डच के रूप मे बडी शत्रुता के साथ विभाजित है। अफ्रीकन्दरो (Afrikanders) ने एक-तत्रवादी राज्य के निर्माण के अपने निरन्तर प्रयत्न मे न केवल अग्रेजो पर गहरा आघात किया है, प्रत्युत अफ्रीकी और एशियाई भावनाओ को भी कुचल दिया है।

अफ्रीका के उत्तरी छोर पर, फ्रान्सीसी उत्तरी अफ्रीका मे, जहाँ २ करोड २५ लाख अरब बेरबर (Arab Berber) और २५ लाख योरोपियन है, अशान्ति का वायुमण्डल गूंज रहा है और फ्रान्सीसी औपनिवेशिक प्रशासन हिन्दचीन की-सी अशुभ परिस्थितियो से गुजर रहा है।

१९५४ मे प्रधानमत्री मेण्डेस-फ्रान्स के नाटकीय पहल के कारण अन्त मे अगले वसन्त मे उनके उत्तराधिकारी ने एक समझौता किया, जिसमे टचूनीशिया को आन्तरिक स्वायत्त शासन प्रदान किया गया। टचूनीशिया की राष्ट्रीय 'निओ दस्तूर पार्टी' की शक्ति और आत्मसयम का यह महत्वपूर्ण प्रमाण है। उसके नेता हबीब बोरगीबा ने, जिन्होने गाँधीवादी सघर्ष का मार्ग ग्रहण किया और जिन्होने फ्रास मे अपने देशनिकाले को कटुतापूर्ण नही बनने दिया, प्रधान-मत्री फौरे से समझौते की बातचीत की।

परन्तु बहुत दिनो से विलम्बित यह सफलता टयूनिशिया मे छिटपुट आतक के वातावरण में प्राप्त हुई और फ्रासीसी प्रवासियो तथा उग्र राष्ट्रवादी अरबों के बीच विरोध बराबर चलता ही रहा। बाण्डुग-सम्मेलन के समय ही, जब इस समझौते की घोषणा हुई, टचूनीशिया के फ्रासीसी प्रवासियो की एक विरोध-सभा ने उस समझौते को बेकार घोषित कर दिया।

फ्रासीसी निवासियो ने घोषणा की कि वे फ्रास द्वारा 'रीजेन्सी' मे अपने पुत्रो के परित्याग को स्वीकार नही करेगें और न फ्रासीसी-टयूनीशियन समुदाय शीघ्र पूर्ण विनाश को ही स्वीकार करेगे। उन्होने हर साधन से सघर्ष करने के दृढ सकल्प को दोहराया ताकि टयूनीशिया फ्रासीसी शान्ति का उपभोग कर सके।

टयूनीशियाई राजनीति के दूसरे छोर पर पुराने दस्तूर दल ने उतने ही जोरदार ढग से समझौते का विरोध किया। वह हमेशा से ही फ्रास के साथ सभी समझौतो को ठुकराता रहा है। बोरगीबा (Bourguiba) की पार्टी के एक गुट, नियो-दस्तूर, ने अपने निर्वासित महामत्री, सलाह बेन यूसुफ के नेतृत्व मे उनका समर्थ किया।

जिस दिन पेरिस मे समझौते की घोषणा हुई, बेन यूसुफ बाण्डुग मे फ्रासीसियो की नीति को "यातना और हत्या" की नीति कह कर भर्त्सना कर रहे थे और उत्तरी अफ्रीका में सयुक्त राष्ट्र सघ की कार्रवाई का समर्थन न करने के लिए सयुक्त राज्य अमरीका की निन्दा तथा सयुक्त राष्ट्र सघ मे रूसी समर्थन की प्रशसा कर रहे थे एव टयूनीशिया की पूर्ण स्वतत्रता की माँगें कर रहे थे।

तीन वर्षो के देशनिकाले के बाद टयूनिस वापस आने पर बोरगीबा का राष्ट्रपिता के रूप मे शानदार स्वागत हुआ। यहाँ तक कि टयूनिस के वृद्ध बे ने अपना सिहासन छोडकर उनका "मेरे बेटे, मेरे प्यारे बच्चे" कह कर स्वागत किया।

बोरगीबा ने लोगो को बताया कि आन्तरिक स्वायत्त शासन पूर्ण स्वतत्रता की दिशा मे एक कदम मात्र है, परन्तु उसके लिए धैर्य और सयम की आवश्यकता ह। उन्होने कहा, "हमारी नयी स्वतत्रता हमारे सम्मुख नये-नये दायित्व प्रस्तुत कर रही है; जातीय पक्षपात और विदेशी चीजो के प्रति घृणा से सावधान रहो। सभी टयूनीशियाई भाई-भाई है। मुस्लिम और यहूदी दोनो समान है और हमे आपस मे भाईचारे का सम्बन्ध रखना चाहिए।"

फ्रासीसियो के प्रति भी उन्होने उसी तरह के मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध के लिए अनुरोध किया, जैसाकि भारतीयो ने सघर्ष के बाद ब्रिटेन के साथ किया था। उन्होने कहा कि हमारी परम्परा का तकाजा ह कि हम अतिथिसत्कार की भावना रखे और इस मुल्क में सभी मेहमानो की इज्जत करे।

किसी को नही मालूम कि उत्तरी अफ्रीका में और विशेषत अल्जीरिया और

मोराक्को मे समय पर सामूहिक रक्तपात को रोकने के लिए हिंसा की प्रवृत्ति को नियत्रित किया जायगा। परन्तु बाण्डुग के भाषण मे शायद इसलिए बार-बार हिंसा की धमकियाँ दी गयी कि फ्रासीसी सरकार इस समस्या का अविलम्ब शान्तिपूर्ण समाधान करे।

× × ×

अफ्रीका महाद्वीप के इन उत्तरी और दक्षिणी विस्फोटक छोरो के बीच एक विशाल क्षेत्र है, जो सयुक्त राज्य अमरीका से लगभग दुगुना बडा और साधनसम्पन्न है। यहा पर गोरो की कुल आबादी पाँच लाख है, यानी रोड द्वीप के प्रोविडेन्स नगर की आबादी से भी कम है और १६ करोड अफ्रीकी है। यहाँ कोई भी पर्यवेक्षक उपनिवेशवाद के उग्र और मृतप्राय विभिन्न रूपो को देख सकता है।

लाइबेरिया, इथियोपिया, मिस्त्र और लीबिया के चार स्वतत्र बहु-जातीय राष्ट्र स्वभावत. सबसे अधिक अन्तर प्रस्तुत करते है। अन्य स्थानो की भाँति यहाँ भी अनन्त समस्याए है, परन्तु यहाँ कोई औपनिवेशिक अत्याचारी व्यक्ति नही है, जिसको विलम्ब या गलती के लिए दोष दिया जाय।

अगले कुछ ही वर्षो मे इन स्वतत्र राष्ट्रो की श्रेणी मे भूतपूर्व ब्रिटिश उपनिवेश सूडान, गोल्ड कोस्ट और नाइजीरिया भी आ जायगे। सुमालीलैण्ड पर इटली का 'सरक्षण' १९६० मे समाप्त हो जायगा।

पश्चिमी और भूमध्य-रेखा वाले फ्रासीसी अफ्रीका और बैलजियन कागो के औपनिवेशिक क्षत्रो मे, जो कुल मिलाकर सयुक्त राज्य अमरीका से बडे है, राजनीतिक विकास की गति धीमी है। पूर्वी तट पर मोजम्बीक और पश्चिमी तट पर अगोला मे पुर्तगाली, जो सबसे पहले अफ्रीका आये थे, आज भी दावा करते है कि वे सबसे बाद मे ही जायगे।

अन्त मे रह जाता है ब्रिटिश अफ्रीका। पश्चिमी ब्रिटिश अफ्रीका मे, जहाँ अफ्रीकियो और योरोपियो मे कोई स्पर्धा नही है, स्थिति बहुत ही उत्साहजनक है, क्योकि यह तराई का क्षेत्र उष्णकटिबन्धीय घातक बीमारियो से इतना ग्रस्त था कि वह पीढियो से "गोरो की कब्र" के नाम से विख्यात था। योरोपीय यहाँ पर मुख्यत गुलामो और सोने के लाभप्रद व्यापार के लिए और साथ ही, मजे की बात है, कि ईसाई बनाने के लिए भी आये। इसलिए वहाँ पर कोई ऐसा अग्रेज प्रवासी नही है, जो विशेषाधिकारो के लिए प्रयत्न करे।

शासन की अपनी असाधारण प्रतिभा और कठिन स्थितियो का सामना

करने की अपनी इच्छा से ब्रिटिश अफसर इन पश्चिमी अफ्रीकी उपनिवेशों को यथासम्भव शीघ्र छोड देने के लिए ईमानदारी के साथ कार्य कर रहे है। टोगोलैण्ड के सयुक्त राष्ट्रीय ट्रस्टीशिप के एक ब्रिटिश जनरल अफसर जार्ज सिंक्लेयर मे, जिनके साथ मै १९५५ की सर्दियो मे दो दिन रहा, उनका रुख प्रतिबिम्बित होता है।

उन्होने प्रसन्नतापूर्वक कहा, "मै एक वृक्ष की शाखा पर बठा हूँ और मै प्रति दिन उसका कुछ न कुछ अश आरी से काटता ही रहता हूँ। यदि मै अन्त मे सफल होता हूँ, तो शाखा एक दिन कट जायेगी, मेरा अफ्रीकी सहायक मेरा स्थान लेन को तयार होगा और मै इस कार्य से मुक्त हो जाऊँगा।"

गोल्डकोस्ट और नाइजीरिया, दोनो मे ही सभी सरकारी विभागो के प्रमुख अफ्रीकी है और वहाँ सयुक्त ब्रिटिश और अफ्रीकी नागरिक सेवाएँ है। गोल्डकोस्ट मे पेनसील्वानिया के लिकन विश्वविद्यालय के स्नातक, कामे नक्रूमा प्रधान मत्री है और कई वर्षो से एक अमरीकी मजदूर यूनियन के सदस्य है। जनवरी, १९५५ के प्रारम्भ मे नक्रूमा ने विश्वास के साथ मुझ-से कहा कि दो वर्षों की भीतर ही स्वतत्रता प्राप्त हो जायेगी। नाइजीरिया भी धीमी गति से स्वतत्रता की ओर जा रहा है।

दोनो देशो मे प्रमुख बाधा कट्टर ब्रिटिश औपनिवेशिक विरोध नही है, बल्कि उनके अपने प्रादेशिक मतभेद ह, जो प्राय पश्चिमी रग मे रगे अफ्रीकी बुद्धिजीवियो और कबाइली सरदारो के बीच झगडो से और भी जटिल हो जाते ह। फिर भी यह जानकर विश्वास होता है कि बहुत ही कम पश्चिमी अफ्रीकी अपने को स्वतत्र कर देने की ब्रिटिश इच्छा पर शका करते है।

ब्रिटिश पूर्वी अफ्रीका की स्थिति मूलत भिन्न है। यद्यपि यहाँ भूमध्य रेखा के दोनो ओर ब्रिटिश प्रदेश मीलो तक फैले हुए है, तथापि अधिकाश भूमि ऊँची ह और वर्ष भर मौसम अच्छा रहता है।

पिछले पचास वर्षो मे इस आदर्श जलवायु ने हजारों योरोपियनो को बसने के लिए आकृष्ट किया है। दूसरी पीढी के परिवारो ने गहरी जडे जमा ली हे और उस सुन्दर और समृद्ध देश मे काफी पैसा भी लगा दिया है। कुछ अपवादो के अतिरिक्त, वे अपनी इस अद्वितीय अनुकूल आर्थिक और राजनीतिक स्थिति से किसी भी मूल्य पर चिपके रहने के लिए कृतसकल्प है।

दक्षिणी रोडेशिया मे ५ करोड एकड सर्वोत्तम भूमि २५,००० योरोपियनों के हाथो म है। मुझे बताया गया कि इस भूमि का १० प्रतिशत से भी

कम भाग जोता जाता है। ३ करोड ६० लाख एकड भूमि, जिसमे से अधिकाश रेतीली और अनुपजाऊ है, उन ११ लाख अफ्रीकियों को दी गयी है, जो देहातो मे रहते हैं। एक अफ्रीकी कहावत है–"जब गोरे आये तो उनके पास बाइबिल थी और हमारे पास भूमि, और अब उनके पास भूमि है और हमारे पास बाइबिल।"

राजनीतिक दृष्टि से स्थिति विस्फोटक ही है। एक अफ्रीकी किसान अपनी कमजोर रेतीली भूमि से योरोपियनो के उपजाऊ लाल खेतो की ओर देखकर बरबस कह उठता ह, "यह इसलिए हैं कि उसकी चमडी सफेद है और मेरी काली।" इसी प्रकार रोडेशिया की ताँबे की खानो मे कार्य करनेवाला अफ्रीकी मजदूर औसतन उसी खान के योरोपीय मजदूर की मजदूरी का बीसवाँ भाग पाता है और अपनी हीन स्थिति को इस भावना से कोसता है कि वह गोरों की जातीय उच्चता के कारण ह।

१९५५ मे हमने केनिया मे वातावरण को हिंसा और कटुता की भावना से परिपूर्ण पाया। तीन वर्ष पूर्व किकुयू कबीले के एक ठोस अल्पसख्यक दल ने, दो अन्य कबीलों के कुछ आदमियो के साथ गुप्त माऊ माऊ सस्था के अन्तर्गत भयानक रक्तरजित विद्रोह मे भाग लिया, जिसके परिणामस्वरूप ४०,००० योरोपीय और एक लाख २० हजार एशियावासी, ५० लाख अफ्रीकियों के बीच आतक और मृत्यु की दुनिया म जी रहे थे।

नैरोबी से ९५ मील दूर, माऊ माऊ क्षेत्र के मध्य स्थित न्येरी नगर मे एक रविवार को अपरान्ह में हमने पास के होटलो और मदिरालयो मे हजारो योरोपीय प्रवासियो के झुण्ड के झुण्ड आते-जाते देखे। सभी के पास स्वचालित पिस्तोले और बहुतो के पास बन्दूके भी थी। ज्यो ही लगभग ७५ वर्ष के वृद्ध स्त्री-पुरुष की एक जोडी निकली, हमने देखा कि पुरुष के पास एक छोटी हल्की बन्दूक थी और महिला के पास ४५ स्वचालित पिस्तौल।

योरोपीय प्रवासियों ने सोते-जागते हर समय हाथ मे या पासमे एक बन्दूक रखना सीख लिया था। ऐसी बहुत सी हृदयविदारक कहानियाँ है, जिनमे विश्वस्त अफ्रीकी नौकरो ने माऊ माऊ की सौगन्ध खाकर आतकवादियो के गिरोहो को उन परिवारो का सफाया कर देने मे सहायता की, जिनके यहाँ उन्होंने बीस-बीस साल तक नौकरी की थी।

माऊ माऊ आन्दोलन एक बर्बर प्रतिक्रिया है। १९५५ मे वह समाप्त प्रतीत होने लगा था, इसलिए नही कि आवश्यक सुधार हो गये थे, बल्कि इसलिए

कि माऊ माऊ ने अति कर दी थी और अपने ही कबाइली साथियो को अपने भयानक रक्तपात से दहला दिया था।

फिर भी, मौलिक समस्या रह ही गयी और वह समस्या है भूमि, जैसा कि विश्व के उन अधिकाश भागो मे है, जहाँ क्रान्ति का भय है। केनिया मे अच्छी से अच्छी भूमि अधिक से अधिक सात हजार योरोपियनों के हाथो मे है और उसमे से भी बहुत सी बेकार पडी रहती है।

एक शिक्षित युवक किकुयू ने मुझसे कहा, "हमे उन योरोपियनो से कोई झगडा नही है, जो एक हजार एकड जमीन जोतते और अच्छी फसले पैदा करते है, परन्तु हम अफ्रीकियो को इस पर आपत्ति जरूर होती है जब वे अपनी अच्छी भूमि का एक छोटा भाग ही जोतते है और हमे कुछ ही एकड चट्टानी धरती मे बॉध रखा जाता है। योरोपियन वास्तव में हमे काफी और 'सीसल' जैसी लाभदायक फसलो को उपजाने की अनुमति नही देते और कभी देते भी है तो कठोर प्रतिबन्धो के साथ।"

यह अफ्रीकी अपने ढग का ईमानदार, नरम और शिक्षित युवक था। क्या योरोपीय समय रहते उससे और उसके जैसो से समझौता करने के लिए तैयार है? यदि नही, तो कुछ ही समय मे उसके स्थानपर ऐसे लोग आजायगे जो कडी भाषा का प्रयोग करेगे।

इस बात से कोई इन्कार नही कर सकता कि पूर्वी अफ्रीका भर मे जन-स्वास्थ्य, मकान और शिक्षा के क्षेत्र मे काफी उन्नति हुई है। केनिया और मध्य-वर्ती अफ्रीकी सघ, दोनो मे बहुजातीय विश्वविद्यालय विकास के मार्ग पर है, परन्तु राजनीतिक क्षेत्र मे गति भयानक रूप से धीमी रही है, जहाँ विस्फोटो की अधिक सभावना है।

सौभाग्य से ब्रिटिश पदाधिकारी यह समझते जान पडते थे कि सुधार के लिए और भी अधिक मौलिक कार्रवाइयो की आवश्यकता है। ब्रिटिश सेना के एक पदाधिकारी ने कहा, "स्थिति केवल सैनिक महत्व की नही है। सेना के पास काले-गोरे के तनाव का कोई इलाज नही है। माऊ माऊ द्वारा प्रस्तुत समस्याओ को केवल गोलियाँ नही सुलझा सकती।"

एक योग्य औपनिवेशिक शासक ने मुझे बतलाया, "सुधार होने चाहिए, जबर्दस्त सुधार, अन्यथा योरोपियन समाप्त हो जायेगे। थोडेसे विवेकशील योरोपीय प्रवासी इस बात को ठीक ठीक समझ रहे है और भरसक प्रयत्न भी कर रहे है, परन्तु अभी तक अधिकाश लोगो ने हिलने से इन्कार कर दिया

है। यदि वे आज के युग की वास्तविकताओ के प्रति जागरूक नही होते, तो एक दिन वे समस्त अफ्रीका का विध्वस कर देगे।"

जून, १९५५ मे एक ब्रिटिश शाही आयोग ने बडे साहस के साथ केनिया, युगाण्डा और टागानीका मे बहुजातीय आधार पर भूमि-सुधार का समर्थन किया और सुझाव पेश किया कि भूमि को किसी वर्णभेद के आधार पर न देकर उसके सर्वोत्तम उपयोग के आधार पर दिया जाय। हमे उम्मीद है कि सरकार उचित कार्रवाई करेगी और गोरे प्रवासी अपना कटु विरोध कम करेंगे। अभी भी कुछ रचनात्मक कार्य के लिए समय है।

सहारा के दक्षिण मे फ्रासीसी अफ्रीका की स्थिति, एक ओर ब्रिटिश पश्चिमी अफ्रीका की और अधिकतर युगाण्डा की विवेकशील उदारता और दूसरी ओर ब्रिटिश केनिया और मध्यवर्ती सघ के बीच की है। इस विशाल फ्रासीसी क्षेत्र मे स्थिति कुछ ढीली है, क्योकि ऐसा सघर्ष पैदा करने वाले योरोपीय जमीन्दारो की सख्या कम है, जिसके कारण हिन्दचीन की दु खान्त घटना घटी और जिसने मोरक्को, टयूनीशिया और अल्जीरिया मे फ्रासीसी और अफ्रीकी सम्बधो को विस्फोटक स्थिति तक पहुँचाने मे सहायता की।

यह कोई नही कह सकता कि भूमध्यरेखा वाले अफ्रीका मे फ्रासीसियो ने कुछ करने का प्रयत्न नही किया। शिक्षा, स्वायत्त शासन और जन-स्वास्थ्य मे उनका कार्य बढ रहा है। उदाहरण के लिए, कहा जाता ह कि पच्चीस वर्ष पूर्व, ६० प्रतिशत अफ्रीकी किसी हद तक निद्रारोग से पीडित थे। १९५५ तक फ्रासीसी डाक्टरो ने इस रोग को घटाकर ३ प्रतिशत तक पहुँचा दिया है।

फ्रासीसी शासक आशा कर रहे है कि फ्रास के साथ उपनिवेशो का स्थिर और स्वतत्र सम्बध विकसित हो सकेगा। फ्रास की दृढ नीति फ्रासीसी सस्कृति मे धीरे धीरे, किन्तु पूर्ण रूप से आत्मसात करने की रही है। जब कोई अफ्रीकी फ्रासीसी शिक्षा और व्यावसायिक पद प्राप्त कर लेता है तो वह फ्रासीसी समुद्रपार-विभाग का पूर्ण नागरिक हो जाता है। इसका अर्थ यह हुआ कि उसके साथ पूर्ण सामाजिक समानता का व्यवहार होता है।

तथापि यह अत्यन्त सन्देहास्पद है कि "पूर्ण नागरिकता" वस्तुत सार्थक होगी और यह कोई भी नही कह सकता कि फ्रास की इस नीति का भविष्य निरापद है। टयूनीशिया, मोरक्को, अल्जीरिया, मडागास्कर और फ्रान्सीसी भूमध्य रेखा वाले अफ्रीका के लोगो को यह नागरिकता का अधिकार धारा

सभा (Chamber of Deputies) मे ४० प्रतिशत प्रतिनिधित्व प्रदान करेगा। बहुत ही कम लोग इस सभावना पर गम्भीरता से ध्यान देते है।

× × ×

बेलजियन कागो मे औपनिवेशिक प्रशासक अपने अनोखे प्रकार के अफ्रीकी औपनिवेशिक समाज का विकास करने का प्रयत्न कर रहे है। कागो के आर्थिक साधन-स्त्रोत अनन्त प्रतीत होते है और बेलजियन सरकार उन्हे निपुणता और पूरी शक्ति के साथ विकसित करने मे सलग्न है। शहरो मे अफ्रीकियो को विकास के सुन्दर अवसर प्रदान किये गये है, जिसमे सभी प्रकार की टेक्निकल शिक्षा भी शामिल है। उनको स्वास्थ्य-रक्षा के लिए अच्छे उपचार और मकान भी प्राप्त है और शहरी इलाको मे एक प्रकार की आर्थिक सुरक्षा की भावना भी है।

यदि एक अफ्रीकी अच्छी शिक्षा प्राप्त कर लेता है और काफी आमदनी कर लेता है तो उसे अधिकाश सामाजिक सुविधाएँ भी प्राप्त हो जाती है, जो बेलजियनो को प्राप्त है। १९५५ मे वह पद केवल कुछ ही सौ व्यक्तियों को प्रदान किया गया था, परन्तु कम से कम सैद्धान्तिक रूप से उनके लिए कोई सीमा नही ह, जो अन्ततोगत्वा इसके अधिकारी हो सकते है। अधिकारियो ने अफ्रीकियो को मताधिकार नही दिया है, परन्तु जातीय महत्ता की भावना को कम करने के लिए उन्होने ८० हजार बेलजियनो को भी मत का अधिकार नही दिया है।

फिर भी, किसी चीज का अभाव स्पष्ट प्रतीत होता ह। ऐसे प्रयत्नो के सम्बध मे कोई भी यह कह सकता है, जैसा कि मैंने, लिओपोल्डविले के कुछ पत्रकारो के समक्ष १९५५ मे कहा था, "युद्ध के पूर्व अफ्रीका में अधिकाश औपनिवेशिक सरकारे लोगो को कुछ करती थी। अब आप लोगो के लिए कुछ कर रहे है। यह काफी अच्छी प्रगति है। परन्तु मै नही समझता कि आप अफ्रीकियो से तब तक आवश्यक सहयोग स्थापित कर सकेगे, जब तक आप उनके साथ-साथ काम न करने लग जाय। क्या गौरव, आत्मसम्मान और साझीदारी की भावना से कम किसी चीज पर वे समझौता करेगे?"

सर्वत्र अफ्रीकी बाहरी संसार के प्रति अपनी बढती हुई दिलचस्पी प्रदर्शित कर रहे है। उदाहरण के लिए, शिक्षित अफ्रीकी एशिया की ओर बडी दिलचस्पी से देख रहे है और यह दिलचस्पी केवल बाण्डुग जैसे औपचारिक सम्मेलनो तक ही सीमित नही है।

१९५५ के जाडे की एक रात मे गोल्डकोस्ट के मन्त्रिमण्डल के कई अफ्रीकी सदस्यो और उनकी पत्नियो के साथ हम अक्रा मे भारतीय कमिश्नर के घर मे बैठे हुए तीन भारतीय फिल्मे देख रहे थे। पहली तो टेलीविजन पर बनायी हुई एक लन्दन-पत्रकार-सम्मेलन की थी, जिसमे नेहरू तीन ब्रिटिश पत्रकारो के प्रश्नोका उत्तर दे रहे थे। उनमे से एक ने नेहरू से पूछा, "क्या आप महसूस करते है कि भारत के प्रधानमत्री की हैसियत से अफ्रीकी स्वतत्रता के प्रश्न को बार-बार उठाकर आप अफ्रीका के मामले मे सहायता कर रहे है?" नेहरू के चेहरे पर कुछ गम्भीरता आ गयी, उन्होने कहा, "यथा-स्थिति बनाये रखने की आपकी अपील से मै खामोश नही हो सकता। यदि मै भारत का प्रधान मत्री न होता तो मै और भी अधिक जोर देकर बोलता।"

गोल्डकोस्ट मत्रिमण्डल के सदस्यो ने एक दूसरे की ओर देखा और वे मुस्कराये। आखिर यहाँ एक एशियाई राष्ट्र का नेता मिला, जो हमारी गहनतम महत्वाकाक्षा—स्वराज्य—को समझता है।

एक दूसरी फिल्म दिखायी गयी। हिन्देशिया के प्रधानमत्री अली शास्त्र अमितजयो नयी दिल्ली के हवाई अड्ड पर आ रहे थे। नेहरू आत्मविश्वास के साथ मुस्कराते हुए उनके स्वागतार्थ आगे बढे। बैण्ड बज उठे। भारतीय सेना की पूरी रेजिमेण्ट ने स्वागत मे 'परेड' किया। अपनी स्थिति और शक्ति पर विश्वास रखने वाले नये भारत की इस झाँकी से अफ्रीकी दर्शक बडे प्रभावित हुए। यहाँ उनके सम्मुख उनके द्वितीय प्रिय उद्देश्य–मानवीय गौरव और समानता का चित्र था।

तीसरी फिल्म शुरू हुई। दामोदर नदी, जो बिहार के उत्तरी राज्य में अपनी भयानक बाढ से गावो को जलप्लावित करती हुई 'शोक की घाटी' मे बहती चली जा रही थी, जैसा कि वह हजारो वर्षो से करती आ रही है। दृश्य बदला। विशाल बाँध बन रहा था। जब सतर्क और विश्वस्त भारतीय इञ्जीनियर इसके परिणामो को बाढ-नियत्रण, विद्युत-शक्ति और सिचाई के लाभो के रूप मे वर्णन कर रहा था, तब वह औपनिवेशिक जगत के तीसरे महान उद्देश्य–शीघ्रगामी आर्थिक विकास–का चित्रण कर रहा था।

जब प्रकाश हुआ तो कमरे मे एक प्रकार का उत्साह भरा हुआ था। दूरवर्ती एशिया में एक नया राष्ट्र उपनिवेशवाद से छुटकारा प्राप्त कर अपनी जनता को लाभ पहुँचा रहा है। अफ्रीका ने हर्षध्वनि की। बाण्डुग-सम्मेलन के उपरान्त ये बन्धन निश्चय ही और घनिष्ठ होगे।

आज अफ्रीका के सम्बध मे सबसे महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि २० करोड लोग जागृत हो रहे है। एक लम्बी रात के बाद सुषुप्त की निद्रा भग हो रही है और वह आँखे मलते हुए अपने पौरुषेय के लिए युवक की उत्सुकता और अधीर भावना से अँगडाई ले रहा है। इसका अर्थ है कि अफ्रीका अपनी विस्फोटात्मक समस्याओ, सघर्षो और बडे-बडे समाचारो से गूजता रहेगा।

अफ्रीका की बढती हुई क्रान्ति निर्माण की ओर जायेगी या विध्वस की ओर, जसा की सभी क्रान्तियो मे होता है, यह एक लाजवाब सवाल है। वस्तुत दक्षिणी अमरीका और एशिया के पूर्व के क्रान्तिकारी महाद्वीपो मे भी अभी इस प्रश्न का पूर्ण उत्तर नही प्राप्त हुआ ह, क्योकि, जैसा कि हम देखेगे, औपनिवेशिक शासन पर विजय ही सघर्ष का अन्त नही है। जब तक एक निश्चित और गहरी सामाजिक एव आर्थिक क्रान्ति नही हो जाती और नागरिक स्वतत्रता नही प्राप्त हो जाती, तब तक वापस जाने वाले औपनिवेशिक प्रशासको द्वारा रिक्त स्थानो मे केवल अराजकता फलेगी, जो साम्यवाद को अथवा स्वतत्रता, समानता और भ्रातृत्व के क्रान्तिकारी आदर्शो के भ्रष्ट रूपो को ही आमत्रित करेगी।

यह अलिखित, किन्तु मौलिक प्रश्न बाण्डुग-सम्मेलन के प्रतिनिधियो के सम्मुख सबसे महत्वपूर्ण था।

चौबीसवाँ प्रकरण

पूर्ण जनतांत्रिक क्रान्ति

रूस, चीन, भारत और औपनिवेशिक जगत की क्रान्तियो के व्यापक सर्वेक्षण से यह पता चलता है कि 'क्रान्ति' शब्द विभिन्न लोगो के लिए विभिन्न अर्थ रखता है। पूर्ण जनतान्त्रिक क्रान्ति पर विचार करने के पूर्व यह उचित होगा कि हम क्रान्ति का अर्थ समझ ले और यह भी जान ले कि हम किस अर्थ मे इस शब्द का प्रयोग करते है।

अतीत काल मे जो सबसे अधिक चमत्कारपूर्ण क्रान्तियाँ हुई, वे हिंसात्मक थी और बहुतो के लिए क्रान्ति केवल सगठित घृणा और क्रूरता तथा मारकाट और फूँकफॉक का दूसरा नाम है। कुछ हिंसात्मक क्रान्तियॉ अत्याचार के विरुद्ध पवित्र विद्रोह थी, जबकि दूसरी क्रान्तियाँ निरर्थक और ध्वसात्मक थी। ससार के उधर-उधर विखरे हुए भागो मे क्रान्तिकारी हिंसा की यह युगो प्राचीन प्रणाली आज भी कायम है।

दूसरे छोर पर गाधी जैसे पुरुष के शान्त, किन्तु व्यापक रूप से क्रान्तिकारी विचार है, जो कार्यरूप मे परिणत किये जाने पर किसी भी समाज मे शान्तिपूर्ण किन्तु पूर्ण और मौलिक परिवर्त्तन उत्पन्न करेगे। राजनीतिक, सामाजिक तथा आर्थिक उद्दश्यो को प्राप्त करन के लिए कुछ स्थानो मे क्रान्तियाँ इन दो अतियो के बीच विभिन्न मात्राओ में हिंसा के साथ हुई है।

ये भिन्नताए क्रान्तिकारी वर्णपट मे कुछ और भी सकेत करती है। जिस प्रकार क्रान्ति का हिंसात्मक होना आवश्यक नही है, उसी प्रकार उसका आकस्मिक होना भी आवश्यक नही है। क्रान्ति और विकास दोनो मे परिवर्तन का भाव ह। प्रथम शब्द द्वितीय की अपेक्षा शीघ्रगामी परिवर्तन का अर्थ देनेवाला समझा जाता है। परन्तु परिवर्तन की गति ही दोनो के बीच 'एकमात्र' अथवा 'निर्णायक' विभाजक नही है। तुलनात्मक महत्व भी प्रासगिक है।

इस प्रकार व्यापक उत्पादन के प्रारम्भ के साथ जो परिवर्तन हुए, वे इतने प्रभावशाली थे कि हमने सर्वदा उनको 'औद्योगिक क्रान्ति' ही कहा है, यद्यपि आर्थिक विकास के क्रम मे एक शताब्दी से भी अधिक लग गया। चौथी शताब्दी में ईसाई धर्म, सातवी मे इस्लाम धर्म, १६ वी में प्रोटेस्टैट धर्म की धार्मिक क्रान्तियो की बात हम उनकी सफलता की गति के कारण नही, बल्कि उस

समय के उनके महत्व के कारण करते है। अनेक ऐतिहासिक परिवर्तन इस अर्थ मे विकासवादी समझे जाते है, कि उनमे अपेक्षाकृत हिसा की आकस्मिकता और सनसनी का अभाव था। फिर भी उनके प्रभाव और प्रहार इतने ध्वसात्मक और क्रान्तिकारी रहे है कि उनका यह व्यापक और क्रियात्मक वर्णन उचित ही है।

इस दृष्टि से सभी राष्ट्रो और लोगो के लिए प्राप्ति के सामान्य स्तर के रूप मे "मानवीय अधिकारो की सार्वभौमिक घोषणा" के समर्थन में बाण्डुग के अधिकाश प्रतिनिधियो ने अपने सम्मुख एक क्रान्तिकारी लक्ष्य रखा था, जो केवल विदेशियो को भगा देने की अपेक्षा कही अधिक बडा और कठिन कार्य था।

उनमे से अधिकाश को यह भली भाँति ज्ञात था कि जिस उपनिवेशवाद के विरुद्ध उन्होने इतने दिनो तक सघर्ष किया है और जो अब जागरणशील विश्व के सूर्य की तपन मे गलता जा रहा है, वह उनकी वास्तविक समस्याओ का लघु और बाह्य रूप मात्र है। सयुक्त राष्ट्र सघ का 'अधिकार-विधेयक' पूर्ण राजनीतिक प्रजातत्र, आर्थिक कल्याण, सभी के लिए अवसरो की समानता का मापदण्ड प्रस्तुत करता है—निस्सन्देह ये ऊँचे मापदण्ड है, उन महाद्वीपो के लिए जहा भूख, दरिद्रता, रोग और अज्ञान का राज है।

फिलीपाइन्स के कार्लोस रोमुलो ने प्रश्न किया, "जब राजधानी मे राष्ट्रीय ध्वज फहराया जाता है, विदेशी शासक चला जाता है और सत्ता हमारे नेताओ के हाथ आ जाती है, तो क्या स्वतत्रता प्राप्त हो जाती है ? क्या राष्ट्रीय स्वतत्रता का यही अर्थ है कि सत्ता कुछ विदेशियो के हाथ से कुछ स्वदेशियो के हाथ मे आ जाय ?"

बाण्डुग मे सर्वसम्मति से उत्तर 'नही' का था। चूँकि बहुत से प्रतिनिधि ऐसी ही अल्पजनशासित स्वदेशी सत्ता का प्रतिनिधित्व कर रहे थे, इसलिए उनमे से कुछ लोगो ने निश्चित रूप से आधे दिल से ही 'नही' कहा होगा। फिर भी, बाण्डुग-प्रस्तावो से चार प्रजातत्रात्मक उद्देश्य प्रकट हुए, जो न केवल अटलाटिक राष्ट्रो की जनता को पुन. विश्वास प्रदान करते है, बल्कि उससे भी अधिक महत्वपूर्ण बात यह है कि वे उनको अपने समाज के आदर्शों पर पुनर्विचार के लिए चुनौती देते है।

१. विदेशी प्रभावो से मुक्त प्रजातत्रात्मक स्वशासन।

२. जाति, धर्म अथवा वर्णभेद के बिना पूर्ण मानव-सम्मान की स्थापना।

३ द्रुतगामी आर्थिक विकास, जिसमें अधिक से अधिक लोग भाग ले सके।

४ युद्ध की समाप्ति और सद्भावना के विस्तारवान क्षेत्रो का निर्माण।

यदि इन लक्ष्यो को एक साथ मिला दिया जाय तो पूर्ण जनतात्रिक क्रान्ति से कम न होगा। क्या ऐसी क्रान्ति इतिहास मे कभी सभव हुई? यदि हम अपनी जाँच-पडताल एक पीढी मे एक ही देश तक सीमित रखे तो उत्तर केवल 'नही' होगा।

फिर भी, एक अवधि मे कतिपय राष्ट्र अन्यो की अपेक्षा पूर्ण प्रजातंत्रात्मक क्रान्ति के काफी निकट पहुँच गये है। जैसा कि हम अगले भाग मे देखेंगे, अमरीकी क्रान्ति ने इनमे से तीन उद्देश्यो को बडी मात्रा मे प्राप्त कर लिया है। उसने ब्रिटिश उपनिवेशवाद को उखाड फेका, अधिकारो के विधेयक के साथ प्रजातत्रात्मक सरकार की स्थापना की और धीरे-धीरे ऐसी शक्तियो को पैदा किया, जिन्होने निर्जन प्रदेश को उद्योगवाद के केन्द्र के रूप मे परिणत कर दिया और मोटे तौर पर अवसर की समानता का एक ढाँचा प्रदान किया। गृह-युद्ध के महँगे मूल्य पर, उसने अडतालीस राज्यो मे, जो प्रतियोगी प्रभु-सत्ताओ मे परिवर्तित हो गये होते, एक स्थायी शान्ति का क्षेत्र बनाने मे सफलता प्राप्त की।

जिसे 'अमरीकी स्वप्न' कहा गया है, उसके स्थायी क्रान्तिकारी अभिप्राय, अमरीकी अनुभवो की क्रान्तिकारी सफलताओ की भाँति ही महत्वपूर्ण रहे है। ऐतिहासिक दृष्टि से अमरीकियो की प्रत्येक पीढी 'यथास्थिति' के बारे में सदिग्ध रही है। अमरीकियो ने उन नेताओ का गहरा सम्मान किया है, जो जीवन के प्रत्येक पक्ष मे अधिकाधिक लोकतात्रिक अवसरो के लिए अमरीकी क्रान्ति के उदार प्रतिपादक रहे है।

अधिकाश एशिया और अफ्रीकावासियो को भारत का उदाहरण अवश्य ही अधिक उपयुक्त प्रतीत हो सकता है। गाधी ने कहा था, "केवल गोरे साहबो के स्थान पर भूरे साहबो को रख देने का अर्थ है, शेर की जगह पर शेर के स्वभाव को स्थान देना। ब्रिटिश राज के स्थान पर स्वायत्त शासन अर्थात् 'स्वराज' होना चाहिए, जिसमें "जातिहीन और वर्गहीन समाज" की आदर्श सामाजिक व्यवस्था हो।"

ग्राम-सुधार उनकी उत्कट अभिलाषा थी। विदेशी शासक के विरुद्ध अथवा अपने ही लोगो के विरुद्ध सघर्ष मे अहिसा ही उनका साधन था, यहा तक कि

प्रजातत्री भारत सरकार के विरुद्ध भी उन्होने इसीकी धमकी दी थी। उनका आग्रह था कि इन सग्रामो मे प्रयुक्त साधन लोकतत्र, अवसर की समानता और शान्ति के उद्देश्यो के अनुकूल होने चाहिए।

जैसा कि हमने देखा है, गाँधीजी अपने साथी क्रान्तिकारियो से गरीबो मे मिलजुल कर रहने, गाँवो की रचनात्मक सेवाओ मे लग जाने, किसी भी अन्याय के विरुद्ध सत्ताधारी होने के पूर्व भी व्यक्तिगत दायित्व स्वीकार कर और स्वर्णयुग की प्रतीक्षा मे न बठ उसे दूर करने और सदा सत्य और अहिसाके प्रति निष्ठावान रहने के लिए आग्रह किया करते थे। यह स्पष्ट है कि गाधी ने जिस पूर्ण क्रान्ति की कल्पना की थी, उसे पूरा करने मे भारत सफल नही हुआ ह, परन्तु इसका प्राणवान सविधान, इसके महान् स्वतत्र चुनाव और उसकी ग्राममूलक पचवर्षीय योजना, ये सभी तथ्य उस क्रान्ति की मौलिक शक्ति को सिद्ध करते है, जो इन सभी लक्ष्यो को एक सगठित कार्यक्रम मे समन्वित करने का प्रयास करती है।

जब क्रान्ति इन उद्देश्यो से बहुत कम प्राप्त करके रुक जाती है, तब क्या होता है, यह बाण्डुग के उन अनेक प्रतिनिधियो को स्पष्टत ज्ञात रहा होगा जो विश्व के वेभिन्न भागो मे दर्दनाक ढग से बिखरी हुई इस प्रकार की अनेक असफल क्रान्तियो से परिचित थे। ऐसी अपूर्ण क्रान्तियो के खतरो का प्रमाण है लेटिन अमरीका, जो हमारी दक्षिणी सीमा पर है।

× × ×

यद्यपि दक्षिणी अमरीका को बाण्डुग मे नही बुलाया गया था, तथापि इसका अधिकाश प्रारम्भिक इतिहास बहुत ही शिक्षाप्रद है। दक्षिणी अमरीका के "मुक्तिदाता" साइमन बोलीवर १७८३ मे वेनेजुला के एक कुलीन परिवार मे पैदा हुए थे और उनको योरोप मे शिक्षा प्राप्त हुई थी। बोलीवर ने पेरिस मे फ्रासीसी क्रान्ति के कुछ अन्तिम दृश्यो को अपनी आँखो देखा था। उन्होने क्रान्ति के अध पतन और नैपोलियन के उत्थान को भी देखा था।

१८१० मे सयुक्त राज्य अमरीका होते हुए वेनेजुला लौटने पर, उन्होने शीघ्र ही स्पेन के शासन से मुक्त करने के कर्तव्य मे अपने को तल्लीन कर दिया और सशस्त्र विद्रोह मे भाग लिया। १८११ की चौथी जुलाई को दक्षिणी अमरीका के विद्रोहियो ने अपनी स्वतत्रता की घोषणा कर दी।

कुछ समय के लिए परास्त और निर्वासित बोलीवर ने १८१२ मे औपनिवेशिक स्पेन के विरुद्ध "मृत्यु पर्यन्त युद्ध" का आदेश जारी कर दिया। अपनी

छोटी-सी सेना का नेतृत्व करते हुए उन्होने एडीज (Andes) पर्वतो को पार किया और वेनेजुला होते हुए १८१३ में कारकस मे प्रवेश किया। उन्होने कहा, "जहाँ एक बकरी जा सकती है, वहाँ एक सेना भी जा सकती है।"

उन्होने न्यू ग्रनाडा मे क्रान्तिकारी काँग्रेस की एक बैठक बुलायी और १८१४ मे दो हजार आदमियो के साथ बोगोटा पर कब्जा कर लिया। दीर्घकाल तक गुरिल्ला-युद्ध करने के बाद १८२० तक उन्होने पूर्णरूपेण वेनजुला, न्यू ग्रनाडा, क्विटो (आज का इक्वेडर) पर अधिकार कर लिया, जिसे उन्होने कोलम्बिया गणराज्य के नाम से सगठित कर दिया और स्वय उसके राष्ट्रपति बन गये।

दो वर्षों मे ही वे अर्जेण्टाइनावासी सान मार्टिन से मिल गये। उसने लगभग उन्ही साधनो से चिली को स्वतत्र किया और दोनो ने मिल कर स्पेनवालो को पेरू से खदेड बाहर किया। १८२५ मे जब 'अपर पेरू' स्वतत्र राज्य बना, तब उसका नाम बोलीवर रखा गया और बोलीवर को उसका "स्थायी सरक्षक" घोषित किया गया।

बोलीवर, उनके समकालीन सान मार्टिन और ओ'हिगिन्स द्वारा उत्पन्न इस सघर्षशील नयी क्रान्तिकारी भावना ने अवशिष्ट दक्षिणी और मध्य अमेरिका के अधिकाश भाग से योरोपीय शासन को उखाड फेकने की प्रेरणा दी। वर्षों के युद्ध के बाद १८२१ मे मैक्सिको ने तीन शताब्दियो के स्पेनिश प्रभुत्व का अन्त कर दिया।

यद्यपि इस प्रकार विदेशी शासन से छुटकारा मिला तथापि जिस प्रकार स्वतत्रता के बाद सयुक्त राज्य अमरीका और भारत में बहुत हद तक निर्माणात्मक तथा रचनात्मक सामाजिक शक्तियाँ क्रियाशील हुईं, उसी प्रकार यहाँ न हुआ। स्वय बोलीवर के प्रदेश मे और उनके जीवन-काल मे ही प्राचीन सामन्ती व्यवस्था मे सशोधन करने के उनके विनम्र प्रयत्न व्यर्थ सिद्ध हुए।

तत्कालीन घटनाओ को देखकर बोलीवर ने अपने एक मित्र को लिखा, "मै वृद्ध हूँ, अपमानित तथा निराश हूँ और वेतन भी बहुत कम पाता हूँ। मैंने क्रान्ति का अनुमोदन कभी नही किया और अन्त मे मैने स्पेन के विरुद्ध अपनी क्रान्ति के लिए दुख भी प्रकट किया।"

विदेशी शासको के स्थान पर स्थानीय शासको के शासन के अन्तर्गत जनता का सामन्ती शोषण चलता ही रहा। अपनी मृत्यु के कुछ ही दिनो पूर्व बोलीवर ने निराशापूर्ण व्यग के साथ कहा था, "इतिहास मे तीन महान् मूर्ख

हुए–जीजस, डोन क्विजोट और मैं । क्रान्ति का कार्य समुद्र मे हल चलाने जैसा है।" इस प्रकार अपने जीवन-काल मे ही बोलीवर की सफलता विफलता मे परिणत हो गयी।

लेटिन अमरीका मे पीढियो तक सत्ता प्राप्ति के उद्देश्य से भयानक विप्लव होते रहे, जिनमे से अधिकाश सैनिक विद्रोह थे। आकस्मिक सशस्त्र विप्लव, हत्याए तथा गृहयुद्ध ही लोगो के लिए शासन-परिवर्तन के एक मात्र साधन प्रतीत होते थे।

१८२१ और १८७६ मे डियाज की तानाशाही के जन्म के बीच, मेक्सिको मे दो सम्राट, दो रीजेन्सियाँ और कई तानाशाह हुए और अनेक कामचलाऊ शासन-परिषदे बनी और कुल, ७४ से कम सरकारे नही बनी। इन आन्तरिक फूटो के बावजूद स्पेनिश शासन को पुन स्थापित करने के सारे प्रयत्न असफल रहे। जबकि अमरीका गृह-युद्ध मे उलझा हुआ था, फ्रान्स के पिट्ठू सम्राट मक्सिमिलन ने, जो नैपोलियन तृतीय का आश्रित था, योरोप के साथ पुन औपनवेशिक सम्बन्ध स्थापित करने के प्रयत्न किये, परन्तु अन्त मे उसका स्वय भीषण अन्त हुआ।

मैक्सिको और यूरुगुए जैसे कुछ दक्षिण अमरीकी देशो मे प्रबल प्रजातन्त्रात्मक आधार पर स्थिर शासनो की स्थापना हुई। सयुक्त राज्य अमरीका की सरकारी तथा गैर-सरकारी सहायता से अनेक लेटिन अमरीकी देशो में तेजी से आर्थिक विकास हो रहे है।

तथापि लेटिन अमरीका के अधिकाश भागो में लोकतान्त्रिक विकास पीढियो पीछे है, जिसके लिए अभी भी पर्याप्त आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक प्रमाण है।

१९५४ मे, एक ही वर्ष मे निकारागुआ और कोस्टा रीका के बीच छोटे पैमान पर युद्ध हुआ। इक्वेडर, पेरू, पेरागुए और बोलीविया ने क्रान्तिकारी प्रयत्नो के दमन की घोषणा कर दी। षडयत्रो और सकटो के वातावरण मे ब्राजील के राष्ट्रपति ने आत्महत्या कर ली। पनामा के राष्ट्रपति की हत्या कर दी गयी और उप-राष्ट्रपति पर षड्यत्र का अभियोग लगाया गया।

स्वतत्र राष्ट्र ग्वाटेमाला और ब्रिटिश गाइना के उपनिवेश मे साम्यवादी शासन थे। प्रथम शासन को एक सैनिक विद्रोह ने उखाड फेका, जिसके सम्बंध मे अधिकाश दक्षिणी अमरीकी राष्ट्रो का मत था कि सयुक्त राज्य अमरीका द्वारा करवाया गया था और दूसरा, लन्दन द्वारा ब्रिटिश गाइना

मे हाल ही मे लागू किये गये नये सविधान को वापस लेकर, दबा दिया गया।

अर्जेण्टाइना के पेरोनवाद (पेरोनिज्म) के इतिहास मे भी सामाजिक क्रान्ति के लिए कच्ची सामग्री उपलब्ध है। यद्यपि पेरोन और एविटा ने "वस्त्र-हीनो" के हित और सबके लिए सामाजिक न्याय के सयुक्त आधार पर अपनी शक्ति का निर्माण किया था, तथापि जो साधन अपनाये गये थे, वे १९३० के योरोपीय फासिज्म की याद दिलाते है।

बाण्डुग मे प्रचारित जनतात्रिक, आर्थिक और सामाजिक कार्रवाइयो की सार्थकता किसी भी ऐसे पर्यवेक्षक को स्पष्ट हो जायगी, जो आधुनिक दक्षिणी अमरीकी नगरो के बाहर जायगा, जहाँ अधिकाश किसानो का जीवन-स्तर भारत के निम्नतम स्तर से कुछ ही ऊँचा है।

इस अस्थिरता का एक दूसरा कारण यह है कि अधिकाश लेटिन अमरीकी अर्थव्यवस्था निर्यात-योग्य नकदी फसलो, काफी या तेल जैसे खनिज पदार्थो पर निर्भर करती है। यदि विश्व के बाजारो मे प्रमुख वस्तुओ का भाव गिर जाता है, तो हजारो परिवारो के जीवन मे विपत्ति आ जाती है, क्योकि उनकी आय का साधन वही वस्तु है।

इसी कठिनाई को दूर करने के लिए बाण्डुग-सम्मेलन ने यह सिफारिश की थी कि एशिया और अफ्रीका के देशो को चाहिए कि वे अपने निर्यात के व्यापार को बढाने के लिए, जहाँ कही आर्थिक दृष्टि से व्यावहारिक हो, निर्यात के पूर्व कच्चे माल को पक्के माल मे परिणत करने का प्रयत्न करे।

× × ×

यदि सामन्ती अवशेषो तथा जनता के हितार्थ व्यापक आर्थिक विकास की योजना के अभाव ने लेटिन अमरीका की उपनिवेश-विरोधी क्रान्तियो को प्रभावहीन बना दिया तो यही बात मध्यपूर्व के सम्बध मे भी कही जा सकती है। वहाँ भी विदेशी शासन से औपचारिक मुक्ति का अर्थ बहुसख्याक जनता के लिए और अधिक स्वतत्रता कभी नही रहा। जहाँ पर स्थानीय अत्याचारियो ने बलपूर्वक अपना शासन स्थापित नही किया, वहाँ भी लोकतात्रिक प्रक्रिया का कार्य प्राय एक छोटे और विशेष सुविधाप्राप्त तथा शिक्षित अल्पसख्यको तक ही सीमित ह।

६ करोड अरबो का स्वदेश और ३६ करोड मुसलमानो का आध्यात्मिक केन्द्र, अरब जगत, अपने ही देशवासियो के लिए अत्यन्त दरिद्रावस्था में है। प्राचीन तथा वैभवशाली इतिहास के इस प्रदेश के ३५ लाख वर्ग मील क्षेत्र

मे से ९० प्रतिशत रेगिस्तान ह। समस्त अरब जगत मे उतनी ही भूमि जोती-बोयी जाती है, जितनी इओवा राज्य मे।

भूमि के अतिरिक्त, इस क्षेत्रका एकमात्र साधनस्रोत तेल है, परन्तु इस महत्वपूर्ण पदार्थ के विशाल साधनस्रोतो और अन्तरमहाद्वीपीय जल, स्थल और वायु मार्गो पर फले हुए अरब जगत की महत्वपूर्ण औद्योगिक स्थिति ने मिल कर इस क्षेत्र को विश्व-कूटनीति मे अत्यन्त महत्वपूर्ण बना दिया है। १९३९ तक मध्य अरब के मरूस्थल और यमन के पर्वत ही योरोपीय शक्तियो द्वारा 'अरक्षित' थे।

पीढियो से मध्यपूर्वीय नवयुवको के हृदयो मे अमरीकियो के लिए विशेष स्थान रहा है। विल्सन और रूजवेल्ट ने उन्हे प्रोत्साहन प्रदान किया। बेरुत मे अमरीकी विश्वविद्यालय ने एक बडी सख्या मे मध्यपूर्वीय नेताओ को शिक्षा-प्रदान की। फिर भी आज अनेक कारणो से अमरीकी प्रतिष्ठा गिर गयी है।

मध्यपूर्व के अधिकाश भाग मे आज भी अरब-समाज मे कुछ हजार अत्यन्त सम्पत्तिशाली जमीदार तथा व्यापारी है, मुट्ठीभर मध्यमवर्गीय पेशेवर लोग और टेक्नीशियन है और विशाल जनसमूह भूमिहीन या लगभग भूमिहीन किसान है। जनता और नेताओ के बीच की खाई इतनी गहरी है कि उसे पाटा नही जा सकता और यह खाई असह्य होती जा रही है। १९५२ मे मिस्र मे सुधारो के प्रारम्भ के पूर्व, देशके बडे-बडे जमीन्दारो के पास, जिनकी सख्या अन्य मालिको के एक प्रतिशत से भी कम थी, ९४ प्रतिशत छोटे जमीनदारो से भी अधिक भूमि थी। इस प्रणाली ने एक ओर उच्चवर्ग मे अविश्वसनीय भोगविलास और दूसरी और निम्न वर्ग मे दारूण दुख की सृष्टि की।

बाण्डुग मे मिस्र का प्रतिनिधित्व उसके प्रधानमत्री नासिर ने स्वय किया। १९५२ मे सैनिक गुट के, जिसन पूर्ण लोकतान्त्रिक क्रान्ति का वादा किया, सत्तारूढ होने के समय से ही मिस्र एक अर्धविकसित भूमि मे राजनीतिक प्रजातत्र तथा सामन्तवाद द्वारा प्रस्तुत धर्मसकट का सामना कर रहा है।

प्रधान मत्री नासिर और क्रान्ति कमान परिषद (Revolution Command Council) के उनके अन्य साथी सच्चाई से यह विश्वास करते जान पडते है कि चुनाव लडने के लिए राजनीतिक दलो की स्वतत्रता से शीघ्र ही एक ससद का निर्माण होगा, जिसमे विशेष 'स्वार्थ' सीटे खरीद कर पहुँच जायगे और मिस्र की साधारण जनता के हितो की पुन उपेक्षा की जायगी।

आर्थिक सुधार का प्रश्न इतना अधिक महत्वपूर्ण है कि, मुझे विश्वास है

कि ये निष्ठावान जनतान्त्रिक प्रवृत्ति वाले शासक अपनी नीव सुदृढ बनाने के लिए उदार स्वेच्छाचारी शासन की अवधिपर निर्भर करते है। १८ मई, १९५५ को काहरा में प्रधानमत्री नासिर ने घोषित किया, "हम उस ससद की स्थापना में मिस्र का कोई लाभ नही देखते, जहाँ पर बडे-बडे जमीन्दारो के स्वार्थों के हितैषी अथवा इराक, लन्दन, वाशिंगटन या मास्को के स्वार्थो के रक्षक मिस्रियो के रूप में भेष बदल कर बैठेगे। पहले की भाँति हम स्वतंत्रता की पुनः स्थापना इसलिए नही करेगे कि लोग स्वार्थ-सिद्धि के लिए इसका दुरुपयोग करे।"

अतएव जब तक शिक्षा-प्रणाली का विस्तार नही हो जाता, एक नया असैनिक (नागरिक) नेतृत्व तैयार नही हो जाता, भूमि-सुधारो के द्वारा छोटे-छोटे स्वतत्र किसानो का एक वर्ग विकसित नही हो जाता और आर्थिक विकास के द्वारा जीवन-स्तर ऊँचा नही हो जाता, तब तक "ज्ञातव्य भविष्य" के लिए मिस्र अपनी स्वतत्रता को कुछ विश्वासपात्रो के हाथो मे ही रखना चाहता है।

"विश्वासपात्रो के हाथो मे" स्वतत्रता की विचारधारा खतरनाक है, चाहे कितने ही ऊँचे और विचारवान इसके सरक्षक क्यो न हो। १९२० के तुर्की के अतातुर्क की भाँति नासिर इसको निर्मूल करने के लिए जिन अलोकतान्त्रिक तरीको का उपयोग करना आवश्यक समझते है, वह अवशिष्ट सामन्ती राजनीतिक शक्ति का परिचायक है। एक बार विफल क्रान्ति को आवश्यक जनतान्त्रिक सुधारो के द्वारा फिर से सचालित करना किसी भी राजनीति सत्ता के लिए निश्चय ही अत्यन्त कष्टसाध्य कार्य है।

इस विषय मे भारत मे राजनीतिज्ञता का कार्य मध्यपूर्वीय देशो की अपेक्षा सरल रहा है और यह इस उप-महाद्वीप मे दीर्घकालिक ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन के अनेक अवगुणो के विरुद्ध एक महान गुण हो सकता है। प्रारम्भ मे ब्रिटिश कानून और बाद मे भारत का संसदीय सस्थानो तथा नागरिक सेवा मे अधिकाधिक भाग लेना भारतीय स्वतत्रता के पूर्व उत्तरदायित्वपूर्ण स्वायत्त शासन के लिए प्रशिक्षण था।

पाकिस्तान मे भी योग्य तथा लोकतान्त्रिक प्रवृत्तिवाले लोगो का एक दल ऐसी नीव डालने के लिए प्रयत्नशील है, जिस पर एक स्वतत्र समाज के विकास तथा उसे कायम रख सकने का भरोसा किया जा सके। रुढिवादी और नरम विचारो के मुसलमानो में फूट, पश्चिमी पाकिस्तान का प्रारम्भिक विभाजन, देश की दो स्पष्ट भागो मे पृथकता, विभाजन के द्वारा क्षेत्र के अधिकाश

भूतपूर्व औद्योगिक उत्पादन की हानि और प्रशिक्षित 'सिविल सर्वेण्टो' तथा लोकप्रिय राष्ट्रीय नेताओ के अभाव ने उनके कार्य को और अधिक कठिन बनाने तथा लोकतात्रिक प्रक्रिया को धीमा बनाने मे सहायता की है।

यह विचित्र बात ह कि सामाजिक समानता की प्रणाली की रचना मे और एशिया की भूमि पर प्रजातत्रात्मक आर्थिक विकास मे सब से बडा प्रसार मध्य पूर्व मे—किन्तु अरब जगत की सीमाओ के बाहर—एक छोटे से प्रबल देश इसराइल मे हो रहा है, जो इतनी भयकर अरब-शत्रुता का लक्ष्य बना हुआ है। डायसपोरा के यहूदी नेताओ द्वारा मरुस्थल से निर्मित और अनन्त पश्चिमी पूँजी और सद्भावना द्वारा विकसित इस राज्य ने पूर्ण क्रान्ति प्राप्त कर ली होती, यदि एक भयानक तथ्य—शान्ति—का अभाव न होता, जिसे राज्य को जन्म देने वाली घटनाएँ ही दूर रख रही है।

× × ×

एशिया के दूसरे छोर पर अपूर्ण क्रान्ति की पहेली का एक और दृष्टान्त है। बाण्डुग-सम्मेलन मे जापान ही एक ऐसा देश था जो स्पष्टत अर्धविकसित न था। अमरीकी सेना द्वारा परास्त होने के अभी कुछ ही वर्ष पहले इस शक्तिशाली औद्योगिक राष्ट्र ने चीन और दक्षिण-पूर्व एशिया मे लगभग ५० करोड जनता पर अपने ढग के उपनिवेशवाद की स्थापना की थी।

जापान की शक्ति और कुशलता भविष्य मे एक लम्बे अर्से तक, और आशा है कि इस बार अधिक शान्तिपूर्ण प्रसग मे, एशिया और ससार पर गहरा प्रभाव डालती रहेगी। आशा है कि भविष्य मे जापान व्यापक अर्थ में भारत के साथ एशियाई असाम्यवादी शक्ति का प्रबलतम स्रोत सिद्ध होगा।

पुर्तगालियो ने १५४२ में जापान को "खोज निकाला"। १५४९ में सेट फ्रान्सिस जेवियर्स के नेतृत्व मे जेसुइट धर्म-प्रचारक वहाँ पहुँचे और शीघ्र ही डचो, स्पेनिशो और अग्रेजो ने अपने व्यापारिक केन्द्र खोल दिये। तथापि १६७३ तक विदेशी-विरोधी जापानी राष्ट्रवाद की लहर ने सब को खदेड बाहर किया।

१८५३ मे कमोडर पैरी के अपने छोटे अमरीकी जहाजी बेडे के साथ वहाँ पहुँचने के पूर्व लगभग दो सौ वर्षों तक जापान पश्चिमी लोगो की पहुँच के बाहर ही रहा। अगली दो पीढियो मे अमरीकी और ब्रिटिश विचारो पर आधारित आर्थिक तथा राजनीतिक परिवर्तन इतनी तीव्र गति से हुए कि इतिहास मे उसकी तुलना नही मिलती।

१८६७ में जब मुत्सु हितो (Mutsu Hito) सम्राट हुए तो उन्होने 'मेइजी' की उपाधि ग्रहण की, जिसका अर्थ 'प्रगतिशील शासन' होता है और राजनीतिक सुधारको तथा युवक प्रशासको की एक टोली के प्रबल समर्थन से उन्होंने जापान के रूप को शीघ्र ही बदल दिया। १८८१ मे राष्ट्रीय ससद की स्थापना हुई, और १८८५ मे योरोपीय पद्धति पर मत्रिमण्डल की नियुक्ति हुई।

आर्थिक विकास भी उतना ही द्रुतगामी था। जापानी इजीनियर, वैज्ञानिक तथा व्यवस्थापक प्रशिक्षण के लिए योरोप और अमरीका गये और एक औद्योगिक राष्ट्र के निर्माण के लिए वापस आये। सदा की भाँति, तीव्र आर्थिक विकास का भार किसानो पर पडा, जिन्होंने बडी कठिनाई से नगरो मे बढती हुई मजदूरो की आबादी को मामूली मुआवजे पर खाद्यान्न प्रदान करने के लिए भारी दबाव के अन्दर कार्य किया।

परन्तु शान्ति के स्वभाव उदीयमान राष्ट्रीयता के इस चित्र के अग नही थे। १८९५ मे जापान ने विदेशी अभियानो की ओर ध्यान दिया। चीन के विरुद्ध उसने युद्ध की घोषणा कर दी और फारमोसा के नये प्रदेश को जीत लिया। १९०२ मे जापान ने ब्रिटेन के साथ एक सनिक सन्धि की और चार वर्ष बाद जारशाही रूस की प्रबल शक्ति को परास्त कर उसने ससार को चकित और एशिया को प्रसन्न कर दिया। १९१० मे उसने कोरिया को आत्मसात कर लिया। ब्रिटेन के साथ मिलकर जापान की सनिक शक्ति ने अगली पीढी तक के लिए एशिया मे रूसी विस्तार को निरुत्साहित किया और इस प्रकार लन्दन को एशिया-सम्बन्धी मामलो के भार से मुक्त रखा।

परन्तु जापान ने और अधिक विस्तार प्रारम्भ कर दिया। १९३१ मे मञ्चूरिया मे अल्पकालिक चीनी युद्ध प्रारम्भ हुआ और १९३७ मे पेकिग मे फिर शुरू हुआ। इनमे जापान आशिक रूप से ही सफल हुआ था कि उसने दक्षिण-पूर्व में अभियान शुरूकर दिया और साथ ही पर्लहार्बर पर भी आक्रमण कर दिया। १९४५ मे जब जापानी नेताओ ने अन्त मे "मिसौरी" युद्धपोत पर जनरल मैकआर्थर के समक्ष समर्पण किया, तब जापान का भविष्य अन्धकारमय हो गया।

आर्थिक विकास और युद्ध पर ध्यान केन्द्रित होने के कारण तथा लोकप्रिय व्यापक आधार के निर्माणार्थ मौलिक, सामाजिक और आर्थिक सुधारो मे असफलता के कारण, जापान मे प्रजातत्र की जडे जम नही पायी। यह विश्वास

कर कि जापानी समाज मे पूर्ण सुधार की आवश्यकता है, हमने प्रारम्भ से ही जापान के पुर्ननिर्माण के लिए मौलिक प्रयत्नो मे अपने अधिकारो का प्रयोग किया। हमने विशाल व्यापारिक एकाधिकारो को हटाने के प्रयत्न किये, बचे हुए धनाढ्यो पर भारी कर लगा दिये और जमीन जोतने वाले छोटे-छोटे किसानो को दे दी तथा महिलाओ को बराबरी के अधिकार प्रदान किये।

परन्तु यह तो ऐसी क्रान्ति थी, जो विदेशी शासको द्वारा लादी गयी एक प्रकार से उदार उपनिवेशवाद की प्रतिक्रिया थी। यद्यपि मेकआर्थर के शासन के बहुत से कार्य अनुचित थे, तथापि उसमे एशिया के सर्वोत्तम भूमि-सुधार का कार्यक्रम भी था। यह मानव-इतिहास का अत्यन्त क्रान्तिकारी कार्यक्रम था, जिसने जापान के प्रजातत्रात्मक जीवन मे नवीन आशा का सचार कर दिया। यदि क्षुब्ध किसान अभी भी जमीन्दारो को भारी कर देते रहते, तो नगरो के विक्षुब्ध मजदूरो और छात्रो के साथ उनके अनिवार्य राजनीतिक गठबन्धन ने जापानी राजनीति मे उथलपुथल मचा दी होती।

हमारे आग्रह पर जापान के नये सविधान ने युद्ध का त्याग कर दिया और उसने कभी भी सशस्त्र सेना न रखना स्वीकार कर लिया। तदुपरान्त पुन शस्त्रीकरण के प्रति जापानियो की अनिच्छा न केवल अणु-युद्ध की भयानकता और पर्याप्त सेना रखने मे भारी व्यय के ही परिणामस्वरूप थी, अपितु कुछ ही समय पहले की हमारी अधिकार-नीति द्वारा, उनके लिए युद्ध के प्रति निर्धारित आदर्शवादी नवीन दृष्टिकोण को, त्याग देने के स्वय हमारे आग्रह के कारण उत्पन्न, भ्रम के फलस्वरूप थी।

इस वैधानिक प्रावधान को स्वीकार करने के उसके समझौते का उल्लेख करते हुए सेनापति मेकआर्थर ने प्रधानमत्री शिडेहारा के कहे हुए शब्दो का इस प्रकार उद्धरण दिया है, "दुनिया हम पर हँसेगी और अव्यावहारिक स्वप्न-द्रष्टा के रूप मे हमारा मजाक उडायेगी, परन्तु आज से १०० वर्ष उपरान्त हमे 'अवतारी पुरुष' कहा जायगा।" व्यापक भूमि-सुधारो के साथ भी सेना के 'लोकतत्रीकरण' के द्वारा प्रजातत्र की स्थापना की जा सकती है या नही, यह एक खुला प्रश्न है। फिर भी, एक बात निश्चित है और वह है उस खतरे की, जो ठोस प्रजातत्र के आधार के निर्माण के लिए समानान्तर प्रयत्न के बिना आर्थिक सुधार और विकास के कार्यान्यिव मे सन्निहित है।

जापान और जर्मनी, प्रजातत्रात्मक सस्थाओ से रहित द्रुतगामी औद्योगीकरण की स्थिरता और विश्व-शान्ति के परिणामो के दो नये असाम्यवादी

उदाहरण है। इन दोनो ही देशो ने एक ऐसी आर्थिक शक्ति सचित कर ली, जिसने ससार मे उथलपुथल मचा दी और उन परम्पराओ और सस्थाओ का विकास नही किया, जो उस शक्ति के सचालन पर नियत्रण रखती है।

जब जर्मनी और जापान मे औद्योगीकरण की प्रक्रिया चल रही थी, योरोप आत्मतुष्टि के साथ उसे देखता रहा। तथापि ये ही दो राष्ट्र द्वितीय विश्व-युद्ध मे अटलाटिक देशो के सबसे बडे शत्रु हो गये और उनकी ध्वसात्मक शक्ति को बहुत भयानक मूल्यो पर रोका जा सका।

भारत अथवा सहारा के दक्षिण औपनिवेशिक अफ्रीका के प्राकृतिक साधन-स्रोत जापान और जर्मनी के साधन-स्रोतो से कही अधिक है। इसके अतिरिक्त उनकी आबादी भी कही अधिक है और उनके हृदयो मे अभाव-अभियोग की गहरी तथा टिकाऊ भावना भी है। साम्यवादी रूस और चीन का सकेतसूचक उदाहरण हमारी इस चिन्ता का मौलिक कारण नही है कि उनका आर्थिक विकास क्या रूप ग्रहण करेगा, बल्कि इससे उसकी अत्यावश्यकता और तत्परता को बल मिलता है।

किसी भी देश मे औद्योगीकरण और आर्थिक विकास सर्वदा बडे पैमाने पर उसके राजनीतिक और सामाजिक परिवर्तन के कारण होते है, परन्तु इस बातको बार-बार नही दुहराया जा सकता कि मार्क्स के विपरीत परिवर्तन के रूप का निर्णय औद्योगीकरण से नही होता।

विपरीत तथ्य साधारणतया ठीक है। विकासमान औद्योगिक समाज का रूप आर्थिक विकासो के साथ होने वाले सामाजिक और राजनीतिक परिवर्तनो द्वारा निर्धारित होता है और ये तो विकल्प के प्रश्न है। विकास-प्रक्रिया की प्रत्येक अवस्था और स्थिति की पूर्ति उन साधनो द्वारा हो सकती है, जो प्रजा-तत्रात्मक अथवा अप्रजातत्रात्मक उद्देश्यो की पूर्ति करते है।

कृषि-उत्पादन मे वृद्धि के लिए कृषि का पुनर्गठन, देहाती और नगरीय आबादी की शिक्षा-दीक्षा, नागरिक सेवा और निजी नेतृत्व की गुटबन्दी की भावना तथा परम्पराएँ, भारी उद्योग या विकेन्द्रीकरण के बीच पूजी का निर्धारण—इन सब का दो मे से किसी भी प्रकार से उपयोग किया जा सकता है, या तो जनता को थोडे से शासको की इच्छा और सत्ता के अधिकाधिक अधीन बनाने के साधन के रूप मे, अथवा प्रेरणा-शक्ति और स्वावलम्बन की आदतो के निर्माण, सहयोग और लोकतात्रिक समझौते की सस्थाओ और राजनीतिक शक्ति तथा आर्थिक प्रगति के व्यापक आधार के साधनो के रूप मे।

गति प्राप्त करने के उद्देश्य से किसी भी विकास-कार्यक्रम के लिए आवश्यक शक्ति और उत्साह, वर्गगत, जातिगत अथवा विदेशी के प्रति घृणा उत्पन्न करके ध्वसात्मक रूप मे पैदा किया जा सकता है अथवा राष्ट्रीय, सामुदायिक तथा व्यक्तिगत विकास के कार्यों में सहयोग की भावना पैदा करके रचनात्मक रूप मे पैदा किया जा सकता है।

× × ×

सामन्तवाद के स्थान पर स्वतत्रता, मानवीय गौरव तथा आर्थिक विकास की स्थापना, औपनिवेशिक क्रान्ति के इन तीन पक्षो को क्या मिलाया जा सकता है, अथवा दूसरो को प्राप्त करने के लिए एक या अधिक का बलिदान करना पडेगा ? कभी कभी ये अप्रासगिक प्रतीत होते है।

तथापि उनमे से केवल एक या दो पर केन्द्रित करने से क्रान्ति अधिक से अधिक अपूर्ण ही रह जाती ह, क्योकि जनता में उसकी जडें गहराई तक नही पहुँच पाती और बिना पूर्व सूचना के उसमे परिवर्तन की सम्भावना बनी रहेगी। पूर्ण लोकतान्त्रिक क्रान्ति के इन सभी पक्षो को मिलाना ऐसा उलजलूल कार्य है, जिसकी सफलता पर कभी-कभी गाधी को भी शका होती थी।

बाण्डुग मे इनके विभिन्न रूपो पर स्पष्टत विभिन्न मात्रा मे बल दिया गया था। सऊदी अरब साम्राज्यवाद के जबर्दस्त विरोध का उपदेश देता है और खुले आम सामन्तवाद को प्रश्रय देता है। स्याम मे साक्षरता और स्वास्थ्य का स्तर ऊँचा है और दीर्घकाल से वहाँ स्वायत्त-शासन है, परन्तु उसकी राजनीति मे अधिनायकवाद के तत्वो को अस्वीकार करना कठिन है, यद्यपि १९५५ में प्रजातंत्रात्मक सहयोग की दिशा मे आयोजित कार्यक्रम की घोषणाएँ कुछ विश्वास दिलाती है। चीन की साम्यवादी क्रान्ति अनुचित 'यथास्थिति' के उन्मूलन की ऐसी प्रणाली पर आधारित थी, जिसने अपनी प्रक्रिया मे चीनी जनता की राजनीतिक स्वतत्रता की आशाओ को ध्वस्त कर दिया।

कदाचित् बाण्डुग की सबसे बडी आशा इस साक्ष्य में थी कि एशिया-अफ्रीकी जगत का नेतृत्व, वाधाओ के बावजूद पूर्ण चतुर्भुजीय क्रान्ति की पूर्ति के लिए चिन्तित था। पूर्ण प्रजातन्त्रात्मक स्वराज्य के निश्चित उद्देश्य ने उपनिवेशवाद-विरोधी निरर्थक नारो का स्थान ग्रहण किया और बाण्डुग का जातिवाद-विरोध अब केवल कालो के विरुद्ध गोरो के भेदभाव की प्रचलित विचार-धारा तक ही सीमित न था। यह ठीक है कि प्रस्तावो मे उस जातीय पृथक्करण की नीतियो और तदनुसार उनके पालन पर खेद व्यक्त किया गया, जो अफ्रीका और

विश्व के अन्य भागो के विशाल क्षेत्र मे शासन और मानवीय सम्बधो का आधार है। ऐसे जातीय भेदभाव को उन्होने एक प्रकार का "सास्कृतिक दमन" माना।

परन्तु प्रतिनिधियो ने यह स्वीकार किया कि जातीय भेदभाव अन्तर-राष्ट्रीय रोग ह। शायद इस बात से चिन्तित होकर कि जापानी प्रतिनिधि तत्सुनोसूके ताकासाकी की भाँति कुछ प्रतिनिधियो न "एशियाई और अफ्रीकी राष्ट्रो के जातीय सम्बन्धो" के विषय मे कहा था और यह जानकर कि इस प्रकार की विचारधारा को बाण्डुग की भावना का द्योतक समझ कर पश्चिम भयभीत है, सम्मेलन ने स्पष्ट रूप से इस बात का खण्डन किया कि एशियाई-अफ्रीकी सहयोग की कल्पना अन्य राष्ट्रो के साथ शत्रुता अथवा पृथकता की भावना से की गयी है। इसने आस्ट्रेलिया और न्यूजीलैण्ड के साथ बढते हुए सहयोग के लिए विशेष आकर्षण प्रस्तुत किया। उन्हे आमत्रण नही मिला था।

जापानी प्रभुता का यह युद्धकालीन अनुभव था, जिसने इस क्षेत्र को गोरे साम्राज्यवाद की जगह भूरे, काले या पीले साम्राज्यवाद के खतरो से सतर्क कर दिया। एशिया और अफ्रीका मे शताब्दियो तक योरोपियनो द्वारा जान-बूझ कर किये गये अपमान के कारण हुए जातीय घावो की गहराई ने अधिकाश जनता को उन जापानी आक्रमणकारियो के स्वागत के लिए उद्यत कर दिया था, जो मुक्तिदाता के रूप मे सामने आये थे।

मलाया प्रायद्वीप से सिंगापुर की ओर बढ़ती हुई जापानी सेना की गोलाबारी ने पश्चिम की अजेय सैनिक शक्ति का भडाफोड कर दिया। नौसेना का यह शक्तिशाली अड्डा और एशिया मे ब्रिटेन के गर्वपूर्ण शासन का द्वितीय प्रतीक हागकाग एशियाई सेनाओं के हाथ मे आसानी से आ गया। जनेवा मे "एशिया एशियावालों के लिए" के प्रथम उपदेशक नही थे। यह वही नारा था, जिसकी प्रेरणा से जापानी सेनाएँ समस्त सुदूर-पूर्व मे विजय पर विजय प्राप्त करती चली गयी।

स्थानीय जनता ने, जो शताब्दियों से पश्चिमी अत्याचारो से मुक्त होने के लिए चिन्तित थी, सर्वत्र जापानियो का स्वागत किया। यदि इस सद-भावना से लाभ उठाने के लिए जापानी काफी नम्र होते तो उन्होने एशिया में अधिक स्थायी सफलता प्राप्त की होती, परन्तु यूक्रेन मे नाजियों की भाँति उन्होंने भी मौका खो दिया।

कुछ ही सप्ताहों मे यह स्पष्ट हो गया कि वे पुराने योरोपीय शासन के स्थान पर और भी अधिक क्रूर तथा उत्पीडक शासन की स्थापना करना

चाहते थे। ज्यो ही जापानियों ने अपने आपको एक नयी प्रभुतावादी जाति के रूप मे सामने रखा, त्योही पुराना उत्साह ढीला पडने लगा और उनका कटु प्रतिवाद होने लगा। युद्ध के बाद एकमात्र एशियाई उपनिवेश फिलीपाइन्स की जनता को स्वतत्रता का वचन दिया गया था और वहाँ युद्ध-काल मे जापानियो का प्रतिरोध अत्यन्त प्रभावशाली ढग से किया गया था।

जापानी शिक्षा के अतिरिक्त, अपनी सीमाओं मे ही व्याप्त विभिन्न प्रकार के जातिगत तथा वर्गगत भेदभाव के प्रति एशियाई देश बडे ही सतर्क थे। उदाहरण के लिए, भारत मे, जिसने अन्तरराष्ट्रीय मचों से श्यामवर्ण लोगो के साथ समानता के व्यवहार की माँगो की इतनी वकालत की, अस्पृश्यता का गहरा धब्बा है। जाति के लिए सस्कृत शब्द 'वर्ण' का अर्थ है 'रग'।

जैसा कि हम देख चुके है, गॉधी ने अपने अनेक अत्यधिक महत्वपूर्ण आन्दोलनो को अस्पृश्यता-निवारण पर निछावर कर दिया था। १९५० के भारतीय सविधान मे उनके प्रयत्नो का सुफल प्राप्त हुआ, जो बहिष्कृत जाति के साथ भेदभाव का सरकारी तौर पर निषेध कर देता है और जिसे १९५५ मे भारी जुर्माना करने के निश्चित कानून के द्वारा और भी मजबूत बना दिया गया। तथापि आदते और सामाजिक सस्थाएँ धीरे-धीरे ही समाप्त होती है और जाति-व्यवस्था, विशेष रूप से गाँवों मे, भारतीय शक्ति के निरन्तर शोषण के रूप मे पडी हुई है।

इसलिए प्रतिनिधियों ने अपने ही देशो मे मौजूद जातिवाद का चिन्ह तक मिटा देने के लिए एशियाई और अफ्रीकी राष्ट्रों का दृढ सकल्प दुहराया और प्रतिज्ञा की कि इसके उन्मूलन के लिए अपने सघर्ष मे उसी का शिकार बन जाने के खतरे से रक्षा के लिए वे अपने पूर्ण नैतिक प्रभाव का उपयोग करेगे।

× × ×

औपनिवेशिक सघर्षण के बाद बाण्डुग-सम्मेलन ने आर्थिक विकास की रचनात्मक समस्याओ पर सबसे अधिक बल दिया। स्याम के राजकुमार वान ने कहा कि मौलिक स्वतत्रता और मानवीय अधिकारों के उपभोग के अतिरिक्त, मनुष्य को अपनी भौतिक आवश्यकताओं की भी पूर्ति करनी है। एशिया और अफ्रीका की अतीव महत्वपूर्ण आवश्यकता आर्थिक कल्याण है और यदि उनको भूख, दरिद्रता और रोगो के खतरे से सुरक्षित रखना है तो अफ्रीका और एशिया के लोगो का जीवन-स्तर ऊपर उठाना अत्यन्त आवश्यक है।

राजकुमार वान को ज्ञात था कि विश्व मे ढाई अरब मानवप्राणियों मे से ६० प्रतिशत लोग आर्थिक दृष्टि से अर्धविकसित देशों मे रहते है और उनमें से अधिकाश का बाण्डुग-सम्मेलन मे प्रतिनिधित्व हुआ था।

उनके विचार से उनकी आर्थिक दशा बहुत हद तक उपनिवेशवाद से बँधी हुई थी। सही या गलत, उनके आर्थिक विकास मे जानबूझ कर बाधा डालने, स्थानीय उद्योग तथा क्षेत्रीय व्यापार के अभाव, सन, चाय, रुई, टिन, मैगनीज, नारियल तथा अन्य चीजों के निर्यात के लिए कतिपय अनिश्चित पश्चिमी बाजारों पर अधिकतर निर्भर रहने और उनके कुशल प्रशिक्षण के अभाव के लिए साम्राज्यवादी शासको को दोषी ठहराया गया। बाण्डुग मे एशिया और अफ्रीका के प्रतिनिधि इस पुरानी कहावत को नही भूल सकते थे कि प्रत्येक योरोपीय औपनिवेशिक शक्ति ने स्कूलों की अपेक्षा जेलों का अधिक निर्माण किया।

इस प्रकार बाण्डुग के सर्वप्रथम वक्तव्य मे ही "एशिया-अफ्रीका के क्षेत्रों मे शीघ्र ही आर्थिक विकास की अत्यावश्यकता" को स्वीकार किया गया। एशिया और अफ्रीका के विचारशील नेता यह जानते थे कि उपनिवेशों के पुराने कुशासन को दोष देने से ही काम नही चलेगा, क्योंकि उन्हे और भी अनेक कठिन समस्याओ का सामना करना था।

नये प्रकार की निश्चयात्मक विचारधारा के आरम्भ के लिए आवश्यक एशिया-अफ्रीका की पारस्परिक टेकनिकल सहायता सम्बन्धी विस्तृत प्रस्ताव स्वीकार किये गये। आर्थिक विकास के उद्देश्य से एक विशिष्ट सयुक्त-राष्ट्र-निधि की स्थापना के लिए प्रार्थना की गयी और साथ ही एशिया और अफ्रीका के लिए विश्व बैंक से अधिक साधन-स्रोत निर्धारित करने और वस्तु-व्यापार तथा मूल्य को स्थिर करने की भी माँग की गयी। प्रतिनिधियो ने एशिया और अफ्रीका के देशों के हेतु शान्तिपूर्ण उद्देश्यों के लिए आणविक शक्ति के विकास के विशिष्ट महत्व पर भी बल दिया।

नये प्रबल राष्ट्रवाद और उपनिवेश-विरोधी जातीय चेतना के सदर्भ म आर्थिक विकास की नयी माँगो का अर्थ होता है कि अविकसित जगत मे न तो सच्चे क्षेत्रीय सहयोग का विकास होगा और न योरोप और अमरीका के लिए नये और सुव्यवस्थित आर्थिक योगदान ही सरल होगे।

फिर भी, कुछ अपेक्षाओं के विपरीत, बाण्डुग के प्रस्तावों मे क्षेत्र से बाहर के देशों से आर्थिक सहयोग की, जिसमे विदेशी पूजी का विनियोग

भी सम्मिलित है, वाछनीयता और आवश्यकता दोनों को स्पष्ट रूप से स्वीकार किया गया।

ठीक ऐसे समय मे, जबकि विज्ञान और टेक्नोलाजी ने उग्र राष्ट्रवाद को देश की भावना के प्रतिकूल बना दिया है, एशिया और अफ्रीका मे दीर्घ-विलम्बित राष्ट्रवाद का उदय इस क्रान्तियों की सबसे बडी विडम्बना है। राजनीतिक एकता का उच्च स्तर और शान्ति-स्थापना मे समर्थ विश्व-सघ, आवश्यक प्रतीत होते है, क्योंकि प्रजातत्रात्मक विकास तथा सुधार के किसी भी महत्वपूर्ण कार्यक्रम की सफलता के लिए शान्ति की नितान्त आवश्यकता है। तथापि शान्ति और आक्रामक राष्ट्रीय प्रभुसत्ता, ये दोनो ही, जिनका एशिया और अफ्रीका के प्रबल नये राष्ट्र दावा कर रहे है, आज तक इतिहास मे परस्पर विरोधी शब्द रहे है।

सयुक्त राज्य अमरीका को एक शताब्दी की स्वाधीनता का लाभ प्राप्त रहा है, जिसके दौरान मे वह सन्धियों और विश्व-सगठनो के झमेले से बचा रह सकता था और अपने भीतरी मामलो पर अपना पूरा ध्यान दे सकता था। वह विश्व को सलाह देता है कि किस प्रकार व्यवहार करना चाहिए और परिणाम के दायित्व से बचना चाहिए, तथापि एशियाई और अफ्रीकी राष्ट्रो के लिए इस तरह की पृथक्ता स्पष्टत असम्भव है। कदाचित् बाण्डुग मे उनका एकत्र होना ही इस बात का प्रमाण है कि वे महसूस करते है कि विशाल क्षेत्रीय अथवा विश्व-एकता मे उनके नये राष्ट्रवाद का किसी हद तक समन्वय, उनके भाग्य के लिए आवश्यक है।

सम्मेलन ने निश्चय किया कि, 'शान्ति और स्वतत्रता अन्योन्याश्रित है', जिसका यही अर्थ है कि कही भी स्वतत्रता का अभाव शान्ति के लिए खतरनाक है, ठीक वैसे ही जैसे बिना शान्ति के सर्वत्र स्वतत्रता के विकास मे बाधाएँ पडती है।

विश्व-शान्ति के उपायो के रूप मे सम्मेलन ने एक प्रभावशाली अन्तर-राष्ट्रीय नियत्रण मे "शस्त्रीकरण मे कटौती और अणु-अस्त्रो की समाप्ति" के लिए अपील की और कहा कि अणु-शक्ति का उपयोग केवल शान्तिमय उद्देश्यो के लिए होना चाहिए, जो सर्वत्र जीवन-स्तर को उठाने मे सहायक होकर "अधिक स्वतंत्रता" को सभव बना सके।

सयुक्त राष्ट्र सघ का समर्थन अनेक अनुमोदित सिद्धान्तो मे से सर्वप्रथम था। संयुक्त राष्ट्र सघ को, शान्ति-स्थापना मे अधिक समर्थ बनाने के उद्देश्य से

सुदृढ बनाने के लिए विशेष कल्पनाशील प्रस्ताव नही प्रस्तुत किये गये, बल्कि अधिकाश एशियाई और अफ्रीकी जनता के लिए कुछ स्पष्ट बातो पर ध्यान दिया गया। सम्मेलन ने निश्चय किया कि सयुक्त राष्ट्र की सदस्यता सबके लिए खुली होनी चाहिए और इसीलिए कम्बोडिया, लका, जापान, जौर्डन लाओस, लीबिया, नेपाल और सयुक्त वियतनाम को भी स्थान मिलना चाहिए।

सुरक्षा-परिषद मे एशिया और अफ्रीकी क्षेत्रो के प्रतिनिधित्व को अपर्याप्त बतलाया गया। एशियावासी यह कहते हुए कभी नही ऊबते कि ससार की दो तिहाई आबादी वाले एशियाई और अफ्रीकी क्षेत्रो का सुरक्षा-परिषद में प्रतिनिधित्व राष्ट्रवादी चीन-सरकार द्वारा हो रहा है, जो केवल ९० लाख लोगो पर शासन करती है और जिसे बाण्डुग मे नही बुलाया गया था।

सम्मेलन ने "प्रत्येक राष्ट्र के अपने अकेले या मिलकर, सयुक्त राष्ट्र सघ के नियमानुसार, आत्मरक्षा करने के अधिकार को स्वीकार किया", परन्तु सामूहिक सुरक्षा की ऐसी व्यवस्थाओ के विरुद्ध आगाह किया, जिनसे किसी बड़ी शक्ति के कुछ विशिष्ट स्वार्थो की सिद्धि होती हो।

इसने मनीला मे स्थापित दक्षिण पूर्वी एशिया सधि सगठन (सीटो) मे सम्मिलित होनेवाले राष्ट्रो को एक प्रकार की मान्यता प्रदान की, परन्तु यह उस क्षेत्र की सामान्य सुरक्षा की समस्या का पर्याप्त समाधान था। साम्यवादी चीन की उपस्थिति के कारण बाण्डुग मे शायद इससे अधिक समाधान की सभावना न थी, परन्तु क्षेत्रीय सुरक्षा के लिए क्षेत्रीय सघ, जिसमे भारत जसे सभी तटस्थ राष्ट्र शामिल होते, शान्ति के लिए सचमुच एक महत्वपूर्ण योगदान होता।

समस्त क्षेत्र के विश्वविद्यालयो मे एशियाई--अफ्रीकी अध्ययन के लिए सस्थाओ की स्थापना का बाण्डुग-प्रस्ताव सचमुच अधिक घनिष्ठ क्षेत्रीय सौमनस्य और अतीत की प्रभावकारी गवेषणा की दिशा मे एक अन्य मूल्यवान कदम था।

परन्तु बाण्डुग मे एक जागतिक दृष्टिकोण बनाये रखने का निरन्तर प्रयत्न होता रहा। जनरल रोमुलो ने अपने अन्तिम भाषण मे कहा, "इस सम्मेलन की सफलता की माप इससे नही होगी कि हम अपने लिए क्या करते है, बल्कि इससे होगी कि हम समस्त मानव समाज के लिए क्या करते है।"

एशिया और अफ्रीकावासियो के अतिरिक्त, जो लोग केवल पर्यवेक्षण के लिए बाण्डुग गये थे, वे व्यापक मानव समाज पर पड़ने वाले बाण्डुग के

प्रभावो की नई जानकारी के साथ वापस लौटे। एक अमरीकी सवाददाता ने, जो सम्मेलन मे उपस्थित था, बाद मे सऊदी अरब, अफगानिस्तान, भारत, बर्मा और स्याम की अपनी यात्राओ के सम्बध मे लिखा है। उसने रिपोर्ट दी कि अधिकारियो द्वारा पासपोर्ट मे बाण्डुग-प्रमाणपत्रो के देखते ही 'कस्टम' की कठिनाइयाँ समाप्त हो जाती थी। यहाँ तक कि जैसे ही यह जादू का शब्द फैलता कि 'मै बाण्डुग गया था', खैबर दर्रे मे भी भीड जमा हो जाती।

यदि एशिया और अफ्रीका के अधिकाश लोग इतिहास से यह समझ सकते कि पूर्ण प्रजातत्रात्मक विकास की उपलब्धि के लिए किस प्रकार अपनी क्रान्ति को पूर्ण किया जाय और यदि वे घृणा, भय और आशका से नही, प्रत्युत आशा और विश्वास से तथा अटलाटिक राष्ट्रो के प्रति मित्रता की भावना से निर्माण करते, तो मुझे विश्वास है कि पश्चिमी ससार के शकालु भी यह स्वीकार करते कि बाण्डुग ने एक ऐसे विश्व को आशा का सन्देश दिया जो प्रमाद और अपने ही उच्चतम विचारो मे अविश्वास की भावना से पीडित है।

पचीसवाँ प्रकरण

बाण्डुंग और शीत युद्ध

चू एन ली की उपस्थिति ने एक प्रकार से क्षेत्र की सामान्य समस्याओ पर विचारविनिमय से बाण्डुग-सम्मेलन को विमुख कर अटलाटिक राष्ट्रो के साथ चीन के सम्बन्धो की समस्या पर अनावश्यक रूप से अधिक बल देने के लिए विवश किया।

एक एशियाई कूटनीतिज्ञ ने बड़ी तेजी के साथ मुझ से कहा कि यदि पश्चिम ने साम्यवादी चीन का बहिष्कार न किया होता और यदि वह भी अन्य साम्यवादी अधिनायकतन्त्रो की भाँति सयुक्त राष्ट्र सघ का सदस्य होता, तो मुझे विश्वास है कि चू एन ली को सम्मेलन मे बुलाया भी न जाता। उसका विश्वास था कि अन्य एशियाई राष्ट्रो द्वारा चीन को सयुक्त राष्ट्र सघ मे लाने के दृढ सकल्प का कारण यह था, कि अमरीका ने एक महान, किन्तु अप्रिय एशियाई क्रान्ति को अमान्य किया था। पेंकिंग-सरकार के प्रतिनिधियो के साथ कार्य तथा बातचीत करने मे एक प्रकार से निषिद्ध फल चखने के तीखेपन का-सा आभास मिलता था।

बाण्डुग मे चू ने निश्चय ही अपना व्यक्तिगत प्रभाव जमा लिया। उन्होने यह विजय न केवल अपने मोहक व्यक्तित्व और मर्यादित दृष्टिकोण से प्राप्त की, बल्कि डेढ अरब लोगो की, जिनका वहाँ प्रतिनिधित्व हो रहा था, गहनतम महत्वाकाक्षाओ के साथ अपन आप को कुशलता के साथ मिला कर के प्राप्त की थी।

उपनिवेशवाद, जातिवाद, आर्थिक विकास तथा शान्ति—बाण्डुग की इन चारो प्रमुख समस्याओ पर चू अपनी सहमति व्यक्त करने को उत्सुक थे। चीनी प्रधान मत्री ने कहा, "एक ही कारण से पीडित और एक ही उद्देश्य के लिए सघर्षशील हम एशियाई और अफ्रीकी लोगो के हृदयो मे एक-दूसरे के प्रति लम्बे अर्से से गहरी सहानुभूति रही है।"

क्या सम्मेलन उपनिवेशवाद के सम्बन्ध मे चिन्तित था? चू एन ली ने कहा, "एशिया और अफ्रीका के अधिकाश देश औपनिवेशिक लूटमार और अत्याचार के शिकार रहे है और इस प्रकार उन्हे स्थिर दरिद्रता और पिछड़ेपन

मे रहने के लिए विवश किया गया था। हमारी आवाजे बन्द कर दी गयी है, हमारी महत्वाकाक्षाओ को चूर-चूर कर दिया गया है और हमारे भाग्य को दूसरों के हाथ सौप दिया गया है। इस प्रकार हमारे सम्मुख उपनिवेशवाद की दासता के विरुद्ध लडने के अतिरिक्त कोई दूसरा मार्ग नही है।"

क्या सम्मेलन को परतत्र राष्ट्रो की स्वतत्रता के बारे मे चिन्ता थी ? चू न कहा कि अल्जीरिया, मोरक्को और टचूनीशिया के लोगो के आत्म-निर्णय और स्वतत्रता-सग्राम के प्रति, फिलस्तीन के अरब लोगो के सघर्ष के प्रति, पश्चिमी इरियन मे हिन्देशिया की प्रभुसत्ता के पुनस्स्थापन के लिए हिन्देशियाइयो के युद्ध के प्रति चीनी जनता पूर्ण सहानुभूति और समर्थन प्रदान करती है।

क्या सम्मेलन को जातिगत भेदभाव और मानवीय अधिकारो के प्रति चिन्ता थी ? चू ने कहा कि एशिया और अफ्रीका के अधिकाश देशो मे आज भी जातिगत भेदभाव व्याप्त है और वे मानवीय अधिकारो से वचित है। जाति और वर्णभेद से मुक्त सभी मानव समाज को मौलिक मानवीय अधिकारो का उपभोग करना चाहिए और उसके साथ किसी भी प्रकार का दुर्व्यवहार तथा भेदभाव नही होना चाहिए। दक्षिण अफ्रीकी सघ और अन्य स्थानो मे मानवीय अधिकारो का अभी तक सम्मान नही किया जाता है।

क्या सम्मेलन सामन्तवादी प्रभावो और आर्थिक विकास के सम्बन्ध मे चिन्तित था ? चू ने कहा कि चीन सहित एशिया और अफ्रीका के अधिकाश देश, औपनिवेशिक प्रभुत्व की दीर्घकालीन अवधि के कारण आज भी आर्थिक दृष्टि से पिछडे हुए है, इसीलिए हम न केवल राजनीतिक स्वतत्रता चाहते है, बल्कि आर्थिक स्वतत्रता भी चाहते है।

शान्ति के सम्बन्ध मे चू ने न केवल सह-अस्तित्व के साम्यवादी नारे को प्रस्तुत किया और नि शस्त्रीकरण के लिए सोवियत अपील पर बल दिया, प्रत्युत सयुक्त राष्ट्र सघ के अन्तर्गत सामूहिक सुरक्षा की सधियो के प्रस्तावो को भी स्वीकार किया। ऐसा करने मे उन्होने साम्यवादी चीन के सिद्धान्तो, व्यवहारो और आशाओ के विपरीत बहुत-कुछ सहन किया।

चू ने सयुक्त राष्ट्र के अधिकारो के विधेयक को भी स्वीकार किया। उन्होने बाहरी सहायता और पूँजी-विनियोग सम्बन्धी प्रस्ताव भी स्वीकार किया। उन्होने खुले आम सयुक्त राष्ट्र सघ की सदस्यता के लिए, जो च्याग को प्राप्त है, चीन के अधिकार पर बल नहीं दिया और बाण्डुग में

सयुक्त राष्ट्र सघ की सदस्यता के लिए जिन नामो की सिफारिश की गयी थी, उनकी सूची मे पेकिग-सरकार को स्थान नही दिया गया था।

फार्मोसा को लेकर जो तनाव पैदा हो गया है, उस पर चू एन ली ने सयुक्त राज्य अमरीका के साथ किसी भी समय बातचीत करने के लिए तैयार रहने की घोषणा की। जहाँ "बाँस के पर्दे" (Bamboo curtain) और पुलिस-राज्य के अभियोग है, वहा उन्होने प्रतिनिधियो को स्वय चीन आकर स्थिति देखने के लिए आमत्रित किया। उन्होने घोर साम्यवाद-विरोधी राजकुमार वान और जनरल रोमुलो जसे प्रतिनिधियो को छाँट कर चीन आने के लिए स्वय आमत्रित किया और बिना मार्गरक्षक के मुख्य भूमि मे कही भी जाने के लिए कहा। रोमुलो ने बाद मे कहा, "उन्होने मुझे अच्छे, बुरे और बीच के सभी रूपो को देख लेने के लिए कहा।"

परन्तु चू की 'भेड जैसी पोशाक' के बावजूद बाण्डुग का शायद ही कोई प्रतिनिधि चीन के 'भेडिये जैसे रूप' की उपेक्षा कर सकता था। पाकिस्तान, अफगानिस्तान, बर्मा, लका, भारत और हिन्देशिया जैसे जिन देशो ने साम्यवादी चीन को मान्यता प्रदान की है, वे अपने पेकिंग स्थित कूटनीतिक प्रतिनिधियो द्वारा जानते है कि चीन के लोगो के लिए साम्यवादी क्रान्ति बहुत महँगी पडी। सामन्तवाद को निर्मूल करने और आर्थिक विकास प्रारम्भ करने के द्रुतगामी प्रयत्न का मूल्य सैनिकवृत्ति, बलात् श्रम, सामूहिक हत्या और नागरिक स्वतत्रता की समाप्ति के रूप मे चुकाना पड़ा है। इस अर्थ मे चीनी साम्यवादी क्रान्ति को किसी भी हालत मे पूर्ण क्रान्ति नही कहा जा सकता, क्योकि बाहर मानव-अधिकार और मौलिक स्वतत्रताओ के खुले प्रचार के बावजूद, इसने इन बातो को घटाया ही है, बढाया नही।

इसी प्रकार असाम्यवादी एशियाई देशो ने अपने ही यहाँ क्रान्तिकारी साम्यवाद की हिंसा के इतने पर्याप्त अनुभव प्राप्त किये है कि वे पेकिंग की शान्ति-घोषणा को उसके प्रत्यक्ष रूप मे स्वीकार नही कर सकते। वे जानते है कि शान्ति की शब्दावली के बावजूद, साम्यवाद की पाठ्य-पुस्तक अब तक शान्ति की नही, बल्कि हिंसा और उपद्रव की रही है।

अधिकाश एशियाई देशो को अपनी स्वतत्रता के प्रारम्भिक वर्षों मे साम्य-वाद के नेतृत्व मे सशस्त्र विद्रोहो का सामना करना पडा। १९४८ मे दक्षिणी एशिया मे फली साम्यवादी हिंसा की वृद्धि का निर्णय मास्को मे किया गया था, जिसे कलकत्ता मे कम्यूनिस्ट सम्मेलन द्वारा और कौमिनफार्म की साप्ता-

हिक पत्रिका द्वारा प्रसारित किया गया था।

जब भारत, बर्मा, हिन्देशिया और फिलीफाइन्स की नयी सरकारो ने अपनी नयी राष्ट्रीयता की शक्ति से सुसज्जित हो इन विद्रोहो को कुचल दिया, तो साम्यवादियो ने एशियाई साम्यवाद की नयी धारा का विरोध न कर उसका अपने लाभ के लिए किसी तरह उपयोग करने का निर्णय किया।

स्वाधीन एशियावासी यह सब जानते है और उसे आज भी याद करते है, किन्तु हमारे युग के भ्रान्तिपूर्ण वातावरण मे समय उनकी स्मृति की तीव्रता को नष्ट कर रहा ह। इस पतन की अवधि मे साम्यवादी उन लोगो के विचारो तथा उद्देश्यो के साथ मैत्री करने के लिए बहुत सतर्क है, जिन्हे वे अपने पक्ष में करना चाहते है।

यह अजीब बात है कि जो साम्यवादी आर्थिक निर्णयवाद के प्रति समर्पित समझे जाते है, उन्होने समस्त औपनिवेशिक जगत मे अपने राजनीतिक आन्दोलनो मे बडी चतुराई से अनार्थिक तत्वो का उपयोग किया। दूसरी ओर, अमरीकी नीति ने सभी महत्वपूर्ण मनोवैज्ञानिक तथा राजनीतिक वास्तविकताओ को, ऐसा प्रतीत होता है कि, बहुत कम समझा है।

इस प्रकार, सयुक्तराष्ट्र सघ की वृहत्सभा और ट्रस्टीशिप कौसिल मे, जहाँ अनेक अवसरो पर विश्व का ध्यान औपनिवेशिक समस्याओ पर केन्द्रित हुआ है, सयुक्त राज्य अमरीका ने एशिया और अफ्रीकावासियो के निर्णयो मे तुलनात्मक दृष्टि से अपनी कमजोरी का प्रदर्शन किया। उदाहरण-स्वरूप, १९५४ मे साइप्रस, मोरक्को, ट्यूनीशिया और डच के पश्चिमी न्यू गिनी (इरियन) की औपनिवेशिक समस्याओ को सयुक्तराष्ट्र की वृहत्सभा मे विचार के लिए प्रस्तुत किया गया। अधिकाश भूतपूर्व औपनिवेशिक अरब और दक्षिणी अमरीकी राष्ट्रो के विचारो के विरुद्ध अमरीकी प्रतिनिधिमण्डल ने अनेक कारणो से बृहत्सभा के वादविवाद मे इन अभी भी परतन्त्र राष्ट्रो के दावो का सफलतापूर्वक विरोध किया। सिनेटर वाल्टर जार्ज ने हमें जुलाई, १९५५ मे आगाह करते हुए कहा था, "ऐसे कार्यो ने प्राय अमरीकी सयुक्त-राज्य को उपनिवेशवाद के पक्ष मे ही प्रदर्शित किया ह।"

सोवियत सघ सयुक्तराष्ट्र मे उपनिवेशवाद का सबसे जोरदार विरोधी रहा है। १९२० के दशक के प्रारम्भ से ही सभी अन्तरराष्ट्रीय सम्मेलनो मे सोवियत प्रतिनिधियो ने रूस को उपनिवेशवाद-विरोधी पक्ष से निरन्तर संलग्न कर रखा है।

बाण्डुग के अनेक अफ्रीकी प्रतिनिधियो ने पूर्वी योरोपीय देशो के रेडियो-स्टेशनो से प्रसारित चतुर साम्यवादी वार्ताओ को अवश्य सुना होगा, जैसा कि १९५५ की सर्दियो मे मैंने भी अफ्रीका मे सुना था, जो औपनिवेशिक अफ्रीका मे अनेक भाषाओ मे प्रकट होती थी। फिलहाल, इन रेडियो-प्रसारो के विशेष लक्ष्य फ्रान्सीसी उत्तरी अफ्रीका के अरब थे, परन्तु विस्तार और प्रभाव मे वे और भी बढ सकते है। यद्यपि रूसी स्वय नये उपनिवेशवाद के आरोप से मुक्त नही है, तथापि हमारे सूचना-कार्यक्रम मे इस मसले पर उन्हे कोई प्रभावशाली चुनौती नही दी गयी है। इसने उन्हे अबाध गति से उपनिवेश-वाद के विरोधी पक्ष का प्रभावपूर्ण ढग से नेतृत्व करने के लिए स्वतत्र छोड़ दिया है।

योरोपीय ढग के उपनिवेशवाद के सुदृढ विरोध के साथ सलग्न है मास्को की जातिवाद-विरोधी नीति। उदाहरण के लिए, जब यह प्रश्न उठा कि दक्षिणी अफ्रीका के सयुक्त राष्ट्र सघ के साथ असहयोग के बावजूद, दक्षिण अफ्रीका की जातीय स्थिति की जाँच सम्बन्धी सयुक्त राष्ट्रीय तीन व्यक्तियो का पर्यवेक्षण आयोग जारी रखा जाय या नही, तब सोवियत गुट ने एशियाई और अफ्रीकी देशो के प्रस्ताव का समर्थन किया।

ब्रिटेन, कनाडा, आस्ट्रेलिया और न्यूजीलैण्ड ने विरोध किया और सयुक्त-राज्य अमरीका ने मत नही दिया। हमने आयोग की प्रथम रिपोर्ट का इस आधार पर विरोध किया कि उसने सोवियत सघ के इस दिखाऊ दावे को स्वीकार कर लिया था कि उसने जातिगत भेदभाव पर प्रतिबध लगा दिया है, परन्तु इससे उस अर्ध-विकसित जगत को सन्तोष नही हुआ, जो अफ्रीका के जातिवाद से सम्बद्ध था न कि रूस के।

५ अप्रैल, १९५५ को 'इण्डियन एक्सप्रेस' ने कहा, 'यदि रूस अथवा चीन मे अपनी राय के लिए लोगो को दबाना अनुचित है, तो अफ्रीका मे अपने वर्ण के लिए लोगो को दबाना और भी बुरा है ..। सच तो यह है कि पश्चिमी शक्तियाँ साम्यवाद के भय से आक्रान्त है और जातिवाद के साथ अपने कुचक्र से वे स्वतत्रता के शत्रुओ को महान नैतिक लाभ पहुँचा रही है।'

इसके अतिरिक्त मास्को ने जातीय समानता के प्रश्न पर अपने अच्छे आलेख के प्रति विश्व को विश्वास दिलाने मे सफलता प्राप्त की है। यह यातना की समानता हो सकती है, और अत्याचार की समानता हो सकती है, परन्तु कम से कम, क्रूर सेमेटिक धर्म-विरोधी स्तालिन के अन्तिम दिनो तक और

युद्ध के बाद कुछ राष्ट्रीय गुटो के समाप्त कर दिये जाने तक, रूस अपेक्षाकृत व्यवस्थित उत्पीडन अथवा जातीयता के आधार पर भेदभाव से मुक्त था।

इस मसले पर साम्यवादी विश्व-आन्दोलन साम्यवादी चीन के उद्भव के कारण भली भाँति सुरक्षित हो गया है, क्योकि अब ससार मे सबसे बडा साम्यवादी देश एक 'सवर्ण' एशियाई देश है। चू को बाण्डुग मे कदाचित् सबसे अधिक सहायता इसी बात से मिली कि वह भी एक साथी एशियाई देश था।

इस लाभ की स्थिति को उस शका से भली भाँति नापा जा सकता है, जिसका सामना एक अमरीकी को अपने ही देश मे बरते जाने वाले जातीय भेदभाव के कारण करना पडता है। जब मै भारत मे था, तब बार-बार मुझसे यही प्रश्न पूछ जाता था कि क्या हमने जापान पर इसीलिए अणुबम फेका था कि वे 'पीले' थे और हमने जर्मनी पर इसीलिए अणुबम नही फेका कि वे 'गोरे' थे ? इस प्रश्न पर उनकी शका का कोई भी स्पष्टीकरण समाधान मै न कर सका।

आगे चल कर भविष्य मे, अमरीका मे इस जातीय भेदभाव के निराकरण मे हमारी प्रगति का समस्त विश्व पर व्यापक प्रभाव पडेगा। इस दृष्टि से कहा जा सकता है कि हाल के वर्षों मे अमरीकी परराष्ट्र नीति का अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रमाणपत्र, 'व्हाइट हाउस' अथवा विदेशविभाग से नही निकला, प्रत्युत सयुक्त-राज्य अमरीका के सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय को सुनाते हुए मुख्य न्यायाधीश ने सतुलित शब्दो मे कहा था कि सविधान द्वारा सार्वजनिक स्कूलो मे जातीय पृथक्करण निषिद्ध है।

एशिया और अफ्रीका की औद्योगिक विकास की अभिलाषा को साम्यवाद कदाचित् सबसे अधिक प्रभावित करता है। एक महान औद्योगिक शक्ति के रूप मे रूस का अभ्युदय, जो दो ही पीढियो के साम्यवादी विकास के बाद समस्त अटलाटिक क्षेत्र को सशकित कर सकने की क्षमता रखता है, एशिया की कल्पना को उत्तेजित कर देता है। यदि चीन किसान-सगठन और खाद्योत्पादन की विकट समस्या को हल करने में सफल हो जाता है और तेजी से उद्योगीकरण की दिशा मे बढता है, तो साथी एशियाई राष्ट्र होने के कारण उसका प्रभाव और भी अधिक आकर्षक होगा।

× × ×

जबकि बाण्डुग में उपस्थित अधिकाश राष्ट्रो ने साम्यवाद और चीन के

इन विभिन्न आकर्षणो को अस्वीकार कर दिया था, उन्हें मालूम था कि प्रभाव की वास्तविक शक्ति का प्रयोग न तो एशिया और अफ्रीका के नेताओ पर, और न प्राय भूखे मजदूरो और किसानो पर हो रहा था, बल्कि मुख्यत. युवको पर और कभी-कभी हताश बुद्धिजीवियो पर हो रहा था, जो अनिवार्यत क्रान्तिकारी नेता होते आये है।

एक युवक विद्यार्थी पर, जो पश्चिमी प्रभाव के उदार कला-विश्वविद्यालय से ग्रेजुएट होकर दरिद्रता के जगत मे प्रवेश करता है, जहाँ प्राय उसे कोई काम नही मिलता, साम्यवाद का विशेष प्रभाव है। यह आज के अर्धविकसित समाज का एक अशुभ रूप ह्। शताब्दियो तक एशिया और अफ्रीका के नवयुवको ने बिना किसी मीन-मेख के पुरानी परम्पराओ को स्वीकार कर लिया। प्राचीन परिवार-पद्धतियॉ, कबीलो के रीतिरिवाज और धार्मिक आदर्शो ने विचारो, कार्यो और अवसरो की सीमाएँ निर्धारित कर दी थी। इन स्थिर और जकडे हुए समाजो मे पश्चिमी प्रजातत्र के विचार तथा आदर्श और व्यक्तिवाद प्रबल प्रभजन की भाँति आये।

ईसाई धर्मप्रचारक अफ्रीका भर मे फैल गये और उन्होने दो करोड लोगो का धर्म-परिवर्त्तन किया। योरोप के कालेज-प्रोफसरो ने भारत और दक्षिण-पूर्वी एशिया की यात्रा की। केपटाऊन से शघाई तक के हजारो धनाढ्य लोगो के पुत्रो ने पश्चिमी शिक्षा के लिए योरोप और अमरीका की लम्बी यात्रा की।

वहाँ इन नवयुवको को इनके शिक्षको ने समझाया कि व्यक्ति ही सबसे अधिक महत्वपूर्ण होता है और उसको स्वतत्रापूर्वक अपने लिए सोचने-विचारने, कार्य करने तथा अपनी शक्ति के अनुसार आगे बढने का अधिकार है। एशिया और अफ्रीका में जीवन के इन अत्यावश्यक सिद्धान्तो ने, जिन्हे पश्चिम ने स्वीकार किया था, क्रान्तिकारी प्रभाव उत्पन्न किये।

परन्तु इन नवयुवको ने, बड़े उत्साह के साथ पश्चिम के नये उत्तेजक विचारो को स्वीकार करने के बाद, भय के साथ देखा कि योरोप और अमरीका के बाहर अधिकाश योरोपवासी इन विचारों को अपनी निश्चित मर्यादाओ के भीतर ही लागू होने देना चाहते थे। एशिया और अफ्रीका की औपनिवेशिक दुनिया मे इन मर्यादाओं की परिभाषा वर्ण, जाति तथा राष्ट्रीय मूल के अर्थ में की जाती थी।

चूँकि इस भेदभाव ने उन्हीं उपदेशो का खण्डन किया, जो अपनी जड़ जम

चुके थे, इसलिए इसका परिणाम निराशा और क्षोभ के रूप मे प्रकट हुआ। अधिकाश युवक एशिया और अफ्रीकावासियो की दृष्टि मे इसका अर्थ यह हुआ कि योरोप और अमरीका ने भी अपनी लोकतात्रिक क्रान्ति का तिरस्कार कर दिया है।

इनमे से अधिकाश नवयुवको ने आर्थिक अवसर की कठोर मर्यादाओ का सामना किया। उनमे से अनेक आदर्शवादी और देशसेवा के लिए उत्सुक थे और अपने चतुर्दिक भयकर दरिद्रता को देख कर काँप उठे थे तथा उसका हृदय से उपचार करना चाहते थे। उनको एक साम्यवादी आन्दोलनकारी, हमारे परिचित व्यगचित्रो की भाँति, हाथ में काले साँप के कोडे के साथ स्वेच्छाचारी पिशाच के रूप मे नही दिखाई देता, बल्कि प्राय एक उत्सर्गी व्यक्ति जान पडता है, जो उनके लिए मानवता की सक्रिय सगठित सेवा का उज्ज्वल साधन प्रस्तुत करता है।

इस नये प्रकार के अनुशासन मे अनेक युवक आदर्शवादी एशियाई, कम से कम कुछ समय के लिए, सुरक्षा और उद्देश्य का सन्तोषप्रद भाव प्राप्त करते है। दल उनको बताता है कि उन्हे किसे पसन्द करना है, किससे घृणा करनी है और, सर्वागीण मार्क्सवादी सिद्धान्त के अन्तर्गत क्या करना है। युवक साम्यवादी उस विशाल आन्दोलन में अपनी पीढी के लोगो के साथ-साथ कधे से कधा मिलाकर कार्य करने की महत्ता को शीघ्र समझता है, जिसका उद्देश्य एक सयुक्त वर्गहीन जगत का निर्माण करना है।

वह पढता है कि लेनिन ने एक बार कहा था, "हम एक सुदृढ टोली मे, एक दूसरे का कस के हाथ पकडे कठिन मार्ग पर चल रहे है।" उसको बार-बार याद दिलायी जाती है कि इस समय उसके देश मे साम्यवाद की अन्तिम विजय का रूप चाहे कितना भी अधकारपूर्ण क्यो न दिखाई देता हो, रूस मे १९०६ मे और चीन मे १९२७ मे साम्यवादी क्रान्ति का भविष्य इससे भी कम आशाप्रद था।

एशिया के नवयुवको को साम्यवादी आन्दोलनो मे जो सबसे अधिक आकर्षक वस्तु प्रतीत होती है, वह यह है कि इसके नेता अपने विचारो के दृढ और एकदम निःस्वार्थी व्यक्ति प्रतीत होते है। सयुक्तराज्य अमरीका, कनाडा, स्वीडन, स्विट-जरलैण्ड और ब्रिटेन जसे ईमानदारी के साथ शासित देशो में यह शायद ही किसी व्यक्ति को प्रभावित कर सकता है, परन्तु एशिया मे, जहाँ इतना अधिक भ्रष्टाचार और अमीरो द्वारा गरीबो का दुरुपयोग है, इसका प्रभाव प्रायः

विस्फोटक ही होता है।

हिन्दचीन मे जोसेफ एल्सोप ने लिखा, 'मै असाम्यवादियो मे साम्यवादियो द्वारा प्रेरित नतिक उत्साह और किसानो के प्रबल समर्थन से सबसे अधिक प्रभावित हुआ था।' हजारो आत्मत्यागी और नि स्वार्थी नेताओ, उद्देश्य के लिए बलिदान और प्राणोत्सर्ग की उनकी इच्छा, कम्यूनिस्ट क्षेत्र की आर्थिक व्यवस्था, कार्यकुशलता और नैतिक एकता तथा फ्रासीसी अधिकृत सेगाँव की 'अराजकता और भ्रष्टता' के बीच के अन्तर के बारे मे उन्होने बहुत-कुछ लिखा।

उत्साहवर्द्धक आदर्शवाद के प्रारम्भिक काल के उपरान्त, युवक साम्यवादी की आँखे प्राय खुल जाती है। वह अपने को पारिवारिक जीवन, अपने दल अथवा धर्म की निष्ठाओ तथा परम्परागत नैतिक मूल्यो के दबाव मे पाता है। उसे उन भव्य उद्देश्यो की प्राप्ति के लिए धोखेबाजी और हिंसा को उचित साधनो के रूप मे अपनाने के लिए कहा जाता है, जिन्होने सर्वप्रथम उन्हे साम्यवाद की ओर खीचा था। कभी वह इस सामञ्जस्य मे सफल होता है और कभी नही। उनमे से बहुतरे अन्ततोगत्वा साम्यवादी सिद्धान्त त्याग देते है और उनकी स्थिति बडी दयनीय हो जाती है। उन्होने समाज को चुनौती दी है और वे साधारण जीवन मे सुखी नही रह सकते तथा उन्होने वह भावुकतापूर्ण सुरक्षा भी खो दी है, जो कभी साम्यवादी दल द्वारा प्रदान की गयी थी।

फिर भी, बाण्डुग मे प्रतिनिधित्व प्राप्त असाम्यवादी राष्ट्र 'भ्रमनिवारण' की इस प्रक्रिया पर निर्भर नही रह सकते थे, बल्कि वे अपने देशो मे साम्यवाद को एक बडी आपत्ति के रूप मे बढने से रोकने के लिए प्रयत्नशील थे। तथापि साम्यवादी क्रान्तिकारी शक्ति के बावजूद, वे एक ठोस बात से यह अनुभव करने के लिए प्रोत्साहित होते है कि, एशिया और अफ्रीका के नये राष्ट्रो को सभव है, अपने भाग्यनिर्माण का अवसर प्राप्त हो।

इसके सैद्धान्तिक प्रभाव की शक्ति और इसके अनेक नेताओ की असाधारण योग्यताओ के बावजूद, विश्व भर मे साम्यवाद चालीस वर्षों में दो मे से केवल एक स्थिति में सफल हुआ है।

प्रथम तो उन दुर्बल और विभाजित राष्ट्रो का मामला है जो या तो लाल सेना के आधिपत्य मे है अथवा उसकी सीमाओ पर शक्तिशाली लाल सेनाएँ है। इस प्रकार १९४५ और १९४८ के बीच सुदक्ष राजनीतिक कूटनीति से युक्त

सैनिक कार्रवाई के इस भय ने, मास्को को युद्ध-पीडित बालकन, हगरी, चेकोस्लोवाकिया और पोलैण्ड को हथिया लेने के योग्य बनाया।

जिन अन्य स्थितियो मे साम्यवाद सफल हुआ है, वे है एक प्रबल स्वदेशी साम्यवादी नेतृत्व की आवश्यकता, जो अन्याय, दरिद्रता, भ्रष्टाचार और निराशा मे जनता को अनुयायी बनाने के लिए मार्क्सवादी सिद्धान्तो के प्रयोग के सम्बन्ध मे काफी लचकदार हो और इन बुराइयो के निराकरण के लिए पूर्ण प्रजातत्रात्मक क्रान्ति को कार्यान्वित करने मे असाम्यवादी सस्थाओ की असफलता। जैसा कि हम देख चुके है, यह एक प्रणाली थी, जिसका विकास लेनिन के अधीन रूस मे, माओ के अधीन चीन में और कुछ हद तक हो ची मिन्ह के अधीन हिन्द-चीन मे भी हुआ।

प्रथम प्रकार की स्थितियाँ अफ्रीका मे नही है, एशिया मे केवल कोरिया, हिन्दचीन, बर्मा, तुर्की, स्याम, ईरान, नैपाल और अफगानिस्तान में ही है। दो असाम्यवादी राष्ट्र, भारत और जापान, जो सबसे अधिक शक्तिशाली है, विकट पर्वत श्रणियो अथवा सामुद्रिक सीमाओ से पृथक हो गये है।

जहाँ तक दूसरी प्रकार की स्थितियो का सम्बन्ध है, प्रबल और सुनियत्रित स्वदेशी साम्यवादी आन्दोलन वियतनाम के अतिरिक्त अन्यत्र कही भी नही है। भारत, फिलीपाइन्स, बर्मा, हिन्देशिया और जापान में अधिकाश साम्यवादी नेता क्रान्तिकारी यात्रिक से अधिक नही है, जिनकी विचारधारा मास्को और पेकिंग के 'धर्मोपदेश' के अनुसार विभिन्न अर्थों मे सचालित होती रहती है। यही एक प्रमुख कारण था कि १९५५ मे भारत का साम्यवादी दल राजनीतिक दिवालियेपन की स्थिति मे पहुँचा प्रतीत होता था।

जब तक यह कठोर नियत्रण रहता है, तब तक एक असाधारण नेता के उद्भव की सभावना बहुत ही कम रहेगी, जो जनता मे अपना व्यापक आधार बना ले। लेनिन और माओ दोनो मे से कोई भी सफल नही हो सकता था, यदि उन्होने विदेशी राजधानियो मे हजारो मील दूर बैठे विचारको के आदेशो के पालन की आवश्यकता समझी होती।

× × ×

साम्यवादी सफलता के मार्ग में दूसरी बाधा एशिया के साम्यवादी आन्दोलन के नेतृत्व के लिए चीन और रूस में बढती हुई स्पर्द्धा हो सकती है। रूस सगठन और साधनो की दृष्टि से अधिक अच्छी स्थिति मे है। चीनियो को यह लाभ है कि वे एशियावासियो से एशियावासी की भाँति बात कर सकते हैं।

चीन को अपनी क्रान्ति के ग्रामीण आधार पर एक और लाभ है। जहाँ कही भी भूमि कुछ ही लोगो के पास है, जहाँ कही भी लगान अधिक है और महाजन बहुत लाभ उठा रहे है, वही भयानक घृणा है। उसका शक्तिशाली सगठन किया जा सकता है, जसा कि माओ ने चीन मे करके दिखा दिया।

एशिया मे साम्यवादी आन्दोलन के नेतृत्व मे रूस की सबसे बडी भूल यह थी कि उसन चीन मे बोरोडीन की विफलता से शिक्षा नही ग्रहण की और शहर के नगण्य सर्वहारा पर उसे आधारित करने की हठधर्मी जारी रखी। १९४९ के अन्त तक, सोवियत नियत्रित नियमबद्ध कोमिन्फार्म ने अनिच्छा से माओत्सेतुग की ग्रामीण पद्धति को एशिया के लिए एक आदर्श के रूप मे स्वीकार किया।

१९४९ मे चीन मे माओ की विजय के उपरान्त एशिया के साम्यवादी मामलो मे पेकिंग का प्रभाव इतनी सावधानी के साथ बढता रहा है कि १९५५ तक एशिया और अफ्रीका मे साम्यवादी दलो का सगठन और निर्देशन शक्तिशाली सघर्ष का स्रोत बन गया था। मास्को मे बाण्डुग से भेजे गये प्रमुख अरब, अफ्रीकी तथा एशियाई नेताओ के साथ चू एन ली की सच्ची बातचीत के चित्रो की मिश्रित प्रतिक्रियाएँ हुई होगी।

परन्तु यह प्राय. नही कहा जा सकता कि एशिया मे साम्यवाद का भविष्य, बाण्डुग में उपस्थित असाम्यवादी राष्ट्रो की अपनी पूर्ण प्रजातत्रात्मक क्रान्ति की प्रतिज्ञा को कार्यान्वित करने की योग्यता की अपेक्षा, मास्को या पेकिंग के निर्णयो पर कम निर्भर करेगा।

जो देश पश्चिमी औपनिवेशिक परतत्रता से अपने को मुक्त कर स्वतत्रता के साथ सुधारो और प्रजातंत्रात्मक क्रान्ति की रचना मे आगे बढता जा रहा है, जैसा कि बर्मा के हाल के इतिहास से स्पष्ट है और जो हिन्दचीन के अनुभवो के बिलकुल विपरीत है, वहाँ साम्यवाद के लिए बहुत कम अवसर है। एशिया और अफ्रीका के भविष्य का इतिहास और कदाचित् इस प्रकार समस्त ससार का इतिहास इन दो दक्षिण-पूर्वी एशियाई राष्ट्रो की विभिन्न कहानियो मे पढा जा सकता है।

ऊपरी दृष्टि से देखा जाय तो उनमे बहुत कुछ एक-सा मिलेगा। प्राकृतिक साधन-स्रोतो में—पर्याप्त वर्षा, अच्छी भूमि और निर्यात के लिए अतिरिक्त चावल—दोनो ही सम्पन्न है। इनमे से किसी भी राष्ट्र मे आबादी अधिक नही है। फ्रान्स, बैलजियम और हौलण्ड के सम्मिलित क्षेत्र से भी बड़े बर्मा मे

१ करोड ९० लाख की आबादी है। वियतनाम लगभग इटली के बराबर है। उसकी आबादी २ करोड ४० लाख है।

ये समताएँ केवल प्राकृतिक नही है। इन राष्ट्रो मे से प्रत्येक का औपनिवेशिक अधिकार का लम्बा इतिहास है। वियतनाम पर फ्रान्सीसी सत्ता १९ वी शताब्दी के मध्य मे दृढता के साथ स्थापित हुई थी और ब्रिटेन ने १८८६ मे बर्मा की बची खुची स्वतत्रता का भी सफाया कर डाला। द्वितीय विश्व-युद्ध मे प्रत्येक राष्ट्र पर जापानियो का अधिकार हो गया।

दोनो ही देशो मे युद्ध-काल मे जापान-विरोधी गुरिल्ला आन्दोलन विकसित हुए, जिनको ब्रिटिश और अमरीकी समर्थन प्राप्त था। गुरिल्लो मे साम्यवादी नेता प्रमुख थे। जब अन्त मे जापानियो को खदेड बाहर किया गया, तब दोनो देशो मे पूर्ण स्वतत्रता के लिए एक-सी व्यापक माँग हुई।

परन्तु समानताओ का यही अन्त हो जाता है। वियतनाम मे और लाओस तथा कम्बोडिया के दो सयुक्त राज्यो मे, जैसा कि हम देख चुके है, फ्रान्सीसी हिचकते-झिझकते रहे, जिसके परिणामस्वरूप आठ वर्षीय विनाशकारी गृह-युद्ध और जबर्दस्त सैनिक पतन हुआ और एक विभाजित देश की अशान्तिपूर्ण विराम-सन्धि हुई।

१९४६ मे, ब्रिटेन के विरुद्ध सशस्त्र विद्रोह के साथ बर्मा भी गृह-युद्ध के किनारे पर था, परन्तु १९४७ मे बर्मा की उठती हुई राष्ट्रीय भावना को दबाने के लिए सेना भेजने के बजाय ब्रिटेन ने बुद्धिमानी के साथ एशिया की क्रान्ति को स्वीकार किया और पूर्णरूपेण हट जाने का समझौता किया।

१९४९ मे यद्यपि अग्रेजो के हट जाने के कारण साम्यवादी इस बात से निराश थे कि वे "उपनिवेशवाद का नाश हो" के नारो से वचित रह गये, जिसके लिए फ्रान्सीसियो ने वियतनाम मे अच्छा अवसर दिया, तथापि उन्होने स्वतत्र बर्मा की नवजात सरकार के विरुद्ध खुला सशस्त्र विद्रोह प्रारम्भ कर दिया। १९४९ के उपरान्त उनका अनुसरण करेन्स ने किया, जो बर्मा की पूर्वी सीमा के जबर्दस्त लडाकू लोग थे और एक स्वतत्र राज्य की स्थापना के लिए कृतसकल्प थे । १९५१ तक समस्त बर्मा मे युद्ध फल गया और स्वतत्र बर्मी गणराज्य का भविष्य सचमुच अन्धकारमय दिखाई देने लगा।

उसी वर्ष नयी सरकार की कठिनाइयाँ उस समय और भी बढ गयी, जब आठ या दस हजार राष्ट्रवादी चीनी सेना न., जिसे चीनी साम्यवादियो ने अपनी सीमा से पार बर्मा की उत्तरी सीमा के शान प्रान्त मे खदेड दिया था, राष्ट्र-

व्यापी उपद्रव मे सम्मिलित होने का निश्चय किया।

१९५१ के अन्त मे बर्मा की नयी सरकार की सैनिक दुर्बलता का अनुमान लगा कर अमरीकी सरकार ने यह समझ लिया था कि, बर्मा का पतन होने ही वाला है। उसी तरह यह विश्वास करके कि सरकार अन्तिम साँस ले रही है, चीन की राष्ट्रवादी सरकार ने जनरल ली मी के राष्ट्रवादी विद्रोहियो को सहायता पहुँचाने के लिए, फार्मोसा से वायुयानो द्वारा अमरीकी सामग्री भेजना शुरू कर दिया और इस प्रकार युद्धरत नव गणराज्य की समस्याओ को और भी उलझा दिया।

फिर भी, पेकिंग से नई दिल्ली पहुँचने वाली खबरो के अनुसार चीन की साम्यवादी सरकार ने, एशिया मे शक्ति के वास्तविक स्रोतो को समझकर लगभग इसी समय बर्मा की साम्यवादी क्रान्ति को असफल मान लिया। बर्मा के नये गणराज्य की स्पष्ट दुर्बल स्थिति के बावजूद, बर्मा मे साम्यवादियो की सहायता के लिए, जहाँ तक ज्ञात है, चीन ने किसी प्रकार की सनिक सामग्री और शस्त्रात्र नही भेजे। पेकिंग-सरकार ने स्पष्टत यह निर्णय किया कि इस प्रकार का हस्तक्षेप स्वतत्र बर्मा को यह कहने का एक मौका देगा कि, साम्यवादी विद्रोहियो को चीन से आर्थिक सहायता मिल रही है और इस प्रकार विदेशी प्रभुत्व पुराने भय को फिर से जागृत कर देगा।

धीरे-धीरे प्रधानमत्री ऊ नू तथा उनके साथियो ने मिलकर अपेक्षाकृत ठोस आधार पर सरकार की स्थापना करने मे सफलता प्राप्त की। राजनीतिक तथा आर्थिक सुधारो के समर्थन से, जो ठीक समय पर और ईमानदारी से प्रारम्भ किये गये, साम्यवादियो के पैरो तले जमीन खिसक गयी।

१९५४ मे आत्मसमर्पण करने वाले अन्तिम मुख्य साम्यवादी नेता ने स्पष्टत कहा, "ऊ नू ने उसी ग्राम-कार्यक्रम को कार्यान्वित किया, जिसके लिए हम साम्यवादी वायदे करते आ रहे थे और इसीलिए हमारे सम्मुख जनता का समर्थन प्राप्त करने का कोई मार्ग ही नही था।"

यह कहानी एशिया मे स्वदेशी राष्ट्रवाद की शक्ति को समझने की साम्यवादियो और पश्चिमी लोगो की योग्यता के अन्तर को प्रकट करती है। चीनी साम्यवादियो ने बर्मा और वियतनाम के लोगो की राष्ट्रवादी भावना की शक्ति को स्वीकार करते हुए, स्वतत्र बर्मा की स्वतत्र लोकप्रिय सरकार का विरोध नही किया, परन्तु फ्रान्सीसियो के विरुद्ध वियतनामी राष्ट्रीय विद्रोह का विश्वास के साथ समर्थन किया। अमरीका, स्पष्टरूप से राष्ट्रीय भावना

की शक्ति को न समझते हुए, बर्मा के सम्बध मे इतना निराशावादी था कि, जिस समय बर्मा अपने जीवन-सग्राम मे विजयी हो रहा था, उस समय वह उसके भविष्य के सम्बन्ध मे निराश हो गया था।

मार्च, १९५५ तक, जब मै बर्मा की राजधानी रगून गया था, नौ महीने तक किसी भी अमरीकी राजदूत ने वहाँ पर अपना प्रमाण-पत्र नही दिया। इन वर्षो मे, जब कि हम बर्मा की अवहेलना कर रहे थे, हम पास ही में मरणासन्न फ्रान्सीसी औपनिवेशिक शासन को किनारे लगाने के प्रयत्नो मे लगभग ३ अरब डालर खर्च कर रहे थे।

बाण्डुग मे जो नेता एकत्र हुए थे, इनके दिमागो मे बर्मा और हिन्दचीन का अन्तर निस्सन्देह बिल्कुल ताजा था। वे जानते थे कि यदि उनके देश भी बर्मा की भाँति शक्तिशाली प्रजातन्त्रात्मक विकास और सुधारो की ओर अग्रसर हो, तो उन्हे साम्यवाद द्वारा बहुत कम भय होगा।

बाण्डुग मे साम्यवाद की छाया इतनी अधिक नही थी, जितना असाम्यवादी देशो मे इस बात का भय था कि इस चुनौती को स्वीकार करने मे उनमें साहस और शक्ति का अभाव हो सकता है। इस भय के साथ कुछ इस बात की चिन्ता भी थी कि अमरीका और पश्चिम, चीन मे माओ की विजय से शिक्षा न ग्रहण कर, अब शायद वियतनाम के उतने ही विनाशकारी सबक और उत्तरी अफ्रीका के बढते हुए सकट की उपेक्षा करे अथवा उसका गलत अर्थ लगाये।

राजनीतिक और आर्थिक सहायता के रूप मे प्रत्येक व्यक्ति मानता था कि अमरीका का निर्णय यह निश्चित करन मे अन्तिम हो सकता है कि दरिद्रता, अज्ञान, रोग और साम्यवाद की भयानक बाधाओ के सामने प्रजातन्त्रात्मक मार्ग प्रशस्त हो सकेगा या नही। लका के प्रधान मत्री, सर जान कोटलावाला ने कहा, "एशिया मे जो मौलिक स्पर्धा चल रही है, वह चीन और स्वतत्र एशिया मे आर्थिक विकास की है।" उन्होने यह भी कहा कि एशिया मे आर्थिक विकास को लगभग ध्वनितरगो की तीव्रतम गति से बढाना होगा।

उन्होने आगे कहा, "यदि विश्व के अधिक धनी देश एशिया के दरिद्र देशो की सहायता कर शीघ्रातिशीघ्र उन्हे फिर से अपने पैरो पर नही खडा कर देते तो चीन का दृश्य और उदाहरण भयानक एव विनाशकारी सिद्ध होगा।"

परन्तु सर जान निश्चय ही इस बात से सहमत होगे कि इसकी कसौटी यह नही कि अटलाटिक राष्ट्र उसका प्रत्युत्तर किस प्रकार देते है, बल्कि यह है कि स्वयं एशिया और अफ्रीका के लोग किस तरह प्रत्युत्तर देते है। यदि स्वतत्र

एशिया और अफ्रीका के नेता और पश्चिम के उनके साथी अपने देशो की आवश्यकताओ तथा आशाओ के अनुकूल तत्पर हो सकते, तो यह समय प्रजातत्र का 'वाटरलू' न होकर 'वेली फोर्ज' सिद्ध हुआ होता।

बाण्डग मे प्रधान-मत्री नेहरू ने अपने भाषण के अन्त मे कहा, "हमें कुछ करने का अवसर प्राप्त हुआ है और हमे शीघ्र ही कुछ करना चाहिए। यदि हम ऐसा नही करते तो हम लोग मुर्झा जायेंगे, ठोकरे खायेंगे और ऐसा गिरेंगे कि बहुत समय तक उठ नही पायेंगे।"

बाण्डुग-प्रतिनिधियो ने यह तय किया कि एशिया और अफ्रीका के राष्ट्रो की दूसरी बैठक होनी चाहिए, जिसका आयोजन बर्मा, लका, भारत, हिन्देशिया और पाकिस्तान करे।

जब यह अगली बठक होगी, तब हम यही आशा कर सकते है कि अमरीका इस आधे विश्व के विशाल क्षेत्र की आशाओ और आशकाओ के निकट सम्पर्क में रहेगा। 'उदार उदासीनता' या 'अमत्रीपूर्ण भय' अमरीका को शोभा नही देता, जब कि एक अरब से अधिक लोग अपने-अपने ढग से हमारे गणराज्य के युद्ध-गानो की ओर बढते चले जा रहे है।

सम्मेलन का उद्घाटन करते हुए राष्ट्रपति सुकर्ण ने अमरीकी क्रान्ति को एशिया और अफ्रीका की वर्तमान क्रान्तियो के अगुआ के रूप मे बताया। बीसवी शताब्दी की इन क्रान्तियो को समझने के लिए, जहाँ से उसने शुरू किया, वही से हमे भी शुरू करना चाहिए और यह जानने का प्रयत्न करना चाहिए कि कोन्कोर्ड के एक मामूली पुल के विस्फोट विश्व भर मे क्यो सुनाई दिये ? ऐसा करने के लिए बाण्डुग के 'स्वराज्य भवन' से हमे फिलाडेलफिया के 'स्वराज्य भवन' की ओर दृश्य को बदलना होगा।

छठवाँ भाग

जैफर्सन, विल्सन और हेनरी फोर्ड की क्रान्ति—

कुछ ऐसे शब्द है,
हमारे खुद के तथा औरो के,
जिनका हमने प्रयोग किया है,
जिनके हम आदी है,
जिनको हमने सुना है, गाया है
और भुला दिया है .
स्वतत्रता, समानता, भ्रातृत्व।
अधिकार और न्याय का,
न हम सौदा करेंगे,
न किसीको इन्कार करेंगे।
इन सत्यो को हम
स्वयसिद्ध मानते है।
मै तो केवल यही कहता हूँ,
क्या हुआ जो ये शब्द निकल गये?
क्या हुआ जो ये निकल गये,
चले गये और लुप्त हो गये?
उन्हे मँहगे दामो पर विश्वास और भावना से
खरीदा गया था;
उन किसानो, शिक्षको, मोचियो और मूर्खों के
तिक्त और अज्ञात रक्त से खरीदा गया था,
जिन्होने प्राचीन शासन
और राजाओ के गर्व का
खण्डन किया था।
इन शब्दो के खरीदने मे
बहुत समय लगा था,
इनके खरीदने मे
बहुत दर्द और समय लगा था।

स्टीफेन विन्सेन्ट बैनेट

छब्बीसवाँ प्रकरण

मुझे स्वतंत्रता दो या मृत्यु

एशिया, अफ्रीका और दक्षिणी अमरीका के अधिकाश भाग में, जहाँ एक अरब से अधिक लोग लगभग असह्य परिस्थितियो मे जी रहे है, क्रान्ति एक आशा का शब्द है । हम देख चुके है कि उनके कान्तिकारी उद्देश्यो की की कम से कम चार दिशाएँ है– स्वतत्रता की माँग, जाति, धर्म और वर्ण-निर्पेक्ष मानवीय-गौरव के लिए आग्रह, बहुमत और अल्पमत दोनो वर्गो के हित के लिए शीघ्र अर्थिक उन्नति और जीवन-यापन के लिए शान्तिपूर्ण स्थिति ।

ये ही वे विचार है, जिन पर अमरीका का निर्माण हुआ था। यदि कभी ऐसा दिन आये, जब ये विचार सामान्य अमरीकी को विचित्र और बिल्कुल भिन्न प्रतीत होने लगे, तो वह मानव-स्वतत्रता के लिए बडे दु ख का दिन होगा।

जिन विचारो ने हमारी क्रान्ति को शक्ति प्रदान की थी, वे अब सारे विश्व मे फैल गये है। यह हमारे युग की एक अत्यन्त महत्वपूर्ण बात है। हमारे उन विचारो को ग्रहण करने के लिए कम्यूनिस्टो का निरन्तर प्रयत्नशील होना और साम्यवादी उद्देश्यो के अनुकूल उन्हे तोडना-मोडना, उनकी प्रचण्ड गतिशीलता का सबसे बडा प्रमाण है।

नेहरू, ऊ नू, मैग्सेसे, नासिर, नक्रूमा और गुलाम मुहम्मद प्राय जैफर्सन, लिंकन और विल्सन की भाषा मे ही बोलते है। यदि उनके शब्द कभी-कभी हमारे कानो को विचित्र मालूम होते है, तो यह हमारे अपने अतीत और जीवन के उन कठोर तथ्यो से, जिनसे वे और उनकी जनता सघर्ष कर रही है, हमारी पृथकता का द्योतक है ।

३ जुलाई, १९५५ को फिलाडेल्फिया के 'स्वराज्य भवन' मे सयुक्त राज अमरीका की यात्रा के समय बर्मा के प्रधानमत्री ने अपने भाषण मे हमे याद दिलायी थी कि बी–५२ अथवा अणु बम की अपेक्षा अमरीकी क्रान्ति के आदर्श अधिक विस्फोटक है। ऊ नू ने कहा कि विश्व के उन सभी भागो मे, जहाँ लोग अत्याचार, विदेशी अधीनता अथवा सामन्ती बन्धनो मे जीवन व्यतीत कर रहे है और जो अपनी स्वतत्रता के लिए षड्यत्र और सघर्ष कर रहे है, वे उन शाश्वत सिद्धान्तो के नाम पर ऐसा कर रहे है, जिनके लिए हमारी क्रान्ति हुई थी।

समस्त विश्व के औपनिवेशिक राष्ट्रो की स्वतन्त्रता की घोषणाएँ और संविधान स्वय हमारे इतिहास के महान प्रमाणपत्रो से लिये गये है। १९३० मे भारतीय राष्ट्रीय कॉंग्रेस की घोषणा मे क्रान्तिकारी अमरीकी काग्रेस की चतुर्थ जुलाई की प्रथम घोषणा मे प्रयुक्त जेफर्सन के शब्दो को ही दुहराया गया था।

बर्मा के सविधान मे तथा अन्य दर्जनो सविधानो मे ये ही शब्द प्रतिध्वनित हो रहे है-- "हम बर्मा के लोग", "हम भारत के लोग", "हम जापान के लोग", "हम लाईबेरिया कामनवेल्थ के लोग", "हम फिलीपाइन्स के लोग" "हम कोरिया के लोग", "हम लीबिया की जनता के प्रतिनिधि "।

स्वतन्त्रता और श्रेष्ठतर जीवन की आशा, जो इन शब्दो से प्राप्त होती है, उन एशियाई और अफ्रीकी पुरुषो और महिलाओ के हृदयो मे उमड रही है, जो अपने स्वतन्त्रता-सग्राम मे हमारे इतिहास के नारो और युद्ध-घोषो की ओर स्वाभाविक रूप से आकृष्ट हुए है। १९४५ मे अमरीकी अस्त्रो से सुसज्जित डच सैनिक जब अमरीका मे बने हुए शेरमन टैको को लेकर बटाविया में, जिसका नाम बाद मे बदल कर जकार्ता रखा गया था और जिसे वे बडी आशा से "डच ईस्ट इण्डीज" के नाम से पुकारते थे, अपनी औपनिवेशिक सत्ता की स्थापना के लिए धड़धडाते हुए पहुँचे, तो उन्हे नगर की दीवालो पर वही विद्रोही नारे लिखे हुए मिले, जिनसे प्रत्येक अमरीकी विद्यार्थी परिचित है–"सभी मानव स्वतत्र और समान उत्पन्न हुए है। हमे स्वतन्त्रता दो या मृत्यु।"

एशिया और अफ्रीका के अभी भी पराधीन तथा नव स्वतत्र राष्ट्रो के आग्रहपूर्ण तर्कों से यही विचार अमरीकावासियो को सुनायी पड रहे है कि हम उन आदर्शों पर आज भी अटल है, जिनके आधार पर हमारा विकास हुआ था।

स्तालिन भी हमारे शब्दो की शक्ति को जानते थे और उन्होने उनका उपयोग भी किया था। १९३६ के सोवियत सविधान मे, भाषण की स्वतन्त्रता, समाचार की स्वतन्त्रता और सभा की स्वतन्त्रता के अविश्वसनीय वादे दिखायी पड़ते है।

इनके अमरीकी रचयिता, इन्हे पुन अपना कर, इन शब्दो के द्वारा हमारे क्रान्तिकारी अतीत और वर्तमान विश्व-क्रान्ति के बीच सम्बध स्थापित कर सकते है। समस्त विश्व में गूजने वाले शब्दो, विचारो तथा कार्यों की शक्ति को फिर से ग्रहण करने का प्रयत्न करके और अतीत के प्रति नवीन दृष्टिकोण

अपना कर क्या हम अपनी समझ मे वृद्धि नही कर सकते ?

हमें कदापि नही भूलना चाहिए कि अमरीकी क्रान्ति आधुनिक विश्व की एक साम्राज्यवादी सत्ता के विरुद्ध एक उपनिवेश का प्रथम सफल विद्रोह था। आधे विश्व के लिए २० वी शताब्दी तक, १७७६ का वह क्रान्तिकारी युग नही आया और बहुतो के लिए वह आज भी भविष्य का एक स्वप्न है। आज हम उन विचारो को सुनने और स्वीकार करने के लिए कहाँ तक तैयार है, जिन्हे डेढ शताब्दी पूर्व 'स्वराज्य-भवन' मे लोगो ने स्वयसिद्ध माना था ?

हमने तब कहा था कि मनुष्य के अखण्ड अधिकारो को प्राप्त करने के लिए मानव समाज मे शासन की स्थापना की जाती है। शासितो की सहमति से ही उसे उचित अधिकार प्राप्त होते है।

हमारी स्वतत्रता की घोषणा के अनुसार, "जब कभी किसी भी प्रकार की सरकार इन उद्देश्यो की विनाशक हो जाती है, तब उसको बदल देने या समाप्त कर देने का अधिकार जनता को है।" और इन सिद्धान्तो की रक्षा के लिए हमारे पूर्वजो ने अपने जीवन, अपनी सम्पत्ति तथा अपनी पवित्र प्रतिष्ठा की शपथ ग्रहण की थी।

१७८० के मासाचुसेट्स के अधिकार-विधेयक के अनुसार, सरकार की स्थापना जनता के सामान्य कल्याण, सुरक्षा, सम्पन्नता तथा सुख के लिए होती है, न कि किसी एक व्यक्ति, परिवार या वर्ग के लाभ, प्रतिष्ठा अथवा निजी स्वार्थों के लिए। इसलिए अपनी रक्षा, सुरक्षा, सम्पन्नता तथा आनन्द के लिए आवश्यक होने पर जनता को ही सरकार की स्थापना करने और उसमे सुधार, परिवर्तन और आमूल परिवर्त्तन करने का निर्विवाद, अखण्ड और अविभाज्य अधिकार है।

अमरीका के सस्थापको ने केवल सिद्धान्त की बात नही की। जब उन्होने क्रान्ति की बात कही तो उसे क्रान्ति के रूप मे ही समझा भी। वे जानते थे कि जिन अधिकारो की उन्होने घोषणा की थी, उसका परिणाम यातना और रक्तपात भी हो सकता है। थामस जैफर्सन ने कहा, "उन्हे हथियार उठाने दो। स्वतत्रता के पौधे को समय-समय पर देशभक्तो और अत्याचारियो के रक्त से सीचना पडता है। यह उसकी प्राकृतिक खाद है।"

क्रान्ति के अधिकार के प्रश्न पर हमारे १६ वे राष्ट्राध्यक्ष उतने ही स्पष्ट थे, जितने तीसरे। अब्राहम लिंकन ने कहा, "अपने सस्थानो के सहित यह देश उन लोगो का है, जो इसमे रहते है।" जब कभी वे वर्तमान शासन से ऊब

जायेंगे तब वे उसको बदलने के लिए अपन सांविधानिक अधिकार का प्रयोग कर सकेंगे अथवा उसको समाप्त या उखाड फेकने के लिए अपने क्रान्तिकारी अधिकार का प्रयोग कर सकेंगे। लिंकन ने आगे कहा, "यह द्वितीय अधिकार, अत्यन्त पवित्र अधिकार ह। हम आशा और विश्वास करते है कि वह विश्व को मुक्त करने के लिए है।"

अमरीकी क्रान्ति के उन्नायको की हार्दिक इच्छा थी कि उनकी क्रान्ति से विश्वभर के परतंत्र राष्ट्रो में जागृति पदा हो जाय। बेंजमिन फ्रैंकलिन ने जनता के समक्ष अपने ऐसे नियम निर्धारित किये, जिनसे एक विशाल साम्राज्य को लघुरूप मे परिणत किया जा सके। जनरल वाशिंगटन के 'कैम्फायर' के प्रकाश मे ढोलक के सिरे पर टामपेन ने लिखा था, "अमरीका में प्रज्ज्वलित एक छोटी सी चिनगारी से ऐसी ज्वाला प्रकट हो गयी है, जो कभी बुझ नही सकती।"

यह ज्वाला विदेशो मे दिखाई दी और फ्रान्स के 'लफायत' (Lafayette) और पोलैण्ड के 'कोसीयुस्को' जैसे लोग इसकी ओर आकृष्ट हुए। १७७६ से स्वतंत्रता के प्रेमी पुराने विश्व मे नवीन विश्व के निर्माण मे सहयोग करने के लिए आये। अमरीका ने स्वतंत्रता की गृह-भूमि का दावा करते हुए उनका स्वागत किया।

१७९१ मे वाशिंगटन ने अपने प्रथम उद्घाटन-भाषण मे कहा, "यह समझना उचित ही है कि स्वतंत्रता की पवित्र अग्नि की रक्षा और गणतंत्री शासन के भाग्य-सूत्र अमरीकी प्रयोग पर अत्यधिक और कदाचित् अन्तिम रूप से अवलम्बित है।"

वाशिंगटन के उत्तराधिकारी जान ऐडम्स ने इन शब्दो मे उनकी प्रतिध्वनि प्रकट की, "मै अमरीका की स्थापना को सदैव ही सम्मान और आश्चर्य की भावना के साथ समस्त विश्व के मानव-समाज के पराधीन अंग की मुक्ति के लिए, एक भव्य दृश्य के उद्घाटन और भाग्य-विधान के रूप मे मानता हूँ।"

राष्ट्राध्यक्ष के रूप मे जेफर्सन ने अपने प्रथम वर्ष मे कहा, "मै इस आशा और विश्वास मे आपके साथ हूँ कि हमारी क्रान्ति और उसके परिणामो ने मानव-समाज मे जो जिज्ञासापूर्ण उत्तेजना उत्पन्न की है, वह विश्व के बडे भाग में मानव-समाज की दशा में सुधार करेगी।"

गणराज्य के प्रारम्भिक वर्षों में हमारे प्रथम तीन राष्ट्राध्यक्षो मे इस भावना की सीमा नही थी। ऐडम्स और जेफर्सन की प्रशंसा में डेनियल वेब्स्टर न

एक महाद्वीप की महत्वाकाक्षा विश्व-कल्याण की निश्चित भावना के साथ प्रकट की थी। वेब्स्टर ने घोषित किया, "अमरीका में और अमरीका के साथ मानवीय सम्बन्धो मे एक नया युग आरम्भ हो रहा है। इस युग की विशेषता ह, स्वतत्र प्रतिनिधि-मूलक सरकार, पूर्ण धार्मिक स्वतत्रता, जिसमे स्वतत्र गवेषणा की नव-जागृत अजेय भावना और समाज मे ज्ञान का अभूतपूर्व व्यापक प्रसार है।"

वेब्स्टर के समकालीन ऐडवर्ड ऐवरेट ने प्रतिध्वनित किया, "हमारा देश विश्व है और हमारे देशवासी समस्त मानव-जाति।" १८२६ मे "स्वतत्रता" पर अपने प्रसिद्ध व्याख्यान मे उन्होने कहा, "विश्व मे सर्वत्र लोकप्रिय शक्ति का एक तत्व है। हमारे ही महाद्वीप के तटो पर जन्म लेकर यह हमारे विकास के साथ विकसित हुआ है और हमारी शक्ति के साथ परिपुष्ट हुआ है। हमारे ही उदाहरण से प्रेरित और पुष्टित एक ही पीढी मे तीन आश्चर्यजनक क्रान्तियाँ हुई।" एवरेट का सकेत फ्रान्स, यूनान और दक्षिणी अमरीका की क्रान्तियो की ओर था।

योरोप मे 'यथास्थिति' के उद्विग्न सरक्षक अमरीका को निश्चित परिवर्तन की शक्ति मानकर उससे भयभीत थे। आस्ट्रिया के परराष्ट्र-मत्री मेटरनिक ने शिकायत की, "क्रान्ति जहाँ कही भी प्रकट हो, उसको बढावा देकर, जो असफल हो गयी हो, उस पर खेद प्रकट करके, और जो बढती जान पडे, उसे सहायता पहुँचा कर, अमरीकावासी क्रान्ति के उपासको को नयी शक्ति प्रदान कर रहे है और प्रत्येक षडयत्रकारी के साहस को अनुप्राणित कर रहे है।"

अन्य क्रान्तियो पर न केवल अमरीकी क्रान्ति का प्रभाव पडा, प्रत्युत उन्हे अमरीकी क्रान्तिकारी भी प्राप्त हुए। उनमे से अधिकाश के लिए अमरीका एक स्थान नही था, बल्कि एक मानसिक स्थिति था, एक विचार था। बेजमिन फ्रैंकलिन ने कहा, "जहाँ स्वतत्रता है, वही मेरा देश है।" परन्तु कम उम्रवालो ने टाम पेन के साथ उत्तर दिया, "जहाँ स्वतत्रता नही ह, वही हमारा देश है।"

इसी भावना से पेन स्वय क्रान्ति मे सम्मिलित होने के लिए फ्रान्स गया, जो १८७९ मे प्रारम्भ हुई थी। वैस्टाइल की घेरेबन्दी के साथ स्वतत्रता, समानता और बन्धुत्व के त्रिसूत्र की घोषणा की गयी। अमरीकी क्रान्ति के साथ फ्रान्सीसी क्रान्ति का सम्बन्ध इतना अधिक कही नही प्रकट हुआ जितना जार्ज वाशिगटन और टाम पेन को फ्रान्सीसी नागरिकता प्रदान करने के लिए नयी विधान-सभा के कानून से प्रकट हुआ।

परन्तु कम से कम अपने अत्याचारो मे फ्रान्सीसी क्रान्ति शीघ्र ही बाद की रूसी क्रान्ति के समान हो गयी।

मेरी एण्टोयनेट की फाँसी से पेन को गहरा धक्का लगा। रोब्सपियर ने सदेह मे उसे जेल मे बन्द कर दिया था, जहाँ से वह सयोगवश फाँसी के तख्ते पर चढने से बाल-बाल बच गया। अन्य अमरीकियो ने उस प्रबल नास्तिक-वाद से मुह मोड लिया, जिसने नोट्रेडेम को "तर्क के मन्दिर' (टेम्पुल आफ-रीजन) की सज्ञा दी और चर्च के आदमियो को उनकी धार्मिक आस्था के लिए यातनाएँ दी।

शिरच्छेद (गुलोटाइन) के बलपर जब 'नेशनल कनवेन्शन' तानाशाही के रूप में परिणत हो गयी, तब लोगो का उसके विषय मे भ्रम दूर होने लगा। अन्त मे फ्रान्सीसी क्रान्ति नेपोलियन के हाथो मे आ गयी और अपने मौलिक प्रजातत्रात्मक प्रारम्भो से ऐसे उद्देश्यो की ओर मुड गयी जो और भी अधिक असगत थे।

फिर भी, अमरीकी और फ्रान्सीसी क्रान्तियो ने क्रमश अपनी स्थायी सफलता और रोष के द्वारा जो कुछ सम्पन्न किया, उससे लोकतात्रिक राष्ट्रीय राज्य का जन्म हुआ। इस प्रकार उन्होने युग के दो अत्यन्त प्रबल विचारो—लोकतत्र और राष्ट्रवाद—को एकसूत्र मे बाँध दिया। ये ही विचार अफ्रीकी-एशियाई क्रान्ति के मूल में भी है, जिनका बाण्डुग मे बडे जोरो से समर्थन किया गया था। अब हम क्षणभर के लिए योरोप मे इन दोनो शक्तियो के मूल पर विचार करे।

राष्ट्रीय राज्य स्वय एक अल्पवयस्क राजनीतिक रचना है और वह केवल चार सौ वर्ष पुराना है। जब १८ वी शताब्दी मे फ्रान्स और अमरीका मे क्रान्तियाँ हुईं, उस समय पश्चिमी योरोप के कुछ भागो में सामन्तवाद का बोलबाला रहा और अभी तक रियासतो ने राज्य का रूप धारण नही किया था।

परन्तु औद्योगिक विकास के साथ, किसी समय निर्बल राजतत्र को बनियो, व्यापारियो और दस्तकारो का समर्थन प्राप्त हो रहा था, जो विभक्त सामन्त-वादी प्रभुसत्ता की छोटी-छोटी सीमाओ को, राज्य के अन्तर्गत राज्य को, छोटी-मोटी आयात-निर्यात-कर-सीमाओ को तथा प्रतिस्पर्धी करो को मिटा देने के लिए एक सुदृढ केन्द्रीय शासन की माँग कर रहे थे। जागीरो, मठो और छोटी-बड़ी जमीदारियो की समाप्ति की प्रक्रिया में पश्चिमी इतिहास

की अनेक शताब्दियाँ लग गयी। उसके अन्त मे एक सयुक्त राष्ट्र-राज्य का जन्म हुआ और राजा अपनी प्रजा के सम्मुख आगया।

यदि राजा और प्रजा दो ही प्रबल प्रतिद्वद्वी होते, जिन्होने आधुनिक युग का सूत्रपात किया, तो इस बात की आशा की जाती कि राजा के नैसर्गिक अधिकार के सिद्धान्त का उत्तर मानव के पवित्र अधिकारो से दिया जाता। लुई ने कहा, "मै ही राज्य हूँ।" परन्तु दो छोटी पीढियो के बाद, जबकि फ्रान्सीसी क्रान्तिकारी विधानसभा ने अपने आपको राज्य के बराबर मानते हुए घोषित किया, उत्तर मिला, "सारी प्रभुसत्ता राष्ट्र मे सन्निहित है।"

१७७६ और १७८९ मे, राष्ट्र-राज्य मे आने से पहले शताब्दियो से प्रजातन्त्र पश्चिम मे विकसित हो रहा था। १२१५ में इंगलैण्ड मे रनीमीड के सामन्तो ने राजा को 'मैग्नाकार्टा' (राज-पत्र) पर हस्ताक्षर करने के लिए विवश कर दिया। यद्यपि वहाँ पर जो अधिकार प्राप्त किये गये, वे सीमित थे, फिर भी उनकी उपलब्धि का असीम प्रभाव पडा। अगली सात शताब्दियो तक यह राज-पत्र अग्रेजो के कानून और राजनीति सम्बधी कल्पनाओ को प्रेरित करता रहा।

राज-पत्र की क्रान्तिकारी धारा ने राजाओ के समझौते की शर्तो को तोडने पर सामन्तो को विद्रोह का अधिकार दे रखा था। सौभाग्य से यह अधिकार सामयिक समझौते की भाँति ब्रिटेन की परम्परा का आवश्यक अग नही बन सका। अधिकांशत शाति के साथ राजा की समिति क्रमश ब्रिटिश पार्लमेंट के रूप मे विकसित हुई और सर्वोच्च न्यायालय के अधिकार भी हस्तगत कर लिये। इस प्रकार पार्लमेंट शक्ति के क्षेत्र मे राजा की प्रतिद्वदी बनकर राजा के नाम पर स्वय शासन करने लगी।

परन्तु क्रामवेल ही एक ऐसा व्यक्ति था, जिसने क्रान्ति के पुराने अधिकार का उपयोग किया, जब १६४२ मे चार्ल्स प्रथम के विरुद्ध वह अपनी प्युरिटन (शुद्धतावादी) सेना लेकर बढा। उसके तरीके निश्चय ही नम्र नही थे। १६४९ में प्युरिटनो द्वारा चार्ल्स प्रथम की हत्या का समाचार सुन कर रूसियो को इतना धक्का लगा कि उन्होने ब्रिटिश राजदूत को बरखास्त कर दिया। इसी प्रकार १९१८ मे रूसियो द्वारा जार की हत्यासे अग्रेज भी आतकित हो उठे थे।

१७८१ मे रूसियो ने प्राचीन विश्व-राजनीति तथा योरोप की पूर्ववत् स्थिति पर अमरीकी क्रान्ति के प्रभाव को समझने में तीव्र ग्रहण-शक्ति का परिचय दिया। एक भारतीय इतिहासकार ने स्थापित व्यवस्था के प्रति हमारी वर्तमान

श्रद्धा पर मुझे फटकारा और उस जारवादी रूस से हमारी तुलना की, जिसने हमारी क्रान्ति के बाद ३३ वर्षो तक सयुक्त राज्य अमरीका के अस्तित्व को स्वीकार करने से इकार कर दिया था।

यह कहना ही चाहिए कि रूसी अभिजात-तत्र के ये प्रारम्भिक भय काफी उचित थे। पश्चिम मे लोकतात्रिक उदारतावाद के केन्द्रो से, जिसका अमरीका सर्वाधिक नाटकीय प्रतीक है, राजनीतिक क्रान्ति, सर्वप्रथम उत्तरी अटलान्टिक समुदाय और दक्षिणी अमरीका के चारो ओर और अन्त मे २० वी शताब्दी मे एशिया और अफ्रीका मे फैल गयी।

१८५० के दशक तक गेरीबाल्डी सेट पीटर्स के सम्मुख एकत्र अपने चिथडे पहने हुए इटालियन स्वयसेवको से चिल्ला-चिल्लाकर कह रहा था, "न तो मै वेतन देता हूँ, न घर और न भोजन। मै तो केवल भूख, प्यास, सैनिक प्रयाण युद्ध और मृत्यु देता हूँ।" १८८० के दशक तक पर्नेल ने आइरिश लोगो से कहा कि अग्रेजो के साथ व्यवहार का केवल एक तरीका है, "उनके मुकाबले खडे हो जाओ।"

डेढ सौ वर्षो के भीतर जिन विचारो तथा भावनाओ ने कोनकोर्ड, वैलीफोर्ज और फिलाडेलफिया के क्रान्तिकारियो को प्रेरित किया था, वे ही क्रान्तिकारी विचार सभी महाद्वीपो मे पुन उत्पन्न हो गये है। सिहावलोकन करने पर वे स्पष्ट रूप से एक विश्वव्यापी क्रान्ति के रूप मे दिखायी पडते है।

बाद के कुछ आलोचक अमरीकी क्रान्ति को उसके उपनिवेश-विरोधी विद्रोह तक ही सीमित मानते है। उनका अभिप्राय यह है कि विश्व के लिए इसका क्रान्तिकारी महत्व, जैसाकि यह महत्वपूर्ण सिद्ध हो चुका है, कोनकोर्ड पुल और यार्क टाउन के बीच की घटनाओ से आबद्ध है।

परन्तु अमरीकी क्रान्ति इतनी एकागी नही रही है। यह एक व्यापक और गतिमान क्रान्ति के रूप मे विकसित हुई और अवसरो तथा मानव अधिकारो के विस्तार से सबद्ध लोकतात्रिक क्रान्ति से सदैव ही अनुप्रणित होती रही। हम देख चुके है कि, लोकतात्रिक क्रान्ति कभी सपूर्णतया सम्पादित नही हुई, किन्तु इस आदर्श की शक्ति को अथवा इसको अपनानेवाले क्रान्तिकारियो के दावे के औचित्य को कुछ ही लोग अस्वीकार करेगे।

१७८१ से व्यवहार मे विकासवादी होते हुए भी अमरीकी इतिहास अभिप्रायो में क्रान्तिकारी ही रहा है। विदेशी शासन से मुक्त होने के बाद अमरीकी अपने देश के भीतर और बाहर पूर्व-स्थिति को पलटने मे प्रयत्न-

शील रहे और जैसा कि हम देखेंगे, वे सदैव अधिकाधिक राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक लोकतंत्र की सिद्धि के लिए व्यावाहारिक मार्ग खोजते रहे। जब हमने देखा कि हमारे उद्देश्य विश्वव्यापी युद्ध की विभीषिका से आक्रान्त है, तो यह हमारे लिए स्वाभाविक ही था कि, हम मानव-मात्र तक अपनी कल्पनाओ को पहुँचा दे।

इस प्रकार जब पूर्ण लोकतान्त्रिक क्रान्ति के एक दूसरे प्रतिपादक गाधी ने ब्रिटिश वस्त्रो की होली जलायी, ब्रिटिश माल का बहिष्कार आरम्भ कर दिया और यह माँग की कि स्वतत्रता उनका जन्मसिद्ध अधिकार है और वे उसे लेकर रहेगे, तब वे भारत के लिए एक प्रयोग का सूत्रपात कर रहे थे, जिसका अमरीकियो ने पहले ही प्रारम्भ कर दिया था, परन्तु बोस्टन की अपनी चाय की दावत में ही समाम्प्त नही कर दिया; यह कि सुराज स्वराज का स्थानापन्न नहीं हो सकता और लिंकन की 'जनता की, जनता द्वारा और जनता के लिए सरकार' सचमुच इस धरती पर मानव की अन्तिम आशा है।

सत्ताईसवाँ प्रकरण

रुई ओटने से स्वचालित यंत्र तक

१७७६ में, जिस वर्ष अमरीका ने अपनी स्वतन्त्रता की घोषणा की, एक और क्रान्तिकारी घटना हुई। जेम्स वाट का वाष्प का इन्जिन सचमुच पहली बार कार्य करने लगा। इसने आर्थिक विकास मे अचानक आश्चर्यजनक गतिशीलता उत्पन्न कर दी। यह ठीक है कि यह गतिशीलता विकासवादी थी, फिर भी १९ वी शताब्दी के मध्य तक और आज भी औद्योगिक क्रान्ति के नाम से प्रसिद्ध है।

औद्योगीकरण के इस नाटकीय प्रारम्भ के पूर्व ही, मितव्ययिता और कठिन श्रम की प्रोटेस्टैण्ट (प्युरिटन) नैतिकता ने पूजीवाद को जन्म देने मे सहायता की। उसके पूर्व मध्यकालीन मठो ने वैज्ञानिक कृषि, सुसस्थित सगठन, व्यापारिक हिसाब-किताब और श्रमविभाजन, घडी के घटो के अनुसार नियमित सामुदायिक जीवन और उत्पादन का सूत्रपात किया।

वह कौन सी चीज थी, जो १८ वी शताब्दी के अन्त मे प्रारम्भ हुई और जिसने उत्पादन के साधनो मे इतना परिवर्तन कर दिया कि लोग उसे औद्योगिक क्रान्ति कहने लगे ?

कुछ लोग कहेगे कि पुरानी सामन्तवादी व्यवस्था के अन्तर्गत वाणिज्यवाद के क्रमिक विकास से उत्पन्न नयी शक्तियाँ, जो अन्ततोगत्वा सामन्तवादी सिकजो से छूट कर आधुनिक औद्योगिक प्रजातन्त्रात्मक राज्य के रूप में निकली। दूसरे लोग पुनर्जागरण द्वारा प्रस्थापित बौद्धिक वायुमण्डल और राजनीतिक स्वतन्त्रता को श्रेय देगे, जो उत्तरी अटलाटिक क्षेत्र मे विकासमान थी।

अन्य लोग पश्चिम के आर्थिक विकास का श्रेय निगम (कारपोरेशन) के आविष्कार को देगे। न्यायाधीश ब्रैन्डिस ने निगम के सम्बध मे कहा, "यह सभ्य जीवन की प्रमुख सस्था है।" इसके पक्ष मे काफी प्रमाण दिया जा सकता है कि यह सस्था आधुनिक शिल्पविज्ञान की वाहक रही है। निगम मे बडी राशि मे पूजी लगाने और मजदूरो और शिल्पियो (टेकनिशियनो) को सगठित करने की क्षमता है। यद्यपि निगम का जन्म इगलैंड में जान लाक के सरक्षण में हुआ, तथापि अमरीका मे यह सबसे अधिक फला-फूला। कहा जाता है कि १९ वी शताब्दी के एक वर्ष मे हमारी यूनियन के एक राज्य

मे इतने अधिक निगमों का निर्माण हुआ जितना विश्व के समस्त पूर्व इतिहास में नही हुआ था।

'पहले मुर्गी हुई या अण्डा' की पहेली की भाँति पहले कौन आया, उद्योगवाद या प्रजातत्र, नया शिल्पविज्ञान या नयी स्वतत्रता, इसके समाधान का प्रयत्न किये बिना ही हम विश्वास के साथ कह सकते है कि दोनो के योग ने नयी सभ्यता को जन्म दिया और आज इसके विस्फोटात्मक परिणाम विश्व के कोने-कोने मे अनुभव किये जा रहे है। किसी भी कारण से प्रतिक्रियाओ की एक नयी श्रृखला लन्दन, लंकाशायर और लीवरपूल में प्रारम्भ हुई। तब से वह निश्चित प्रगति के साथ समस्त अटलाटिक समुदाय मे फैलती रही है और आज समस्त मानव समाज तक पहुँच गयी है।

१८वी शताब्दी मे इग्लैण्ड के नये आविष्कार उन दिनो उतने ही चमत्कार-पूर्ण प्रतीत होते थे, जितनी आजकल अणुशक्ति प्रतीत होती है और ब्रिटिश कानून-निर्माता उस समय इग्लैण्ड की निजी सम्पत्ति के रूप मे उन्हे वैसे ही 'गुप्त' रखना चाहते थे जैसा कि आजकल हो रहा है। एक कानून बना कर किसी भी यंत्र को इगलैण्ड के बाहर ले जाने पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया था। जो लोग इन यत्रो को बनाना जानते थे, उनको विदेश जाना मना था।

पार्लमेण्ट पीटर महान के उन प्रयासो से आशकित हो उठी थी, जिनके द्वारा वह अग्रेजो को रूस में औद्योगिक प्रशिक्षण के लिए नियुक्त करना चाहता था। उसके इन प्रयासो मे १९२० और १९३० के दशको के साम्यवादी उत्तरा-धिकारियो के कार्यों की पूर्व कल्पना थी। १७१९ में पार्लमेण्ट ने एक अधि-नियम बनाया, जिसका उद्देश्य उन असुविधाओ को दूर करना था, जो ब्रिटेन के कुशल कारीगरो को प्रलोभन दे कर विदशो मे ले जाने के कारण उत्पन्न हो गयी थी।

१७७६ मे साहसी रूस ने अपने यहाँ भाप का इजिन बनाने के लिए वाट को एक हजार पौण्ड सालाना वेतन देने का प्रस्ताव रखा, जो उस समय कल्पनातीत था।

१८२४ तक कुशल कारीगरो के बाहर जाने के निषेध का कानून लागू रहा, परन्तु तब तक इग्लैण्ड ने यही समझा था कि उसके पास कोई गुप्त रहस्य नही है, वह केवल औरो से थोडा आगे है और जिस विज्ञान और शिल्प-विज्ञान के लिए वह प्रयत्नशील है, वह सर्वत्र सभी लोगों की सामान्य सम्पत्ति ह।

उस समय तक स्वय हमारे देश मे भी औद्योगिक क्रान्ति अपने पंखो की शक्ति आजमा रही थी। एक उन्नीस वर्षीय अग्रेज बालक, यहाँ पर वस्त्र-उद्योग प्रारम्भ करने के लिए अपने कपडो मे छिपाकर इगलैण्ड से एक वस्त्र-कारखाने की योजना चुरा कर ले आया।

प्राचीन प्युरिटन सद्गुणो से सयुक्त अमरीकी प्रतिभा और सीमांत अर्थ-व्यवस्था में अस्तित्व बनाये रखने के लिए आवश्यक स्फुट प्रयत्न की प्रवृत्ति ने यत्र के विस्तार के लिए नवीन शक्ति प्रदान की। एलीह्विटनी के रुई ओटने की मशीन के आविष्कार ने इगलैण्ड और न्यू इग्लैण्ड के राज्यो मे बेकार पडे करघो के लिए कच्चे माल का पर्याप्त स्त्रोत प्रदान किया। व्हिटनी ने औजारो और पुर्जों के जोडने के कारखाने की भी नीव डाली और बाद मे युद्ध-विभाग के अफसरो के समक्ष, अपने स्प्रिगफील्ड मासाचुसेट्स के कारखानो मे बने परस्पर परिवर्तन-योग्य पुर्जों को जोड कर बारह बन्दूके तैयार करने के आश्चर्यजनक कार्य का प्रदर्शन किया।

यदि वाट अथवा व्हिटनी आज के विशालकाय अमरीकी मोटर-कारखानो मे पुर्जे जोडने के विभाग को देखते, तो उनके चेहरो की आकृतियाँ हमारी औद्योगिक क्रान्ति के स्वरूप को प्रकट कर देती। पट्टे (बेल्ट) का एक चक्कर मोटर-गाडी के ढाँचे को लगभग एक मिनट मे एक तैयार मोटरगाडी का अतिम रूप दे देता है। तत्काल ही छत में लगे 'हुक' से 'फेण्डर्स,' चक्के और दूसरे हिस्से सही वक्त पर सही गाड़ी में आकर जुड जाते है। फर्श मे बने एक छिद्र से एक निश्चित रग का 'हुड' उस गाडी मे लगने के लिए नीचे उतरता है, जिसे परीक्षण के लिए शीघ्र ही ले जाया जाता है। विशेषज्ञ इस बात का अध्ययन करते रहते है कि किस प्रकार उत्पादन मे समय और श्रम की बचत की जाय। प्रतिवर्ष ६० लाख गाड़ियाँ तैयार करनेवाला अमरीकी मोटर उद्योग औद्योगिक क्रान्ति का अगुआ रहा है।

१९ वी शताब्दी के प्रारम्भ मे वस्तुओ की व्यापक उत्पादन-वृद्धि मे ही औद्योगिक क्रान्ति परिलक्षित नही थी। पक्की नहरो और सड़को का भी निर्माण हुआ। तब इजिन के आविष्कार के साथ लीवरपूल से मैनचेस्टर तक प्रथम रेल-लाइन बनी।

अमरीका ने फिर, फल्टन की वाष्पचालित नावो, महाद्वीप के एक छोर से दूसरे छोर तक जानेवाली रेलवे और अन्त में हैनरी फोर्ड की टिन लिजी मोटर गाड़ियो से इस चुनौती को स्वीकार किया। विश्व को सर्वप्रथम तारों

की शृखलाओ से और बाद मे रेडियो के अदृश्य तारो के द्वारा एक सूत्र में बाँध दिया गया। अपनी कुर्सी से उठे बिना मनुष्य अपने विचारो को समस्त विश्व मे भेजना सीख गया। औद्योगिक क्रान्ति ने अन्त मे मानव की इस प्राचीनतम कल्पना को कि किसी दिन वह उडेगा, पूर्ण कर दिया।

मनुष्य के यातायात और वस्तु-परिवहन, शीत-ताप नियत्रण और प्रकाश पाने के लिए शक्ति-उत्पादन मे वाट के इजिन का विस्तृत प्रयोग हुआ। अश्व-शक्ति शक्ति न रह कर शक्ति की माप हो गयी, जलचक्र का स्थान कोयले की खानो ने लिया और बिजली के जरिये अश्व-शक्ति को लाख गुना बढा दिया गया। मनुष्य ने सूर्य के रहस्य का भी पता लगा लिया और अणु-शक्ति को मानवीय इच्छा का दास बना लिया।

औद्योगिक क्रान्ति के प्रारम्भ-काल से १७५ वर्षों मे औसत अमरीकी ने वह धन-सम्पत्ति प्राप्त कर ली है, जिसकी शताद्वियो पूर्व बडा से बड़ा शक्तिशाली व्यक्ति कल्पना भी नही कर सकता था।

यदि औद्योगीकरण की प्रक्रिया उसके सहायको की कल्पना से भी आगे बढ गयी है, तो उसके लिए मानवीय कष्ट के रूप मे भारी मूल्य भी चुकाना पडा है। एक सामन्ती समाज के यत्रीकरण के लिए आवश्यक भारी पूजी के एकत्रीकरण के लिए, ऐसे समय जब कि व्यापारिक पूजी नाममात्र की थी, पहले सस्ते मानव श्रम और अनिवार्य बचत की आवश्यकता थी।

मध्यकालीन ब्रिटिश निकायो के कुशल कारीगर नयी मशीनो के कारण बेकार होने लगे और अग्रेज किसानो को, जो 'बाडा-अधिनियम' (एनक्लोजर एक्ट) और कृषि के आधुनिकीकरण द्वारा अपनी भूमि के छोटे-छोटे टुकडो से वचित कर दिये गये, नयी मिलो मे नाममात्र के वेतनो पर काम दिया गया या उन्हे भूख से मरने के लिए छोड़ दिया गया। काम का दिन सूर्योदय से सूर्यास्त तक होता था।

यह सचमुच विवादास्पद है कि औद्योगिक क्रान्ति ने मजदूरो के जीवन-स्तर को नीचे गिरा दिया, क्योकि १८ वी शताब्दी के पूर्व के इगलैण्ड मे गरीबों की दशा बहुत बुरी थी। कदाचित् मशीन के प्रयोग ने कुछ लोगो के जीवन को सुधारा और अन्य लोगो के जीवन को बिगाड दिया।

फिर भी, यह निश्चित है पश्चिमी औद्योगीकरण के लिए जो मूल्य चुकाना पड़ा, वह स्त्रियो तथा बच्चो को देना पडा। इगलैण्ड के दरिद्र-सहायता-कानून के अन्तर्गत पादरी क्षेत्रो को, सहायताप्राप्त लोगो के बच्चो को 'अपरेंटिस'

बनाने का अधिकार प्राप्त था। कारखानो के मालिकों ने श्रम के इस नय स्रोत का पूर्ण लाभ उठाया, यहाँ तक कि पाँच-पाँच छ-छ वर्ष के बच्चो को भी बारह घटो से भी अधिक काम करने के लिए भेज दिया जाता था और बाद मे कारखानो मे ही बन्द कर दिया जाता था। कुछ पादरी क्षेत्रो मे मूर्ख बच्चो की एक सख्या निर्धारित रहती थी और उन बच्चो को कारखाने के मालिको को लेना ही पडता था।

दोपहर का भोजन प्राय- काम करते हुए ही खाना पडता था और चलती हुई मशीनों को साफ करना पडता था। सर्दियो मे बच्चे जब मिलो से निकलते थे, तब पसीने से भीगे रहते थे और कभी-कभी उनके वस्त्र शरीर मे ही चिपक जाते थे। दुर्घटनाओ, विकृतियो, क्षय और पूर्ण पतन वाले बच्चो की लिखित सख्या उस पीढी के लिए स्मारक रूप मे होगी, जिसने औद्योगिक सभ्यता को जन्म दिया और उन नये देशो के लिए चेतावनी का काम करेगी, जो प्रसव-वेदना से गुजर रहे होगे।

फिर भी, सारा मूल्य केवल योरोपवासियो के कष्टसहन से ही नही चुकाया गया। इग्लैण्ड के उपनिवेशो ने उसे सस्ते से सस्ता कच्चा माल भेजा जिसके उत्पादन मे वहाँ के श्रमिको का इगलैड से भी अधिक शोषण किया गया। उपनिवेशो को तदुपरान्त बनीबनायी चीजो का परतत्र बाजार बना दिया गया। अमरीका ने ऐसी व्यापारिक शर्तों के विरुद्ध विद्रोह किया और १७७६ मे अपनी स्वतत्रता प्राप्त कर ली, परन्तु भारत को विवश होकर उनके चगुल मे आना पडा।

इसके अतिरिक्त भारत 'लूट' के रूप मे पूजी का प्रत्यक्ष स्रोत था। 'लूट' शब्द का अग्रेजी मे समावेश बगाल की लूट के समय हुआ था। १७५७ में प्लासी मे क्लाइव की विजय के बाद बगाल की निधि लन्दन की ओर बहने लगी और ब्रिटिश राज्य की नकद पूजी उस समय काफी बढ गयी जब कि महान औद्योगिक आविष्कार प्रारम्भ हो गये थे। जिन लोगो ने भारत मे विपुल सम्पत्ति कमायी, उन्होने मिल कर उस पूजी को उस युग के आविष्कारो को कारखानो का रूप देने मे लगाया।

अमरीका विदेशी उपनिवेशो पर निर्भर नही था, परन्तु उसके पास उपयोग के लिए एक अछूता महाद्वीप था। हमारा कच्चा माल पश्चिमी भाग में था और उसे स्वतत्रापूर्वक प्राप्त किया जा सकता था, यदि कुछ कठिनाई थी, तो वह थी रेड इडियनो से निपटने या उन्हे रोक रखने की। अमरीका के पास भी

उसकी अपने ढग की शोषित औपनिवेशिक आबादी थी और वे थे दक्षिण के दास, जिन पर हमारी अर्थव्यवस्था का एक बहुत बडा भाग निर्भर करता था।

ब्रिटिश विनियोजको ने, विशेषरूप से हमारी रेल्वे लाइनो के निर्माण में, जो हमारे आर्थिक विकास मे मौलिक कदम था, पूजी की हमारी अत्यंत आवश्यकता को बडे-बडे कर्ज देकर पूरा किया। इसके अतिरिक्त, अमरीका सारे योरोप से नये और सस्ते श्रमिक प्राप्त कर सकता था। काफी मात्रा में इसकी पूर्ति हुई।

प्राय जब बाहर से मजदूर आये, तो उन्होने यहाँ के कारखानो की दशा अपने देश के कारखानो से कुछ बहुत अच्छी न पायी। १८३१ मे हमारे कनेक्टीकट के रुई के उद्योग मे पुरुष पाँच डालर प्रति सप्ताह कमाते थे, औरतें ढाई डालर और बच्चे डेढ डालर। ग्यारह वर्षो बाद कनेक्टीकट के एक कानून ने कपडे की मिलो मे प्रति दिन १० घण्टे से अधिक समय के लिए १४ वर्ष से कम आयुवाले किसी व्यक्ति की नियुक्ति को अवैध कर दिया। उस समय के इस प्रकार उदार विधान का निर्माण यह सकेत करता है कि उसके पूर्व क्या दशा रही होगी।

कनेक्टीकट का इतिहास यह भी प्रकट करता है कि प्राय अमरीका ने भी भारत पर अग्रेजो के साम्राज्यवादी सम्बधो से सीधा लाभ उठाया। १७१७ मे मद्रास के भूतपूर्व गवर्नर एलिहू येल ने, पूर्वी भारत का एक जहाज माल बोस्टन भेजा, जिसको ५६२ पौण्ड मे नीलाम कर दिया गया। श्री येल ने उससे प्राप्त धन को प्रथम अनुदान के रूप मे कनेक्टीकट के नये कालेज को दे दिया, जिसको बाद मे उन्हीका नाम दिया गया।

× × ×

किन्तु जितना उपनिवेश दे सकते थे, उससे अधिक प्रकृति ने अमरीका को दे रखा है। औद्योगीकरण को इससे अच्छा अवसर कभी नही मिला—एक सम्पन्न अविकसित महाद्वीप, परिश्रमी और प्रगतिशील लोग, प्रवासियो का आगमन, जिनमे से कुछ अत्यन्त कार्य-कुशल थे और कुछ सस्ते मूल्य पर काम करने वाले थे, एक सघीय यूनियन, जिसने एक महान मुक्त व्यापार और सामान्य सम्पत्ति क्षेत्र का प्रारम्भ किया, एक जनतात्रिक राजनीतिक समाज, जिसने स्वतत्र सगठन, स्वतत्र व्यवसाय और व्यक्तियो के सावैधानिक अधिकारो के साथ व्यापार-निगमो के निर्माण के लिए अनुमति दी थी। अन्य किसी भी देश की अपेक्षा, जिसमे उद्योगो का विकास हुआ है, अमरीका

कम क्लेश उठा कर भी विश्व का प्रमुखतम औद्योगिक राष्ट्र बन गया है।

फिर भी, १८ वी शताब्दी के ब्रिटेन के अपने 'रहस्यो' को छिपाये रखने के प्रयत्नो की अपेक्षा आजकल औद्योगिक प्रमुखता नवीन नाटकीय आविष्कारो के अकेले उपयोग अथवा नियत्रण का अधिक आश्वासन नही प्रदान करती। अणु के विश्लेषण मे अमरीका की क्रमिक सफलता, जो विदेशो मे उत्पन्न आइन्सटाइन, जीलार्ड और फेर्मी जैसे प्रख्यात वैज्ञानिको की प्रेरणा और कार्यकुशलता से अधिकाश मे उपलब्ध हुई है, कभी भी केवल अमरीका के लाभ के लिए पृथक या सुरक्षित नही रखी जा सकती।

१९५५ तक अमरीकी अणु वैज्ञानिक स्पष्ट कहने लग गये थे कि योरोपीय वैज्ञानिको से ब्रिटेन की भाँति, औद्योगिक क्रान्ति के लिए आवश्यक निपुणता और टेक्नीक के लाभ हमे प्राप्त है। अब तो अधिक सभव है कि भविष्य में हम ब्रिटेन और जापान जैसे देशो से औद्योगिक आणविक विकास में पिछड जायँ। अपनी सापेक्ष औद्योगिक स्थिति बनाये रखने के लिए अणुशक्ति के शीघ्र उपयोग की उनमे एक आवश्यक और विशेष प्रेरणा है, । उनके लिए अणुशक्ति कोयले और जलशक्ति के अभाव की पूर्ति कर सकती है।

ऐसी परिस्थितियो मे मित्र योरोप मे अणुशक्ति के विकास में किये गये आर्थिक अपव्यय और अनावश्यक विलम्ब से हमारी अतीत की प्रतिबन्धात्मक नीतियाँ विशेषरूप से इतनी कल्पनाहीन प्रतीत होती है कि अमरीकी अणु-वैज्ञानिको ने यह सुझाव प्रस्तुत किया है कि अब हमको अणुशक्ति के समस्त क्षेत्र का वर्गीकरण कर देना चाहिए। अगस्त, १९५५ मे अणुशक्ति के शान्तिपूर्ण उपयोग सम्बन्धी जनेवा-सम्मेलन में हमारे नियत्रणो मे आशिक रूप से ढिलाई की व्यापक रूप से प्रशसा की गयी थी।

इस नयी अमरीकी औद्योगिक क्रान्ति का विकट रूप यह है कि, उसने अभी मुश्किल से मार्ग पकडा है। जिस प्रकार पश्चिमी औद्योगीकरण के दो शताब्दियो के पूर्ण प्रभाव को अणुशक्ति की आशा के रूप मे महसूस किया जा रहा है, उसी प्रकार एक नयी टेक्नालाजिकल क्रान्ति, जिसे स्वचालित यत्र (Automation) कहा जाता है, प्रकट होने लगी है। सूत कातने, कपडा बुनने, लकड़ी काटने, पानी निकालने, बोझा ढोने, जमीन जोतने, फसल काटने इत्यादि अनेक प्रकार से मशीन मानव की दास बन गयी है और ऐसे कार्य कर रही है, जिन्हे मनुष्य सर्वदा अपने हाथो से करता था, परन्तु २० वी शताब्दी के मध्य में स्वचालित यत्रो के कारखानो की सम्भावना प्रकट हुई। 'सी आई. ओ' के

अध्यक्ष वाल्टर रयूथर ने अपने भय की इस भावना को उस समय व्यक्त किया जब वे इन नये विचित्र कारखानो को पहली बार देखने गये और बताया कि ये द्वितीय औद्योगिक क्रान्ति के द्योतक है। उन्होने विशाल मशीन को सेकण्डो मे 'सीलिण्डरो' को छेदते और बिजली से उसके कार्य की नाप-जोख करते तथा किसी कारण से होनेवाली गलतियो को निकालते देखा। थोडे से मजदूरो को केवल उन लाल, पीली, हरी रोशनियो की पट्टियो को ही देखना था, जो मशीन की शिथिलता को सूचित करती थी।

फोर्ड की कार्यकारिणी के एक सदस्य ने पूछा, "आप इन से अपना बकाया कैसे वसूल करेगे? रयूथर ने उत्तर दिया, "आप उनके द्वारा अपनी मोटरगाडी कैसे खरीदेगे?" परन्तु इन सभी शकाओ के होते हुए आज कोई भी श्रम-नेता इन मशीनो का विरोध नही कर रहा है, जैसा कि एक बार विस्थापित मजदूरो ने किया था। उसके विपरीत उनको विश्वास है कि विज्ञान और शिल्प विज्ञान के नये लाभो के लिए कोई ने कोई मार्ग निकाल लिया जायगा और ये लाभ न केवल पश्चिम के भाग्यवान अभिजात वर्ग के लिए होगे, बल्कि समस्त मानव समाज के लिए होगे।

इस विश्वास की जडे चालू अमरीकी क्रान्ति मे ही जमी हुई है। सत्य तो यह है कि अन्तिम पीढी मे उस मशीन पर स्वामित्व प्राप्त करने के लिए मनुष्य ने प्रजातन्त्र के औजारो का प्रयोग करना सीख लिया है, जिससे कभी लोग डरते थे कि वह मनुष्य पर प्रभुत्व जमा लेगी।। शक्तिशाली और असाधारण औद्योगिक क्रान्ति के साथ मानवीय आवश्यकताओ, हितो और सिद्धान्तो ने मुख्यत. अवसर की समानता के लिए एक प्रजातन्त्रात्मक अमरीकी क्रान्ति मे विजय प्राप्त की है।

अट्ठाईसवाँ प्रकरण

सभी मनुष्य समान उत्पन्न हुए हैं।

स्वतत्रता अर्थात् राजनैतिक स्वतत्रता, अमरीकी क्रान्ति का प्रथम युद्ध-घोष था, जिस प्रकार आजकल एशिया और अफ्रीका के लोगो की यही प्रथम माग है। उद्योगवाद की शक्तियो से प्रेरित होकर जाति, धर्म तथा वर्ण निरपेक्ष मानवीय गौरव तथा समान अवसर के लिए शीघ्र ही माग होने वाली थी।

सविधान-परिषद मे रूढिवादी अलेक्ज़ेण्डर हैमिल्टन ने कहा, "सभी समुदाय अपने को विशिष्ट और साधारण मे विभाजित कर लेते है। पहले धनी होते है और उनका जन्म अच्छे घरो मे होता है, और दूसरे एक विशाल जन-समुदाय के रूप मे होते है। यह जन-समुदाय विक्षुब्ध और परिवर्तनशील होता है, वे शायद ही उचित-अनुचित का निर्णय करते है। इसलिए शासन मे प्रथम वर्ग को विशिष्ट स्थायी स्थान दे दिया जाय। वे दूसरे वर्ग की अस्थिरता को नियत्रित रखेगे।"

बाद मे टामस जेफर्सन ने प्रतिकार किया, "स्वभावत मानव समाज दो दलो मे विभाजित है। (१) एक तो वे, जो लोगो से डरते है और उन पर अविश्वास करते है, और उनसे सारी शक्ति खीच कर उच्चवर्ग के हाथ मे दे देना चाहते है और (२) दूसरे वे, जो लोगो के साथ घुलमिल जाते है, उनमे विश्वास करते है तथा उनको बहुत ही सुरक्षित और ईमानदार मानते है, यद्यपि उन्हे जन-हित के अत्यन्त विवेकशील तत्व नही मानते।"

इस प्रकार, प्रारम्भ मे ही इन दो महान प्रतिद्वदियो ने इस अमरीकी घोषणा, कि सभी मनुष्य स्वतत्र और समान उत्पन्न हुए है, को अर्थ प्रदान करने के प्रयत्न मे प्रथम मतदान-युद्ध की रूपरेखाएँ खीची।

जैसा कि सर्वदा हुआ ह, हमारी सरकार के निर्माण मे ये दोनो विचार उम्मीदवारो के निर्वाचन के लिए राजनीतिक दलो के ठोस एव व्यावहारिक संगठन मे महत्वपूर्ण तत्व बन गये है। इस प्रकार हेमिल्टन और एडम्स के नेतृत्व मे, सघवादी (Federalists) विशेषरूप से उन उत्तरी व्यापारिक स्वार्थों का प्रतिनिधित्व करते थे, जो एक शक्तिशाली केन्द्रीय शासन और शीघ्र औद्योगीकरण मे विश्वास करते थे। जैफर्सन के प्रजातात्रिक रिपब्लिकन (Democratic Republicans) अपनी शक्ति छोटे-छोटे किसानो,

कारीगरो और दक्षिणी बगान-मालिको से प्राप्त करते थे।

केन्द्रीय सरकार मे विश्वास न करते हुए और अपनी स्वायत्त सस्थाओ और राज्यो के मामलो को सँभाल लेने की जनता की योग्यता पर अपने विश्वास की बाजी लगाते हुए जेफर्सन के दल ने १८८० के चुनावो मे जबर्दस्त विजय प्राप्त की। सार्वभौमिक श्वेताग मताधिकार अगले कुछ वर्षो मे स्थापित हो गया, गृह-युद्ध ने इस श्वेत मताधिकार की सीमा को समाप्त कर दिया और बाद मे बीसवी शताब्दी के प्रारम्भ मे महिला-मताधिकार भी आ गया।

विदेशी शासन से राजनीतिक स्वतत्रता की भाँति ही, व्यक्तिगत अधिकारो के लिए सघर्ष के विश्वव्यापी भावो को अनेक अमरीकी नेताओ ने समझ लिया था। अपनी मृत्यु के दो सप्ताह पूर्व जेफर्सन ने भविष्यवाणी की– "मनुष्य के अधिकारो के प्रति सबकी आँखे खुल रही है।" विज्ञान के प्रकाश के व्यापक पसार ने इस प्रत्यक्ष सत्य को सबके सामने रख दिया है कि मनुष्य अपनी पीठ पर काठी बँधे नही पैदा हुआ है और न कुछ सम्पन्न व्यक्ति ईश्वर की अनुकम्पा से उन पर सजधज कर सवारी करने के लिए बनाये गये है।

१८२८ मे एण्ड्रयू जक्सन के राष्ट्राध्यक्ष चुने जाने से बढकर अन्य किसी चीज ने समस्त जनता के लिए राजनीतिक सत्ता के अधिकाधिक विस्तार की आशा नही प्रदान की। जैक्सन ने जेफर्सन के सम्मिश्रित प्रजातत्र मे पश्चिम के सीमान्त लोगो और पूर्वी नगरो के मजदूरो का योगदान किया। उनके उद्घाटन-दिवस पर उनके हजारो अनुयायी वाशिंग्टन तक पहुँचे, जिनमे से कुछ तो चीथडो मे थे और बहुत से लोग भद्दी रहन-सहन के थे। सम्पन्न और कुलीन लोगो की सख्या नगण्य थी।

उन्होने खूब शराब पी, 'व्हाइट हाउस' पर अधिकार-सा जमा लिया और अपने प्रिय नेता का, जो अब राष्ट्राध्यक्ष थे, जयघोष के साथ स्वागत किया। जस्टिस स्टोरी ने कहा, "भीड़" राजा का राज्य विजयी होता दिखायी दे रहा है। जैक्सन की ओर सकेत करते हुए मार्टिन वान बूरेन ने कहा, "वे ही हमारे सगे-सम्बन्धी है।"

इस युग पर श्लेसिंगर की अति सुन्दर पुस्तक "जैक्सन का युग" (दी एज आफ जैक्सन) मे यूनाइटेट स्टेटस बैंक के पीछे व्यापारिक स्वार्थो के विरुद्ध जैक्सन के युद्ध की पुनरावृत्ति का अच्छा वर्णन किया गया है। वृद्ध हिकोरी ने यह कहते हुए बैंक के लिए एक नये अधिकारपत्र को ठुकरा दिया कि, "जब कानून धनी को और धनी और बलवान को और बलवान बनाता है तो समाज

के निम्न सदस्यो, किसानो, कारीगरो तथा मजदूरो को, जिनके पास न तो समय है और न अपने लिए वैसी ही अनुकुलताएँ प्राप्त करने के साधन, अपनी सरकार के अन्याय के विरुद्ध शिकायत करने का अधिकार है।"

लगभग सौ वर्ष बाद फ्रैंकलिन रुजवैल्ट ने जैक्सन के सम्बध मे कहा, "राष्ट्र की अधिकाश भौतिक शक्ति उनके विरुद्ध थी। कभी-कभी तो ऐसा प्रतीत होता था कि अमरीका की जनता के अतिरिक्त सभी उनके विरुद्ध थे।"

यूनाइटेड स्टेट्स बैक के प्रधान , निकोलस बिडिलने कहा कि जैक्सन का निषेध-सन्देश एक ऐसा घोषणापत्र था–"जैसा कि मारत अथवा राब्सपियर फौबर्ग सेट एण्टोइन मे उपस्थित भीड़ के सम्मुख प्रस्तुत करते।" जैक्सन ने उत्तर दिया कि मै सकीर्ण वर्ग-हितो का प्रतिनिधित्व नही करता। उन्होने कहा कि जिन किसानो तथा मजदूरो का मै प्रतिनिधित्व करता हूँ, वे सयुक्त राज्य अमरीका की जनता के एक बहुत बडे भाग है और वे ही देश की अस्थि और स्नायु है।

यह ठीक है कि प्रगति कोई सीधी रेखा नही है। दासता का नैतिक पतन, जिससे अमरीका स्तम्भित था, अमरीकी सघ की शक्ति को खोखला बना रहा था। जेफर्सन ने इस पर विचार किया था। दासता के सम्बध में उन्होने लिखा, "जब मै यह विचार करता हूँ कि ईश्वर न्यायप्रिय है और उसका न्याय सर्वदा सो नही सकता तो मै अपने देश के लिए काँप उठता हूँ।"

प्रतिशोधी ईश्वर का प्रकोप रहा हो या नही, नीग्रो दासो के रक्त और यातनाओ का मूल्य, जिसे किसी न किसी रूप मे उत्तर और दक्षिण मे प्राय. सभी अमरीकियो ने स्वीकार किया था, उत्तर तथा दक्षिण के अमरीकियो के रक्त तथा यातनाओ से चुकाना पडा। गृह-युद्ध ने सिद्ध कर दिया था कि अमरीका के इतिहास मे दासता ही एक ऐसा प्रश्न था, जिसका हमारे सस्थापक पूर्वजो द्वारा रचित सविधान की रूपरेखा के अन्तर्गत समाधान नही हो सकता था।

अमरीका के इस लोकतान्त्रिक आदर्श के लिए, एक महान चुनौती के विरुद्ध सघर्ष के वास्ते एक नयी पार्टी (रिपब्लिकन पार्टी) का गठन हुआ। अन्त मे दासो को मुक्त कर दिया गया, और उस दल ने अमरीका को अब्राहम लिंकन दिया, जो अमरीकी आदर्श के साकार रूप थे।

रिपब्लिकन दल ने "चौदहवे संशोधन" की शानदार धाराओं में समानता

के पुराने आदर्श को एक नवीन स्वीकृति प्रदान की, जो स्वतत्रता के घोषणा-पत्र के शब्दो और अधिकारो के विधेयक के समकक्ष होने योग्य है—"कोई भी राज्य ऐसा कानून न तो बनायेगा और न लागू करेगा, जो सयुक्त राज्य अमरीका के नागरिको की सुविधाओ तथा छूटो को कम करेगा, और न कोई राज्य किसी व्यक्ति को बिना कानूनी कार्रवाई के जीवन, स्वतत्रता तथा सम्पत्ति से वचित करेगा और न अपने अधिकार-क्षेत्र मे किसी को कानूनो के समान सरक्षण से इन्कार करेगा।"

गृह-युद्ध का मूल्य चुका कर, अमरीका ने इन सिद्धातो के आधार पर परीक्षण करते रहने के अपने सकल्प को और भी सुदृढ कर लिया कि कोई भी राष्ट्र, जो स्वतत्रता का विचार रखता है और इस सिद्धान्त को मानता है कि "सभी मनुष्य समान उत्पन्न हुए है", अधिक दिनो तक टिक सकता है।

और भी परीक्षणो के आने में बहुत देर नही लगी। शीघ्र ही यह स्पष्ट हो गया कि मनुष्य के स्वतत्रता के अधिकार के साथ कार्य करने का अधिकार तथा योग्यता के अनुसार व्यक्तिगत सफलता का अधिकार भी शामिल होना चाहिए। जब सघर्ष का अखाडा राजनीतिक अधिकारो से आर्थिक अवसरो की ओर खिसक गया तो पहले से ही जीते हुए राजनीतिक अधिकार शक्तिशाली अस्त्र सिद्ध हुए। मतदान के साथ लोगो ने प्रत्येक राज्य मे नि शुल्क जनशिक्षा की प्रणाली की स्थापना की, जो कि अवसर की असमानता के विरुद्ध सबसे बडा कार्यक्रम था। अधिकाश देश मे सभी बच्चे पाठशालाओ मे जाते और और जन्मगत जाति के अनसार नही, बल्कि वर्णमाला के अक्षरो के क्रम मे बैठाये जाते और अपने-अपने प्रयत्नो से सफलता प्राप्त करते।

अन्याय का अन्य समाधानकारक था सीमान्त, जिसकी ओर परिश्रमी और अग्रगामी अमरीकियो ने उन्नीसवी शताब्दी मे सर्वदा ध्यान दिया। जैक्सनवादी डिमोक्रेटिक काग्रेस-सदस्य ऐण्ड्रयू जानसन ने, जो रिपब्लिकन दल के उत्पीड़ित राष्ट्राध्यक्ष थे, १८४६ मे पश्चिम की सघ–नियत्रित भूमि को पारिवारिक खेतो मे परिणत करने के लिए 'होमस्टेड बिल' प्रस्तुत किया।

इस विधेयक के पास हो जाने पर २८ करोड ५० लाख एकड भूमि बाँटी गयी। अगले पचास वर्षों के लिए कोई भी अमरीकी परिवार शहरो मे अवसर न मिलने पर अपने परिश्रम और अध्यवसाय के बल पर और कम खर्च पर अपने खेतो में एक नये जीवन के निर्माण के लिए स्वतत्र था।

इस प्रकार सीमान्त और जनशिक्षा में वर्ग-सघर्ष के लिए अमरीकी जनता

को सम्मिलित विकल्प प्रदान किया गया, जिसकी मार्क्स ने कल्पना नही की थी। नगर के जिस मजदूर को कारखाने मे उचित वेतन नही मिलता, वह पश्चिम मे पूर्ण और विकासमान जीवन का निर्माण कर सकता था और इस विकल्प के अस्तित्व ने ही नगर के मजदूरो के लिए औद्योगिक प्रजातत्र के विकास मे धीरे-धीरे सहायता की। सभी के द्वारा प्राप्त या प्रयुक्त मत ने उसकी औद्योगिक क्रान्ति के नये विज्ञान और शिल्पविज्ञान के लाभो का सभी लोगो तक पहुँचना सम्भव बना दिया।

अन्य पश्चिमी देशो मे सभी लोगो तक मताधिकार के विस्तार के लिए वही लडाई लडी गयी और समय पर जीती गयी। १८४० के दशक में इग्लैण्ड मे जनता के 'अधिकार—पत्र' पर, जिसमें समान निर्वाचिन-क्षेत्रो, गुप्त मतदान, वार्षिक पार्लमेट और सम्पत्ति को योग्यता का आधार न मानने की माँग की गयी थी, तीस लाख से अधिक लोगो ने हस्ताक्षर किये और अभूतपूर्व विशाल जनसमूह ने प्रदर्शनो द्वारा उसका समर्थन किया था।

कार्ल मार्क्स भी, जो अपनी हिंसात्मक क्रान्ति के सिद्धान्त की ओर मुड़ रहा था, कुछ देर के लिए शान्तिपूर्ण प्रजातात्रिक कार्रवाई की सभावनाओ के प्रति बढते हुए उत्साह से बहुत प्रभावित हुआ। ज्योही इंग्लैण्ड के लोगो ने अधिकार-पत्र को कार्यान्वित किया, उन्होने १८४७ मे कहा, "स्वतत्रता का मार्ग विश्व के लिए खुल जायेगा।" उन्ही के शब्दों में, जिन्हे प्रजातत्र मे विश्वास रखने वाले, बाद मे, साम्यवादियो के विरुद्ध प्रयोग करते, मार्क्स ने उत्साह के साथ 'अधिकार-पत्र' और व्यापक मताधिकार के सम्बध में कहा, "इग्लैण्ड के मजदूरो, इस महान उद्देश्य को पूरा करो और तब समस्त मानव जाति के सरक्षक के रूप मे तुम्हारा स्वागत किया जायगा।" परन्तु अधिकार-पत्र तुरन्त ही कार्यान्वित नही हुआ और तब मार्क्स 'साम्यवादी घोषणापत्र' लिखने के लिए इस विश्वास के साथ योरोप वापस चले गये कि शान्तिपूर्ण कार्रवाई का असफल होना निश्चित है।

मार्क्स का कहना ठीक ही था कि औद्योगिक क्रान्ति ने मानवीय व्यापार मे नवीन विग्रह उत्पन्न कर दिये है, परन्तु प्रजातात्रिक प्रक्रिया से उसके समाधान के प्रति उनका निराश हो जाना गलत था, क्योकि बीस वर्षों के भीतर ही इग्लैण्ड ने, जैसा कि अमरीका में भी हो रहा था, व्यापक मताधिकार के सारांश को उसी तरीके से प्राप्त कर लिया था, जिसे मार्क्स ने अपनी अधीरता के कारण अस्वीकार कर दिया था। १९ वी शताब्दी के अन्त तक योरोप और अमरीका

के समाजवादी दल देख रहे थे कि उनका मच उदारवादी तथा रूढ़िवादी सरकारे भी ग्रहण करती जा रही है, जो प्रजातात्रिक सोशलिस्टो की स्थिति के प्रति एक अप्रत्यक्ष सम्मान ही था, यद्यपि कभी-कभी अमरीका की भाँति उनके पास कोई कार्यक्रम न था।

मार्क्सवादी परम्परा की मुख्य धारा के साथ प्रजातंत्रात्मक समाजवाद का यह सम्बध ससार के मामलो को समझने के लिए आज भी बहुत ही महत्व-पूर्ण है। सचमुच यह इतना महत्वपूर्ण है कि अमरीका की अवसर की समानता की महान सफलता की कहानी को पूरा करने के पूर्व मै महसूस करता हूँ कि यहाँ कुछ विषयान्तर करना तथा और अधिक आलोचना करना उचित होगा।

यह बात प्रारम्भ से ही काफी स्पष्ट है कि विभिन्न लोगो के लिए 'लोक-तात्रिक समाजवाद' और 'मार्क्सवाद' के अर्थ भी भिन्न-भिन्न है। क्रेमलिन अपनी सफलताओ का ढोल यह कह कर पीटता है कि वे ही मार्क्सवाद और समाजवाद की एकमात्र पूर्तियाँ है। कुछ प्रमुख, किन्तु कम जानकार अमरीकी राजनीतिज्ञ भी इसी भावना के किसी अश को प्रतिध्वनित करते हुए घोषणा करते है कि समाजवाद और साम्यवाद "एक ही फली के दो दाने हैं।"

अमरीकी समाजवादियो के अत्यन्त सम्मानित नेता, नारमन थामस ने उत्तर दिया है कि साम्यवाद सच्चे समाजवाद का न केवल निश्चित विश्वासघात हैं, प्रत्युत वह 'सच्चे मार्क्सवाद' का भी उन्मूलन है। साम्यवाद और प्रजातात्रिक समाजवाद एक ही फली से हो सकते है, परन्तु आज वे एक दूसरे से बहुत भिन्न है और यह भिन्नता मात्रा मे नही, प्रकार मे है।

इस भिन्नता का इतिहास मार्क्स से भी अधिक पुराना है। राज्य के प्रति तथा अपने उद्देश्यो की पूर्ति के लिए उपयुक्त साधनो के प्रति दृष्टिकोणो में समाजवादियो में युग-युग से मौलिक मतभेद रहा है। उनका प्राचीनतम सूत्र— "प्रत्येक से उसकी सामर्थ्य के अनुसार और प्रत्येक को उसकी आवश्यकता के अनुसार" मार्क्स से नही निकला है, बल्कि बाइबिल और यूनानी दर्शन की उपज है।

परन्तु इस सम्बध मे यह विचार कि इसकी प्राप्ति शक्ति द्वारा की जाय या समझा-बुझाकर, प्रजातात्रिक और शान्तिपूर्ण कार्यों द्वारा या हिंसात्मक क्रान्ति और सर्वहारा की तानाशाही द्वारा की जाय, इससे सम्बन्धित समाज, उससे विकसित नेतृत्व तथा किसी विशिष्ट समाजवादी के दर्शन से

प्रभावित हुआ है।

१६ वी शताब्दी के इग्लैण्ड में छायी हुई आर्थिक दीनता पर महान कैथोलिक राजनीतिज्ञ, सर थामस मोर ने अपना 'यूटोपिया' (कल्पना-स्वर्ग) लिखा। उन्होने आदर्श समाज का वर्णन किया ह, और उन्होने ऐसे शब्दो मे श्रम-विभाजन और वस्तु–वितरण की आवश्यकता बतायी जिसे आज के बहुतेरे गम्भीर व्यक्ति स्तम्भित होकर साम्यवादी कहेगे, परन्तु इसकी प्राप्ति के लिए उन्होने कभी हिंसात्मक क्रान्ति का सुझाव नही दिया।

मार्क्स के पूर्व का अधिकांश "समाजवाद" धार्मिक प्रेरणा से सचमुच धार्मिक तथा तात्विक वातावरण मे लिखा गया था। नारमन थामस ने जब न्यूयार्क के ब्रिक प्रेस्बीटेरियन चर्च से निकल कर अमरीकी समाजवादी दल मे प्रवेश किया, तब वह एक दीर्घकालीन परम्परा का उत्तराधिकारी था।

राष्ट्रपति-पद के लिए छ बार के इस उम्मीदवार का जन-जीवन षड्यन्त्र-कारी और देशद्रोहात्मक कार्यो से इतना परे था कि उसकी ७० वी वर्षगाँठ के अवसर पर एक सम्पादकीय लेख मे यह कहा गया था कि नारमन थामस को व्यापक रूप से अमरीकी राष्ट्रीय आत्मा का एक प्रबल सरक्षक माना जाता है और साथ ही साथ वे साम्यवाद के कट्टर विरोधियो में भी है।

पश्चिमी समाजवादी, विशेषत वे जो हिंसारहित 'मार्क्सवाद' को मानते है, समाजवाद की व्यावहारिक समस्याओ पर तीव्र मतभेद रखते हैं। स्वीडन, भारत, बर्मा, ब्रिटेन और सयुक्त राज्य अमरीका जैसे लोकतान्त्रिक देशो के लिए एक कामचलाऊ कार्यक्रम बनाने के लिए किसी भी कट्टर मार्क्सवादी को जाने या अनजाने उस मार्क्स के बारे में बहुत कुछ अध्ययन करना चाहिए, जिसका मार्क्सवाद से बहुत कम या युक्तिसगत सम्बन्ध नही है।

वास्तव मे अमरीकी इतिहास ने वर्ग-सघर्ष की मार्क्स की भविष्यवाणी को बड़ी स्पष्टता के साथ गलत सिद्ध कर दिया। यहाँ स्वतत्र राजनीतिक संस्थाओ, विकासमान अर्थव्यवस्था, सम्पत्ति का व्यापक वितरण और कठोर वर्ग-रेखाओ की अनुपस्थिति, इन सब ने मिलकर सर्वहाराओ की सशस्त्र क्रान्ति को एक हल्का और विचित्र रूप प्रदान कर दिया है।

गत शताब्दी में क्रमिक सुधारो की यह प्रगति उतनी स्पष्ट नही थी, जितनी आज है। यदि हम याद करे कि सन् १९०० में एक अमरीकी व्यापारी, एक वर्ष में ही २ करोड ५० लाख डालर बिना एक सेंट भी आय-कर दिये, कानूनन हड़प गया, तो दो पीढियो पूर्व के उग्र समाजवादियों

के भाषण उसकी तुलना में कम विचित्र मालूम होगे।

परन्तु अमरीका मे आज सभी दिशाओ मे परिवर्तन स्वीकार कर लिया गया है। नारमन थामस ने कहा है कि मजदूरो और पूजीवादियो में महान सघर्ष का विचार इयूजीन डेब्स के समय सार्थक था, परन्तु अब नही। ब्रिटेन मे आज मजदूर-सरकार के अन्तर्गत जो कुछ हो रहा है और अमरीका में जो कुछ तथाकथित पूजीवादी पार्टी के अन्तर्गत हो रहा है, उसमे केवल मात्रा का अन्तर है। हम एक अस्वीकृत क्रान्ति के बीच से निकले है।

कुछ वर्ष पूर्व जब इसेक्स, कनेक्टीकट मे हमारे कॉग्रीगेशनल चर्च के 'पब्लिक फोरम' की बैठक मे नोरमन थामस का परिचय देने का भार मुझ पर पडा, तो मैंने सकेत किया कि समाजवादी दल के चौदह सूत्री कार्यक्रम मे से, जिसके आधार पर वे पहलेपहल राष्ट्राध्यक्ष के लिए चुनाव लडे थे, केवल बैको के राष्ट्रीय स्वामित्व के सम्बन्ध मे कोई कानून नही बनाया गया, जिसका आज दोनो प्रमुख राजनीतिक दल समर्थन कर रहे है। सिनेटरो का प्रत्यक्ष चुनाव, आय-कर, सामाजिक सुरक्षा, आठ घण्टे का दिन और किसी समय की अन्य मौलिक समाजवादी मागो का बहुत पहले से सम्मान हो रहा है।

कदाचित् यह भी कहा जा सकता है कि पश्चिमी योरोप और दक्षिण एशिया मे साम्यवाद के विरुद्ध जो युद्धोत्तर प्रतिरक्षात्मक कार्रवाईयाँ की गयी, उनका एक प्रमुख रूप, प्रत्यक्ष रूप से और अनुदार दलो पर उसके गहरे प्रभाव के द्वारा लोकतात्रिक समाजवाद मे पाया गया है।

हाल के अनुभवो से प्रकट है कि प्रजातंत्रात्मक समाजवादियो का विशेष ध्यान लोकतात्रिक प्रकिया पर रहा है, जिससे कम से कम, सार्वजनिक स्वामित्व की भाँति स्वेच्छापूर्ण सहकारी प्रयासो पर बल दिया जा सके और समाजवाद की अभिव्यक्ति के रूप मे अत्यधिक राजतत्र के विरुद्ध चेतावनी दी जा सके।

नारमन थामस ने कहा है, "अच्छे समाज की रचना तभी हो सकती है, जब विकास का प्रत्येक चरण उस युग के लोगो के लिए आशीर्वाद बन जाये, जिसमे वे रहते है। अमरीका मे इसकी रचना उस हिंसा से नही हो सकती, जो प्रायः क्रान्ति शब्द के साथ जुटी रहती है। हमारी आधुनिक जटिल सभ्यता मे, जिसमें हिंसा के अस्त्र इतने घातक और प्रभाव मे इतने व्यापक है, व्यवस्थित हिंसा, अपनी प्रकृति के कारण ही, उस समाज को अपवित्र और लुजपुज कर देगी, जिसकी वह रचना करना चाहती है ।"

जैसा कि हम नई दिल्ली और बाण्डुग में देख चुके हैं, दक्षिणी एशिया के

नये प्रजातन्त्रात्मक राष्ट्रो के अधिकाश नेता शान्तिपूर्ण तथा लोकतान्त्रिक समाजवाद के इस सिद्धान्त को स्वीकार करते है। बर्मा मे समाजवादी सरकार है और भारत, लका और हिन्देशिया की नीतिया लोकतान्त्रिक समाजवाद की विचारधारा से अत्यधिक प्रभावित है। पाकिस्तान और मिस्र की नयी सरकारो ने अपने देशो को 'इस्लामी समाजवाद' का आदर्श बताया है।"

'समाजवाद' सचमुच न केवल अफ्रीका, एशिया, और दक्षिणी अमरीका में एक पूर्ण लोकप्रिय शब्द है, प्रत्युत इन महाद्वीपो मे वहाँ के अधिकाश निवासी समाजवाद का समर्थन करते है और अपने-आप को समाजवादी घोषित करते है। यदि अमरीका अपनी इस बात को रखना चाहता है कि प्रगति लोकतान्त्रिक तथा शान्तिपूर्ण होनी चाहिए, तो उसे इस बात पर जोर नही देना चाहिए कि 'समाजवाद' और 'साम्यवाद' मे कोई अन्तर नही है, बल्कि इसके विपरीत उसे इस अन्तर पर बल देना चाहिए कि प्रजातत्र उन विचारो को प्राप्त करने का एक मार्ग है, जिन्हे समस्त विश्व के करोडो असाम्यवादी समाजवाद से सम्बन्धित करते है।

यह कहने के उपरान्त अमरीका मे समानता के विकास और मानवीय गौरव की कहानी की ओर फिर मुडना उपयुक्त होगा, जो कदाचित् हिंसात्मक वर्गसघर्ष की मार्क्सवादी विचारधारा के लिए इतिहास का एकमात्र प्रभावशाली उत्तर होगा।

× × ×

उन्नीसवी शताब्दी के प्रथम दशक मे अमरीकी निगमो की बढती हुई शक्ति से मजदूर-यूनियनो का उद्भव हुआ और आर्थिक प्रजातन्त्र के क्रमिक विकास की प्रक्रिया प्रारम्भ हुई।

१८४० मे कपडे के कारखानो मे ८० घण्टो का सप्ताह सामान्य बात थी, जबकि प्रजातान्त्रिक प्रशासन ने सघीय मजदूरो के लिए दस घण्टे का दिन लागू किया। १८६८ मे सघीय सरकार ने युद्धोत्तरकालीन रिपब्लिकन प्रशासन के अन्तर्गत क्रान्तिकारी ८ घण्टे के दिन की स्थापना में फिर से नेतृत्व किया, जिसे १८९० मे एजिल्स ने साम्यवादी घोषणापत्र की नयी भूमिका में साम्यवादियों के तात्कालिक महान उद्देश्य के रूप मे घोषित किया। १९०० में अमरीका के उद्योगो मे सामान्य रूप से दस घण्टे का दिन प्रारम्भ नहीं हुआ था, परन्तु वे थे उसी मार्ग पर।

एकाधिकार के विरुद्ध एक और भी प्रबल और तात्कालिक चुनौती

'पापुलिज्म' की ओर से दी गयी, जो किसानो और छोटे-छोटे व्यापारियो का एक नया राजनीतिक आन्दोलन था। वह पश्चिमी घास के मैदानो से पूर्वी व्यापारो पर अधिकार प्राप्त करने के लिए उठा। शेरमन का ट्रस्ट–विरोधी अधिनियम १८९० मे पुस्तको के रूप मे आया और तभी से व्यापारिक स्वतत्रता के अधिकार-पत्र के रूप मे बना हुआ है।

नये उदारवाद की शक्ति का अनुभव स्वय रिपब्लिकन पार्टी मे किया गया, जबकि थियोडर रूजवेल्ट, राबर्ट लाफोलेटे तथा अन्य प्रगतिवादियो ने निश्चय किया कि स्वतत्र व्यवसाय-प्रणाली के लिए एकाधिकारो तथा बड़ी-बड़ी कम्पनियो के विनाश अथवा नियमन की आवश्यकता है। बीसवी शताब्दी के ये प्रगतिवादी रिपब्लिकन लिंकन के इस सूत्र को नही भूले है कि "सरकार का समुचित उद्देश्य जनसमुदाय के लिए वही करना है, जो वह स्वय अपने लिए करती, परन्तु वह स्वय अपनी स्वतत्र एव एकाकी सामर्थ्य पर बिल्कुल कुछ नही कर सकती अथवा उतनी अच्छी तरह से नही कर सकती।"

१९१२ मे टेडी रूजवेल्ट ने अनुदारवादोन्मुख प्रवृत्ति से भयभीत हो, अपने "बुल मूजरो" से विद्रोह करा कर उन्हे रिपब्लिकन सम्मेलन से बाहर निकाला और एक पुनर्गठित डिमोक्रेटिक पार्टी ने मशाल अपने हाथ मे लिया। जिस 'पापुलिस्ट' नारे ने विलियम जेनिंग्स ब्यान को जन्म दिया, उसी ने नगरो के मजदूरो और प्रवासियो तथा दक्षिण और पश्चिम के छोटे-छोटे किसानो को मिला कर एक नयी शक्तिशाली राजनीतिक सस्था का सगठन किया। जब रिपब्लिकनो मे फूट पड गयी, तब ब्यान के उत्तराधिकारी वुडरो विल्सन उस 'नयी स्वतत्रता' के ठोस कार्यक्रम के साथ तैयार थे, जिसमे इस बात पर जोर दिया गया कि आर्थिक कल्याण के लिए अमरीकियो के लोकतान्त्रिक राजनीतिक अधिकारो का उपयोग साहस के साथ किया जा सकता है और किया जाना चाहिए।

न्यास-विरोधी कानूनो को दृढ करके, फेडरल रिज़र्व एक्ट के साथ साख को सुस्थिर करके और प्रजातन्त्रात्मक विकास के प्रमुख साधन, विकासमान आय-कर, जिसको १९०९ में रिपब्लिकन काँग्रेस ने स्वीकार किया था, का प्रयोग करके विल्सन ने बड़ा ही प्रभावशाली प्रारम्भ किया; परन्तु १९११ में विल्सन का घरेलू कार्यक्रम, प्रथम विश्व-युद्ध के सकट में एक किनारे रख दिया गया और सामान्य अवस्था की धुन में, जो १९२० के दशक में शुरू हुई, उसे लगभग भुला ही दिया गया।

फिर भी, इसके परिणाम को हमेशा के लिए रोका नही जा सकता था। जब १९२९-३३ की विकराल मन्दी ने अर्थव्यवस्था को बिलकुल रोक दिया और एक करोड ४० लाख लोगो को बेकार कर दिया, तब यह प्रश्न उत्पन्न हुआ कि अमरीका के वादे का सम्मान किया जाय या नही। कुछ निराश लोगो ने ऊची इमारतो से कूद कर जानें दे दीं। उससे अधिक, परन्तु फिर भी थोडे ही लोग यह विश्वास करते कि अमरीका स्वतत्रता के उपयोग के द्वारा समानता की समस्याओ के समाधान मे अपने प्रयास के अन्त तक पहुँचं चुका है, मार्क्स के हिंसात्मक वर्गसघर्ष के उपदेश की ओर मुड गये, किन्तु अपनी समस्याओ को लोकतात्रिक ढग से सुलझाने के लिए अमरीकी सकल्प ने शीघ्र ही अपना जोर दिखाया।

एक बार फिर लोगो को अपनी ऐतिहासिक आस्था के प्रति जागरूक करने के लिए एक मनुष्य और एक राजनीतिक साधन पैदा हुए। सुव्यवस्थित और प्रामाणिक ढग से यह प्रदर्शित करते हुए कि अमरीका अपने राष्ट्र के एक तिहाई भूखे, नगे और बेघरबार लोगो को अवसर की समानता प्रदान करने में कहाँ तक अपने कर्तव्यो का पालन करने मे असफल हुआ है, फ्रैंकलिन रूज़वेल्ट ने एक नये अभियान के लिए न केवल सरकारी साधनो को, बल्कि जनता के उत्साह को भी सगठित और गतिशील बनाया। डेढसौ वर्ष पूर्व अमरीका ने 'स्वराज्य भवन' मे जो मार्ग निश्चित किया था, नया व्यवहार (न्यू डील) उसीका एक अनिवार्य अग था। यद्यपि रूजवैल्ट तथा उसके समर्थको ने मदी के विरुद्ध अपना सघर्ष प्रारम्भ किया, तथापि उन्हे शीघ्र ही मालूम हो गया कि बिना पूर्ण सामाजिक परिवर्त्तन के विकराल मदी को समाप्त नही किया जा सकता और न उसकी प्रतिक्रिया को रोका जा सकता है।

रूजवेल्ट ने बाद में कहा, "अमरीकी इतिहास के प्रारम्भ से ही हम लोग परिवर्तन मे, निरन्तर एक शान्तिपूर्ण क्रान्ति में, सलग्न है, ऐसी क्रान्ति जो सावधानी और शान्ति के साथ परिवर्तित स्थितियो के अनुकूल बनती चली जा रही है, जिसमे न तो बन्दी-शिविर की जरूरत है और न 'खाई में चूने' जैसे क्रूर तरीको की।"

अमरीका की चालू शान्तिपूर्ण क्रान्ति की भावना के साथ सरकार ने राजनीतिक अधिकार-विधेयक मे निम्नलिखित आर्थिक अधिकारो को जोड़ने की कार्रवाई की :—

किसानो तथा मजदूरो को उचित वेतन का अधिकार;

अभावमुक्त वृद्धावस्था की आशा का अधिकार;

मजदूरो को अपनी इच्छा के अनसार यूनियन सगठित करने और उन यूनियनो का, अपने भाग्य-सुधार के लिए, उपयोग करने का अधिकार।

रहने के लिए एक अच्छे निवास-स्थान का अधिकार,

राष्ट्र के साधन-स्रोतो के लाभो मे उचित भाग का अधिकार।

अभाव के विरुद्ध इस प्रथम राष्ट्रीय युद्ध मे सकटकालीन सहायता, जनकार्य, 'टी वी ए' प्रतिभूत तथा विनिमय-अधिनियम, उचित श्रम-स्तर अधिनियम, सामाजिक सुरक्षा, राष्ट्रीय श्रम-सम्बन्ध अधिनियम और खेती की आय की न्यूनतम सीमा निर्धारित करने के लिए एक कार्यक्रम भी शामिल है।

एक विशिष्ट अर्थ मे नया व्यवहार (न्यू डील), सभी लोगो को रोजी देने के अपने उद्देश्य मे अपर्याप्त सिद्ध हुआ। १९३९ मे भी ८० लाख लोग बेकार थे। द्वितीय विश्वयुद्ध ने हमे सिखाया कि युद्धकालीन पूर्ण उत्पादन और अच्छी नौकरियाँ शान्तिकाल मे भी प्राप्त हो सकती है, यदि सरकार और व्यापारी आवश्यक नेतृत्व प्रदान करे और लोगो मे आवश्यक इच्छा हो।

सभी श्रेणियो के अमरीकी लोगो के लिए सार्वभौमिक सैनिक सेवा और जी आई. अधिकार विधेयक, जिसने उन करोडो अमरीकियो को उच्च शिक्षा प्रदान की, जो शायद अपने-आप नही प्राप्त कर सकते थे– इन सभी ने मिलकर एक नई किस्म की मिश्रित अर्थव्यवस्था को जन्म दिया, जो लगभग वर्गविहीन समाज के निकट थी।

इस उल्लेखनीय आलेख की ओर सकेत करते हुए हमे इस तथ्य का भी सामना करना चाहिए कि १९२९ से युद्ध के बिना हम अपने सभी आदमियो को काम नही दे पाये है और युद्ध के बाद उत्पादन के अभाव की पूर्ति अथवा विशाल प्रतिरक्षा कार्यक्रमो की आवश्यकता की पूर्ति कर पाये है। इसका अर्थ यह कदापि नही है कि उत्पादन और शान्ति परस्पर अलग-अलग चीजें है। यदि आने वाले वर्षों मे सोवियत यूनियन हमे विश्वास दिलाता है कि वह सचमुच निर्दोष नि शस्त्रीकरण को निरीक्षण-सहित स्वीकार कर लेगा तो अमरीका के लिए घरेलू आर्थिक दबावो के कारण पीछे हटना मूर्खता होगी। स्कूलो, सडकों और अस्पतालो का हमें निर्माण करना है, गन्दी बस्तियो को समाप्त करना ह, नगरो का आधुनिक ढग पर नियत्रण करना है, देश और विदेश मे अमरीकी उत्पादन के लिए अभी भी निस्सीम सभावनाएँ हैं।

× × ×

गैरसरकारी निगमो के भीतर भी कुछ ऐसी चीजें हो रही है, जो मार्क्स को भी चकित कर देती और जो हमारी अर्थव्यवस्था को विशेष गतिशीलता प्रदान कर रही है। पूजीवादी विकास ने, सचमुच, सैकड़ो विशालकाय कारपोरेशनो की स्थापना की, जो अमरीकी तथा सम्पूर्ण पश्चिमी अर्थव्यवस्था के प्रभावशाली अगो को नियत्रित कर रहे है। अरबो डालर वाले कुछ कारपोरेशनो के पास हमारे सघ के अनेक राज्यो से भी अधिक आर्थिक साधन-स्रोत है। फिर भी, इस विकास के परिणामो पर मार्क्सवादी भविष्यवाणियाँ असत्य सिद्ध हुई हैं। कही-कही पर सगठित विकास के द्वद्वात्मक सिद्धान्त ने अप्रत्याशित रूप ग्रहण कर लिया। कदाचित् यह तब हुआ, जब हैनरी फोर्ड ने आठ घण्टे के दिन की घोषणा की और निर्णय किया कि विशाल उत्पादन के लिए, आवश्यक अधिक खपत के लिए, मूल्यो का कम होना तथा वेतन का बढना जरूरी है। कदाचित् उसी समय जनरल मोटर्स ने यूनाइटेड ओटोमोबाइल वर्कर्स (सी आई. ओ) के साथ प्रथम ठेके पर हस्ताक्षर किये।

अब अधिकाश निगमित मण्डल स्टाकहोल्डरो के हितो के साथ-साथ कारपोरेशन के हित और मजदूरो की भलाई का भी ध्यान रखते है। १९५४ मे जब व्यापार ढीला होने लगा तब एक प्रमुख कारपोरेशन ने तुरन्त ही सामान्य हित के लिए अरबों डालर के एक विस्तार-कार्यक्रम की घोषणा कर दी। आज कुछ प्रमुख कारपोरेशन अमरीकी कालेजो तथा विश्वविद्यालयो मे अन्वेषण कार्य के लिए अपार धनराशि की सहायता प्रदान करते हैं।

हमारी चालू अमरीकी क्रान्ति का सबसे अधिक आश्चर्यजनक विकास ह, उत्पादन के साधनो पर मजदूरो के स्वामित्व की दिशा में प्रगति, जिसका साधन सर्वशक्तिमान राज्य नही ह, अपितु पेन्शन तथा कल्याणकारी निधियो से उन कारपोरेशनो के बड़े-बडे शेयरो का मजदूरो द्वारा खरीदा जाना है, जिनकी स्थापना युद्ध के समय से की गयी है। श्रम-ठेका, जो कभी मालिक द्वारा निर्देशित एकपक्षीय मामला था, अब अधिकाश उद्योगो मे सौदेबाजी की प्रक्रिया का परिणाम है, जो एकपक्षीय कदापि नहीं है। आश्वस्त वार्षिक वेतन का प्रारम्भ, जिसको फोर्ड और जनरल मोटर्स ने १९५५ में स्वीकार किया, समय का एक दूसरा सूचक है।

फिर भी, अमरीका तथा पश्चिम अभी भी अपनी आर्थिक समस्याओं का हल नहीं कर पाये है। स्वचालित यत्र और भी अनेक समस्याएँ पैदा कर देंगे। मदी अभी भी एक भयानक खतरा है; गन्दी बस्तियाँ अभी भी मौजूद हैं और

उच्चतम न्यायालय के निर्णयो द्वारा महान लाभों की आशाओ के बावजूद जातिगत भेदभाव के आर्थिक प्रभाव आज भी मौजूद है।

परन्तु एक बात स्पष्ट है। अमरीकी लोगो ने यह सीख लिया है कि प्रचुर उत्पादन खतरे का प्रतिनिधित्व नही करता, बल्कि हमारे तथा विश्व के लिए अवसर प्रदान करता है। यह न मानने का कोई कारण नही है कि हमारी राजनीतिक सस्थाएँ इतनी लचीली नही होगी कि किसी भी नयी सामाजिक तथा आर्थिक समस्या का समाधान कर सकेगी। यद्यपि हमारे सिद्धान्तो और व्यवहार मे अन्तर है, फिर भी यह निश्चित रूप से कम हुआ है और हम अतीत की किसी भी अन्य सभ्यता की अपेक्षा सामाजिक और आर्थिक न्याय के बहुत निकट पहुँच गये है।

मार्क्स का यह कथन ठीक ही था कि पूजीवाद की नयी प्रणाली को मानव-शोषण की प्राचीन पद्धति के अन्तर्गत नही रखा जा सकता। परन्तु उनका यह विश्वास बिल्कुल ही गलत था कि शान्तिपूर्ण और प्रजातत्रात्मक ढग से जनता की क्रयशक्ति और अर्थव्यवस्था को सामान्य कल्याण के अनुकूल बनाना असभव है।

१७७६ मे राजनीतिक स्वतत्रता के जनक और १९५५ मे उद्योगवाद के विश्वव्यापी आदर्श अमरीका ने, व्यवहारिक समझौते के अनेक रूपो के द्वारा इन दो महाशक्तियो के प्रबल विरोधो में समन्वय स्थापित करने में सफलता प्राप्त की है।

उन्तीसवाँ प्रकरण

अमरीका का साम्राज्यवादी प्रयोग

पश्चिमी सीमान्तो के अन्त से अमरीकियो के लिए सकट का रूप अपेक्षाकृत उससे अधिक प्रकट हुआ, जितना वे उस समय समझ सके थे। अनेक पीढियो से ओरेगन तथा कैलीफोर्निया शाश्वत लक्ष्य-स्थल बने हुए थे। एक बार वहाँ पहुँच कर बस जाने पर और सघ मे सम्मिलित हो जाने पर अमरीकी बेचैनी और पाबदी महसूस करने लगे।

बीसवी शताब्दी में पहली बार अमरीकियो की एक पीढी झडे में नया सितारा जोडे बिना गुजर गयी। 'परिलक्षित भाग्य' अब कहाँ गया ? अमरीका की औद्योगिक शक्ति जब अभूतपूर्व गति से विस्तृत हो रही थी, तब प्रशान्त महासागर ने उनके सामने यह तथ्य प्रकट किया कि, वे महाद्वीप के छोर तक पहुँच गये है।

१८९८ के अमरीका और स्पेन के युद्ध के साथ अमरीका प्रौढ अवस्था प्राप्त कर रहा था। इसकी महाद्वीपीय कहानी समाप्त हुई और उसकी विश्व-शक्ति के युग का प्रारम्भ हुआ। स्पेनिश शासन के विरुद्ध क्यूबा-विद्रोह में अमरीकी सहायता, अपने क्रान्तिकारी अतीत के प्रति जागरूक पडोसी राष्ट्र के लिए स्वाभाविक ही थी। तथापि युद्ध का एक अनपेक्षित परिणाम यह हुआ कि फिलीपाइन्स, गुआम और पोर्टो रीको में स्पेन के शासन के स्थान पर अमरीकी साम्राज्यवादी शासन प्रारम्भ हुआ। इस उपनिवेश-विरोधी परम्परा से साम्राज्यवादी सत्ता की सक्रातिकालीन विडम्बना बीसवी शताब्दी की अमरीकी नीति की एक पहेली है।

इतिहास का अध्ययन यह प्रकट कर देता है कि शक्तिशाली राष्ट्रो के लिए साम्राज्यवाद का प्रलोभन प्राय एक मौलिक पाप है। अमरीका के अत्यधिक क्रान्तिकारी क्षणो मे भी और विदेशी शासन के विरुद्ध दक्षिणी अमरीकी विद्रोह का समर्थन करते हुए भी, अथवा दूरस्थ यूनानी विद्रोहियो को सहायता भेजते हुए भी, अमरीकी अपने देश मे ही बिल्कुल घरेलू 'इण्डियन कबीलों' के साथ स्पष्टत साम्राज्यवादी ढग से व्यवहार कर रहे थे। जेम्स-टाउन में उतरने के बाद तीन शताब्दियो मे गोरे अमरीकियो ने बडे ही व्यवस्थित ढग से तथा क्रूरता के साथ मूल 'इण्डियन' निवासियो का मूलोच्छेदन

कर दिया। जो बच भी रहे, उन्हे सुरक्षित सीमाओ मे रहने के लिए बाध्य किया गया। पश्चिम की ओर बढ जाने की नये अमरीकियो की अधीरता मे मूल अमरीकियो के अधिकारो की प्राय उपेक्षा की गयी।

इसी प्रकार, एक स्वतत्र राष्ट्र के रूप मे अपनी उद्दण्ड युवावस्था मे हम लोगो ने गोली मारने की कुछ सिपाहियाना आदत, बिना किसी झिझक के बना ली थी और फलत उत्तर और दक्षिण के पडोसियो के साथ वैसा ही व्यवहार भी किया। १८१२ मे हैनरी क्ले तथा उसके 'लडाकू बाजो' (War Hawks) ने कनाडा को भी मिला लेने के अपने दृढ निश्चय की घोषणा बडी आसानी से कर दी। कुछ ही वर्षों के भीतर स्पेन-अधिकृत फ्लोरिडा मे ऐण्ड्रयू जेक्सन सैनिक कार्रवाई के लिए खोज कर रहा था।

एक पीढी बाद जब हमारी महत्वाकाक्षाएँ मिस्सीसीपी से भी आगे बढ़ गयी थी, तब १८४६ मे हमने युद्ध करके मैक्सिको से विशाल दक्षिण पश्चिमी हिस्से को हाथियाने मे कोई झिझक नही दिखायी और कनाडा के एक भाग पर ब्रिटेन के विरुद्ध लोकप्रिय नारा—"चौवन-चालीस अथवा युद्ध" के साथ अपना दावा पेश करने मे सकोच नही किया।

ऐतिहासिक अनुपात का प्रश्न यह था कि अपनी एकान्तता से विश्व के व्यापक सम्पर्क मे आने पर हम अपने साम्राज्यवादी रूप मे निकलेगे या अपने प्रजातान्त्रिक क्रान्तिकारी रूप मे? इसीलिए स्पेन और अमरीका के युद्ध मे हमारे कार्यों और उन कार्यो पर हमारे वादविवादो को याद करना चाहिए और उनकी समीक्षा करनी चाहिए, जबकि हम उपनिवेश-विरोधी राष्ट्रो से उत्तरोत्तर निकट सम्बध स्थापित करते जा रहे है।

बाद मे यह समझाते हुए कि निर्णय कैसे किया गया, राष्ट्राध्यक्ष मकिनले ने बताया, "सच तो यह है कि मै फिलीपाइन्स नही चाहता था और जब वह देवताओ से हमे उपहारस्वरूप प्राप्त हुआ तो मै समझ नही पाया कि उसके साथ क्या किया जाय?"

उन्होने कहा, "एक रात को वह मेरे समक्ष इस प्रकार प्रकट हुआ— मैं नही जानता कि क्यो, परन्तु मुझे लगा (१) कि हम उसे स्पेन को नही दे सकते थे, क्योकि वैसा करना कायरता होती और प्रतिष्ठा के प्रतिकूल होता, (२) कि हम लोग उसे जर्मनी या फ्रान्स के हाथों मे नही दे सकते थे क्योकि पूर्व मे वे हमारे व्यापारिक प्रतिद्वद्वी थे, वैसा करना अनुचित और अश्रेयस्कर होता; (३) कि हम उसको उसी के भाग्य पर नही छोड सकते

थे— वहाँ के लोग स्वराज्य के अयोग्य थे और वहाँ पर शीघ्र ही अराजकता तथा कुशासन फैल जाता तथा स्पेन के शासन से भी बुरी दशा हो जाती; और (४) कि हमारे सामने उसको ले लेने के सिवाय और कोई चारा ही न था। फिलीपाइनो को शिक्षित करने, उनका उत्थान करने तथा उनको सभ्य और ईसाई बनाने तथा अपने भाइयो की तरह, जिनके लिए ईसामसीह ने उत्सर्ग किया, ईश्वर की कृपा से उनके साथ सर्वोत्तम व्यवहार करने का भार हम पर है। तब मै सोने के लिए चला गया और डट कर सोया।"

अन्य अमरीकी लोग राष्ट्राध्यक्ष की भाँति डट कर नही सोये। सिनेट ने जिस समय पेरिस-सधि को स्वीकार करने को प्रश्न उठाया, जिससे स्पेन के साथ युद्ध का अन्त हो गया था, उस समय भी बहुतो ने अमरीकी क्रान्तिकारी आदर्शों पर बड़ी जोरदार भाषा मे बल दिया।

शताब्दी के अन्तकाल मे काग्रेस मे जो विरोधी तर्क भवन मे गूँज रहे थे, उनके प्रस्तुतकर्ता उस समय के दो अत्यधिक शक्तिशाली रिपब्लिकन सिनेटर थे। उनमे से एक मासाचुसेटस के जार्ज फ्रिस्बी होर थे, जो सिनेट मे पिछले सत्ताईस वर्षों से नेता थ, और जिनकी लडकी ने मेरे चाचा, स्प्रिगफील्ड के सैमुएल बोल्स के साथ शादी की थी। दूसरे थे इण्डियाना के ऐल्बर्ट बिवरिज। वह एक ऐसा वादविवाद था, जिस पर कुछ विस्तार से विचार कर लेना उचित होगा, क्योकि इसकी समस्याएँ आज भी हम पर दबाव डाल रही है और जिस जोर के साथ राष्ट्राध्यक्ष मकिनले का विरोध किया गया था, वह हमारी उपनिवेश-विरोधी परम्पराओ की शक्ति का परिचायक है।

जनवरी, १८९९ मे सिनेट मे सिनेटर होर ने विस्तार की नीति के विरोध का नेतृत्व करते हुए यह अभियोग लगाया कि द्वीप के प्रदेशो को जबर्दस्ती मिलाना स्पष्टत हमारी स्वतत्रता की घोषणा के विपरीत है।

उन्होने उस मौलिक प्रश्न को ऐसी भाषा मे प्रस्तुत किया, जिसकी प्रशसा जेफर्सन और लिंकन भी करते। "क्या यह सच है कि सभी मानव समान पैदा हुए है, अथवा यह केवल कुछ लोगो के लिए ही सही है? क्या यह सच है कि विधाता ने उन्हे कुछ अखण्ड अधिकार प्रदान किये है या यह केवल कुछ ही लोगो के लिए सही है? क्या यह सच है कि इन अधिकारो में जीवन, स्वतत्रता और सुख के अधिकार है, अथवा वे केवल कुछ ही लोगों के लिए है? क्या यह सच है कि शासक अपनी उचित शक्ति शासित की सहमति से प्राप्त करता है, या वह केवल कुछ ही लोगो की सहमति से

प्राप्त होती है ?"

मासाचुसेट्स के सिनेटर ने अपने प्रश्नो के उत्तर स्वयं ही दृढता के साथ दिये, "जब तुम फिलीपाइन्स द्वीपसमूह में प्रभुत्व और विजय के प्रतीक-स्वरूप झडे को ऊँचा करते हो, तो 'स्वराज्य भवन' से उसे नीचे उतार देते हो।"

सिनेटर बिवरिज का उत्तर बडा स्पष्ट था–"स्वतत्रता का घोषणा-पत्र स्वशासित लोगो द्वारा स्वशासित लोगों के लिए लिखा गया था। यह केवल उन लोगो पर लागू होता है, जो स्वशासन के योग्य होते है। किस प्रकार कोई मनुष्य, स्वशासित जनता के निर्वाचन–अधिकार का, स्पेनिश प्रणाली और विचारो मे शिक्षित-दीक्षित मलय की बर्बर जाति के बच्चो पर, दुरुपयोग करने का साहस कर सकता है ?"

घोषणा पर लिंकन के उस उत्कृष्ट भाषण की बिवरिज को याद दिलाते हुए होर ने उत्तर दिया, जिसमे शहीद राष्ट्राध्यक्ष ने इस भावी सभावना से आगाह किया था कि, कुछ लोग, कुछ गुट और कुछ स्वार्थ यह सिद्धान्त स्थापित कर सकते है कि धनियो, गोरों और अमीरो के अतिरिक्त तथा एग्लो सेक्सन जाति के अतिरिक्त अन्य और किसी को जीवन, स्वतत्रता और सुख की सुविधा का अधिकार नही है। लिंकन ने अपने अमरीकी साथियो को सलाह दी थी कि, वे स्वतंत्रता की घोषणा का फिर से अध्ययन करें और उस फव्वारे की ओर लौटे, जिसका जल 'क्रान्ति के रक्त' के समीप उछलता है।

सिनेटर होर ने तब भाषण समाप्त करते हुए कहा, "जिन सिद्धान्तों को मै मानता हूँ, वे इस पृथ्वी के अत्यन्त व्यावहारिक राजनीतिज्ञो एव अत्यन्त व्यावहारिक पीढी के सिद्धान्त है।" अब्राहम लिंकन ने कहा, "कोई भी मनुष्य कभी किसी दूसरे का स्वामी बनने के लिए नहीं बनाया गया। कोई भी राष्ट्र कभी दूसरे राष्ट्र का स्वामी बनने के लिए नही पैदा हुआ। मै इस बात को स्वीकार नही करता कि हमारे प्रथम सौ वर्षों की शिक्षा यह है कि स्वतत्रता की घोषणा और सविधान असफल रहे और अमरीका बीसवी शताब्दी को वहाँ से प्रारम्भ करे, जहाँ से स्पेन ने १६ वी शताब्दी प्रारम्भ की थी।"

परन्तु सिनेटर बिवरिज ने एक ऐसा व्यंग्यात्मक उत्तर दिया, जिसने विरोधियो को खामोश कर दिया। "तुम लोग जो यह कहते हो कि घोषणा सब मनुष्यो पर लागू होती है, तो इसे अमरीकी 'इण्डियनो' के लिए अस्वीकार करने का साहस कैसे करते हो ? और यदि घर में तुम 'इण्डियनो' के लिए

अस्वीकार करते हो, तो तुम उसे मलाया मे कैसे लागू करने का साहस करते हो?"

बिवरिज ने रुडयार्ड किपलिंग की-सी भाषा में जोर से कहा "अमरीकी साथियो! हम लोग ईश्वर के चुने हुए लोग हैं। परमात्मा की अनुकम्पा हम पर है। उसकी शक्ति ने पूर्व मे डिवी को प्रेरित किया और स्वतत्रता के जन्म-दिवस के अवसर पर स्पेनिश जहाजी बेड़े को हमारे हाथो मे सौंप दिया।

"उसके महान उद्देश्य झण्डे की प्रगति में प्रकट होते हैं, जो काग्रेस और मन्त्रिमण्डल के इरादो से भी आगे बढ जाते हैं और हमको दिन में बादल की भाँति और रात मे ज्योतिस्तम्भ की भाँति ऐसी स्थितियो में ले जाते है जिनकी सीमित बुद्धि कल्पना भी नही कर सकती। हम किसी भी ऐसी भूमि से वापस नही आ सकते, जहाँ भाग्य ने हमारा झण्डा फहरा दिया है।"

जब ऐतिहासिक मतभेद १९०० के चुनाव-आन्दोलन में विलीन हो गया, तब बिवरिज ने घोषित किया, "जहाँ झण्डा हमें ले जाता है, हम जाते है, क्योकि हम जानते है कि जो हाथ इसे सँभाले हुए है, वे ईश्वर के अदृश्य हाथ है।" परन्तु इस बार उसके अमरीकी साम्राज्यवादी तर्कों का उत्तर राष्ट्रपति-पद के लिए एक उम्मीदवार ने दिया।

विलियम जैनिंग्स ब्यान ने, जो साम्राज्यवाद को निर्वाचन-अभियान की प्रमुख समस्या बनाना चाहता था, घोषित किया, "हम लोग एक अन्य सकट तक पहुँच गये है। साम्राज्यवाद का प्राचीन सिद्धान्त, जो एक शताब्दी पूर्व ही हमारे देश से लुप्त हो गया, पुन. अटलाटिक पार करके हमारी धरती पर प्रजातत्र को घातक झगड़े में फँसा देने के लिए चुनौती लेकर आया है . . . । क्या अमरीकी जनता क्रान्ति के युद्ध के लिए अब प्रायश्चित करने के लिए इच्छुक है और फिलीपाइनवासियो पर उसी शासन-प्रणाली को थोपने के लिए तैयार है, जिसका उपनिवेशवादियो ने तलवार और बन्दूक से विरोध किया था?"

ब्यान ने चेतावनी दी, "जो इस राष्ट्र को साम्राज्यवाद के जीवन की ओर ले जाना चाहते हैं, उन्हे स्पष्ट रूप से न केवल फिलीपाइनो पर साम्राज्यवाद के प्रभाव पर विचार करना चाहिए, बल्कि अपने राष्ट्र पर इसके प्रभाव का भी अनुमान करना चाहिए। हम फिलीपाइन्स मे स्वशासन के सिद्धान्त का विरोध यहाँ अपने सिद्धान्त को कमजोर बनाये बिना नही कर सकते।"

परन्तु, महत्वाकांक्षा, गर्व और "साम्राज्य की गध" १९०० के हमारे

अन्तिम निर्णय मे समाविष्ट है। अन्त मे फिलीपाइनो को स्वतंत्रता देने के प्रस्ताव के फलस्वरूप ऐसी गाँठ पड गयी, जिसे उपराष्ट्रपति ने अपने निषेधात्मक मत से भग किया। उसके पहले दिन फिलीपाइनो ने अपने नवीनतम साम्राज्यवादी स्वामियो के विरुद्ध एक नयी क्रान्ति का सूत्रपात किया था, जिसके समाचार ने अन्तिम क्षण मे अनेक सिनेटरो को अपने विचार परिवर्तित करने के लिए विवश कर दिया था।

आने वाले दशको मे अमरीकी साम्राज्यवाद के कुछ और छिटपुट उदाहरण है। मैक्सिको और मध्य अमरीका मे जलसेना का प्राय परराष्ट्र-नीति के साधन के रूप मे प्रयोग किया गया था।

१९११ मे थियोडर रूजवेल्ट ने, जो मृदुभाषी होने और हाथ मे बडी छडी लेकर चलने के लिए प्रख्यात थे, कोलम्बिया के विरुद्ध पनामा-क्रान्ति के समय जिस प्रकार उसका सचालन किया था, उसके बारे में जोरदार भाषण किया। यह एक ऐसी क्रान्ति थी, जिसमे उनकी उत्साहपूर्ण सहमति थी और जिसने पनामा नहर के निर्माण का मार्ग खोल दिया। उन्होने कहा, "मैंने नहर क्षेत्र को ले लिया, काग्रेस इस पर विवाद करे।"

तथापि साम्राज्यवाद के साथ मिलन के खुशी के दिनो में भी ऐसे कार्यों के विरोधी अपने देशवासियो को अमरीकी क्रान्तिकारी परम्पराओ की याद दिलाते रहे और प्रत्येक ऐसी नीति का विरोध करते रहे, जो इस परम्परा के प्रतिकूल होती थी। इग्लैण्ड की भाँति, जहाँ लोकतात्रिक चेतना के विकास ने भारत मे मौलिक सुधार करवाये और भारतीय स्वतत्रता के प्रति सहानुभूति पैदा की, अमरीका मे भी फिलीपाइन्स के लिए पूर्ण स्वतत्रता का विचार धीरे-धीरे जोर पकड़ता गया। १९३४ मे काग्रेस ने औपचारिक रीति से फिलीपाइन्नो को इस प्रकार की स्वतत्रता का वचन दिया और ४ जुलाई, १९४६ को उस वचन को पूरा कर दिया।

पूर्टो रीको द्वीप मे नये राष्ट्रमण्डल-सम्बन्ध के अन्तर्गत द्वीपीय मामलो के लिए पूर्ण स्वशासन प्रदान किया गया, यद्यपि परराष्ट्र नीति और प्रतिरक्षा अमरीकी हाथों मे ही है। स्वय पूर्टो रीको ने अमरीकी सम्पर्क के अपने लाभो को न खो देने की दृष्टि से इस सन्दिग्ध सम्बध को स्वतत्र मत से स्वीकार किया।

साम्राज्यवादी उत्तर अमरीकी परम्परा के विरुद्ध था और एक ही पीढ़ी मे अमरीका के साम्राज्यवादी प्रयोग समाप्तप्राय हो चुके थे।

तीसवाँ प्रकरण

विल्सन द्वारा अमरीकी स्वप्न का विस्तार

अमरीका के विश्व-सम्बधी इरादो की परीक्षा स्पेन-अमरीकी युद्ध के बाद एशिया के साथ इसके प्रथम प्रारम्भिक सघर्ष में नही हुई, बल्कि उस समय हुई जब प्रथम विश्व-युद्ध के दौरान मे तथा उसके बाद वह युद्ध-ध्वस्त पश्चिमी सभ्यता के केन्द्र योरोप मे पूर्ण शक्ति के साथ लौटा। जिस प्रकार अमरीका उस युद्धकाल में चुपचाप ऋणी से ऋणदाता बन गया, उसी प्रकार अमरीकी औद्योगिक एव सैनिक शक्ति ने महाद्वीपीय शक्ति को पुराने विश्व से नये विश्व मे स्थानान्तरित कर दिया।

विश्व के मामलो मे अपनी वापसी के बाद अमरीका ने विश्व-नेतृत्व की परीक्षा मे किस प्रकार सफलता प्राप्त की, यह आज जो कुछ अमरीका में हो रहा है, जबकि उसकी विश्व-शक्ति अपने मध्यान्ह मे है, उससे महत्वपूर्ण सम्बन्ध रखता है।

वुडरो विल्सन ने, स्मृति के उन्ही रहस्यमय धागों से प्रेरित होकर, जिन्होने घोषणा के सिद्धान्तो और सघीय विधान को धरती पर अन्तिम आशा के रूप में लिंकन को दिखाया, अमरीकी जनता को उस महान स्वप्न की ओर आमत्रित किया, जिसके बिना यह स्वतत्र राष्ट्र नष्ट-भ्रष्ट हो जाता।

विल्सन को विश्वास था कि अमरीका का जन्म मानवमात्र को एक करने के लिए हुआ है। परन्तु जैसा कि उसका विचार था, यदि, अमरीका के लिए इस महान कार्य को पूरा करने का समय आ गया था, यदि महासागर सीमाएँ न बन कर विश्व मे अमरीकी वापसी के लिए आमंत्रण बन गये थे, तो न तो सीधे साम्राज्यवाद और न शक्ति का साम्राज्यवादी सन्तुलन ही अमरीका का मार्ग था।

उन्होंने कहा, "मानवता को केवल प्रेम, सहानुभूति और न्याय से एक साथ रखा जा सकता है। अमरीका को यह समझना चाहिए, क्योंकि वही विश्व का एक मात्र देश है, जिसने बार-बार पुनर्जन्म का अनुभव किया है।"

१९१५ में फिलाडेलफिया मे बनाये गये नागिरिकों की एक सभा में उन्होने इस बात को समझाते हुए कहा, "अन्य देश अपने ही मूल निवासियो की वृद्धि पर नर्भर करते है। यह देश प्रबल पुरुषो और विकासोन्मुख स्त्रियो की महान संस्थाओं

के साथ ऐच्छिक सम्पर्क स्थापित करके नये सूत्रो से निरन्तर शक्ति प्राप्त कर रहा है। इस प्रकार स्वतत्र जनता की स्वतत्र इच्छा के उपहार से यह देश पीढी दर पीढ़ी, उसी प्रक्रिया से, जिससे इसकी प्रारम्भ मे रचना हुई थी, निरन्तर नवीनता प्राप्त करता जा रहा है।"

न्यूयार्क के बन्दरगाह मे स्वतत्रता की मूर्ति पर एम्मा लजारस ने, जो लेख उत्कीर्ण किया था, वही कदाचित् राष्ट्राध्यक्ष के मस्तिष्क मे था –

अपने थके दरिद्र,
स्वतत्र होने के लिए विकल जनता,
अपने विस्तृत तटो की निकृष्ट गन्दगी,
मुझे दो,
बेघरबार, तूफानो से त्रस्त,
इन सभी लोगों को मेरे पास भेजो,
मै स्वर्णद्वार पर दीपक लिए खडा हूँ।

ऐसे नये नागरिको के लिए विल्सन की "अत्यावश्यक सलाह" थी कि वे न केवल अमरीका के विषय में ही सोचें, प्रत्युत, सच्चे अमरीकी होने के लिए सर्वदा सर्वप्रथम मानवता के बारे मे सोचे।

विजय की भूलो मे अमरीका के पड जाने पर विल्सन ने खेद प्रकट किया। उन्होने कहा, "यदि हमारे उद्देश्य आक्रमक और महत्वाकाक्षाएँ लोभपूर्ण हैं, तो राष्ट्र के रूप में वे हमारी विचारहीनता के परिणाम है और हमने उठाकर उन्हे एक ओर रख दिया है। अमरीका के समक्ष महान उद्देश्य है, जो केवल अमरीकी महाद्वीप तक ही सीमित नही है। ऐसी परिस्थिति मे अमरीका जब कभी किसी अवसर पर केवल अपने लिए सघर्ष करता है तो समझो कि वह अपनी परम्पराओ को भूल गया है जो यह प्रदर्शित करेगा कि वह समस्त मानव जाति के लिए युद्ध करना भूल गया है।"

अन्नापोलिस में स्नातक-वर्ग के समक्ष राष्ट्राध्यक्ष ने उसी जोश के साथ कहा, "अमरीका का विचार मानवता की सेवा करना है, और हर बार, जब तुम सितारो और सकेतो की अवहेलना करते हो, तो तुम्हे समझना चाहिए कि यह स्वय ही एक सदेश है कि तुम उस कर्त्तव्य के अधीन हो, जिसे अन्य नौसेनावालो ने कभी-कभी भुला दिया—यह विजय का नही, सेवा का कर्त्तव्य है।"

राष्ट्राध्यक्ष विल्सन द्वारा अमरीकी भावना मे फिर से जान फूकना और भी नाटकीय था, क्योकि यह उस समय हुआ जब कि अन्य देशो की नौसेनाएँ एव

स्थल-सेनाएँ तथा राजनीतिज्ञ सत्ता के लिए भयानक सघर्ष मे तल्लीन थे। सर्बिया के एक व्यक्ति द्वारा आस्ट्रिया के राजकुमार की हत्या से प्रतिक्रियाओ की एक श्रृङ्खला पैदा हुई, जो जटिल मित्रताओ द्वारा योरोप मे शक्ति सन्तुलन का कार्य कर रही थी। ८५ लाख से अधिक लोग मारे गये, २ करोड़ १० लाख से अधिक घायल हुए, उत्तरी फ्रास, लोलैण्ड्स और पूर्वी योरोप का अधिकाश भाग खण्डहरो म परिणत हो गया। यही इसका स्मारक था।

लोगो के विक्षिप्त हो जाने के सभी कारण विद्यमान थे। अपनी मातृभूमि की सुरक्षा के लिए भयानक तत्परता और शत्रुओ के लिए घृणा, ऐसे गुण थे जो किसी भी युद्ध से पैदा हो सकते थे। समझदार लोगो के लिए, फिर भी, इन नयी सीमाओ का विश्वयुद्ध बिना किसी महान उद्देश्य के असह्य था।

विल्सन ने एक ऐसा महान उद्देश्य प्रदान किया, जिसे लोग बुरी तरह चाहते थे। उन्होने कहा, "युद्धो की समाप्ति के लिए ही युद्ध होना चाहिए।" विश्व को लोकतत्र के लिए अवश्यमेव सुरक्षित बना देना चाहिए। विल्सन का युद्धकालीन नेतृत्व और राष्ट्रसघ के लिए उनका सघर्ष, अमरीकी क्रान्तिकारी सिद्धान्तो के विश्वव्यापी प्रभाव के प्रतीक बन गये। यही विश्व-कूटनीति के साथ अमरीका के प्रथम प्रमुख प्रतिकार का भी परिचायक था।

साम्राज्यवाद और उसके अनेक रूपो के अत्याचार से बोझिल ससार मे २ अप्रैल, १९१७ को विल्सन ने काग्रेस से युद्ध की घोषणा करने के लिए जिन शब्दो का प्रयोग किया, उन्होने विभिन्न रूपो में साम्राज्यवाद और अत्याचार से पीडित विश्व में विद्युत की भाँति कार्य किया। "हमारी अपनी कोई स्वार्थपूर्ण आवश्यकताएँ नही है। हम न तो विजय चाहते है और न प्रभुत्व। हम अपने लिए कोई छूट नही चाहते और हम जो बलिदान स्वेच्छा से करेगे, उसके लिए कोई मुआवजा भी नही चाहते। हम केवल मानवमात्र के अधिकारो की रक्षा करना चाहते है।"

एक महान् शान्तिपूर्ण राष्ट्र को युद्ध मे घसीटना एक भयानक बात है... परन्तु अधिकार शान्ति से अधिक मूल्यवान है और हम उन चीजो के लिए लडेगे जो हमारे मन को सदा सबसे अधिक प्रिय रही हैं– 'प्रजातत्र के लिए, उन लोगो के अधिकारो के लिए, जो अपनी सरकारो में अपनी आवाज उठाने के लिए सत्ता के समर्पित होते है, छोटे-छोटे राष्ट्रो के अधिकारो और स्वतत्रता के लिए और स्वतत्र राष्ट्रो के ऐसी सविधा के द्वारा अधिकार के सार्वभौमिक सचालन के लिए, जो सभी राष्ट्रो मे शान्ति और सुरक्षा स्थापित करेगी और अन्तत समस्त विश्व को स्वतत्र करेगी।'

अमरीकी लोगो ने तो इस अपील का उत्तर सरगर्मी के साथ दिया ही, परन्तु पुराने विश्व में भी उत्साह की एक नयी लहर दौड़ गयी। विल्सन के शब्दो ने चमत्कार-पूर्ण नैतिक अभियान का रूप धारण कर लिया और करोडो लोगो के मन में युद्ध को मानवीय अधिकारो के लिए विश्वव्यापी प्रजातान्त्रिक धर्मयुद्ध मे परिणत कर दिया। अमरीकी सैनिको को फ्रान्स के किसानो की झोपडियो में अपने राष्ट्राध्यक्ष के 'मन्दिर' मिले। वारसा की सडको पर मिलने वाले उत्सुक विद्यार्थी बडे सम्मान के साथ 'विल्सन' नाम का उच्चारण कर रहे थे। उनके व्याख्यानो के सकलन चीन और मध्यपूर्व मे धडाधड बिकने लगे और स्पेन में पाठ्यपुस्तको के रूप मे खूब बिके।

विल्सन ने मित्र-राष्ट्रो के युद्ध-उद्देश्यो को स्पष्ट करने के लिए युद्ध किया। यद्यपि उनकी चौदह बाते योरोपीय राजनीतिज्ञो के मन की बातो से अधिकतर विपरीत थी, तथापि उन्होने जनता मे इतना सार्वभौमिक उत्साह पैदा कर दिया था कि कोई भी उनकी खुलेआम आलोचना करने का साहस नही करता था। उनके विस्फोटक प्रजातान्त्रिक विचार, जो बिल्कुल अमरीकी परम्परा के अनुकूल ही थे, मानव-सेनाओ के बराबर सिद्ध हुए।

जब जर्मनी का नैतिक बल अन्तत खडित हो गया, तो वह चौदहसूत्री आधार पर ही खडित हुआ। अक्तूबर, १९१८ मे जर्मन सरकार ने विल्सन से इन शर्तों पर तत्काल सधि करने के लिए प्रबध करने की प्रार्थना की। मित्रराष्ट्रो ने दो के सिवाय सभी बातो को स्वीकार कर लिया। उन्होने समुद्र की स्वतन्त्रता की धारा को अस्वीकार कर दिया और युद्धक्षति के लिए जर्मनी से क्षतिपूर्ति की माँग की।

जब विल्सन योरोप गये, तो विश्व-प्रजातन्त्र के नेता का स्वागत करने के लिए उन्हे तैयार, श्रद्धालु जनता मिली, और, प्राचीन व्यवस्था को पुनःस्थापित करने के लिए दृढप्रतिज्ञ, पुराने राजनीतिज्ञ और उनके विपरीत, नये नेता भी वहाँ दिखायी दिये।

विल्सन की कल्पना के सम्बध में 'चार बडो' के अन्य सदस्य उतने उत्साही नही थे। कठोर और यथार्थवादी क्लीमैन्स्यू (Clemenceau), जिनका हित और जीवन फ्रान्स से आबद्ध था और जो विल्सन को "जुपिटर" और "ईसामसीह" कहते थे, 'चौदह आदेशो' का मजाक उडाते थे और "बोचेज" के विरुद्ध निस्सीम प्रतिकार की अपेक्षा रखते थे। कुशल और अद्भुत व्याख्यान-दाता तथा कुशाग्रबुद्धि राजनीतिज्ञ लायड जार्ज, ब्रिटेन के अनुकूल एक नवीन शक्ति-

सन्तुलन के पक्षपाती थे। इटली के राष्ट्रवादी ओरलैण्डो ने अपने साथियों को अपने कानूनी तरीको से परेशान कर रखा था।

उनकी इस चिन्ता को और भी बढाने वाली बात यह थी कि विल्सन के शब्द योरोप की सीमाओ से बाहर बहुत दूर तक सुने गये। अफ्रीका के विद्यार्थी शान्ति-सम्मेलन के समाचारो का बडे ध्यान से यह देखने के लिए अध्ययन करते थे कि आत्म-निर्णय का सिद्धान्त योरोप के बाहर भी लागू होगा या नही। हो ची मिन्ह जैसे युवक एशियाई राष्ट्रवादी, हिन्दचीन मे फ्रान्सीसी उपनिवेश-वाद को समाप्त करने की मॉग करने के लिए व्यक्तिगत रूप से वारसेल्स मे उपस्थित हुए।

विराम-सधि के बाद इसी पृष्ठभूमि मे दस महीने के अन्दर वुडरो विल्सन की वीरगाथा ने विश्व पर मिश्रित प्रभाव डाला। आदमियो को कार्य करने के लिए प्रेरित करने की अमरीकी कल्पना की विस्फोटक योग्यता और अमरीकी राजनीतिक नेतृत्व की जटिलता के प्रमाण के लिए इसका अध्ययन करना आज भी अमरीकियो को शोभा देता है।

× × ×

विल्सन के बाद योरोप के प्रति अमरीका मे व्यापक ऊब सी भर गयी थी। इस ऊब मे राजनीतिक विशेषता थी। १९१८ के चुनाव मे काग्रस का नियत्रण रिपब्लिकनो के हाथ आ गया और विल्सन के प्रबल व्यक्तिगत शत्रु मासाचुसेट्स के हैनरी केबट लाज सिनेट की परराष्ट्र-सम्बन्ध-समिति के सभापति के रूप मे महत्वपूर्ण स्थिति मे थे। थियोडर रुजवेल्ट जैसे अन्य लोग इस बात का आग्रह कर रहे थे कि हम विश्व को किसी भी चीज के लिए सुरक्षित रखने के लिए नही लड रहे है, बल्कि जर्मनी को हराना चाहते है, क्योकि उसने हम पर आक्रमण किया है।

फिर भी, भूतपूर्व राष्ट्राध्यक्ष विलियम होवर्ड टैफ्ट और एलिहू रूट के नेतृत्व मे अनेक प्रमुख रिपब्लिकन शान्ति-स्थापनार्थ एक सघ के लिए वचनबद्ध थे, जो विल्सन का मुख्य उद्देश्य बन गया था। बाद मे आलोचको का यह कहना था कि विल्सन की प्रथम भूल यह थी कि शान्ति-आयोग के निर्माण में उन्होने ऐसे प्रभावशाली और अन्तरराष्ट्रीयतावादी रिपब्लिकनो को मान्यता देने से इन्कार कर दिया।

फरवरी, १९१९ मे पेरिस मे सप्ताहो तक गुप्त विचारविमर्श के उपरान्त, विल्सन थोडे समय के लिए वाशिंगटन लौटे। शान्ति-सधि का रूप पहले से ही

स्पष्ट हो रहा था और वे अमरीकी पुष्टि के लिए मार्ग प्रशस्त करना चाहते थे। अपने विचारो के प्रति बढते हुए विरोध के शमन के प्रयत्न मे, उन्होने सिनेट के परराष्ट्र-सम्बधो तथा सदन के परराष्ट्र मामलो की समितियो के सदस्यो को 'व्हाइट हाउस' मे सायकालीन भोजन पर बुलाया। विल्सन ने अपरिहार्य समझौते और राष्ट्र-सघ के सम्बन्ध मे, जिनके लिए वे प्रयत्नशील थे, खुलकर बातचीत की।

'सभी लोगो के अधिकारो के लिए', राष्ट्र-सघ के भीतर अमरीका के नेतृत्व के साथ, विल्सन को विश्वास था कि इन समझौतो के कारण जो भूले हो गयी थी, वे कटुता के शमन के साथ धीरे-धीरे ठीक हो जायेगी। सघ के द्वारा और सघ के भीतर अमरीका अपने उन चिरपोषित उद्देश्यो के लिए कार्य कर सकता था, जो अपने मार्गों से बहुत दूर निकल गये थे।

अपने काग्रेसी आलोचको को समझाने के राष्ट्राध्यक्ष के सारे प्रयत्न विफल ही रहे। जब केनेक्टीकट के सिनेटर ब्रैण्डेजी ने 'व्हाइट हाउस' के दुर्भाग्यपूर्ण सम्मेलन को छोड़ा तो कहा, "मुझे ऐसा अनुभव हो रहा है कि मै एलिस के साथ आश्चर्य-जगत मे विचर रहा था और मैड हैटर के साथ चाय पी रहा था।"

विल्सन के पेरिस वापस आने के पूर्व ही, सिनेटर लाज ने रिपब्लिकन नेताओ द्वारा समर्थित, अपना प्रख्यात 'राउण्ड राबिन' प्रस्तुत किया, जिसने संसार और विल्सन को घोषित कर दिया कि निम्नाकित हस्ताक्षर करने वाले लोग, जिस रूप मे इस समय सघ का समझौता-पत्र प्रस्तावित है, उससे सहमत नही है। उसमे ३९ सिनेटरो और निर्वाचित सिनेटरो के हस्ताक्षर थे और वे सभी रिपब्लिकन थे। सन्धि को निष्फल बनाने के लिए केवल ३३ मतो की आवश्यकता थी।

परन्तु अनेक रिपब्लिकनो ने अपना समर्थन प्रदान किया और विल्सन को फिर आश्वासन प्राप्त हुआ। मार्च की उसी रात्रि को, जबकि वह अशुभ 'राउण्ड राबिन' प्रकाशित हुआ, वुडरो विल्सन तथा भूतपूर्व राष्ट्राध्यक्ष टैफ्ट न्यूयार्क के मैट्रोपोलिटन ओपेरा हाउस के रगमच पर हाथ-में-हाथ मिला कर पहुँचे।

एनरिको कैरूसो के नेतृत्व मे पॉच हजार लोगो ने 'तारो-जडित झण्डे' के गीत गाये। अल स्मिथ ने वक्ताओ का परिचय कराया। टैफ्ट ने राष्ट्र-सघ के पक्ष में प्रभावपूर्ण भाषण दिया और विल्सन ने जार्ज एम कोहन के युद्धकालीन

गीत के भाव में हर्षध्वनि करती हुई भीड़ को आश्वासन दिया कि मैं तब तक वापस नही आऊँगा जब तक वह पूरा नही हो जायगा।

विल्सन को इस प्रकार लोगो से सीधे अनुरोध के द्वारा राष्ट्र-सघ के लिए समर्थन प्राप्त करने की अपनी योग्यता पर सब से अधिक भरोसा था। रिपब्लिकनो के 'राउण्ड रोबिन' की माँगो की उपेक्षा करते हुए, जो सघ के समझोते को कमजोर बनाती, विल्सन ने कहा, "मै अब काफी समझौते कर चुका हूँ," और वे पेरिस लौट आये।

२८ जून, १९१९ को अन्त में वारसेल्स में शानदार समारोह के साथ सन्धि पर हस्ताक्षर किये गये और राष्ट्राध्यक्ष सिनेट की सहमति प्राप्त करने के लिए वापस लौटे। उन्होने इस बात पर जोर दिया कि लीग (सघ) समझौता-पत्र का न केवल महत्वपूर्ण अग है, प्रत्युत उसका अविच्छेद्य अग भी है। उन्होने पूछा, "क्या हम या अन्य स्वतत्र राष्ट्र इस महान कर्तव्य को स्वीकार करने से झिझकेगे ? क्या हम इसे ठुकरा देने और दुनिया का दिल तोडने का साहस कर सकते है ?"

इलिनोइस के रिपब्लिकन सिनेटर मैडिल मेकोर्मिक, कनैक्टीकट के ब्रैण्डेजी और ओहियो के हार्डिण्ग ने इस साहस को तुरन्त स्वीकार कर लिय। दूसरो ने, जिनमें 'न्यू रिपब्लिकन' जैसी छोटी, किन्तु प्रभावशाली उदार पत्रिकाएँ भी थीं, इस आधार पर पुष्टिकरण का विरोध किया कि सधि अधिक कठोर है।

अनेक शक्तिशाली सिनेटर, जो घरेलू नीतियो में उदार थे, उस 'मृत्यु-सेना' में सम्मिलित हो गये, जो राष्ट्रसघ और सधि को नष्ट करने के लिए कृतसकल्प थी। उनमे से बहुतेरे, जिनमें जानसन, बोराह, नोरिस और ला फोलेटे भी थे, उन ७० लाख अमरीकियो का प्रतिनिधित्व करते थे, जो जन्म से जर्मन थे अथवा जिनके माता-पिता जर्मन थे। उन्होने जर्मनी की विशाल प्रादेशिक हानियो, क्रमिक क्षतिपूर्ति और 'अप्राकृतिक' पोलिश गलियारे की कटु निन्दा की। इस गलियारे से विल्सन की तेरहवी बात की पूर्ति होती थी और पोलण्ड को समुद्र तक उन्मुक्त और सुरक्षित पहुँच जाने की स्वतंत्रता मिल जाती थी।

जर्मन अमरीकियो के प्रमुख प्रतिनिधि जार्ज सिलवेस्टर वीरेक ने 'लीग आफ डैम्ननेशन्स' की निन्दा की और १९२० के चुनाव में राष्ट्राध्यक्ष-पद के लिए उस उम्मेदवार को तीस लाख मत देने का वचन दिया, जो उस सन्धि का विरोध करता।

इटालियन अमरीकियो ने यूगोस्लाविया के फ्यूम बन्दरगाह को इटली के नियत्रण से हटाने के लिए राष्ट्रपति के प्रयत्नो को बहुत बुरा माना। भविष्य का महान "छोटा पुष्प", न्यूयार्क के मेयर फ्योरेल्लो एच. ला गार्डिया ने, जो उस समय न्यूयार्क नगर के ऐल्डरमेन बोर्ड के अध्यक्ष थे, विल्सन और सधि का विरोध करने के लिए इटालियन अमरीकियो का सगठन किया।

आयरलैण्ड और इगलैण्ड के बीच शताब्दियो की कटुता से उस सघ के लिए सम्भावना सुधरी नही, जिसे विलियम रेडाल्फ हर्स्ट "ब्रिटिश उत्पन्न सघ" कहा करते थे। आयरलैण्ड में वादविवाद का समय विशेष रूप से उग्र रहा और हत्याओ, दगो और प्रतिहिंसाओ के समाचारो ने आयरिश वश के अमरीकियो मे विल्सन के प्रयत्नो मे बाधा उपस्थित कर दी थी।

अग्रेजो के आइरिश कैदियो ने 'भूख हडताल' कर दी थी। अक्तूबर, १९२० मे, कार्क के लार्ड मेयर, टेरेन्स मैकस्विनी की, ७४ दिनो के अनशन के परिणामस्वरूप, मृत्यु हो गयी। १९१९ के वसन्त और गर्मियो मे डी वेलरा ने आयरलैण्ड की स्वतत्रता के लिए समर्थन प्राप्त करने के इरादे से सयुक्त राज्य अमरीका का दौरा किया। उनकी अनेक बडी-बडी सभाओ मे, आयरलैण्ड के लिए आत्मनिर्णय का अधिकार प्राप्त करने की विफलता पर लोगो ने विल्सन को धिक्कारा।

सघ-समझौते की दसवी धारा के अनुसार 'विदेशी आक्रमण' के विरुद्ध अपने साथी सदस्यो की सहायता करना प्रत्येक सदस्य का कर्तव्य था। सधि के कुछ विरोधियो ने यहाँ तक ज़ोर दिया कि इसके अनुसार आयरिश अमरीकियो को भविष्य मे आयरलैण्ड मे होने वाले विद्रोह को दबाने के उद्देश्य से इग्लैण्ड की सहायता के लिए भेजना आवश्यक होगा।

सधि का विरोध करने वाले बहुत थोडे डिमाक्रेटिक सिनेटरो मे से मिसौरी के जेम्स रीड ने यह सकेत करके कि लीग में काली जातियो की सख्या गोरो से अधिक हो जायगी, जातीय भावना को प्रभावित करने का प्रयत्न किया। उनके साथी सिनेटर शर्मन ने भी वैसी ही अस्वस्थ अपील धार्मिक भावनाओ के आधार पर की और यह आरोप लगाया कि सघ की व्यवस्था कैथलिको के हाथ होगी और उस पर पोप का शासन होगा। सिनेट के प्रमुख वक्ता, सिनेटर बोराह ने घोषित किया कि मै लीग के प्रति अपने विरोध को कदापि नही बदलूँगा, चाहे ईसामसीह स्वय पृथ्वी पर अवतरित होकर उसके लिए अपील क्यो न करे।

अन्त में करोडो ऐसे अमरीकी थे, जिन्होने अभी तक अपनी परम्परागत

पृथकता को पूर्णत. भग नही किया था। सघ की एक 'स्थायी मैत्री' के प्रमुख उदाहरण के रूप मे, जिसके विरोध मे वाशिंगटन ने अपनी विदाई के समय के भाषण मे हमे चेतावनी दी थी, निन्दा की गयी थी। इस तथ्य के बावजूद कि हमारे संविधान से पूर्व बने निर्बल मित्रता-सघ की भाँति यह राष्ट्रसंघ राष्ट्रो के एक ढीले सघ से अधिक नही था, यह आरोप लगाया गया कि यह हमे अपनी सत्ता छोड देने के लिए विवश करेगा, जिसे उन्होने यार्क-टाउन में विदेशियो के नियत्रण से विशाल राज्य के रूप मे जीता था।

न्यू इग्लैण्ड के बडे-बडे कर देनेवाले अनेक व्यापारियो के साथ मेरे पिता भी इसी पृथकतावादी विचार के पक्षपाती थे। मसाचुसेट्स के स्प्रिगफील्ड में एक बालक के रूप मे मुझे याद है कि किस विश्वास के साथ उन्होने हार्वे के साप्ताहिक मे प्रचारित विल्सन-विरोधी कटु दृष्टिकोण का समर्थन किया था, और जिसे, ज्यो-ज्यो निर्वाचन के दिन निकट आते गये, प्रत्येक अक मे आशा के साथ प्रत्येक पृष्ठ के नीचे प्रकाशित किया जाता था– "केवल वुडरो विल्सन के कुछ दिन और।"

ऐसे विरोधो की स्थिति मे, जिनमे कुछ सही थे, कुछ राजनीतिक थे और कुछ अत्यन्त प्रदर्शनात्मक थे, सधि का भविष्य अधकारपूर्ण दिखायी देता था, परन्तु मानवीय आशाएँ भी सघ पर इतनी केन्द्रित थी कि उसके समर्थक निराश होकर उसे छोड भी नही सकते थे। उसके प्रमुख समर्थक ऐसे साहसी व्यक्ति थे, जिन्होने सकट के समय अमरीकी आत्मा का प्रतिरूप ग्रहण किया था। उन्होने युद्ध को जनता तक पहुँचाया और जनता ने बडे उत्साह और सरगर्मी से उनका साथ दिया।

सम्भवत पृथकतावादी सेट लुईस मे उन्हे गगनभेदी अभिनन्दन प्राप्त हुआ, जब उन्होने कहा, "यदि राष्ट्र-सघ के लिए किये गये सघर्ष मे मै पराजित हुआ, तो मै उन सभी लोगो को एकत्र करूँगा, जिन्हे मैने फ्रान्स भेजा था और उनसे कहूँगा कि जब तुम लोग समुद्र पार गये थे, उसके पहले ही मैने कहा था कि यह युद्धो के विरुद्ध युद्ध है। मैने अपने वचन को पूरा करने का यथाशक्ति प्रयास किया, किन्तु मुझे दु ख और लज्जा के साथ तुम्हारे सामने आने और यह कहने के लिए विवश होना पडा है कि मै अपने वचन का पालन करने मे असमर्थ रहा। तुम्हारे साथ विश्वासघात हुआ है। तुमने उस चीज़ के लिए युद्ध किया, जो तुम्हे प्राप्त नही हुई, और सयुक्त राज्य अमरीका की स्थल तथा जल सेना का गौरव रात्रि मे स्वप्न की भाँति विलुप्त हो गया . ।"

देवदूत की भाँति उन्होने अपना भाषण जारी रखते हुए कहा, "ईश्वर के प्रतिशोधपूर्ण विधान मे कभी ऐसा समय आयगा, जब एक और सघर्ष मे न केवल अमरीका के हजारो श्रेष्ठ एव सुन्दर व्यक्तियो को अपने प्राणो का उत्सर्ग करना पडेगा, बल्कि विश्व के राष्ट्रो की अन्तिम स्वतत्रता की प्राप्ति के लिए करोडो व्यक्तियो का बलिदान करना होगा।"

२५ सितम्बर को जब राष्ट्राध्यक्ष का दल प्यूबलो कोलोरेडो पहुँचा, तब विल्सन थक कर चूर-चूर हो गये थे। उन्होने बाईस दिन मे आठ हजार मील की, देश के इस पार से उस पार तक, यात्रा की थी, प्रति घण्टे एक भाषण के हिसाब से औसतन छत्तीस औपचारिक व्याख्यान दिये थे और थका देने वाली एक दर्जन परेडे और असख्य रेलवे प्लेटफार्म देखे थे।

यद्यपि इस व्यस्त कार्यक्रम मे केवल साँस लेने की फुरसत थी, तथापि राष्ट्राध्यक्ष को घोर थकावट के साथ अब विश्वास हो चला था। मध्य पश्चिम में अप्रत्याशित विशाल जनसमुदायो से सन्तोषप्रद प्रतिक्रिया के फलस्वरूप प्रशान्त तट पर और भी उत्साहपूर्ण प्रत्युत्तर प्राप्त हुए।

राष्ट्राध्यक्ष ने जब प्यूबलो मे, विशाल जनसमुदाय से भरे हाल के रगमच पर कदम रखा, तो गगनभेदी जयघोषो के साथ उनका दस मिनट तक अभिनन्दन होता रहा। कुछ ही क्षणो पूर्व उन्हे शक होने लगा था कि वे कुछ बोल सकेगे या नही। उन्हे भयंकर सरदर्द था। इसके पूर्व उन्होने अपने को इतना अधिक बीमार और असमर्थ कभी नही पाया था। वे सोच रहे थे कि अपने भाषण को अत्यन्त सक्षिप्त कर दे और कुछ उपयुक्त शब्द बोल कर अपनी ट्रेन पर लौट आये, लेकिन जब उनके श्रोताओ का उत्सुकतापूर्ण उत्साह उनके कानो में गूँजने लगा, तब उन्होने उस कार्यक्रम को पूरा करने का निश्चय कर लिया। उन्होने अपनी अन्तिम स्नायविक एव शारीरिक शक्तियो को बटोरकर अपने भाषण में अपनी समस्त भावना और विश्वास को उडेल दिया।

तीन महीने पूर्व पेरिस के पास सुरेनेस में अमरीकी सैनिक कब्रिस्तान के सैनिक पुरस्कार-दिवस पर अपनी यात्रा का वर्णन करते हुए उन्होने अपने श्रोताओ से पूछा, "जो लोग फ्रान्स में मरे है, उनके प्रति हमारे वचन का क्या हुआ? हमने तो कहा था कि वे वहाँ अमरीका की शक्ति को सिद्ध करने अथवा एक दूसरे युद्ध के लिए अपनी तत्परता का प्रदर्शन करने नही गये थे, प्रत्युत इसलिए गये थे कि अब कभी भी और युद्ध न होगे।"

जिन माताओ के पुत्र फ्रान्स मे मारे गये थे, वे उनके पास आयी, उनका हाथ

अपने हाथो मे लिया और यह कहते हुए उस पर आँसू बहाये कि, राष्ट्रपति महोदय, ईश्वर आपका कल्याण करे।

"मेरे साथी नागरिको, उन्होने मेरे कल्याण के लिए ईश्वर से प्रार्थना क्यो की ? मैने काग्रेस को ऐसी स्थिति पैदा करने के लिए सलाह दी, जिसमे उनके पुत्रो की मृत्यु हुई। मैने उनके पुत्रो को समुद्र पार भेजा। तब वे मेरी भुजाओ पर सिर रखकर क्यो रोयी और क्यो मेरे कल्याण की कामना ईश्वर से की ? क्योकि उनका विश्वास था कि उनके पुत्र ऐसी चीज के लिए मरे, जो युद्ध के किसी तात्कालिक अथवा प्रत्यक्ष उद्देश्य से परे है।"

राष्ट्राध्यक्ष ने अन्त मे कहा, "अब चूकि इस महान प्रश्न का धुँधलापन हट गया है, मुझे विश्वास है कि अब लोग सत्य को उसके सही रूप मे देख सकेंगे। न्याय, स्वतत्रता और शान्ति का सत्य एक ऐसी चीज है, जिसके लिए अमरीकी लोग सदा उठते और हाथ बढाते है। हमने उस सत्य को स्वीकार कर लिया है, वही हमारा नेतृत्व करेगा, हमारे द्वारा विश्व का नेतृत्व करेगा और हमे सुख एव शान्ति की उस सुरम्य भूमि मे ले जायगा जिसकी विश्व ने पहले कभी कल्पना भी नही की होगी।"

विल्सन के भाषण समाप्त करने पर क्षण भर के लिए भवन मे पूर्ण शान्ति छा गयी और उसके बाद जो तुमुल हर्ष ध्वनि हुई, वह उनकी यात्रा की सबसे बडी प्रशसा थी। वहाँ पर किसी को यह नही मालूम था कि यह अभिनन्दन न केवल उनके भाषण की समाप्ति का था, बल्कि उनके जीवन के अन्त का भी।

उसी रात को राष्ट्राध्यक्ष के उनिद्र रोग (Insomnia) और भयानक सिरदर्द ने डाक्टर के निकृष्टतम भय को पुष्ट कर दिया। ट्रेन के विचिटा पहुँचने के पूर्व ही विल्सन के विरोधो के बावजूद, शेष यात्रा रद्द कर दी गयी, परन्तु उन्होने यह तभी स्वीकार किया जब उन्हे उनके महान कार्य की सफलता तथा सधि की सुरक्षा का विश्वास दिलाया गया। उस समय किसी को भी मालूम न हो सका कि राष्ट्राध्यक्ष की मृत्यु के साथ यह आशा भी मर गयी कि अमरीका सधि को स्वीकार करेगा, सघ के साथ रहेगा और उस भावी युद्ध को बचाने के लिए अन्य प्रजातात्रिक देशो के साथ कार्य करेगा, जिसका आश्वासन उन्होने अपने श्रोताओ को सेट लुईस मे दिया था कि यदि अमरीका पृथकतावाद की ओर लौटता है, तो 'ईश्वर के प्रतिशोधपूर्ण विधान' के अन्तर्गत वह अवश्य आयेगा।

× × ×

१९ मार्च, १९२० को सयुक्त राज्य अमरीका के सिनेट मे सधि की अन्तिम

पराजय हुई। यह पराजय लाज के प्रतिबधो के साथ पुष्टीकरण के प्रस्ताव पर हुई। यद्यपि सधि पर ३६ के विरुद्ध ४९ का बहुमत था, तथापि दो-तिहाई आवश्यक मतो मे सात मतो की कमी थी।

प्रतिबधो के मूल्य पर भी इक्कीस डिमोक्रेट सदस्यो ने किसी-न-किसी प्रकार की सधि प्राप्त करने के लिए मत दिये थे। तेईस डिमोक्रेटो ने प्रतिबधो के विरुद्ध होकर सधि को मतदान से पूर्णरूपेण रद्द कर दिया। यदि अन्तिम तेईस मे से सात ने समझौता कर लिया होता, तो सधि बच जाती। परन्तु उसके विपरीत उन्होने इक्कीस उग्रवादी रिपब्लिकनो का साथ दिया और सधि की अन्तिम आशा भी बुझ गयी।

अर्धपक्षाघात से पीडित विल्सन को आशा थी कि यह सघर्ष चलता रहेगा और १९२० का राष्ट्राध्यक्ष का चुनाव आन्दोलन सन्धि और सघ की समस्या पर एक 'पवित्र मतगणना' होगी। डिमोक्रेटिक उम्मीदवार जेम्स एम काक्स ने वायदा किया कि यदि वे सयुक्त राज्य अमरीका के राष्ट्राध्यक्ष हो जायेगे तो अमरीका जितनी जल्दी हो सकेगा, राष्ट्र-सघ का सदस्य हो जायगा।

९ अगस्त, १९२०, को हाइड पार्क में उप-राष्ट्राध्यक्ष के लिए उम्मीदवार, काक्स के साथी फ्रैकलिन डी. रूज़वेल्ट ने कहा, "चूकि राष्ट्र एक आदर्श के लिए युद्ध मे शामिल हुआ, इसीलिए वह युद्ध से इस निश्चय के साथ निकला है कि वह आदर्श मिटने नही पायेगा । जल और थल मे सफलता केवल आधी विजय हो सकती है—इसके आगे हमे यह जोड देना चाहिए कि ऐसा फिर कभी नही होगा।"

मतदान के एक महीने पूर्व ३१ प्रभावशाली अमरीकियो के नाम से एक उल्लेखनीय सार्वजनिक वक्तव्य प्रकाशित हुआ, जिनमें से अधिकाश एलिहू रूट, चार्ल्स इवान्स ह्यूजेज और विलियम होवर्ड टैफ्ट जैसे अन्तरराष्ट्रीयतावादी रिपब्लिकन थे। उसमे "यदि रिपब्लिकन जीतेगे तो सयुक्त राज्य अमरीका सशोधित लीग मे प्रविष्ट होगा", यह विश्वास प्रकट कर के नयी आशा का सचार किया गया।

परन्तु रिपब्लिकन उम्मीदवार स्वय इस बात के लिए अपील करने में व्यस्त थे, जिसे वे कम साहसपूर्ण अस्तित्व के लिए व्यापक इच्छा समझते थे। वारेन जी. हार्डिण्ग ने जोर देते हुए कहा, "अमरीका की वर्तमान आवश्यकता वीरता की नही, उपचार की है, विशेष इलाज की नही, सामान्य स्थिति की है, प्रयोग की नही, सन्तुलन की है, अन्तरराष्ट्रीयता मे लय होने की नही, विजयी राष्ट्रीयता में कायम रहने की है।"

अगले दशक तक अमरीका हार्डिण्ग की सामान्य अवस्था मे विश्राम करने का प्रयत्न करता रहा, जब कि निराश विश्व बिना उसके अपने मार्ग पर चलता गया। सिहावलोकन मे, कठोर रुख अपनाने के लिए स्वय विल्सन की आलोचना की जा सकती है। जैसा कि उन्होने पेरिस मे समझौता किया था, वाशिगटन मे वैसा करने से इन्कार कर के उन्होने उनका समर्थन भी खो दिया, जिनकी अपेक्षाकृत मामूली आलोचना का समाधान किया जा सकता था।

कुछ आलोचको के लिए विल्सन उद्देश्ययुक्त आदर्शवाद के प्रतीक हो गये है, जिन्होने अपने ठोस लक्ष्यो की परिभाषा को टालने का प्रयास किया। किसी सीमा तक यह आलोचना निश्चित ही सही है, परन्तु इसका यह अर्थ लगाना खतरनाक होगा कि इस क्रान्तिकारी युग मे सार्थक मानवीय मूल्यो पर आधारित परराष्ट्र-नीति स्वय अयथार्थ और अव्यावहारिक है।

दूसरो ने यह आरोप लगाया कि विल्सन के आत्मनिर्णय ने सकीर्ण राष्ट्रीयता को प्रेरणा प्रदान की, जिसने विशाल व्यावहारिक, आर्थिक और राजनीतिक इकाइयो के स्थान पर छोटे-छोटे सघर्षरत राज्यो को रखा, जो स्वय अपने पैरो पर भी नही खडे हो सकते थे।

यद्यपि विद्वान लोग ऐसे प्रश्नो पर वादविवाद करते ही रहेगे और विशेषरूप से इस पर कि किस प्रकार विल्सन की दुखान्त घटना को बचाया जा सकता था, फिर भी उनकी अपनी और भविष्य की पीढिया दो प्रमुख सफलताओ के लिए विल्सन को याद करेगी।

प्रथम सफलता तो, जैसा कि हम देख चुके हैं, निश्चय ही उनका राष्ट्रसघ की रचना का सूत्रपात करना है और उनकी यह ऐतिहासिक मान्यता कि विश्व के लिए युद्ध के विरुद्ध अपने को सगठित करने का समय आ गया है। द्वितीय सफलता, उनके द्वारा स्वतत्र विश्व-समाज के विचार का प्रतिपादन है।

गैर-अमरीकी विश्व के लिए विल्सन ने राष्ट्रसघ को एक विकासशील सस्था के रूप मे छोड़ा, जिसकी कमी उसमे अमरीका का शामिल न होना था, परन्तु फिर भी वह युद्ध-काल मे अनेक रचनात्मक कार्य सम्पादित करने में समर्थ रहा। अपने ही देशवासियो के हित में, राष्ट्रसघ के लिए इनका सघर्ष ही विल्सन की प्रमुख विरासत प्रतीत होती थी, जिसके औचित्य को आनेवाली पीढियाँ सिद्ध कर सकेंगी।

बीसवी शताब्दी का प्रारम्भ अमरीका ने साम्राज्यवाद के साथ छेडछाड से किया। तब विश्वयुद्ध की वेदना मे, अमरीकी प्रजातंत्र के एक ऐतिहासिक

प्रतिनिधि ने एक लोकतात्रिक विश्व-सगठन की प्रस्तावना की थी, जिसने आगे चल कर विश्वयुद्ध को असभव कर दिया होता। यह एक ऐसा विकास था, जिसके लिए अमरीकी इतिहास एक विशेष 'रिहर्सल' था और जो पश्चिमी सभ्यता के सरक्षण के लिए अत्यधिक आवश्यक था।

अब अमरीका पुन पृथक हो गया, उसकी कुछ गौरव-गरिमा रात्रि के स्वप्न की भाँति विलुप्त हो गयी। परन्तु क्रान्तिकारी विचारधाराएँ, जिन्हे अमरीका ने अपने महत्वपूर्ण अनुभवो से विश्व को हिला देने वाले सिद्धान्तो में सम्माविष्ट और विकसित किया था, विल्सन की पराजय के साथ विलीन होनेवाली नही थी।

उनके आलोचको के प्रतिबध कुछ भी हो, इसे कोई भी इन्कार नही कर सकता कि विल्सन ने विचारो की शक्ति का प्रदर्शन मनुष्यो पर किया, जिसका रूप पूर्ण लोकतात्रिक विश्वव्यापी क्रान्ति के आदर्श से जुट कर अमरीकी नेतृत्व की प्रबल शक्ति मे दिखाई दिया। अपने प्रथम प्रशासन मे नवीन स्वतत्रता के सामाजिक कल्याणकारी प्रयत्नो के दिनो से लेकर अपने सार्वजनिक जीवन के अन्त तक, विल्सन राजनीति की मानवीय सीमा से परिचित थे और न केवल अमरीका के लिए, प्रत्युत समस्त विश्व के लिए अर्थपूर्ण प्रजातात्रिक उद्देश्यो की प्राप्ति के लिए कृतसकल्प थे।

शीघ्र ही विल्सन की दो विरासतो—विश्व-सगठन और विश्व-प्रजातंत्र—के विचार फिर उस समय की प्रमुख समस्याएँ हो गयी। 'यदि अमरीका विश्व से मुँह मोडेगा तो द्वितीय विश्व युद्ध होगा'— विल्सन की यह भविष्यवाणी दो ही दशको मे पूर्ण हो गयी। विल्सन का जीवन जिस महान वादविवाद से समाप्त हुआ था, उसकी पुनरावृत्ति हुई।

इस बार अनेक कार्यों की शृखला से, जिनसे आज हममे से अधिकाश लोग परिचित हैं, जैसे सैनिक अड्डों के लिए ध्वसक विनिमय, भूमि-पट्टा-अधिनियम, अटलाटिक चार्टर, शान्तिकालीन प्रारूप आदि, अमरीका ने अपने प्रारम्भिक निर्णयो को उलट दिया। जब पर्ल हार्बर पर बम गिरे, तब हमारे विश्व सम्बधी दायित्वो के सम्बध में अधिकाश बचेखुचे सन्देह भी दूर हो गये। विल्सन ने जिन आदर्शों की घोषणा की थी, उन्ही से विचार ग्रहण करते हुए फ्रैंक्लिन रूजवेल्ट ने 'चार स्वतत्राओं' में अधिकाश अमरीकियो के विश्वासो को ही ध्वनित किया।

युद्ध के अन्त में, अमरीकी लोगो ने उसी प्रकार के अन्तरराष्ट्रीय सगठन

में सम्मिलित होने का दृढ सकल्प कर लिया, जिसको इसके नेताओ ने विल्सन के समय मे ठुकरा दिया था। सयुक्त राज्य अमरीका ने सचमुच ही जिस सयुक्त राष्ट्र सघ के सगठन मे नेतृत्व किया, उसका घोषणापत्र सिनेट में केवल दो विरोधी मतो के अतिरिक्त, बहुमत से पास हुआ और उसका प्रधान कार्यालय भी अमरीकी भूमि पर ही बना।

तब विश्व यह जानने के लिए प्रतीक्षा करने लगा कि क्या सचमुच अमरीका ने विल्सन की अपील के सार-तत्व को ग्रहण कर लिया है, अपनी शक्ति के साधनो के साथ वह क्या करेगा और नये अन्तरराष्ट्रीय सगठन मे वह किन उद्देश्यो को प्राप्त करने का प्रयत्न करेगा ?

विल्सन से अधिक इस बारे मे और कौन जानता था कि राष्ट्र सघ की भाँति ही सयुक्त राष्ट्र सघ भी विवेकपूर्ण अथवा अविवेकपूर्ण नीतियो के सचालन का साधन मात्र रह जायगा। यह तथा इसमे सम्मिलित राष्ट्र, मानवता को परेशान करने वाली ठोस समस्यायो पर अपने भाषण अपने आपको ही सुनायेगे। विल्सन ने १९२३ मे अपने अन्तिम लेख मे लिखा था—"विश्वजनीन अशान्ति और उथलपुथल के लिए कोई ठोस कारण होना चाहिए। यह निरर्थक राजनीति मे नही मिलेगा और न भयकर आर्थिक भूलो मे। यह कदाचित् हमारे युग के आध्यात्मिक जीवन के स्रोतो मे छिपा मिलेगा। यही क्रान्ति को जन्म देता है।"

घर मे तथा बाहर, तत्कालीन आर्थिक व्यवहारो के निरीक्षण के बाद विल्सन ने सुझाया था कि वर्तमान असन्तोष और हलचल के लिए दोष पूर्णतया विद्रोहियो पर नही मढा जा सकता।

विल्सन ने आगे कहा, "प्रजातत्र ने अभी तक विश्व को अविवेकपूर्ण क्रान्ति से सुरक्षित नही किया है। यह महान् कार्य, जो सभ्यता की मुक्ति से किसी भी हालत मे कम नही है, आग्रहपूर्ण और आवश्यक रूप में प्रजातत्र के सम्मुख है। हमारे चारो ओर जो कुछ है, वह जब तक खण्डहरो के रूप में भूमिसात् नही हो जाता, तब तक इससे बचने का अन्य कोई मार्ग नहीं है और सयुक्त राज्य अमरीका को एक महानतम प्रजातत्र के रूप मे इस भारको वहन करना है।"

मरणासन्न राजनीतिज्ञ ने अन्त मे कहा, "जो मार्ग क्रान्ति से दूर ले जाता है, वह बिलकुल स्पष्ट है। औरो के तथा पूरे समाज के कल्याण, आनन्द और सन्तोष की वृद्धि के उद्देश्य से निजी स्वार्थों के उत्सर्ग के लिए इसमें सहानुभूति, सहायता और इच्छा होनी चाहिए।"

राष्ट्रो के विश्व-सगठन के लिए विल्सन के स्वप्न को आंशिकरूप से पूरा

करने मे सहायता करने के बाद क्या अमरीका इतना विश्वास और शक्ति एकत्र कर सकेगा कि वह इसको प्रजातात्रिक विश्व-नीतियो का रूप प्रदान कर सके, जिसके विल्सन प्रतीक थे ?

काश, अमरीका मे इतनी शक्ति होती कि वह विल्सन के उन शब्दो की सत्यता पर ही जोर देता, जो उन्होने उस समय राष्ट्र-नेता के रूप मे कहे थे— "हमारी ही भाँति अन्य अनेक राष्ट्र धनाढ्य हो चुके है। हमारी ही भाँति अन्य राष्ट्र शक्तिशाली भी हो चुके है। हमारी ही भाँति अन्य राष्ट्र उत्साही भी बन चुके है। किन्तु मुझे आशा है कि हम यह कदापि नही भूलेगे कि हमने इस राष्ट्र का निर्माण अपनी सेवा के लिए नही, बल्कि मानवमात्र की सेवा के लिए किया है।"

सातवाँ भाग

चुनौती का अन्दाज

मै नही कह सकता कि मै किंचित् मात्र भी तुम्हारे बडप्पन से अथवा तुम्हारे भौतिक साधनो से प्रभावित हुआ हूँ। आकार महान नही होता। और भूमि-विस्तार से राष्ट्र का निर्माण नही होता। जिस महान समस्या से वास्तविक महानता और अनिश्चित भाग्य का आतक सलग्न है, वह यह है कि तुम लोग इन सबके विषय मे क्या करनेवाले हो ?

थामस हक्सले

जान्स हापकिन्स विश्वविद्यालय, १८७६

इकतीसवाँ प्रकरण

नयी आशाएँ और अतीत के विकल्प

यहाँ पर फिर से पुस्तक का विषय सरल शब्दो मे बताया जा सकता है। पिछली दो पीढियो मे, जब कि योरोप अपने खुद के घावो से पीडित था और जब कि अमरीका विश्व-राजनीति में प्रौढ बन रहा था, उस समय धरती पर अन्यत्र क्रान्तियाँ हुईं, जिनकी जड़े मजबूत है, किन्तु जिनके भाग्य अभी भी अज्ञात है। स्वय अमरीका की क्रान्ति उनसे सम्बन्धित है।

१९११-२१ के एक ही दशक मे लेनिन, सुन यात सेन और गाँधी—इन तीन पुरुषो ने शताब्दियो की निष्क्रियता से करोडो लोगो को जागृत किया। हमने रूस पर सरसरी दृष्टि से विचार किया है, जहाँ १९१७ मे दरिद्रता, निरक्षरता एव अत्याचार के रूप मे ज़ारशाही विरासत, छोटे, दुर्बल इच्छा-शक्ति वाले सामाजिक प्रजातत्र के लिए बहुत अधिक शक्तिशाली सिद्ध हुई और उसके बजाय, लेनिन के नये सघर्षशील मार्क्सवाद के प्रबल प्रहार के लिए उर्वर भूमि प्रदान की। चालीस वर्षों से कम समय मे नृशसता, सुयोग्य सगठन और उत्सर्ग के प्रति उत्साह के बल पर, सोवियत राज्य विश्व का द्वितीय औद्योगिक राष्ट्र बनने और भविष्य मे पश्चिमी सभ्यता के लिए एक चुनौती बनने के लिए, शक्ति और सम्मान मे बहुत अग्रसर हुआ है।

चीन मे तायपिंग-कृषक-विद्रोह के उत्तराधिकार को नरम विचारवालो ने सुरक्षित रखा, परन्तु सुन यात सेन का खण्डित कार्यक्रम अन्त में माओत्से तुग की नयी प्रणाली द्वारा साम्यवादी शिविर की ओर मोड दिया गया। विस्तृत और कठोर श्रमशील आबादीवाला चीन आज रूसी सफलता से आगे बढ जाने का प्रयास कर रहा है।

हमने गाँधीवादी क्रान्ति पर भी विचार किया है, जिसने ४५ करोड भारतीयो और पाकिस्तानियो को स्वतत्र करा दिया और जो आज आधुनिक लोकतात्रिक भारत की रचना में तल्लीन है। इसमें साम्यवादी कट्टरता और धूर्तता का अभाव है। यह अनेक प्रकार से अधिक जटिल है और उसे ठीक से बहुत कम समझा गया है।

एशिया में अन्यत्र, अफ्रीका और दक्षिणी अमरीका के भी परिवर्तन के

लिए क्रान्तिकारी मॉंग अपेक्षाकृत अधिक उत्तेजना उत्पन्न कर रही है। विश्व की कार्यसूची मे रखे गये अनेक प्रश्न क्रान्तिकारी है।

बाण्डुग-सम्मेलन के मच से अफ्रीका और एशिया के नेताओ ने चार प्रमुख क्रान्तिकारी मॉंगो को प्रतिध्वनित किया. राष्ट्रवाद के लिए और विदेशी शासन के विरुद्ध, मानवीय गौरव के लिए और जातीय भेदभाव के विरुद्धा द्रुतगति से आर्थिक विकास के लिए और दरिद्रता, दीनता और बुभुक्षा को कायम रखनेवाले अभी भी जीवित सामन्तवाद के विरुद्ध, शान्ति के लिए और युद्ध के शाश्वत भय के विरुद्ध।

जैसा कि हम देख चुके है, औपनिवेशिक क्रान्ति उसी कच्चे माल का प्रयोग कर रही है, जिसका प्रयोग साम्यवादी क्रान्तियो ने किया है। यह कच्चा माल हमारे समझने के लिए बार-बार प्रकट हुआ है और वह वस्तुत' मानवीय आशा ही है।

अधिकाश मानव समाज सर्वदा दरिद्र और उत्पीड़ित रहा है। परन्तु अब यह विचार, सूखी घास के मैदान में दावानल की भॉंति, फैलता जा रहा है कि अब किसी राष्ट्र को दरिद्र और अन्यायपूर्ण जीवन व्यतीत करने की आवश्यकत नही है।

विश्व के दूर-दूर भागो में इतिहास मे, प्रथम बार, मनुष्य विश्वव्यापी प्रचुरता की सभावनाओ को देख रहा है। प्राय वह उस सिद्धान्त को तथा उन दलो और व्यक्तियो को स्वीकार करने के लिए तैयार है, जिनसे उसके जीवन-काल मे ही उस आशा की पूर्ति की पूर्ण सभावना का उदय हो सके।

रूस और चीन मे विश्व साम्यवादी दल की चालो के सचालक, जिनके हाथ में आज विशाल राज्य है, साम्यवाद को इन क्रान्तिकारी प्रश्नो के उत्तर के रूप मे प्रस्तुत करने का प्रयत्न कर रहे है और इस प्रकार विश्वव्यापी उत्तेजना को एक केन्द्र से सचालित विश्व-क्रान्ति में परिणत कर देना चाहते है। अपनी लक्ष्य-प्राप्ति के लिए उनसे शक्ति और अनुरोध की वैकल्पिक चालो के कुशल प्रयोग की अपेक्षा की जा सकती है। इस प्रक्रिया के अगस्वरूप, वे अटलाटिक राष्ट्रो को विभाजित करने और अमरीका को विश्व से पृथक करने की आशा रखते है।

पश्चिम की प्रमुख चिन्ता यह रही है कि अणु-युद्ध के विध्वस से बच कर किस प्रकार इस विस्तार और विनाश के कार्यक्रम का सामना किया जाय; परन्तु यह तो निषेधात्मक दृष्टिकोण है। उन आवश्यकताओ की पूर्ति के प्रयत्न के

बिना, जिनके लिए साम्यवाद उत्तर देने का दावा करता है, और अपने विचारो के औचित्य में विश्वास रखते हुए साम्यवाद के रूप मे परिवर्त्तन करने की माँग करना, विश्व को रोटियो के बदले पत्थर देना है।

यदि हम अन्तिम समाधानो को स्वरूप देने मे वास्तविक हिस्सा लेना चाहते है, तो हमे निश्चित ही अपने आरामदेह पृथकतावादी अतीत के किसी भी पुराने रोग को सर्वदा के लिए समूल नष्ट कर देना होगा। इसमे हम भाग्य-शाली है, क्योकि एक विश्वनीति की कठिनाइयाँ और खर्च हमें उसके विरुद्ध विद्रोह के लिए चाहे जितना भी प्रोत्साहित करे, द्वितीय विश्व युद्ध के भयानक पाठो और उसकी प्रतिक्रिया को अधिकाश अमरीकी अब बखूबी समझते है।

विज्ञान ने विश्व को एक सौ वर्ष पूर्व के सयुक्त राज्य अमरीका से भी छोटा एक समुदाय बना दिया है। अमरीकी रेडियो के श्रोता आज विश्व के सुदूरतम देशो की आँखो-देखी घटनाओ को प्रतिदिन सुन सकते है। हमारे सस्थापक-पूर्वज जितना समय न्यूयार्क से बोस्टन जाने मे लगाते थे, उसके अल्पाश मे ही वे उन सभी क्षेत्रो में उड कर पहुँच सकते है। आज अधिकाश अमरीकी इन तथ्यो के अभिप्रायो को समझते है। यह विश्वास करना भ्रमपूर्ण होगा कि ऐसी दुनिया मे अन्य लोगो की आवश्यकताओ, आशाओ और आश-काओ से, विनाश को आमत्रण दिये बिना, हम किसी भी अर्थ में अपन-आपको पृथक रख सकते है।

विश्व की पाँच प्रतिशत आबादीवाला होते हुए भी सयुक्तराज्य अमरीका आज विश्व के कच्चे माल का लगभग पचास प्रतिशत भाग उपयोग करता है। राष्ट्रपति को प्रस्तुत पैले-रिपोर्ट मे यह प्रदर्शित किया गया कि १९५२ में अमरीका ने अपने उत्पादन की अपेक्षा नौ प्रतिशत अधिक कच्चे माल का उपयोग किया और प्रतिरक्षा उद्योग के बत्तीस अत्यन्त महत्वपूर्ण खनिज पदार्थों में से हमारे पास तेईस की कमी थी। दक्षिणी अमरीका के साधनस्रोतो तक अपनी पूरी पहुँच के बावजूद, क्रोम, टिन, कोबाल्ट, मैंगनीज़, पारा, यूरैनियम, एसबेस्टास, ग्रैफाइट, टगस्टेन तथा अन्य धातुओ के लिए, जो विकास और प्रतिरक्षा के लिए नितान्त आवश्यक है, फिर भी अफ्रीका और एशिया मे हमें जाना पडता है।

हमारे आर्थिक विकास के मोड का हिसाब लगाते हुए पैले-रिपोर्ट ने अनुमान लगाया कि १९७५ तक औद्योगिक कच्चे माल की खपत ६० प्रतिशत बढ

जायगी। ये अतिरिक्त आयात अधिकाधिक एशिया और अफ्रीका से होगे।

इस प्रकार अमरीकी खेत, कारखाने और 'मेन स्ट्रीट' के भण्डार अधिकाधिक उन लोगो पर निर्भर हो जाते है, जो उत्तरी रोडेशिया मे ताँबा, ईरान मे तेल और बिहार में मेगनीज़ पैदा करते है, और उन पर भी निर्भर करते हैं, जो लन्दन मे व्यापार के जटिल यत्रो का सचालन करते है, और जो बम्बई, आक्रा, रगून और पोर्ट सईद बन्दरगाहो मे जलपोतो पर माल चढाते है।

इस अणुयुग मे एक पृथक अमरीकी की प्रतिरक्षा भी कठिन होगी। सामरिक दृष्टि से महत्वपूर्ण, हमारे हवाई कमान की प्रबल प्रहार-शक्ति अधिकतर हमारे मित्रो की मातृभूमियो और प्रदेशो पर निर्भर है। यदि एक कामचलाऊ नि.शस्त्रीकरण समझौते के अभाव मे ये अड्डे हमे कभी न दिये गये, तो सम्भाव्य सोवियत या चीनी आक्रमण के समय हमारी प्रतिशोधात्मक प्रहार-शक्ति भयानक रूप से कम हो जायेगी।

इस महान, नवीन राजनीतिक सत्य से हमारा पीछे लौटना असभव है। नये और सम्पूर्ण अर्थ मे, हम विण्डेल विल्की के शब्दो मे 'एक विश्व मे रहते है।' यद्यपि वह खतरनाक रूप से अस्सी प्रतिद्वदी राष्ट्र-राज्यो और दो सशस्त्र शिविरो मे तथा विभिन्न प्रकार के अदम्य सिद्धान्तो, साम्राज्यो और क्रान्तियो में, जिन पर हम विचार करते आ रहे है, बटा हुआ है, फिर भी यही एक मात्र हमारा विश्व है, जिसमे हमे रह कर सीखना है।

यदि हमे इसमे सफलतापूर्वक रहना है तो जो पहला पाठ हमे सीखना है, वह यह है कि अमरीकी नीति की सीमाएँ बहुत ही यथार्थ है। कभी-कभी इस बात को समझना हमारे लिए बडा कठिन हो जायगा।

एडलाई स्टीवेन्सन ने हमको चेतावनी दी है—"एक राष्ट्र के रूप मे हमारे सामने ऐसी कोई बाधा नही उपस्थित हुई, जिस पर हम विजय प्राप्त न कर सके। हमने कभी ऐसी नदी नही देखी, जिस पर हम पुल न बना सके, ऐसी कोई मदी नही आयी, जिसको हम समाप्त न कर सके और ऐसा कोई युद्ध नही हुआ, जिसे हम जीत न सके। अभी तक हमें दु ख, निराशा और पराजय के दिन नही देखने पड़े, जो अन्य सभी राष्ट्रो की स्मृतियो मे अकित है।

"जीवन के प्रति हमारा परम्परागत, तत्पर और आत्मविश्वासपूर्ण समाधान, अपने महान आकर्षण के बावजूद, सम्भव है कि हमे आगे चल कर निराश करे। आज हम एक क्रान्तिकारी स्थिति में विश्व के रगमच पर प्रकट हुए है, जहाँ हमारी स्वीकृत शक्तियाँ राष्ट्र के आकार, साधन-स्रोतो, आबादी, भूगोल

तथा अनुभव की स्पष्ट सीमाओ से आबद्ध हैं। इस नयी स्थिति में, हमें विनम्रता की आवश्यकता है और सब से अधिक आवश्यकता राष्ट्राध्यक्ष आइसनहावर के शब्दो मे 'धैर्य और साहस है' की।"

परन्तु जब कि हमे एक ओर अपनी मर्यादाओ को स्वीकार करना चाहिए, तो दूसरी ओर हमे इस बात से सावधान रहना चाहिए कि कही हम इनका उपयोग निष्क्रिय होने के लिए न करे। भविष्य के सम्बध मे कुछ भी नही कहा जा सकता। हम अमरीकी लोग चाहे कितनी भी गलतियाँ करें, तब भी स्वतत्रता कायम रह सकती है और यदि हम सब कुछ ठीक ही करे, तो भी वह नष्ट हो सकती है। फिर भी, जहाँ, तक हमारा अन्दाज़ है, अमरीका के पास इतने साधन तो है कि वे रोटी, स्वतत्रता और शान्ति के लिए विश्वव्यापी प्रजातात्रिक क्रान्ति को सफल या विफल बना सकते है। फिर भी, सब कुछ होते हुए भी, अमरीका की नीति ऐसी है, जिसके निर्णय के लिए अमरीकी सब कुछ कर सकते है।

हम इसको बनाने मे किस तरह प्रयत्न कर सकते है ? क्या हमारी वर्तमान विश्व-कूटनीति क्रान्तिकारी चुनौती के अनुकूल है ? नही, वह स्पष्टत ऐसी नही है। तो फिर उसे सुधारने के लिए हम क्या कर सकते हैं ?

प्रथम और अत्यधिक महत्वपूर्ण बातो मे से, जो हम कर सकते है, वह है एक ठोस ऐतिहासिक पार्श्वभूमि मे अपना आधार बनाना। निस्सन्देह हम इतिहास के उस विकट चौराहे पर है, जो रोमन साम्राज्य के विघटन अथवा पुनर्जागरण के अभ्युदय से भी अधिक नाटकीय सिद्ध हो सकता है।

बत्तीसवाँ प्रकरण

ऐतिहासिक अनुदर्शन

यह बात याद रखना हमारे लिए लाभदायक होगा कि विश्व में हमारी ही वह प्रथम सभ्यता नही है, जिसे 'आधुनिक सभ्यता' कहा जा सकता है और जिस प्रकार के प्रश्न हमे आज परेशान कर रहे है, उनका सामना पहले किसी ने नही किया। रोम तथा अनेक अन्य राष्ट्रो ने अपने-आपको विश्व-समाज के रूप मे माना था और क्रान्तिकारी चुनौतियो का सामना किया था।

प्रोफेसर अर्नल्ड टोयन्बी का कहना है कि पश्चिम की कम-से-कम बीस ऐतिहासिक सभ्यताओ ने इतिहास की चोटी पर पहुँचने का प्रयत्न किया है। प्रत्येक ने अपने-अपने क्रम मे एक निष्क्रिय प्रारम्भिक समाज की शान्तिपूर्ण निद्रा से उठने का प्रयत्न किया, सुरक्षा को पीछे छोडा और शासितो की सम्मति पर आधारित विश्वव्यापी सभ्यता के अगले सोपान पर चढने की कोशिश की। इनमे से सोलह सभ्यताएँ तो अपने प्रयत्नो में पहले ही विनष्ट हो चुकी है, और, हमारी सभ्यता के अतिरिक्त अन्य सभी सभ्यताएँ काफी जर्जरित हो चुकी है।

टोयन्बी के कथनानुसार हमारी पश्चिमी सस्कृति कठिनाइयो के युग में प्रविष्ट हो चुकी है और हमारे सामने प्रश्न यह है कि जहाँ इतने लोग असफल रहे, वहाँ हमे सफलता प्राप्त होगी या नही। टोयन्बी का कहना है कि इन सभी प्रारम्भिक प्रयत्नो मे सभ्यता का जहाज़,' युद्ध' और 'वर्ग', इन दो मानवीय प्रमुख समस्याओ की चट्टानो से टकरा कर चूर-चूर हो गया है।

जिन महान समाजो ने विश्व-सस्कृति बनने का प्रयत्न किया, उनके पृथक्-पृथक् अगो में युद्ध, जो सैनिकवाद और बल के साथ चलता है, उनके छिन्न-भिन्न होने का प्रमुख कारण रहा है।

वर्ग से टोयन्बी का अर्थ उन सभी आर्थिक विषमताओ और जातीय और धार्मिक भेदभावो से है, जो एक वर्ग का दूसरे पर प्रभुत्व और शोषण कायम रखते ह और किसी भी समाज में फूट का बीज बोते है। इस अर्थ में टोयन्बी का विश्वास है कि वर्ग सभ्यता के विनाश का दूसरा मुख्य कारण रहा है।

उन्होने लिखा है, "युद्ध और वर्ग सभ्यता के जन्मकाल से ही हमारे साथ है।

जब हम प्रत्येक मामले की खूब छानबीन करते है तो हम निश्चित रूप से इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि मृत्यु का कारण या तो युद्ध हुआ है, या वर्ग, या दोनो का समिश्रण।"

परन्तु हर बार मृत्यु का कारण आत्महत्या भी रही है। सभ्यता के भीतर यदि किसी तत्व ने उसे कमजोर नही किया होता, उसके ज्ञानतन्तु मे घातक अवरोध प्रस्तुत न किया होता और उसे आकर्षण की क्षमता और जनता की निष्ठा से वचित न किया होता, तो कोई भी बाहरी शक्ति उसे रोकने मे समर्थ न होती।

टोयन्बी के अनुसार प्राचीन यूनान का इतिहासकार और अकालमृत्यु-परीक्षक ४३१ ई. पू के पोलोपोनेशियन युद्ध को आत्महत्या-काल के रूप मे बतायेगा। स्पार्टा जीते या एथेन्स—इसका कोई अर्थ नही था, क्योकि नगर-राज्यो में आपसी युद्ध से तथा प्रत्येक नगर मे वर्ग-सघर्ष से यूनान कभी भी मुक्त न हो सका।

युद्ध को किस तरह समाप्त किया जाय और अवसर की स्थूल समानता की स्थापना किस प्रकार की जाय, पूर्वकालीन सभी सभ्यताओ के लिए यह जीवन और मरण का प्रश्न रहा है। हमारे लिए भी यह प्रश्न कम महत्त्व का नही है और हमारी नीतियो के आवश्यक उद्देश्यो की स्पष्ट शब्दो में व्याख्या करनी पडेगी।

युद्ध की समस्या

इतिहास हमें यह बताता है कि पिछली पीढियो ने युद्ध की समस्या को हल करने के लिए तीन भिन्न प्रणालियो को अपनाया है— एक ही शक्ति द्वारा विश्व का शासन, राष्ट्रो और राष्ट्र-समूहो के बीच शक्ति-सन्तुलन और स्वेच्छापूर्ण सघ। चूकि इनमें से प्रत्येक प्रणाली को किसी-न-किसी रूप मे हमारे वर्तमान धर्मसकट के समाधान के रूप में प्रस्तावित किया जाता है, इसलिए पश्चिमी इतिहास मे उनके जीवनक्रम पर सक्षेप मे विचार कर लेना समयानुकूल होगा।

तीनो मे से साम्राज्य-प्रणाली प्राचीनतम है। यूनानी नगर-राज्यो के पारस्परिक विनाश के उपरान्त, रोम के नये गणराज्य ने समस्त सभ्य विश्व को सैन्यशक्ति से एक करने का प्रयत्न किया। यद्यपि "रोमन-शान्ति" वाक्याश का अर्थ, शक्ति द्वारा स्थापित शान्ति है तथापि शताब्दियो तक रोमन साम्राज्य ने विश्व को शान्ति के फल—सड़के, जलमार्ग, पुल, नहरे, सिंचनप्रणाली, विशाल बन्दरगाह, दलदल भूमि को सुखाना, एक ही प्रकार की कर-प्रणाली, एक विशाल

मुक्त व्यापार-क्षेत्र, एक सामान्य सेना अथवा पुलिस दल और सर्वोपरि, रोमन कानून प्रदान किये।

अन्त मे रोम का भी पतन हुआ, परन्तु विश्वजनीन रोमन कानून और पुन स्थापित रोमन साम्राज्य के सामान्य शासन के अन्तर्गत शान्ति का आदर्श समस्त ईसाई देशो मे जारी रहा और उसने पश्चिमी इतिहास पर गहरा प्रभाव डाला।

पश्चिम ने बलपूर्वक साम्राज्यवादी समाधान के अन्य अनेक प्रयत्नो के अनुभव प्राप्त किये है। क्रान्तिकारी फ्रान्स, उस समय जब कि उसकी गणतत्रीय शक्तियो ने योरोप मे प्रतिक्रान्तिवादी ज्वार को उभाडना आरम्भ किया, साम्राज्यवादी कार्य पर आरूढ हुआ। कोर्सिका से उन्नीसवी शताब्दी के सीज़र ने योरोप के सयुक्त राज्य की चर्चा की, परन्तु फ्रान्स के विकासशील सैनिक प्रभुत्व तथा 'पवित्र रोमन साम्राज्य' की परम्परा मे उसके चरमोत्कर्ष ने यह प्रदर्शित किया कि यह रोम के वैभव को फिर से स्थापित करने का जानबूझ कर किया गया प्रयत्न था। नैपोलियन की सहिता ने अल्प काल के लिए अधिकाश योरोप को एक कानून के अन्तर्गत ला दिया और योरोपीय राजतत्रो के द्वारा उसके मुक्त और कुशल उपयोग ने योरोपीय विचार को महाद्वीप के लोगो के मस्तिष्क पर इस प्रकार अकित कर दिया कि कोई भी निर्वासित व्यक्ति उसे मिटा नही सकता था।

बाद में जापान के साथ मिलकर हिटलर ने विश्व पर शासन जमाने का नया प्रयत्न किया। चालीस वर्षों से सोवियत सघ ने भी विश्व-साम्राज्य के उद्देश्य को कभी नही छिपाया, जिसकी स्थापना वह साम्यवादी आन्दोलन से करना चाहता है। अमरीका मे भी कुछ ऐसे लोग हैं, जो बड़ी सावधानी से यह कहते हैं कि शान्ति की स्थापना का एकमात्र व्यावहारिक मार्ग सीज़र का अनुकरण करने मे है।

युद्ध टालने का दूसरा परम्परागत तरीका, 'शक्ति-सन्तुलन' रहा है। रोमन साम्राज्य के स्वप्न के धुँधला पड़ने के साथ पुनरुत्थान (रेनेसाँ) के राजनीतिक सिद्धान्तवादियो ने राज्यो के शक्ति-सन्तुलन में 'प्राकृतिक सन्तुलन' या 'उचित समानता' के ढग की एक परिकल्पना की खोज की, जो जीवन में सर्वत्र उपलब्ध थी। यदि साम्राज्य का सद्गुण स्वत एकता और सार्वभौमिक कानून और व्यवस्था है, तो एक सफल शक्ति-सन्तुलन का गुण उस सन्तुलन में है, जो एक प्रकार की स्वाधीनता और विभिन्नता की अनुमति प्रदान करता है।

सन्तुलन के लिए एक सन्तुलनकर्त्ता की आवश्यकता होती है, जो भार को

एक पलड़े से दूसरे पडले मे सरकाने की क्षमता रखता हो। सब से सफल सन्तुलनकर्त्ता औद्योगिक इग्लैण्ड था, जिसने लगभग २५० वर्षों से अपना यह उद्देश्य बना लिया है कि कोई भी महाद्वीपीय शक्ति अथवा शक्ति-गुट इतना अधिक प्रबल न हो जाय कि वह शेष योरोप मे अपनी सत्ता स्थापित कर ले। १९१४ तक विश्व-स्थिरता की प्राय यही एक मात्र कुजी थी।

१८१५ से १९१४ तक अपनी 'गौरवपूर्ण पृथकता से' ब्रिटेन ने बिना जन-धन खर्च किये, जिसकी अधिकाश भूतपूर्व साम्राज्यो को आवश्यकता पड़ी, और बिना निरन्तर बल-प्रयोग के घातक प्रभाव के, योरोपीय समाज का नेतृत्व किया। १९ वी शताब्दी के उदारवाद और मानवतावाद उसके कुछ प्रतिफल थे।

यह भाग्य की विडम्बना थी कि ब्रिटेन ने यह शक्ति-सन्तुलन उद्योगवाद से प्राप्त किया, जिसने साम्राज्य की रचना की थी। ब्रिटिश जलपोतो द्वारा सुरक्षित और सुसज्जित ब्रिटिश साम्राज्य ने लगभग आधे भूमण्डल पर प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से, कानून और व्यवस्था तथा एक प्रकार की शान्ति स्थापित की। ब्रिटेन की शान्ति व्यवस्था, जो १९ वी शताब्दी के अधिकाश मे कायम रही, दो प्राचीन प्रणालियो– औपनिवेशिक विश्व में साम्राज्य और योरोप मे शक्ति-सन्तुलन का–समिश्रण थी।

किन्तु इतिहास ने निश्चित रूप से प्रदर्शित कर दिया है कि साम्राज्य मे अपने विध्वस के बीज निहित है और शक्ति-सन्तुलन अनिवार्यत खतरनाक है। परिभाषा के अनुसार साम्राज्य का अर्थ है, शक्ति द्वारा शान्ति और बल द्वारा एकता। साम्राज्य का अन्त हो जाता है, जब पराधीन जनता अपने शासको को उखाड़ फेंकने की शक्ति और इच्छा प्राप्त कर लेती है, अथवा जब शासक अपना शासन जारी रखने की शक्ति या इच्छा खो बैठते हैं, अथवा जब आन्तरिक जागृति और निर्बलता साम्राज्य को बाहरी आक्रमण के लिए आकर्षक लक्ष्य बना देती है।

इस प्रकार रोम का पतन आन्तरिक वर्ग-सघर्ष के कारण हुआ, जिसने उसे बर्बर आक्रमण के लिए खुला छोड दिया। जब लोकतत्र ने ब्रिटेन मे जड़ें जमा ली और जब अमरीका से भारत और अफ्रीका तक ब्रिटिश साम्राज्य के भीतर औपनिवेशिक विद्रोह फैल गया तब ब्रिटेन के विश्वव्यापी साम्राज्य के दिन लद गये।

सन्तुलन मे रहने वाले राष्ट्रो को उसी स्थिति मे बनाये रखने की संभावना पर शक्ति-सन्तुलन निर्भर करता है। सन्तुलन को समाप्त करने वाली नवीन

शक्तियो का भीतर या बाहर उद्भव हो सकता है। जब सामन्तवाद के भीतर आर्थिक शक्तियो का विकास हुआ तब सामन्तवादी सन्तुलन विच्छिन्न हो गया, जिस प्रकार नगर अपने नवीन उद्योगो और व्यापारियो के कारण अस्तव्यस्त हो गये।

औद्योगिक जर्मनी के उत्थान से उन्नीसवी शताब्दी का योरोपीय राजनीतिक सन्तुलन डावाँडोल हो गया। जर्मनी ऐसी साम्राज्यवादी महाद्वीपीय शक्ति था, जिसको विश्व का विशालतम जहाज़ी बेडा भी आसानी से नियन्त्रित नही कर सकता था। १८७० मे ब्रिटेन, फ्रैन्को-प्रशन युद्ध मे इस आशा से तटस्थ रहा कि एक सयुक्त जर्मनी, फ्रान्स के लिए एक प्रभावशाली प्रति-सन्तुलन का कार्य करेगा, जो इस शक्ति-सन्तुलन के लिए पिछले दो सौ वर्षों से महान खतरे के रूप मे था। चालीस वर्ष बाद, ब्रिटेन ने इस बार फ्रान्स की ओर से प्रथम आधुनिक युद्ध मे प्रवेश किया, जिससे योरोप मे उसी सयुक्त जर्मनी के आधिपत्य को रोका जा सके, जिसे ब्रिटेन ने स्वय बढने का मौका दिया था।

निकोलस द्वितीय ने जार्ज पचम को अगस्त, १९१४ मे तार दिया, "मुझे विश्वास है कि आपका देश योरोप मे शक्ति-सन्तुलन बनाये रखने के लिए युद्ध मे फ्रान्स और रूस का समर्थन करेगा।" परन्तु ब्रिटेन चाहे जितनी भी अच्छी तरह लडा हो, योरोपीय शक्ति-सन्तुलन को अपने रूढ अर्थ मे कायम रखना तो दूर रहा, उसे फिर से कभी भी प्राप्त नही किया जा सका। इसको उलट देने के लिए क्रियाशील नयी तुमुल शक्तियो की द्योतक वह क्रान्ति थी, जिसने तीन वर्ष बाद ज़ार को पदच्युत कर दिया और जिसने साम्यवादी नेतृत्व मे रूस को एक नयी गतिशील विश्वशक्ति के रूप मे परिणत कर दिया।

युद्ध रोकने मे साम्राज्यो और शक्ति-सन्तुलनो के अभावो के साथ अनुभव ने शान्ति के लिए एक तीसरा नवीन मार्ग प्रदान किया— सरकार के समान सस्थानो द्वारा पुष्ट, राष्ट्रो के ऐच्छिक सघ की कल्पना।

प्राचीन यूनान के नगर-राज्यो ने युद्ध रोकने के लिए अथवा आक्रमणकारियो के विरुद्ध कम-से-कम सामूहिक कार्यवाही करने के उद्देश्य से एक होने के प्रयत्न किये, परन्तु यूनानी सघ राजदूतो की बैठको की अपेक्षा अधिक काम के नही थे। फिर भी रोम के पतन के बाद से ही युद्ध को समाप्त करने के लिए ऐच्छिक सघ का विचार पश्चिमी दिमाग मे स्पष्टत कार्य करता आ रहा है।

मध्ययुग मे चर्च को इस प्रकार की एकता के लिए आधारशिला के रूप में देखा गया। १५१४ में हौलैण्ड मे इरासम्स ने पादरियो, (पोप, एबट, बिशप)

और बुद्धिमान लोगो की विश्व-पचायत-प्रणाली की वकालत की। १५१८ में दसवे पोप लियो और कार्डिनल वूल्जे ने आक्रमणकारियो के विरुद्ध सामूहिक कार्यवाही के सिद्धान्त के आधार पर 'विश्वशान्ति की सधि' के लिए सचमुच बातचीत भी की।

१६२५ मे, डच न्यायशास्त्री ह्यूगो ग्रोटियस ने, जो अन्तरराष्ट्रीय कानून के जनक के रूप मे प्रख्यात थे, अपना प्रसिद्ध निबन्ध, 'युद्ध और शान्तिविधान' प्रकाशित किया। उन्होने तर्क पेश किया कि सार्वभौतिक राज्यो को उसी प्रकार अन्तरराष्ट्रीय विधान से बँधा हुआ होना चाहिए, जिस प्रकार व्यक्ति राष्ट्रीय अथवा स्थानीय विधान से बँधा होता है। उन्होने यह प्रस्ताव प्रस्तुत किया कि 'प्राकृतिक विधान' पर विचार करने और उसे लागू करने के लिए ईसाई राजाओ की एक सभा बुलायी जाय । बाद की शताब्दी मे योरोप के 'जन-विधान' को निश्चित करने के लिए नौ अन्तरराष्ट्रीय सम्मेलन हुए।

तदनन्तर, तीन शताब्दियो मे उतनी ही प्रख्यात, बीसियो शान्ति-योजनाओ का निर्माण हुआ। फिर भी सभी योजनाएँ राजाओ, राजनीतिज्ञो तथा विख्यात दार्शनिको की बनाई हुई नही थी। १७७९ मे एक फ्रान्सीसी अध्यापक पियरे-आद्रे गार्गंज ने, जिस पर हत्या का झूठा आरोप लगा कर बीस वर्ष के लिए नाव पर दास के रूप मे कार्य करने के लिए दण्डित किया गया था, सघ के लिए एक बडी ही कल्पनाशील योजना बना कर बेन्जामिन फ्रैंकलिन को भेजी थी, जो लम्बे अर्से से उत्तरी अमरीकी राज्यो के एक महाद्वीपीय सघ के लिए अनुरोध कर रहे थे।

"अपराधी न १३३६" के नाम से हस्ताक्षर करके गार्गंज ने न केवल मध्यस्थता के तत्कालीन प्रचलित विचारो और 'कोटा' पर आधारित अन्तर-राष्ट्रीय पुलिस शक्ति का सुझाव प्रस्तुत किया, प्रत्युत एक विश्वव्यापी जन-कार्य का कार्यक्रम प्रस्तुत किया, जिसकी पूर्ति युद्ध-समाप्ति से बची हुई रकम से की जाती। सडक-निर्माण, अकालग्रस्त क्षेत्रो के लिए अतिरिक्त खाद्यान्न का सग्रह, सिचाई और बाढ-नियत्रण के कार्य उसकी उस सूची मे थे, जिसमें पनामा के स्थल डमरूमध्य और स्वेज़ मे नहरो का निर्माण भी शामिल था।

१७८१ में मुक्त होने के बाद वे पैसी (Passy) तक पैदल चल कर गये, जहाँ फ्रैंकलिन ने, जो नयी दुनिया के पुरानी दुनिया मे प्रथम राजदूत थे, योजना को प्रकाशित किया। १७८६ मे उन्होने योरोपीय नेताओ को निराशा करते हुए फ्रान्स मे नये अमरीकी मत्री थामस जैफर्सन को लिख कर अनुरोध किया कि

नयी दुनिया 'सघ' का श्रीगणेश करे।

स्वय अपने क्षेत्र मे 'नयी दुनिया' वही कार्य कर रही थी। भूतपूर्व अमरीकी उपनिवेशो के स्वाधीनता प्राप्त करने के उपरान्त प्रतिद्वद्विता इतनी तीव्र हो गयी कि यह निश्चित प्रतीत होने लगा कि योरोपीय फूट और सघर्ष के इतिहास की पुनरावृत्ति उत्तरी अमरीकी तटो पर भी होगी। तेरह छोटे राज्यो के पास न केवल उनकी अपनी-अपनी छोटी सेनाएँ थी, बल्कि कुछ राज्यो ने तो उत्तर-पश्चिम मे औपनिवेशिक अधिकारो के भी दावे किये थे। वाशिंगटन ने जे को लिखा, "प्रत्येक राज्य मे दाहक पदार्थ विद्यमान है, जिनको प्रज्वलित करने के लिए एक चिनगारी पर्याप्त होगी।"

१७८७ मे फिलाडेलफिया की सविधान-सभा मे जो लोग आये थे, उनमें से बहुतेरे ऐसे थे, जिन्होने यह मान रखा था कि राज्य-सघ की धाराओ में कोई मौलिक सशोधन राजनीतिक दृष्टि से असभव था। कहा जाता है कि सभा के कठिन समय मे वाशिंगटन ने अशुभ गतिरोध को इन गम्भीर शब्दो मे तोडा था—

"बहुत सभव है कि हमारी कोई भी प्रस्तावित योजना स्वीकार न की जाय। शायद एक और भयकर युद्ध का सामना हमें करना पडे, किन्तु यदि लोगो को प्रसन्न करने के लिए उन्हे हम ऐसी चीज देते है, जिसे हम स्वय पसन्द नही करते, तो बाद मे हम कैसे अपने कार्य को बचा सकते है ? हमे एक मापदण्ड का निर्माण करना चाहिए जिसे विवेकशील और ईमानदार लोग सुधार सके, घटना तो ईश्वराधीन है।"

सविधान ही मापदण्ड और घटना विस्तारशील सघीय शासन था। अन्य क्षेत्रो में भी, जहाँ विशाल आकार अथवा सास्कृतिक, धार्मिक, अथवा भाषागत मतभेदो ने केन्द्रीभूत राज्य को अव्यावहारिक बना दिया था, समय पर तथा उतनी ही सफलता से सच्चे सघो की स्थापना हुई। स्विट्जरलैंड, कनाडा और आस्ट्रेलिया इसके उदाहरण थे।

हमारी प्रारम्भिक सफलता के अतिरिक्त, उनकी सफलता से अनेक योरोपीय देशो के राजनीतिज्ञो के साथ बहुत से लोगो ने अन्तरराष्ट्रीय अराजकता के समाधान के लिए सघ का समर्थन किया है, चाहे यह अराजकता अकेले योरोप में, सामान्यत उत्तरी अटलाटिक प्रजातत्रो में हो, या समस्त विश्व मे।

१७८७ मे बेन्जामिन फ्रैंकलिन ने अपने एक योरोपीय मित्र को लिखा, "मै इसके साथ सयुक्त राज अमरीका का नया प्रस्तावित सघीय सविधान

भेज रहा हूँ। यदि यह सफल होता है, तो मै नही समझता कि आप लोग योरोप में इसी प्रकार की सभा के द्वारा, सभी विभिन्न राज्यो का एक महासघ क्यो नही स्थापित कर सकते।"

कुछ सीमित क्षेत्रो मे, राष्ट्रो की क्षेत्रीय गुटबन्दियाँ पहले ही विशेषरूप से योरोपीय कोयला-लोहा-फौलाद समुदाय मे इसी दिशा मे चल रही है। यह सगठन पहले ही से अपने सदस्यो के अधिकार-क्षेत्र से ऊपर राजनीतिक और आर्थिक सत्ता प्राप्त किये हुए है।

युद्ध-अवरोधक इन तीन प्रतिद्वद्वी प्रणालियो—साम्राज्य, शक्तिसतुलन और सघ—का लम्बा इतिहास हमारे सम्पूर्ण विश्व-चित्र मे है। उनके तत्व यह सकेत करते है कि न तो किसी शक्ति के विश्व-साम्राज्य, न सुस्थिर शक्ति-सन्तुलन और न पूर्ण विकसित विश्व-सघीय शासन के, शीघ्र कूटनीतिक कार्य-सूची मे ही प्रकट होने की सम्भावना है।

यह काफी मजेदार बात है कि एक शताब्दी से अधिक समय तक रूस और सयुक्त राज्य अमरीका ने क्रमश इन दो प्रतिद्वद्वी प्रतीको—साम्राज्य और सघ-का प्रतिनिधित्व किया है। सघ मे लगातार नये राज्यो के मिलने और लोगो के लिए नयी स्वतत्रताओ के साथ उन्नीसवी शताब्दी के अमरीकियो ने अटलाटिक से प्रशान्त महासागर तक शान्ति-कानून और स्वतत्र व्यापार की स्थापना के लिए पश्चिम की ओर कूच किया। वर्षों के बधु-घातक गृह-युद्ध के अपवाद के सिवाय उनका नारा "स्वाधीनता और सघ, एक और अविभाज्य", उनके साथ ही रहा।

साथ ही साथ यूरेशिया के मध्य मे विशाल जनसमूह का निष्क्रमण चल रहा था। रूसी लोग पूर्व की ओर साइबेरिया मे जा रहे थे और एक दूसरे महाद्वीपीय साम्राज्य की रचना कर रहे थे। ज्यो-ज्यो १९ वी शताब्दी बीतती गयी, विश्व अटकले लगाने लगा कि यदि इन दो विशालकाय देशो ने अपनी प्राकृतिक भौगोलिक सीमाओ में अपना प्रसार कर लिया तो क्या होगा ?

१८३५ में अमरीका में एक विशिष्ट फ्रान्सीसी यात्री अलेक्सिस डी टोक्विल ने भावी घटनाओ के सम्बन्ध मे असाधारण रूप से सही भविष्यवाणी की :—

"आजकल विश्व में दो महान राष्ट्र हैं, जिन्होने विभिन्न स्थलो से चलना प्रारम्भ किया, परन्तु एक ही लक्ष्य की ओर प्रवृत्त प्रतीत होते है। मेरा सकेत रूस और अमरीका की ओर है।

"अमरीका का प्रमुख साधन है स्वतत्रता, और रूस का दासता। उनके प्रार-

म्भिक स्थल भिन्न है और यद्यपि उनके मार्ग भी एक नही ह, फिर भी प्रत्येक विश्व के गोलार्ध का भाग्य-निर्माता बनेगा, ऐसी ईश्वरीय इच्छा प्रतीत होती है।"

स्वतत्र राष्ट्रो के सघ और यूरेशियन हार्टलैड के साम्राज्य की सैनिक बैठक १९४५ मे योरोप के मध्य ऐल्ब में शान्तिपूर्वक हुई। हर हालत मे उनके सम्बध अशान्तिपूर्ण ही होते। किन्तु मामलो को और भी जटिल बनाने के लिए एक ओर उत्तरी अटलाटिक बेसिन के आसपास एकत्र उपनिवेशवादी औद्योगिक श्वेत राष्ट्रो और दूसरी ओर अन्य वर्ण वाले जागृत और कच्चे माल का उत्पादन करन वाले एशिया और अफ्रीका के भी राष्ट्रो के बीच एक सघर्ष पैदा हो रहा था।

इस सघर्ष ने अपेक्षाकृत आर्थिक विश्वव्यापी आग्रह के साथ द्वितीय प्राचीन समस्या को, जिसे टोयन्बी वर्ग कहता है, पुन उभाडा। रूस ने, जो कभी पश्चिम का एक बाहरी प्रान्त था, पश्चिम के लिए एक जबरदस्त चुनौती प्रस्तुत कर दी, केवल इसलिए नही कि इसके पास लाल सेना थी, जो किसी भी समय बल-पूर्वक एकीकरण द्वारा विश्व को शान्त करने के लिए प्राचीन साम्राज्यवादी रोमन मार्ग पर आरूढ हो सकती थी, बल्कि अधिकतर इसलिए कि उसके पास एक सिद्धान्त था, जो वर्गसघर्ष के लिए अपना स्वय एक हिसात्मक समाधान प्रस्तुत करता था।

वर्ग-समस्या

वर्ग में जाति, वर्ण, धर्म और आर्थिक स्थिति भी शामिल हो सकती है। यह युद्ध की समस्या की अपेक्षा अधिक विशद और कम पहचानने योग्य है। यह अधिक व्यक्तिगत और अधिक कटुता पैदा करने वाला भी हो सकता है। वह गौरव या गरिमा के रूप मे युद्ध की कोई विशेष सुविधा भी नही प्रदान करता। तथापि इसकी जड इतनी गहरी है कि वह विनाशकारी वर्ग—युद्ध और यहाँ तक कि युद्ध भी पैदा करने मे समर्थ है।

जसा कि अरस्तू ने प्राचीन यूनान के बारे मे कहा था, एक तरह से हमारे समाज मे सर्वदा दो प्रकार के नगर होते हैं— एक तो अमीरो का नगर और दूसरा गरीबो का। आजकल यही विभाजन ससार भर मे दिखाई देता है। अटलाटिक बेसिन के राष्ट्रो में, विशेषरूप से अमरीका मे परिभाषा के अनुसार लगभग अमीरो के शहर है। शेष मानव—समाज मे अधिकतर गरीबो के ही शहर है।

दुर्भाग्य से १९२० में, ठीक उस समय जब अमरीका राष्ट्राध्यक्ष विल्सन

के विश्वव्यापी आदर्शवाद से राष्ट्राध्यक्ष हार्डिंग की अनिश्चित सामान्य स्थिति की ओर झुक गया था, लेनिन ने पहली बार जानबूझ कर गरीबो और अमीरो के नगरो के भेद को समाप्त करने के लिए विश्व का सर्वप्रथम कार्यक्रम प्रस्तुत किया। आधुनिक विज्ञान और शिल्प विज्ञान के सामूहिक एव आयोजित प्रयोग से वर्गगत असमानताएँ समाप्त हो सकेगी।

वर्ग-विनाश के लिए लेनिन का प्रयत्न इतिहास का क्रूरतम प्रयास था और उन्होने वर्गहीन समाज के लिए जो आशा दिलायी, उससे गरीबो के नगरो में जबर्दस्त हलचल मच गयी। अन्याय समाप्त करने की उनकी घोर चिन्ता और 'यथास्थिति' को 'एन केन प्रकारेण' विनष्ट करने की उनकी तत्परता ने दीर्घकाल से उत्पीडित तथा उतावले लोगो के लिए साम्यवाद में नाटकीय आकर्षण पैदा कर दिया। उसके प्रभाव को बढाने के लिए लेनिन ने वायदा किया कि सोवियत समाजवादी गणतत्र के एक विश्व-सघ के सार्वभौमिक आधिपत्य के द्वारा युद्ध को समाप्त कर दिया जायगा। आशिक रूप से लेनिन साम्राज्य का एक प्राचीन विकल्प ही प्रस्तुत कर रहा था, जो अब एक नयी भ्रामक पोशाक मे था।

ये सारी बाते स्वयसिद्ध थी कि प्रस्तावित तनाशाही सर्वहाराओ की तानाशाही होगी, रूसी पार्टी के नियत्रण का अर्थ विश्व-क्रान्ति का राष्ट्रीय प्रभुत्व है, साम्राज्यवादी शक्ति भ्रष्ट कर देती है, हिसात्मक दबाव का मार्ग समझाने-बुझाने के सभी वायदो के विरुद्ध है और एक सर्वशक्तिमान स्वनिर्वाचित दलगत नौकरशाही, जिसके हाथ मे उत्पादन के साधन होगे, एक नया वर्ग बन जायेगी।

परन्तु समस्त विश्व में करोडो की सख्या मे क्लान्त जनता समाधान की खोज मे थी और एक आशा के लिए प्यासी थी। उसने केवल इतना ही देखा कि इतिहास मे प्रथम बार एक विश्व के विशालतम राष्ट्रीय क्षेत्र पर दृढतापूर्वक आधारित एक विश्वव्यापी राजनीतिक दल का जन्म हुआ है और इस दल ने मानवता की एक कठोरतम समस्या के समाधान की प्रतिज्ञा की है। चीन मे लेनिन की क्रान्ति के काफी बीज उगे, जिसके फलस्वरूप वहाँ एक राष्ट्रीय वर्ग के चेतन विद्रोह ने गृह-युद्ध का रूप धारण कर लिया, जिसमे साम्यवाद फिर विजयी हुआ।

साम्यवाद की निकट की परिधि के बाहर औपनिवेशिक, अर्धविकसित और विश्व के अधिकाश अश्वेत भाग के करोडो लोगो में हमने क्रान्ति के लिए कच्ची सामग्री देखी है। गाँधीवादी क्रान्ति का उद्देश्य भी स्पष्टत युद्ध और वर्ग

की इन दुहरी समस्याओ का अन्त करना था। गाँधी के लिए वर्ग-विनाश और शान्ति की सम्भावना के बीच स्पष्टत. सम्बध था। उन्होने कहा कि, हिसात्मक रक्तरजित क्रान्ति एक दिन अवश्य होगी, यदि स्वेच्छा से धन और सम्पत्ति का और उससे प्राप्त शक्ति का बटवारा सामान्य जनता के कल्याण के लिए नही कर दिया जाता।

इसका अर्थ है कि पश्चिमी सभ्यता के धरातल पर हमें एक क्रान्ति (रूसी क्रान्ति) के स्थान पर कम-से-कम तीन क्रान्तियो का सामना करना ह। उनमें से सभी, लेनिन, माओ और गाँधी की क्रान्तियो ने 'गरीबो के नगर' मे स्थान ग्रहण किया है और अच्छा या बुरा, प्रत्येक का जन्म अन्याय और यातना के विरुद्ध विद्रोह के प्राचीन और विश्वव्यापी सिद्धान्त से हुआ है। प्रभाव के किसी भी ज्ञात क्षेत्र के बाहर, आदिम भावनाएँ, जैसा कि केनिया मे माउमाउ द्वारा व्यक्त हुई है, उन उत्तेजनशील प्रवृत्तियो की ओर सकेत करती हैं, जो आज के अधिकाश विश्व की ऊपरी सतह मे दिखाई देती है।

स्थिरता को जबर्दस्त खतरे मे देख कर और इतनी अधिक असाधारणरूप से ध्वसात्मक शक्तियो का सामना करके आज बहुतेरे अमरीकी परिवर्त्तन के सभी प्रस्तावो को विदेशी और दुर्बोध्य कह कर उनकी निन्दा करते रहते है। परन्तु अपने ही इतिहास के परिणामो से हम आसानी से जान नही बचा सकते। हम यह देख चुके है कि जिन शक्तियो से हमे सघर्ष करना है, वे उत्तरी अटलाटिक राष्ट्रो और प्राय स्वय अमरीका द्वारा पैदा की गयी है।

पुनरुत्थान (रैनेसा) के दिनो मे पश्चिमी लोग विज्ञान और टैक्नालाजी का अन्ध अनुसरण करने और हर प्रकार के मानसिक और शारीरिक अत्याचार से आधुनिक मनुष्य को स्वतत्रता दिलाने के उद्देश्य से इसके फलो को लागू करने के लिए वचनबद्ध थे। इसी अभिवचन से आज के विश्व का जन्म हुआ, जिसके लोग, जहाँ कही भी उन्हें सुना जा सकता है, किसी हद तक हमारी ही भाँति आर्थिक और राजनीतिक अधिकारो की माँग कर रहे है और व्यापक अर्थ में वर्ग और युद्ध के अन्त की माँग कर रहे है।

आज गरीबो और अमीरो, दोनो के नगर एक-दूसरे के मुकाबले खडे होकर वर्ग और युद्ध की विश्वव्यापी समस्याओ को बढ़ा रहे है। पश्चिम मे उद्भूत साम्यवाद आज दोनो नगरो को हिंसात्मक क्रान्ति द्वार मिला देना चाहता है। पश्चिम ने स्वय प्रयोगात्मक विकल्प सुझाय है। १९४४ मे हमने शान्ति की स्थापना के लिए ऐच्छिक सघ के रूप मे सयुक्त राष्ट्र संघ का सुझाव रखा था।

१९४८ से हमने युद्ध को निरुत्साहित करने के उद्देश्य से सैनिक मित्रो का एक गुट और सैनिक अड्डे बनाने का कार्य किया है। सयुक्त राष्ट्र सघ की विशिष्ट समितियाँ—चतुर्थ सहायता (Point Four Assistance) और कोलम्बो-योजना का उपयोग आर्थिक खाई को पाटने के लिए किया गया है। परन्तु साधारणत वर्ग की समस्या पर हमने अधिकतर अपने दायित्वो का परित्याग किया है और अपने विरोधियो के लिए मैदान खाली छोड दिया है। ऐसा क्यो हुआ ?

जसा कि हम देख चुके है, अमरीकी क्रान्ति ने वर्ग-समस्या पर भी अपना प्रहार जारी रखा। अमरीका मे ऐसे प्रवक्ताओ का भी अभाव नही था, जिन्होने अपने समाधान को सार्वभौमिक औषध के रूप में घोषित किया। परन्तु साम्यवाद की तुलना मे अमरीकी नुस्खा कम स्पष्ट और कम सिद्धान्तवादी और परिस्थितियो के अनुसार अधिक व्यावहारिक ढग का रहा है।

इसके द्वारा हमने अमरीका मे विश्व के अभूतपूर्व गतिशील समाज की रचना की है, जिसमे, हममे से अधिकाश के लिए, वर्गगत भेदभाव और बहुत अमीर और बहुत गरीब के बीच मे यत्र-तत्र असमानता का प्राय खात्मा हो चुका है। फिर भी, जिस प्रयोगात्मक गुण ने हमारे प्रयत्नो को सफलता प्रदान की, उसी ने सैद्धान्तिक स्पर्द्धा मे, जहाँ लोग स्पष्ट उत्तर और शीघ्र परिणाम चाहते है, अडचने पैदा कर दी है।

कूटनीतिक वादविवादो मे इस स्पर्द्धा की गति तीव्र हो जाती है, जो कभी आशाप्रद और कभी घातक बन कर चली जा रही है। अमरीका, रूस, चीन, भारत और शेष मध्यवर्ती ससार, सभी से कभी-कभी ऐसी ध्वनि सुनायी पड़ती है, मानो यह शताब्दी उनमे से किसी एक के लिए ही सुरक्षित है। फिर भी, उनमे से कुछ को भविष्य की सम्भावनाएँ कितनी ही नापसन्द क्यो न हो, अब यह दिखाई देने लग गया है कि उनमे से सभी को दिखाई देनेवाले भविष्य के रगमंच पर एक साथ कार्य करने के लिए विवश होना पडेगा। यह भी प्रकट होने लगा है कि यदि विश्व प्रत्येक के लिए सह्य नही बन जाता, तो अन्ततोगत्वा वह सभी के लिए असह्य हो सकता है।

क्या इसका अर्थ है सह-अस्तित्व ? हाँ, परन्तु 'सह-अस्तित्व' भ्रामक शब्द है, जिसका भ्रमपूर्ण अर्थ निष्क्रियता भी हो सकता है। मास्को और पेकिंग, जहाँ कहीं भी हो सकेगा, निश्चित ही युद्ध और वर्ग की समस्याओ पर कार्य करते रहेगे—यदि सम्प्रति कम-से-कम हथियार नही चमकायेंगे, तो बहुतों को

असैनिक अस्त्र प्रदान करेगे, जो स्तालिनवादी युग के बाद अधिकाधिक काम मे लाये जा रहे है– नये विचार, नये वायदे, नये शान्ति-प्रस्ताव, नये आर्थिक कार्यक्रम, नये सास्कृतिक प्रयास, नयी राजनीतिक नीतिया और कूटनीतिक मोर्चे पर आकर्षक नये दृष्टिकोण।

मध्यवर्ती ससार के राष्ट्रो से, यही आशा की जा सकती है कि वे अधिकतर सशक, अपनी समस्याओ मे उलझे हुए, दायित्वो का वहन करने के अनिच्छुक, दो अणु-दैत्यो के बीच समझौतापूर्ण मार्ग नही, तो मध्यमार्ग का अनुसरण करने के लिए अधिकतर तैयार, और स्वतत्र होने, जाति और वर्ण-भेद के बिना पूर्ण सम्मान प्राप्त करने और अपने लोगो के लिए सुन्दर जीवन का निर्माण करने के लिए कृतसकल्प रहेगे।

हमारी क्रान्तिकारी गुथी हुई दुनिया में, जो आज युद्ध और वर्ग की प्राचीन एव भाग्यनिर्णायक समस्याओ से अभूतपूर्व ढग से प्रताडित है, कोई भी एक अकेला प्रश्न उतना अधिक मौलिक नही है, जितना कि इस विश्वव्यापी जटिल चुनौती का सामना करने के अमरीकी सामर्थ्य का है।

तैंतीसवाँ प्रकरण

अमरीकी विश्व-शांति ?

हमारे समक्ष विकल्प क्या है ? चूंकि पृथकता बिलकुल असम्भव है, क्या हम दूसरे छोर पर जा सकते हैं और प्राचीन रोम का अनुसरण कर सकतें है ? ससार मे शान्ति-स्थापना के लिए और आर्थिक यथातथ्यता को कायम रखने के लिए हम अपनी विशाल आर्थिक और सैन्य-शक्ति का प्रयोग क्यो न करे ? सब के लाभ के लिए एक नये प्रकार के अमरीकी साम्राज्य की स्थापना क्यो न की जाय ?

ऐसा करने का सचमुच अर्थ होगा, 'शासित की अनुमति से शासन' के उस मौलिक विचार का परित्याग, जिसने अमरीका को महान बनाया है। परन्तु 'रियल पोलीटिक' (Realpolitik) के पक्षपाती इसको समाधान के रूप मे स्वीकार नही करेगे। यदि हमे उन्हे सन्तुष्ट करना है, तो हमे ठण्डे दिमाग से अपने-आप से पूछना चाहिए कि क्या ऐसा साम्राज्यवादी हल व्यावहारिक है ?

प्रमुख समस्याएँ स्पष्ट ही है। साम्राज्य का अर्थ है शक्ति का प्रयोग या धमकी। प्रत्येक महाद्वीप मे उमडने वाली राष्ट्रवादी वर्ग-क्रान्तियो को दबा देने के लिए क्या हमारे पास सैनिक साधन है ? क्या रोम जैसी शान्ति स्थापित करने के लिए हमारे पास साधन है? चूंकि दोनो पक्षो के पास आणविक अस्त्र और उनके चलाने के साधन है, इसलिए हमे मुख्य व्यावहारिक प्रश्न का सामना करना है। क्या युद्ध एक 'रोम' मे प्रतिफलित होगा अथवा दो 'कार्थेजो' मे ?

आणविक युद्ध के अनुमानित प्रभावो ने दोहरे 'कार्थेजी प्रेत' को और भी अधिक सभव बना दिया है। 'मेगाटन' अस्त्रो के स्थल के निकट विस्फोट (एक मेगाटन बराबर है, १० लाख टी एन टी) न केवल धडाका और गर्मी पैदा करता है, बल्कि सभी प्रकार की करोडो टन धूल और मलवे को ८० हजार फुट या इससे भी ऊपर हवा मे फेक देता है। १९५४ के वसन्त मे प्रशान्त महासागर मे उद्‌जन बम की की गयी परीक्षा मे, आणविक शक्ति आयोग द्वारा दिये गये एक सरकारी वक्तव्य के अनुसार, न्यू जेर्सी के समान बडा सात हजार वर्गमील क्षेत्र घातक "रेडियो चेतन" धूल से ढक गया था। इन सम्भावनाओ से परिचित लोग यह महसूस करते है कि उनको नरक-कुण्ड मे बैठा दिया गया है।

सोवियत सामर्थ्य के अनुमान अथवा वर्तमान जानकारी पर आधारित, सघीय नागरिक प्रतिरक्षा प्रशासन (फेडेरल सिविल डिफेन्स एडमिन्स्ट्रेशन) की मान्यताओ मे निम्नलिखित बाते शामिल है सयुक्तराज्य के किसी भी नगर पर आक्रमण करने की सामर्थ्य रूस मे है और यदि आक्रमण हुआ ही तो इसमे न्यैष्टिक (Nuclear) अस्त्र होगे, जिनमे ऊष्मान्यैष्टिक (Thermonuclear) अस्त्र भी शामिल होगे। ये अस्त्र वायुमार्ग से भेजे जायेगे, साधारण काम के समय जमीन पर इनका विस्फोट होगा और शत्रु अधिक विस्फोटक और दाहक बमो, रासायनिक और कीटाणु-अस्त्रो, तोड-फोड और मनोवैज्ञानिक युद्ध का प्रयोग भी करेगा, जिनमे अमरीकी रेडियो-केन्द्रो पर गुप्त रेडियो-प्रसारणो से अस्तव्यस्तता पैदा करना भी शामिल है।

नागरिक प्रतिरक्षा प्रशासक (सिविल डिफैन्स एडमिन्स्ट्रेटर) वाल पीटर्सन ने अमरीकी लोगो को सलाह दी है कि, युद्ध की अवस्था मे केवल तीन विकल्प है "खोदो, मरो या निकल जाओ।" १५ जून, १९५५ को उनके नागरिक प्रतिरक्षा प्रशासन ने आक्रमण काल मे हमारी कार्यदक्षता की राष्ट्र-व्यापी परीक्षा के रूप मे "युद्ध की चेतावनी" का प्रदर्शन किया।

यह माना गया कि अमरीका के ६१ प्रमुख नगरो पर एक ही साथ न्यैष्टिक (Nuclear) और ऊष्मा न्यैष्टिक (Thermonuclear) बमो से आक्रमण किया गया है, जिनकी शक्ति बीस हजार टन 'टी एन टी' से लेकर ५० लाख टन तक थी। ६१ नगरो में से प्रत्येक की औद्योगिक क्षमता पूर्णतया नष्ट हो गयी और ढाई करोड लोग बेघरबार हो गये। न्यूयार्क मे २९ लाख लोग, जिनमे नगर के स्कूलो के बच्चो की आधी सख्या भी शामिल है, मारे गये। फिलाडेलफिया मे मृतको की सख्या ७,४०,००० और लास ऐन्जिल्स में ५,८४,००० थी। न्यू इग्लैण्ड में कुल, लगभग ६० लाख लोग हताहत हुए।

नगर खाली करने के परीक्षण ने यह दिखा दिया कि देश का कोई भी शहर या कस्बा अपने निवासियो को हटाने के लिए तैयार नही था। विस्थापितो के परिवहन, भोजन और उपचार की व्यापक आयोजना प्रारम्भ ही हुई थी। सघीय और राजकीय अधिकारियो के बीच और नागरिक और सैनिक समितियो के बीच अधिकार-क्षेत्र की चढा-ऊपरी ने दायित्वो को पगु और अस्पष्ट बना दिया।

नागरिक प्रतिरक्षा प्रशासन का, जिसके पास कर्मचारियो और धन की कमी थी, आद्योगिक विसर्जन, नगरपालिका के सुरक्षागृहो और आश्रय के हेतु

घरो के तहखानो की अपील का कोई असर नही पडा।

इसके अतिरिक्त, आलोचको ने इस ओर भी सकेत किया कि 'युद्ध की चेतावनी' ने उस क्षति को किसी भी हालत मे पूर्ण रूप से परिलक्षित नही किया, जो सचमुच हमारे नगरो मे वास्तविक आक्रमण के समय होगी। जिन बमो के गिराये जाने की कल्पना की गयी थी, उनके सम्बध मे कहा गया कि "वे अपेक्षाकृत पुराने ढग के और कम शक्ति वाले थे।" मार्च, १९५४ में बिकिनी के परीक्षण का धडाका दो करोड टन टी एन टी के बराबर था, जो 'युद्ध की चेतावनी' मे सोचे गये भारी से भारी बम से चार गुना अधिक शक्तिशाली था।

साथ ही साथ, जबकि पत्रकार मानवीय उत्पत्ति पर एकत्रित विकीरण के अनिश्चित प्रभाव के बारे मे अटकले लगाते आ रहे है, वैज्ञानिक मोर्चे के अनुमान प्रत्यक्ष मानवीय विनाश की सभावनाओं को बढाते जा रहे है। जून, १९५५ मे, आणविक शक्ति आयोग के सदस्य, डाक्टर विलर्ड एफ लिबी ने यह सकेत किया कि अब किसी भी आकार के उद्जन बम का निर्माण सस्ते-से-सस्ते आणविक विस्फोटको से हो सकता है। डाक्टर लिबी ने भौतिक विज्ञानशास्त्रियो को बताया कि उद्जन बम सघटन की अपेक्षा विघटन से शक्ति विकीर्ण करते है, जिनमें साधारण, सस्ता २३८ यूरेनियम मुख्य विस्फोटक तत्व है।

इस प्रकटीकरण का असाधारण महत्व यह था कि साधारण अणुबमो का निर्माण करने मे समर्थ कोई देश कुछ और प्रयत्नो से मेगाटन कोटि के महान अस्त्रो का भी निर्माण कर सकता है, क्योकि २३८ यूरेनियम की अपेक्षाकृत सरलता और सस्तेपन के कारण ये अस्त्र किसी भी आकार मे बनाये जा सकते है। अणु-धूलि दिनो, सप्ताहो या महीनो तक कायम रह सकती है और उस बम के विरुद्ध, जो १,००,००० वर्गमील क्षेत्र का विध्वश कर सकता है, जो न्यूयार्क के क्षेत्र का दुगुना है, कोई वास्तविक प्रतिरक्षा नही हो सकती।

समुद्रपार से सम्भाव्य विनाश की ऐसी भविष्यवाणियाँ अमरीकी विचार-धारा के लिए इतनी नयी है कि, कोई आश्चर्य नही कि स्पष्ट सरकारी नीति और नेतृत्व के अभाव में, अमरीकी जनता या तो उदासीनता की ओर या नियति-वाद की ओर प्रवृत्त हो जाय। तथापि नये रोम के रूप मे अपने अस्त्रो के बल पर अपनी इच्छा को विश्व पर लादने के अमरीकी विचार ने कभी-कभी कतिपय तथाकथित "यथार्थवादी" लोगो के मन को ऐसा मोहित कर लिया है

कि जनेवा का जलवायु भी उसे समाप्त नही कर सकता।

अधिकतर प्रवक्ता भूतपूर्व कट्टर पृथकतावादी रहे है, जो शीत युद्ध को जारी रखने के अनिश्चय और खतरो से ऊबे हुए से थे। उन्होने हमारी आर्थिक और सैनिक उच्चता के क्रमिक ह्रास की सूचक, कतिपय प्रवृत्तियो की ओर भय के साथ सकेत किया है। उन्होने मान लिया है कि सोवियत अर्थ-व्यवस्था हमसे भी अधिक तीव्र गति से अग्रसर हो रही है और अन्त में वह हमारे उत्पादन-स्तर तक पहुँच सकती है।

तटस्थता के विकास से, साम्यवादी देशो के साथ व्यापार की व्यावसायिक अपील से और विदेशो मे एक रूसी चतुर्थ सूत्र की कार्रवाई की सभावनाओ से उन्हे निराश होना पडा है। उन्होने नेहरू के किसी एक पक्ष को स्वीकार करने की अनिच्छा पर अपने को निर्भर कर लिया है और यह भविष्यवाणी की है कि दक्षिण और दक्षिण पूर्व एशिया चीनी अथवा रूसी प्रभुत्व के अन्तर्गत सरक जायेगे। हमारे बजट-सन्तुलन के प्रयास और अधिक स्थानीय युद्धो की सभावना, दोनो से थक कर, उन्होने स्वय अपने आप कोई मार्ग न पाकर प्रबल "वाग्नेरी" उत्पात प्रारम्भ कर दिया।

इन पराजयवादी अल्पसख्यको मे से अधिकाश ने यह समझ लिया है कि अमरीकी जनता को सार्वजनिक और जागरूक कार्य के रूप मे अवरोधक युद्ध मे नही ले जाया जा सकता। उनके अनुरोध और भी सूक्ष्म है। सभी सम्भव बहानो का सहारा लेने, छोटी-छोटी घटनाओ को विराट रूप देने और हमको ऐसी स्थितियो मे डाल देने का पक्ष ग्रहण किया है, जहाँ पूर्ण युद्ध अनिवार्य हो जायगा।

विभिन्न कारणो से 'निवारक युद्ध' का यह सिद्धान्त, किसी भी रूप मे, लापर-वाही से पूर्ण और अव्यावहारिक है। आज का कठोरतम तथ्य यह है कि ससार की समस्याओ का, यहाँ तक कि बडी और क्रूर समस्याओ का भी, कोई एक और शीघ्रगामी समाधान नही प्राप्त हो सकता। सोवियत प्रतिकार लगभग उतना ही गम्भीर हो सकता है, जितना प्रारम्भिक रूप मे मास्को से हुआ था, और हमारे प्रतिरोधी उस अमरीका से बदला लेगे, जिससे अधिकाश मानव समाज ने अपनी पीठ फेर ली है। ऐसी स्थिति का अवरोधक क्या हो सकता है ? यह कौन से सम्भव उपयोगी राजनीतिक उद्देश्यो की पूर्ति कर सकेगा ? आणविक बम के आक्रमण से विनष्ट रूस या चीन से, नवीन नृशसता से स्तम्भित योरोप और एशिया से और अशोभनीय अपराध मे निमग्न सयुक्त राज्य अमरीका

से क्या निकल सकता है ? नये रोम के शासन के लिए कुछ भी शेष नही रह जायगा और विश्व-सम्मान के अपने समस्त अधिकार से हमे हाथ धोना पडेगा।

× × ×

यदि 'निवारक युद्ध' से उत्पन्न एक अमरीकी 'रोम' का प्रश्न नही उठता, तो उस 'रोम' का क्या भविष्य होगा, जो कम नाटकीय ढग से उपलब्ध होगा ? यदि हम जानबूझ कर अमरीकी साम्राज्य के विचार का विरोध करे भी तो क्या हम इससे वचने का उपाय जानते है ?

साम्राज्य कभी-कभी 'टोप्सी' की भाँति विकसित हो जाते है। विभाजित विश्व मे, जहाँ अमरीका अपने गुट का प्रधान है और अपार अस्त्रो तथा अधिकाश उद्योग और सम्पत्ति पर अधिकार किये हुए है, निर्णय के लिए वाशिगटन की ओर आकृष्ट होना असम्भव नही होगा। हममे 'अकेले चलने की' कठोरता उत्पन्न हो सकती है, जिससे हमारे साथी धीरे-धीरे पिछलग्गुओ की कोटि मे आ जाने के लिए विवश हो सकते है।

जो यह मानते है कि अमरीका अपनी शक्ति के कारण ही अपने आप करोड़ो गैर-अमरीकियो के भविष्य को प्रभावित करने वाले एकतरफा अणु-निर्णय का अधिकारी है, उन्हे हमारे साथियो के इस आग्रह पर चकित नही होना चाहिए कि 'बिना प्रतिनिधित्व के विनाश नही होना चाहिए'। शीत युद्ध शान्त हो जाने पर उनकी स्वतत्रता बढ जायगी।

हमारे प्रमुख साथी, ब्रिटेन की भावनाएँ इस सम्बध मे विचारणीय है। यद्यपि ब्रिटेन मे अमरीकीवाद का विरोध उतना अधिक और कठोर नही है, जितना योरोप मे है, फिर भी यह काफी दूर-दूर तक फैला हुआ है। ब्रिटेन-जैसे दीर्घकालीन सत्ता के आदी राष्ट्र के लिए कोई ऐसा मार्ग नही है जिससे वह ससार के मामलो मे एक बिल्कुल नये आगन्तुक के साथ कनिष्ठ साझीदार होने की बात पसन्द कर सके।

कभी-कभी प्रतिक्रिया अमरीकियो पर तीखे ताने मारती रही है, जैसे लन्दन मे कूटनीतिक स्वागत के समय पर कटीले आक्षेप किये गये थे कि अमरीका शीघ्र ही केवल पुराना ब्रिटिश उपनिवेश बन जायेगा, जिसको अभी स्वायत्त शासन भी प्राप्त नही हुआ है।

फिर भी, हमे याद रखना चाहिए कि इस टिप्पणी का लेखक, बहुत सम्भव है कि ब्रिटिश परराष्ट्र विभाग मे कार्य प्राप्त करने मे सफल उस उम्मीदवार से सहमत हो जाय, जिसने विश्व की तीन महत्वपूर्ण चीजो के बारे मे पूछे जाने पर

सूचित किया था, "ईश्वर, प्रेम और ऐंग्लो-अमरीकी सम्बध"। ऊपरी मतभेद प्राय. सामान्य भाग्य की इस प्रच्छन्न एकरूपता को छिपाते है, जिसने भूतकालीन सकटो मे हमे सफल बनाया है।

इतना होते हुए भी, ऊपरी लक्षण अभी भी दिखाई देने योग्य है, और वे हमारी प्रतिक्रियाओ को बिना किसी अनुपात के प्रभावित करते है। यदि नैपोलियन ने यह सोचा था कि एक विभिन्न मित्रता का सामना करने से उसकी आधी समस्याओ का हल हो गया, तो समय-समय पर क्रेमलिन भी प्राय ऐसा सोच सकता है।

फिर भी, पिछलग्गुओ के स्थान पर साथियो का रखना वैसा ही गुण है जैसा कि सैनिक प्रवृत्ति के स्थान पर प्रजातत्र का रखना । कार्यकुशलता में जिसका ह्रास हो जाता है, वह समान उद्देश्यो, किन्तु विभिन्न दृष्टिकोणो के व्यक्तियो में स्वतत्र आदान-प्रदान से जो कुछ प्राप्त होता है, उससे अधिक होता है। समझौते और सौमनस्य की पद्धति सम्भव है अधिक उपयुक्त समाधान प्रस्तुत कर सके, क्योकि इस सम्बध मे अधिक व्यापक प्रचार हो चुका है। इसके अलावा स्वीकृत समाधान सम्भवत समर्थन का भी दावा कर सकते है, क्योकि ये सम्बधित लोगो के सच्चे स्वार्थों के लिए और भी अधिक व्यवस्था करते है और उसमे भाग लेने वाले जानते है कि उन्हे अपनी बात रखने का मौका मिल चुका है।

मित्रताएँ वस्तुत: विवेक, धैर्य, निष्ठा और राजनीतिज्ञो के अच्छे स्वभाव पर और विशेषकर उन लोगो के स्वभाव पर, जिनका वे प्रतिनिधित्व करते है, अधिक निर्भर करती है। ऐसी मानसिक स्थिति, जो ऐसे गुणो से थक जाती है, प्राय अचानक और मौलिक समाधानो को प्राप्त कर लेती है।

इसी मानसिक स्थिति ने प्राय. हमारे बीच उग्रवादियो को पुराने पृथकतावादियो का उत्तराधिकारी बना दिया। दोनो हमारे 'अकेले चलने की' सामर्थ्य को बढा-चढा कर कहते है। दोनो ही 'विदेशियो' से त्रस्त और आशकित है। दोनो ही प्राय अन्य राष्ट्रो के साथ सम्मिलित प्रयत्नो और परामर्श की आवश्यकता और मूल्य से अनभिज्ञ है।

निवारक युद्ध और एकतरफा नवीन साम्राज्यवाद के कम आक्रमणकारी रूप के जागरूक पक्षपाती लोगो के पक्ष मे जो एक बात है, वह है एक शक्तिशाली और स्पष्ट स्थिति का स्वत आश्वासन । फिर भी, निकट से देखने से यह विदित होता है कि उनका आश्वासन निषेधात्मक और

निराशापूर्ण है।

साहसपूर्ण खतरो के उठाये जाने, आज्ञाओ के दिये जाने और युद्ध के अन्तिम परीक्षण को स्वीकार करने की कठोर इच्छा के वातावरण के बावजूद, इसके अन्तर मे ज्ञानतन्तु की वह खोखली असफलता है, जो दुष्टो की परिचायक है। अन्तिम विश्लेषण मे इस तरीके से साम्राज्य भी नही जीते गये, उस स्वतत्र विश्व की प्राप्ति की बात तो दूर रही, जिसमे स्त्री और पुरुष साहसपूर्ण और रचनात्मक ढग से रह सकते है।

उस प्रकार का विश्व हमसे एक जुआरी के पासे की अपेक्षा अधिक स्थिर सकल्प और हमारे सभी साधन-स्रोतो के उच्चतर सगठन की अपेक्षा रखता है। वह सचमुच सैन्य-सन्तुलन को कायम रखने की भी अपेक्षा रखता है; परन्तु उसे सशस्त्र सेना के सीमित योग की जानकारी की कम अपेक्षा नही है।

हमारे कूटनीतिक और आर्थिक साधनो का अवश्य ही पूर्ण रूप से प्रयोग होना चाहिए। सब से अधिक महत्वपूर्ण बात यह है कि हमारे पर्याप्त नैतिक साधनो के प्रयोग, जिन्हे हम जारी अमरीकी क्रान्ति की उपज और प्रेरणा दोनो के रूप मे देख चुके है, पहले से अधिक बडे पैमाने पर होने चाहिएँ।

हमारे समक्ष जो चुनौती है, उसका सामना करने के लिए जब हम नीतियो के निर्माण का प्रयास करेंगे, तब इन्ही समस्याओ से हमे उलझना पडेगा।

आठवाँ भाग

क्रान्ति–जगत मे अमरीकी नीति

आज के तूफानी युग के लिए शान्त अतीत के सिद्धान्त अपर्याप्त है। यह अवसर काफी कठिनाइयो से भरा हुआ है और हमको उसके अनुसार ही ऊपर उठना चाहिए। चूकि हमारा मामला नया है, इसलिए हमको नये सिरे से सोचना और कार्य करना चाहिए। हमे अपने आपको दासता से बचाना चाहिए और तभी हम अपने देश को बचा सकते है।

अब्राहम लिंकन

चौंतीसवाँ प्रकरण

सैन्य-शक्ति के उपयोग एवं सीमाएँ

युद्ध के बाद दो प्रशासनो मे मुख्यत हमारी कूटनीति कम्यूनिज्म को, उसके विस्तारशील सोवियत और चीनी रूपो मे विशाल रूस और चीनी सीमा के चारो ओर 'शक्ति की स्थितियाँ' उत्पन्न करके, रोक रखने की रही है। चूकि सैन्य-शक्ति को हमारे कूटनीतिज्ञ शक्ति का प्राथमिक साधन मानते आये है, (इस मान्यता पर हम बाद मे विचार करेंगे), इसलिए हमे अपनी सैनिक कूटनीति पर, क्रान्तिकारी विश्व की दृष्टि से, जिसका हम सर्वेक्षण कर चुके है, विचार कर लेना चाहिए।

पिछले दशक मे हमारी सैन्य-शक्ति को दो बिलकुल भिन्न कार्य सौपे गये थे — (१) साम्यवादियो को किसी भी ऐसे आक्रमण से रोक रखना, जो तत्काल विश्वव्यापी सघर्ष पैदा कर सकता है, जैसे पश्चिमी योरोप पर आक्रमण अथवा सयुक्त राज्य अमरीका पर आणविक आक्रमण, (२) कोरिया की भाँति स्थानीय कार्यो को सँभालना, जहाँ साम्यवादी शक्तियाँ परम्परागत रूप से अस्त्रो से सुसज्जित है। युद्धोपरान्त १९४५ से १९५५ तक के दशक मे हमारी सशस्त्र सेनाओ ने इन दो कार्यो को कितनी अच्छी तरह निभाया है, उस पर विचार करने से हम आनेवाले क्रान्तिकारी दशक मे सैन्य-शक्ति के उचित कार्य और उसकी व्यावहारिक कठिनाइयो को ठीक से समझ सकेंगे।

पूर्ण युद्ध को रोक रखने के प्रथम कार्य के लिए हमने मुख्यत वायु सेना पर भरोसा किया है, जो विनाशकारी आणविक शक्ति के साथ किसी भी बडे आक्रमण का मुकाबला करने के लिए तैयार की गयी है।

यहाँ और सोवियत रूस, दोनो ही स्थानो मे, आणविक अस्त्रो के विकास की सफलता ने ही सम्पूर्ण सैनिक परिस्थिति मे विचित्र रूप से अपने कार्य को सीमित कर दिया है। जितने ही ये शक्तिशाली अस्त्र बढते जाते है, उतने ही सम्भाव्य परिणाम विनाशकारी होते जा रहे है और उतना ही उन अवसरो की सम्भावना भी कम होती जा रही है, जब कि हम उसका प्रयोग करने के लिए तैयार रहेगे और विश्वव्यापी आणविक युद्ध का खतरा मोल लेगे।

विश्वव्यापी नीति के रूप मे इस खतरनाक स्थिति ने पहले ही 'सामूहिक प्रतिशोध' को समाप्त कर दिया है। इस मान्यता पर कि इससे अमरीकी स्थल

सेना का प्रयोग नही करना पडेगा, जनवरी १९५४ मे बडी धूमधाम से प्रारम्भ की गयी नीति को जब व्यापक रूप से लागू किया गया, तो वह चार महीने बाद हिन्दचीन मे अपनी व्यावहारिकता की प्रथम परीक्षा मे असफल रही।

वास्तव मे 'सामुहिक प्रतिशोध' की धारणा, दोनो कार्यों, सामान्य युद्ध के निरोध और स्थानीय आक्रमणो के प्रतिकार को, महत्वपूर्ण हवाई कमान के हाथो मे सौपने का प्रयास था। समस्त विश्व मे लागू करने पर इस धारणा का हेत्वाभास निश्चितरूप से उस समय प्रकट हो गया, जब एशिया मे एक स्थानीय युद्ध-स्थिति मे उसका परीक्षण हुआ।

स्पष्टत पूर्ण आणविक युद्ध सचमुच युद्ध का ऐसा आदर्श नही है कि जिसे हमें जानबूझ कर स्थापित करने का प्रयत्न करना चाहिए अथवा किसी अन्य से सघर्ष करने की अपनी असमर्थता के कारण उसे अनिवार्य बनाना चाहिए। तथापि हमारे अनेक साथियो के लिए 'सामूहिक प्रतिशोध' के प्रस्तावित सिद्धान्त का बिलकुल सही अर्थ यह है कि, एक विशाल और अन्तिम युद्ध के अतिरिक्त अब ओर अधिक युद्ध नही होगें।

योरोप मे वस्तुत- अणु-शक्ति के विशाल प्रयोग पर आधारित ऐसी नीति न तो नयी थी और न अपरीक्षित। १९४६ मे अव्यवस्थित सैन्य विघटन के समय से १९५० मे 'नाटो' के निर्माण तक, अटलाटिक और एल्ब के बीच की शक्ति रिक्तता की पूर्ति के लिए लाल सेना के प्रयास को रोकने का एकमात्र सैनिक साधन आणविक बमो के अपने एकाधिकार के द्वारा रूसी नगरो को विनष्ट करने की हमारी सामर्थ्य थी।

रूस निस्सन्देह जानता था और अब भी जानता है कि योरोप पर आक्रमण हम अपने ऊपर आक्रमण समझेगे और ऐसे आक्रमण के प्रत्युत्तर मे हम तत्काल आणविक आक्रमण न केवल उसकी सेनाओ पर, बल्कि उसके नगरो पर भी शुरू कर देगे, भले ही इस प्रकार शुरू होने वाला युद्ध हमारे देश मे ही क्यो न व्यापक आणविक विनाश प्रारम्भ कर दे। वस्तुत 'नाटो' की स्थिति को अनेक मौको पर बताया जा चुका है। उदाहरण के लिए २१ अक्तूबर, १९५४, को फील्ड मार्शल माण्टगोमरी ने कहा था, "मै इसे एक दम स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि हम अपनी प्रतिरक्षा के लिए ऊष्मान्यैष्टिक। (Thermonuclear) तथा आणविक अस्त्रो के प्रयोग के लिए पूर्ण आयोजनाएँ कर रहे हैं। आक्रमण होने पर इन अस्त्रो का प्रयोग किया जायगा।"

परन्तु क्या अमरीका एशिया मे या यो कहिए अफगानिस्तान, बर्मा, ईरान,

हिन्दचीन में स्थानीय आक्रमणो का सामना करने के लिए उन्ही भयानक खतरो को उठाने के लिए तैयार है ? कोरिया मे युद्ध के प्रसार के प्रति और हिंदचीन मे उससे भी कम उलझने की सँभावना के प्रति हमारी गहरी प्रतिक्रिया से यह स्पष्ट जान पडता है कि हम लोग ऐसा नही करेगे।

योरोप और एशिया मे हमने जो वचन दिये है, उनके मौलिक भेद से रूसी और चीनी भलीभाँति परिचित है। यदि पर्याप्त नि शस्त्रीकरण-सरक्षणो के अभाव मे, एशिया में हम प्रतिकार के ऐसे तरीके पर विशेष रूप से भरोसा रखते है, जिसमे अस्वीकार्य खतरे भी हैं, और साथ-ही-साथ और अधिक सीमित स्थानीय उत्तरो के लिए अपनी क्षमता को घटाते है, तो हम एशिया मे स्थानीय आक्रमण को रोकने के बजाय उसे और आमत्रित करेगे।

ऐसे आक्रमण की स्थिति मे भी यदि हम सचमुच एक व्यापक युद्ध के निश्चिय के साथ आणविक आक्रमणो के लिए तैयार हैं, तो एक सकीर्ण आणविक नीति से, कम्यूनिस्ट हमारी तत्परता के बारे मे गलत अनुमान लगा सकते है। दूसरी ओर यदि कम्यूनिस्ट यह अनुमान लगाते है कि हम किसी छोटे एशियाई आक्रमण पर महायुद्ध का खतरा मोल नही लेगे और वे हमारे छल का भण्डा-फोड करने मे एक बार सफल हो जाते है, जैसा कि वे हिन्दचीन मे कर चुके है , तो क्या हमारी नीति का अधिकाश विरोधात्मक मूल्य क्षणभर में ही विलीन नही हो जाता ?

इन प्रश्नो मे यह मान लिया गया है कि रूस के नगरो की भाँति, मुख्य चीनी नगरो पर अमरीकी सामरिक महत्व की आणविक बमवर्षा तृतीय विश्व-युद्ध मे प्रतिफलित हो जायेगी। परन्तु मान लीजिये कि किन्ही कारणो से चीनी नगरो पर अमरीकी प्रतिकारात्मक आक्रमण के बाद, मास्को सोवियत-चीनी मित्रता के अन्तर्गत दिये गये अपने वचनो की उपेक्षा कर युद्ध नही करता है और चीन को आणविक बम और बम-वर्षक यान देने का अगला कदम भी नही उठाता, तो हमारे आणविक आक्रमण से विस्तृत और विकेन्द्रीकृत चीन को कितना आघात होगा ?

सोवियत सघ की तरह चीन में कोई विशाल औद्योगिक केन्द्र नही है। चीनी अर्थव्यवस्था सुव्यवस्थित परिवहन और सचार-साधनो के जाल पर अवलम्बित नही है। चीनी सेनाएँ गतिशील है, गुरिल्ला युद्ध प्रणाली में और अपनी धरती से परे अपनी सुरक्षा के लिए शिक्षित है तथा 'नाटो' की सेनाओ की भाँति व्यापक सभरण और समर्थन पर कार्य नही करती। इस प्रकार

चीनी नगरो का आणविक बमो से विनाश का कार्यक्रम एक लम्बे, कठिन और अनिर्णायक सघर्ष मे फँसा देगा, जिसमे चीन की प्रमुख निधि, अपार मानव शक्ति, सभवत एशिया के अधिकाश महाद्वीप पर कब्जा कर सकती है।

और इससे बडी अन्य कोई समस्या क्या वस्तुत मौलिक नैतिक समस्या नही है, जो विशाल प्रतिकार की व्यापक रूप से लागू की गयी नीति मे समाविष्ट है, और जिसको हमे आँखे खोल कर ईमानदारी के साथ सुलझाने का प्रयत्न करना चाहिए ? हम धार्मिक आस्था के लोग है और विश्वास करते हैं कि मनुष्य ईश्वर के लिए एक पवित्र वस्तु है। हम व्यक्ति के अतिम मूल्य की अपनी प्रजातात्रिक आस्था पर गर्व करते है। ये ही विश्वास हमारी जीवन-प्रणाली को साम्यवादी जीवन से पृथक करते है। फिर भी, यदि हम चीनी नगरो पर बम गिराने की धमकी दे, तो उसका अर्थ होगा कि हम उन नगरो के करोडो चीनी पुरुषो, स्त्रियो और बच्चो को विनष्ट कर देना चाहते है, जो सोवियत सघ से बिल्कुल भिन्न, उचित औद्योगिक और सैनिक लक्ष्यो से वचित है। क्या हम शासको को दण्ड देने के उद्देश्य से इन निस्सहाय लोगो की हत्या के भयानक कार्य को करने के लिए तैयार है ?

योरोप मे भी, जहाँ लोग सोवियत आक्रमण के खतरे को हमारी ही तरह स्पष्टत देख सकते थे, प्राथमिक निरोधक के रूप मे, विशाल आणविक प्रतिकार की आवश्यकता ने हमारी मित्रता पर भारी दबाव डाला है। प्राय कहा गया है कि प्रजातत्र अन्तिम युद्ध के अतिरिक्त सभी युद्धो मे हार जाता है। भविष्य के युद्ध मे, उसमें शायद ही कुछ आराम रहेगा।

यदि नि शस्त्रीकरण के प्रयत्न निष्फल होते है और अन्त मे युद्ध प्रारम्भ ही हो जाता है, तो सोवियत बमवर्षक न्यूयार्क, पिटसबर्ग, क्लीवलैण्ड, हार्टफोर्ड और शिकागो पर प्रहार करने के लिए, बहुत सभव है कि कोपेनेहैगेन, ब्रुसेल्स, रोम, लन्दन, बान और पेरिस को छोड कर पहुँचे। दो विश्व-युद्धो से ध्वस्त हमारे 'नाटो' (NATO) के साथियो को 'अन्तिमेत्थम्' भेज कर अनुरोध किया जायगा कि वे शीघ्र अपनी तटस्थता की घोषणा करे, अन्यथा पूर्ण आणविक विनाश का सामना करे। उन लोगो के लिए, जो अभी द्वितीय विश्व-युद्ध के ध्वसावशेषो के बीच से अपना मार्ग प्रशस्त भी नही कर पाये हैं, रूसी और अमरीकी नगरो के खण्डहरो का धुआँ ऐसी धमकी का भयावह औचित्य सिद्ध करेगा। एक बात निश्चित है कि योरोप युद्ध-क्षेत्र न बनने के लिए कृत-सकल्प है।

योरोप मे यदि हमारी 'नाटो' (NATO) की मित्रता पर पूर्ण आणविक प्रतिरक्षा की सामरिक नीति का दबाव बहुत अधिक हुआ है, तो एशिया में वह हमें विनाश की स्थिति तक पहुँचा सकता है। एशिया और मध्यपूर्व मे सीमित आक्रमण होने पर हमे अणु-युद्ध प्रारम्भ करना या स्थानीय दबाव के अन्तर्गत अपमान-जनक पलायन स्वीकार करना विनाशकारी होगा।

यह स्थिति धीरे-धीरे हमारी मित्रता को चकनाचूर कर देगी और अन्ततोगत्वा हमे इस महाद्वीप मे बिल्कुल पृथक कर देगी, जिसका मतलब यह होगा कि हमारी ही अयोग्यता से शत्रु का मुख्य राजनीतिक उद्देश्य सिद्ध हो जायेगा। यदि हम अणु-युद्ध मे उस हद तक विजय प्राप्त करने की अपनी क्षमता प्रदर्शित नही करते, जिस हद तक ऐसे युद्ध मे सम्भव है, तो यह भी कम से कम उतना ही विनाशकारी सिद्ध होगा।

हमारा युद्धोत्तरकालीन सैनिक इतिहास, स्थानीय युद्धो को निपटाने के लिए 'भारी प्रतिकार' के बजाय एक अन्य मार्ग प्रदर्शित करता है। यह कार्य हमने अपनी और अपने साथियो की परम्परागत सेनाओ के हाथो मे सौंप दिया है। कोरिया मे तृतीय विश्व-युद्ध की अपेक्षा बहुत ही कम, परन्तु फिर भी बडे भयावह मानवीय मूल्य पर हमने आखिरकार स्थानीय और सीमित प्रतिरोध द्वारा साम्यवाद को मार भगाया।

परन्तु स्थानीय आक्रमण के प्रति स्थानीय प्रतिरोध की नीति सदैव सफल नही हुई है। हिन्दचीन मे, अधिकाश फ्रांसीसी सेना लगभग सात वर्षों तक लगी रही। अन्त मे स्थिति इस बुरी तरह बिखर गयी कि हमने सीमित युद्ध के लिए भी अपनी स्थल सेना न भेजने का निर्णय कर लिया। कोरिया और हिन्दचीन मे स्थानीय युद्धो की इन दो रगशालाओ की तुलना नाटकीय ढग से उन परिस्थितियो को प्रदर्शित करती है, जिनके अन्तर्गत हम परम्परागत सेनाओ के सफल प्रतिरोध की अपेक्षा कर सकते है।

कोरिया मे ३८ वी समानान्तर रेखा की सुरक्षा सामरिक दृष्टि से आवश्यक थी। सयुक्त राष्ट्र सघ के द्वारा विश्व पहले से ही उसके प्रति राजनीतिक दृष्टि से वचनबद्ध था। कोरिया मे प्रत्यक्ष सगठित आक्रमण की रिपोर्ट मौके पर मौजूद एक सयुक्त राष्ट्रीय आयोग ने की थी। हमारे पक्ष में छ. लाख राष्ट्रीय कोरियावासियों ने साहस और दक्षता के साथ युद्ध किया। एक सँकरे प्रायद्वीप ने, जिसका अगला भाग केवल १५० मील है और उसके पास ही जापान मे हमारे अधिकारसम्पन्न सैन्य-स्थल ने हमारी नौसेना और

वायुसेना को, यदि निर्णायक नही, तो महत्वपूर्ण कार्य करने के योग्य बनाया। दोनो पार्श्वों मे, हमारी नौसेना पनडुब्बियो अथवा शत्रुओ के हवाई आक्रमण से अछूती रही।

हिन्दचीन मे सामरिक दृष्टि से सुरक्षा-योग्य कोई ३८वी समानान्तर रेखा नही थी। इसके बजाय फ्रासीसियो को विशाल शत्रुतापूर्ण क्षेत्र की झाडियो में यत्रतत्र बने अड्डो पर निर्भर करना पडा, जिनका दियनबीयनफू एक विचित्र नमूना था। साथ ही सचार के प्रमुख साधनो को सुरक्षित रखने के लिए यत्र-सज्जित गश्ती कार्रवाइयाँ करनी पडी।

जैसा कि हम पहले देख चुके है, इससे भी अधिक महत्वपूर्ण बात यह थी कि हिन्दचीन मे कोई ऐसी रेखा नही थी, जिसका बचाव विश्व-मत के न्यायालय मे किया जाता। अपने साम्राज्यवादी स्वार्थों से चिपके रहने के लिए प्रयत्नशील एक गोरी पश्चिमी शक्ति की उपस्थिति ने असाम्यवादी शक्तियो में तीव्र मतभेद पैदा कर दिये—ऐसे मतभेद जो, अमरीकी मतो में भी प्रतिबिम्बित थे।

हिन्दचीनी जनता ने, जो स्वतंत्र शासन के अधिकार अथवा एक औपनिवेशिक शासन के अन्तर्गत विश्वस्त आन्तरिक सुधारो से भी वचित थी, उदासीनता से लेकर खुले विरोध तक विभिन्न रुख अपनाया। जिन परिस्थितियो ने साम्यवादियो का विरोध करने के लिए फ्रान्स को प्रभावशाली स्वदेशी सेना से वचित कर दिया, उन्होने हो ची मिन्ह को बडी सख्या मे निष्ठावान समर्थक प्रदान किये। रूस और चीन मे साम्यवादी शक्ति के केन्द्र प्रत्यक्षरूप से इसमे भाग नही ले रहे थे और अमरीकी सैनिक प्रसाधनो की पूर्ति सीमित थी, जो साम्यवादी शक्तियो को रोकने मे असमर्थ रही।

यदि हम यह मान ले कि धीरे-धीरे एक प्रभावशाली और स्वीकार्य नि शस्त्रीकरण कार्यक्रम का विकास सम्भव है, तो द्वितीय विश्व-युद्ध के बाद दुविधापूर्ण अमरीकी सैनिक नीति की इस सक्षिप्त समीक्षा से तीन निष्कर्ष निकलते है।

प्रथम, जिन आक्रमणो से हमे अपने आप को सुरक्षित रखना है, वे भिन्न प्रकार के है और उनका मुकाबला करने के लिए विभिन्न प्रकार की शक्तियो की आवश्यकता होगी। सभी मोर्चों पर सस्ती प्रतिरक्षा के लिए प्रयत्न करना आत्मप्रवंचना होगी। यदि हमे साम्यवादी सैनिक शक्ति के प्रत्यक्ष प्रदर्शन का प्रभावशाली ढग से सामना करना है, तो सामरिक महत्व की वायुसेनाएँ और अत्यधिक गतिशील परम्परागत सेनाएँ, दोनो ही शक्तियाँ बिलकुल

अनिवार्य है।

द्वितीय, कोई आवश्यक नही कि इसका अर्थ निस्सीम सैन्य-प्रस्तार अथवा व्यय हो। आणविक पक्ष मे क्रमश. रूसी और अमरीकी हवाई अस्त्रो की क्षमताएँ किसी स्थिति मे उस बिन्दु तक पहुँच जायगी, जहाँ अणु-अस्त्रो की अतिरिक्त सख्या और उनको ले जानेवाले वायुयानो का महत्व कम हो जायेगा, जब तक पहुँचाये जानेवाले काफी ऐसे अस्त्र पर्याप्त सख्या मे मिलते रहेगे, जो शत्रुओ के क्षेत्र मे महत्वपूर्ण लक्ष्यो को विध्वस कर सकते है। इस प्रकार श्रेष्ठता नही, पर्याप्तता आणविक सुरक्षा के लिए धीरे-धीरे अन्ततोगत्वा कमखर्चीला साधन बन सकती है।

पर्याप्त परम्परागत सेनाओ के प्रयोग और प्रशिक्षण अनेक मौको पर निर्णायक महत्व के हो सकते है। परन्तु यदि ऐसा समय आ जाता है जब कि दक्षिणी एशिया के या किसी अन्य महत्वपूर्ण क्षेत्र के अधिकाश लोग साम्यवादियो को अपना समर्थन प्रदान करने का निर्णय करते है, तो पतन की इस प्रक्रिया की अन्तिम स्थिति मे कितनी भी मात्रा मे अमरीकी सैन्य सामग्री के भेजने से स्थायी रूप से उस प्रवृत्ति को नही रोका जा सकता। उदाहरण के लिए, यदि ऐसा समय आता है, जब २० करोड हताश और कटु अफ्रीकी ४० लाख प्रभुत्वशाली योरोपियनो को निकाल फेकने का दृढ सकल्प कर लेते है, तो अन्त मे जैट विमान, टैंक और टामी बन्दूके उन्हे रोकने मे सफल नही होंगी।

सैनिक सगठन प्रशिक्षण और व्यय की इन व्यावहारिक कठिनाइयो को उसी प्रकार प्रतिबिम्बित करना चाहिए, जिस प्रकार वे सशस्त्र शक्ति की क्षमताओ को प्रतिबिम्बित करती है।

तृतीय, सैनिक शक्ति की स्थितियो की रचना ने हाल के वर्षो मे हमारी कूटनीति को पुरस्कृत किया है। १९४१ मे हमने वहाँ जो रेखा खीची थी, उस पर न तो कोई आघात हुआ और न कोई गम्भीर खतरा ही पैदा हुआ।

मध्यपूर्व के अधिक विषम क्षेत्र मे और स्वतत्र एशिया के वृत्तखण्ड मे उसी प्रकार की दृढ स्थिति की आवश्यकता है। यहाँ पर भी हमे सोवियत रूस अथवा साम्यवादी चीन के भविष्य मे प्रत्यक्ष आक्रमणो के विरुद्ध सामरिक महत्व की एक रेखा खीच देनी चाहिए।

धोखेबाज़ी के आधार पर यह रेखा यो ही अथवा अलकारिक दृष्टि से नही बनायी जा सकती। बिना साथियो के और बिना काफी सोच-विचार के किये गये अस्पष्ट और मनमाने वायदे, जिनके पालन करने का कोई गम्भीर इरादा

नही है, वैसे ही खतरनाक है, जैसे वायदो का बिल्कुल न करना ।

यदि एशिया मे किसी सामरिक महत्व की रेखा को निश्चित और टिकाऊ बनाना है, तो इसे हमारे प्रमुख साथियो का पक्का समर्थन प्राप्त होना चाहिए और यदि हो सके तो उस क्षेत्र की स्वदेशी प्रमुख असाम्यवादी शक्तियो की लाभप्रद सम्मति भी प्राप्त होनी चाहिए ।

इसके अतिरिक्त प्रत्यक्ष साम्यवादी आक्रमण के विरुद्ध ये तीव्र रेखाएँ कुछ अस्थायी समस्याओ पर हमारी कूटनीति को कठोर बनाये बिना, खीची जा सकती है और खीची जानी चाहिए। इस प्रकार १९४८ मे योरोपीय प्रतिरक्षा-रेखा बनायी गयी थी, परन्तु १९५५ मे आस्ट्रिया की तटस्थता पर बातचीत हुई थी। जैसा कि आस्ट्रियाई समझौते मे हुआ, जहाँ कही हमारे सब उद्देश्यो के लिए शुद्ध लाभ होता हो, वहाँ हमे बातचीत के द्वारा ऐसे परिवर्तनो को स्वीकार करने के लिए तैयार रहना चाहिए ।

इसलिए एक सामरिक महत्व की प्रतिरक्षा-रेखा साम्यवाद को रोक रखने की न्यूनतम सीमा की व्यवस्था करेगी, ऐसी सीमा जो हमेशा ही बढाई जा सकती है, यदि स्वतत्रता का क्षेत्र बढता है और साम्यवाद का क्षेत्र सिमटता है, अथवा यदि लाल सेनाओ के अधीन क्षेत्र समझौते द्वारा उन्मुक्त हो सकते है। यद्यपि इस नवीन सामरिक महत्व की रेखा का खीचा जाना अत्यधिक महत्वपूर्ण है, तथापि हमे इसे युद्ध को रोकनेवाली समझना चाहिए, और कुछ नही। हमारी नीति का यह अत्यावश्यक तत्व है, परन्तु यह किसी प्रकार भी पूर्ण नीति का न तो अन्त है और न उसका साधन। यह आक्रमण रोकने का वायदा करती है, और वह भी केवल बाहरी ढग के आक्रमण को और आगामी वर्षों मे हमे जिस प्रकार के आक्रमण का सामना करना होगा, वह बाहरी आक्रमण के रूप मे कदाचित् ही हो।

जब कि हम इस सैनिक रेखा का निर्माण कर रहे हैं, हमें अन्य असैनिक मामलो पर भी विचार कर लेना चाहिए। यदि प्रतिरक्षा की सार्थक रेखाओ के निर्माण की प्रक्रिया मे ही हम सैन्यवादी या आक्रमणकारी होने की धारणा पैदा करते है, तो हमारी सम्पूर्ण विश्व-स्थिति पर प्रतिकूल प्रभाव पडेगा। यह कोई सरल समस्या नही है। वही प्रचार, जिसे सैनिक सेवाएँ अपनी नैतिकता को उदात्त बनाये रखने के लिए आवश्यक समझती है, जन-सम्बध और कैपिटल हिल पर वार्षिक बजट के प्रकाशन, जब विदेशो मे भेजे जाते है तो वे युद्ध-प्रेमी सैनिकवाद की वही धारणा पैदा करते है, जिससे हमारे उत्तरदायी सैनिक

नेता बचने के लिए सबसे अधिक चिन्तित है।

सैनिकवादी हुए बिना सैनिक शक्ति मे प्रबल होना, निरोधक अथवा आमन्त्रित युद्ध की बिल्कुल समाप्ति को अस्वीकार करना, विभिन्न सैनिक आकस्मिक आवश्यकतो के लिए व्यवस्था करना, बिना उद्दण्डता दिखाये सामरिक उद्देश्यो के पालन मे अपने मित्रो के साथ कार्य करना सीखना, धमकी दिये बिना राजनीतिक दृष्टि से व्यावहारिक रेखा की प्रतिरक्षा के लिए अपने दृढ निश्चय को स्पष्ट करना, यही समकालीन अमरीकी सैनिक-नीति की आवश्यकताओ का विकट महायोग है।

× × ×

इस पुस्तक मे क्रान्तिकारी घटनाओं के सर्वेक्षण से हमने जो सबसे अधिक महत्वपूर्ण बात सीखी होगी, वह यह है कि सम्पूर्ण युद्ध की स्थितियो के अतिरिक्त, घटनाओ के निर्माण की क्षमता सैन्य-शक्ति मे बहुत सीमित है। उन सभी अत्यावश्यक सैनिक उद्देश्यो का, जिनकी अभी चर्चा की गयी है, जोड भी एक पर्याप्त परराष्ट्र-नीति से बहुत कम पड जाता है।

एक सुयोग्य पुलिस-शक्ति स्वत सद्भावना और प्रगतिपूर्ण समाज का आश्वासन नही दे सकती। यह केवल नागरिक नेताओ को ऐसे समाज के निर्माण का अवसर प्रदान करती है, जो समाज को नष्ट करने अथवा अपने स्वार्थ के लिए उसका दुरुपयोग करने के लिए उतारू अराजक तत्वो से मुक्त रहेगा। उसी प्रकार कोई भी सैनिक प्रतिरक्षा-प्रणाली, चाहे वह कितनी भी विशाल और कुशल क्यो न हो, अकेले ही शान्ति और सुव्यवस्थित प्रगति का आश्वासन नही दे सकती, जिसे विश्व-समुदाय को, यदि युद्ध और वर्ग के दोहरे खतरो से उसे बचना है, तो अवश्य प्राप्त करना चाहिए।

अमरीका के महान दार्शनिक एव सामरिक निष्णात, एडमिरल माहन ने कहा "सैन्यशक्ति का उद्देश्य नैतिक विचारो को जड़ पकडने के लिए समय प्रदान करना है।"

इतिहासकार इस बात से उलझन मे पड जायेंगे कि अमरीकियो जैसे प्रजातान्त्रिक और धार्मिक लोगो ने, एडमिरल के लिखने के दो पीढी बाद, इस प्रकार का आचरण क्यो किया, मानो सैन्य-शक्ति अभी भी नीति का अन्तिम उद्देश्य हो, और जटिल, मानवीय तथा असैनिक समस्याओ के सैनिक समाधान पर विशेषरूप से अपना ध्यान केन्द्रित कर, हमने उन मनोवैज्ञानिक, सैद्धान्तिक तथा आर्थिक शक्तियो के साथ प्रभावपूर्ण ढग से व्यवहार करने की अपनी

योग्यताओ को क्यो बाँध रखा है, जो स्पष्टत हमारे आधुनिक समाज को रूप प्रदान कर रही है ?

लेनिन ने कहा, "युद्ध सम्पूर्ण का अश है और सम्पूर्ण राजनीति ही है। राजनीति अपने पूर्ण अर्थ मे जनता के शक्ति सगठन से सम्बध रखती है। इसमे सैन्य-सगठन भी सम्मिलित है, परन्तु साथ ही इसमे विचार, सिद्धान्त, दल, सरकार, आर्थिक और सामाजिक सस्थान और कार्यक्रम भी शामिल है।"

चूकि हिटलर ने युद्ध को ही आवश्यक रूप से सर्वस्व माना और एक राष्ट्र की सैन्य-शक्ति पर ही प्राय भरोसा किया, इसीलिए उसके आक्रमण, उसके आक्रान्तो और सम्भावित आक्रान्तो को इतने अनाकर्षक प्रतीत हुए और अन्ततोगत्वा प्रतिरोधी शक्ति द्वारा परास्त कर दिये गये। विश्व के ९/१० भाग पर, जो श्वेत नही था, नार्डिक प्रभुत्व की नयी व्यवस्था का कोई प्रभाव नही पडा।

यह तो चूकि लेनिन ने समझ लिया था कि "सम्पूर्ण राजनीति है" और चूकि उसने विश्वक्रान्ति के एक ऐसे राजनीतिक कार्यक्रम की योजना की, जिसमे लाल सेना के अतिरिक्त और भी बहुत-कुछ था, इसीलिए वह एक क्रान्तिकारी बन सका और उसकी क्रान्ति वर्तमान समय मे खतरनाक सीमा तक पहुँच गयी है। समानता पर आधारित सोवियत राज्यो के एक विश्व-सघ का वायदा, वह चाहे जितना खोखला हो, और सारे ससार को विज्ञान एव टेक्नोलोजी द्वारा विकसित करने का सुयोग, उत्तरी अटलाटिक के समुन्नत, समृद्ध और औद्योगिक प्रजातात्रिक राज्यो के अतिरिक्त, सर्वत्र अपना जबर्दस्त प्रभाव डाले बिना नही रह सकता।

नाज़ी चुनौती और साम्यवादी चुनौती का यह मौलिक अन्तर, जो राजनीति मे सैनिक तथ्य के उनके अनुमान का अन्तर है, उस ओर सकेत करता है, जहाँ विश्वस्थिति का हमारा वर्तमान विश्लेषण अपर्याप्त हो सकता है।

जिस हद तक क्रेमलिन नेपोलियन या हिटलर के सैन्यवाद की ओर अग्रसर हुआ है, हमने उस खतरे को पहचान लिया है और उसके प्रतिरोध का उपाय भी जान लिया है, परन्तु साम्यवाद जिस सीमा तक एक क्रान्तिकारी, विश्व-व्यापी राजनीतिक कार्यक्रम है, समुद्र मे बहती हुई एक ऐसी बर्फ की चट्टान, जिसका केवल ऊपरी हिस्सा अतिम, हिंसात्मक रूपो में सतह के ऊपर प्रकट होता ह, वहाँ तक सैनिक समाधानो मे हमारी पूर्वव्यस्तता बिलकुल ही अपर्याप्त सिद्ध हुई है।

१९३० के दशक का जो प्रमुख पाठ हमने सीखा है, वह बढती हुई सैन्य शक्ति को खुश करने की व्यर्थता का पाठ था। हमने दस वर्ष तक योरोप, एशिया और मध्यपूर्व मे उस पाठ को क्रेमलिन के साथ अपनी समस्याओ पर लागू करने के साहसपूर्ण प्रयत्न किये है। वे ही बाते हम सफलता के साथ करते आये है, जिन्हे यदि हमने बीस वर्ष पहले किया होता, तो शायद द्वितीय विश्व-युद्ध को रोका जा सकता था।

दुख की बात तो यह है कि, हिटलर को रोकने का कार्य जिस वस्तु द्वारा सम्भव था, वह किसी भी कल्पना से विश्व-साम्यवाद को रोकने के लिए पर्याप्त नही है। इतिहास चलता रहता है और युद्ध एव वर्ग की युग-प्राचीन चुनौती की पुनरावृत्ति और भी अधिक भयानक रूपो मे होती है।

आज, जैसा कि हम पुस्तक के प्रारम्भ में देख चुके है, हाल के अनेक अमरीकी दृष्टिकोणो के सामान्य अभिधायक में विश्व-घटनाओ की शक्ति को समझने का घोर अभाव रहा है। यद्यपि हम अपने स्वतत्र सस्थानो के प्रति गहरी श्रद्धा रखते है, तथापि ऐसा प्रतीत होता है कि, हमने भौतिक और सैन्य-शक्ति की प्रभावशीलता का मूल्याकन अधिक किया है, और जनता और विचारो की शक्ति का मूल्याकन कम।

विरोधाभास इस बात से और भी गहरा हो जाता है कि हमारी जन-शक्ति, साधनस्रोत और भूगोल की सीमाएँ बिलकुल स्पष्ट हैं, जब कि विचार, मानवीय सहानुभूति, श्रद्धा, वैज्ञानिक प्रणालियाँ, समझाने-बुझाने की शक्ति, ऐसे गुण हैं जो हमारे पास दीर्घकाल से प्रचुर मात्रा में रहे है। अभूतपूर्व राज-नीतिक और औद्योगिक विकास की शताब्दी के अन्त मे खडे होकर अमरीका को अपने उन सभी प्रबल गुणो को यथाशक्ति समझने का प्रयत्न करना चाहिए, जिन पर स्वय उसकी महत्ता का निर्माण हुआ है।

कही भी, सबसे बडी शक्ति जनता है। विशेषतया हमारे युग मे बड़े विचार और बडे सिद्धान्त, चाहे वे अच्छे हो या बुरे, आधुनिक सचार-साधनो और प्रचार-प्रणालियो के कारण शीघ्र ही लोगो को क्रियाशील बनायेगे।

राष्ट्राध्यक्ष रूज़वेल्ट इस तथ्य के मूल के बहुत निकट पहुँच गये थे, जब उन्होने याल्टा मे इस पृथ्वी के "प्रत्येक पुरुष, स्त्री, बालक को सुरक्षा और कल्याण की सम्भावना" प्रदान करने की शुभ कामना व्यक्त की थी। परन्तु रूस के साथ शान्ति के लिए स्वीकार्य आधार प्राप्त करने के प्रयत्न में स्वय रूज़वेल्ट उस समय तक कभी-कभी रूसी–अमरीकी दलगत राजनीति पर ज़ोर देते दिखाई

दिये, जब तक वह राजनीति उनकी चार स्वतत्रताओ के उद्देश्य का स्थान ग्रहण करने के लिए समय-समय पर प्रयत्नशील जान पड़ी। यह भी अधिकतर द्वितीय विश्व-युद्ध के सैनिक पहलुओ के साथ पहिले से व्यस्त रहने का स्पष्ट परिणाम था।

फिर भी 'बिना शर्त के आत्मसमर्पण' ने चौदह सूत्रो से भिन्न राजनीतिक सीमा के लिए कोई स्थान नही छोड़ा। १९१८ मे जर्मनी के आन्तरिक पतन की पुनरावृत्ति के स्थान पर १९४५ मे मित्र राष्ट्रो के सैनिको को मध्य जर्मनी मे लडकर पहुँचना पडा। विचारो की प्राय उपेक्षा होने के कारण युद्ध में आवश्यकता से अधिक समय लग सकता था।

जब युद्धकालीन सम्मेलन मे स्तालिन ने व्यगपूर्वक पूछा कि पोप के पास कितनी डिवीजन सेनाएँ है, तो हमने कहा था कि मास्को के नेता में शक्ति का सकीर्ण दृष्टिकोण है और अन्ततोगत्वा करोड़ो लोगो की आध्यात्मिक शक्ति का उन्हे अनुभव करना पडेगा। योरोप मे कैथोलिक चर्च ने सफलता के साथ साम्यवाद का मुकाबला किया है और आज क्रेमलिन इस बात को भली-भाँति जानता प्रतीत होता है कि जनता राजनीतिक कार्रवाई के लिए, चाहे वह क्रान्तिकारी हो या नही, कच्चा माल है।

क्या हम अमरीकी अब ऐसे 'सनकी' बनने की कल्पना कर सकते है, जो जनता और विचार का तिरस्कार करता है और यह पूछता है कि पोप के पास कितनी सेना है? इससे बडी भाग्य की विडम्बना और क्या हो सकती है कि जिस देश ने, अपनी महत्ता की रचना व्यक्तिवाद के आधार पर की, वह अब आणविक प्रतिकार पर मौलिक रूप से बल देता जान पड़ता है, जब कि तथा-कथित द्वद्वात्मक भौतिकवाद की राजधानी ने, चाहे कितने ही पागलपन के साथ क्यो न हो, लोगो के मन को जीत कर विश्वक्रान्ति के नेतृत्व को प्राप्त करने का प्रयत्न किया।

हमारी वह धरती है, जिसका निर्माण जनता और सिद्धान्तो के प्रति आस्था-द्वारा हुआ है। क्या इस मार्ग मे कही हमने उस आस्था की दृढ पकड़ को छोडा है? जिस हद तक हमारी पकड ढीली हो गयी है, उसी हद तक हम प्रौढावस्था में अपने जन्मकाल से अधिक कमजोर है। आज जबकि हम शक्ति के आभूषणो के भारी बोझ से दबे हुए है, हमारे ऊपर उन्ही परम्पराओ को छोड़ देने के लिए दबाव डाला जा रहा है, जिन्होंने कभी हमारे राष्ट्र के शैशवकाल मे हमको अनोखा और प्रिय बना दिया था। फिर भी, यदि हम ध्यान से देखें तो पता चलेगा कि

लोग साम्यवाद का गँदला पानी केवल इसलिए स्वीकार करते है कि वे परिवर्तन की प्यास से तडप रहे है। हम स्वय उन्हे स्वतत्रता का स्वच्छ पानी देने में भयानक रूप से सुस्त रहे है।

प्रजातात्रिक विश्व की स्थापना और "इस पृथ्वी पर प्रत्येक पुरुष, स्त्री और बालक के लिए सुरक्षा और कल्याण की सम्भावना" के सरक्षण का हमारा उद्देश्य एक बार फिर अपनाया जाना चाहिए, जो हमारे महानतम क्षणो में सदैव हमारे साथ रहा है।

साम्यवाद के विरुद्ध हमारी सैनिक प्रतिरक्षा की अधिक महत्वपूर्ण अग्रिम पक्तियो के पीछे और इस चिन्ता से मुक्त कि मास्को क्या करता है और क्या नही, हमे एक विश्वव्यापी कार्यक्रम तैयार करना चाहिए, जो युग-प्राचीन वर्ग और युद्ध की समस्याओ का समाधान कर सके। जब अटलाटिक राष्ट्रो की राजधानिया इस प्रकार के कार्यक्रम फिर से प्रस्तुत करेंगी, तब उनके सिद्धान्त फिर उतने ही महत्वपूर्ण हो जायेंगे, जितने वे छ. शताब्दियो तक रहे हैं– भविष्य के स्वतत्र मानव की तरग।

पैंतीसवाँ प्रकरण

आर्थिक सहायता के उपयोग एवं सीमाएँ

आज 'गरीबो के नगर' में युद्ध और वर्ग के मसलो की शीघ्र आर्थिक प्रगति की विश्वव्यापी माँग के द्वारा अवगणना की जाती है। राजनीतिक स्थिरता के लिए इसकी सफलता अत्यावश्यक बन गयी है। इस प्रकार वर्ग-समस्या के इस पक्ष पर विश्वव्यापी प्रहार युद्ध की समस्या के समाधान का अभिन्न अग है।

बाण्डुग में हमने देखा कि एशिया, अफ्रीका और दक्षिणी अमरीका की प्रत्येक सरकार इस विषय मे कसौटी पर कसी जा रही है। आगामी कुछ वर्षो मे इन सरकारो को अपनी जनता के सम्मुख प्रदर्शित करना चाहिए कि वे न केवल प्रत्येक व्यक्ति को राजनीतिक स्वतत्रता की दिशा मे प्रगति प्रदान कर सकती है, बल्कि सुदृढ और चमत्कारपूर्ण आर्थिक विकास भी प्रस्तुत कर सकती है। जो इस कसौटी में खरी नही उतरेगी, चाहे वे कितनी ही ईमानदार और साम्यवादी-विरोधी क्यो न हो, अन्तत पतन की ओर जायगी।

अच्छी से अच्छी परिस्थिति मे भी सफलता आसान न होगी। उच्चतर जीवन स्तर, अधिक भोजन, स्वास्थ्य, स्कूल और सडके, सिचाई और बिजली के लिए नदियो पर बाँध, तथा रेलमार्गों और सचार-साधनो के प्रसार की माँगें ज्यामिति की प्रगति से आगे बढती जा रही है। इन माँगो को पूरा करने की प्रगति अकगणितके अनुसार ही रही है। यद्यपि इस खाई को पूर्णत कभी भी नही भरा जा सकता, फिर भी यह अत्यावश्यक है कि इसको कम करने के लिए और अधिक प्रयत्न किये जाय।

अधिक द्रुतगामी प्रगति के मार्ग में बडी-बडी बाधाएँ है। उनमें से सबसे कठोर है, पूजी-सम्बधी साधनो का अभाव। देश गरीब हो या अमीर और अर्थव्यवस्था पूजीवादी हो या साम्यवादी अथवा समाजवादी, बचत के द्वारा सचित पूजी नितान्त आवश्यक प्रेरक शक्ति है, जो उस गति का निर्णय करती है, जिससे उद्योग का विकास किया जा सकता है और जीवन-स्तर को ऊँचा उठाया जा सकता है।

आज प्रत्येक अर्धविकसित राष्ट्र के समक्ष यही प्रश्न है : बचत इतनी

कहां से पायी जाय, कि विकास पूर्ण गति के साथ बढे जिससे उतावली जनता सन्तुष्ट हो जाय? यदि भारत, बर्मा, फिलीपाइन्स, अथवा जापान जैसी प्रजातात्रिक सरकारे करो को बढाये जाती है, तो उन्हे निर्वाचन मे परास्त होना पडेगा। तथापि यदि यह चीन जैसे साम्यवादी देशो की प्रगति के बराबर नही चल सकती, तो क्रान्तिकारी उथल-पुथल के द्वारा उन्हे हटाया जा सकता है।

आर्थिक विकास सदैव ही एक वेदनापूर्ण प्रक्रिया रही है। हमारे देश और इग्लैण्ड मे भी यह वेदनापूर्ण रही। रूस और चीन मे यह और भी अधिक वेदनापूर्ण रही, और चीन के सम्बध मे तो यह वेदना शीघ्र ही और अधिक बढ सकती है। हम चाहे जितना भी चाहे, अर्धविकसित असाम्यवादी देशों मे हम इस वेदनापूर्ण प्रक्रिया का उन्मूलन नही कर सकते। पूजी सम्बधी उनकी समस्त मॉगो को काफी धन देकर पूरा कर सकने पर भी, मूल्यो की कठिन व्यवस्था और परिवर्तनशील सामाजिक और राजनीतिक आदर्श फिर भी शेष रह जायगे।

फिर भी, हम उन असाम्यवादी राष्ट्रो के विकास के साथ होनेवाली वेदना को कम करने में सहायता कर सकते है और उसे असह्य होने से बचा सकते है। हमे इस तथ्य को पहचान कर प्रारम्भ करना चाहिए कि जिन तरीको से स्वतत्र राष्ट्र अपने विकास के लिए पूजी सचित कर सकते है, वे उस समय की अपेक्षा, जब कि हम अपने ही देश का निर्माण कर रहे थे, आज कहीं अधिक सीमित है।

हम देख चुके है कि १९ वी शताब्दी में विकासमान अमरीकी अर्थव्यवस्था की कुछ महत्वपूर्ण पूजी है (१) भारी मुनाफे के साथ बहुत कम वेतन, जिसका अर्थ हुआ लागत और विकास के लिए पर्याप्त बचत, (२) विदेशी ऋण, जिसे हमने प्रथम विश्व-युद्ध-काल मे अपने योरोपीय कर्जदारो को अपनी सामान्य सभ्यता की प्रतिरक्षा के समर्थन के लिए उन्हे आवश्यक सैनिक सामग्री बेच कर चुका दिया था, (३) दक्षिणी अमरीका तथा अन्यत्र अर्धविकसित देशो से बहुत कम कीमत पर कच्चा माल, (४) स्वय हमारे सीमान्तो के अद्वितीय साधन-स्रोत।

दो दशक पूर्व, सयुक्त राज्य अमरीका हमारी दक्षिणी सीमा के महान राष्ट्रो के साथ, जिन्हे हमारा घनिष्ठतम मित्र होना चाहिए था, अपने सम्बधो मे 'अच्छे पड़ोसी' की नीति का अनुसरण कर रहा था। तथापि आज ग्वाटेमाला की गभीर समस्याएँ मध्य और दक्षिणी अमरीका की अन्य समस्याओ

की प्रतीक है, और सकेत करती है कि हम मित्रता की ऊपरी बातो की अधिक चिन्ता करते है और मित्रता को स्थायी बनानेवाली ठोस नीतियो की कम। कम्यूनिस्ट-समर्थित सरकार से मुक्त होने के बाद ग्वाटेमाला के निवासियो को उन युग-प्राचीन कठिन आर्थिक समस्याओ को सुलझाने के प्रयास मे अनेक प्रकार से हतोत्साहित करनेवाले अनुभव प्राप्त हुए, जिन्होने उनके देश मे पहलेपहल साम्यवाद को जन्म दिया था।

अपने उपनिवेशो के आर्थिक लाभो के अतिरिक्त, ब्रिटेन एक अन्य अनुकूल स्थिति मे जापान के साथ साझीदार था— एक विशाल और लाभप्रद व्यापारिक जहाजी बेडे पर आधारित विश्वव्यापी व्यापार की स्थिति, जिसने घरेलू समृद्धि के खजानो को भर दिया।

इन सभी लाभो के होते हुए भी, १९ वी शताब्दी के उद्योगीकृत देशो ने धीरे-धीरे अपनी अर्थव्यवस्था का निर्माण कर लिया। औद्योगिक दृष्टि से कम विकसित देश, जो आज साम्यवादी घेरे से अपने को दूर रखने का प्रयत्न कर रहे है, और भी अधिक जल्दी मे है। उन पर राजनीतिक दबाव बराबर पड रहे है।

उनकी सरकारे भी उच्चतर वेतनो के लिए सगठित माँगो से दबी हुई है। ऋण या अनुदान के रूप मे भारी पैमाने पर बाहरी पूजी प्राप्त करना कठिन है और उनके पास शोषण के लिए उपनिवेश नही है। भारी करो की सहायता से भी वे प्रगति के लिए बढती हुई राजनीतिक माँगो की पूर्ति के लिए आवश्यक पर्याप्त पूजी—बचत सचित करने मे असमर्थ है।

परन्तु अमरीका ही क्यो इतनी आवश्यक सहायता प्रदान करे? इसके अनेक कारण है। मैने अब तक जो कुछ कहा है, उससे स्पष्ट हो जाना चाहिए और जिनमे से कोई भी एक या अनेक कारणो का मिश्रण हमारे गणराज्य के विचारवान नागरिक को सन्तुष्ट करने के लिए पर्याप्त होगा। मै उन्हे सक्षेप मे प्रस्तुत करता हूँ।

क्योकि जब लोग प्रगति की भावना का अनुभव करते है, तभी वे उस स्वदेशी शक्ति और विश्वास का विकास कर सकते है, जो आवश्यकता पडने पर, हमारी नहीं, अपनी स्वतत्रता के वास्ते सघर्ष करने के हेतु उन्हे प्रेरणा प्रदान करेगी।

क्योकि औद्योगिक दृष्टि से कम विकसित विश्व की जनता प्रगति के लिए भूखी है और क्योकि जब प्रगति बहुत पिछड जाती है, तब वह वचक नेताओ

का शिकार बडी आसानी से बन जाती है।

क्योकि ससार बडी दिलचस्पी के साथ लोकतात्रिक भारत और एकतत्रवादी चीन के बीच आर्थिक स्पर्द्धा की ओर यह जानने के लिए देख रहा है कि कौन-सा देश कम-से-कम समय मे अधिक-से-अधिक सफलता प्राप्त करता है।

क्योकि हमारा विश्व निरन्तर छोटा और एक-दूसरे से सम्बन्धित होता जा रहा है और हम समृद्धिशाली बन कर एकान्त मे नही जी सकते, और विश्व की गन्दी बस्तियो के बीच समृद्धि ईर्ष्या उत्पन्न करने वाला प्रासाद होगा।

क्योकि यदि शीत युद्ध शिथिल होता जाता है, तो आर्थिक विकास के साम्यवादी ढग और प्रजातात्रिक ढग मे प्रतिस्पर्द्धा और भी गहरी हो जायेगी और इस सघर्ष मे मास्को कुछ और साधन-स्त्रोतो का प्रयोग करेगा।

क्योकि विश्व के समस्त औद्योगिक उत्पादन का अर्द्धांश हमारे पास है, इसलिए केवल हमी ऐसी स्थिति मे है कि असाम्यवादी अर्धविकसित राष्ट्रो को पर्याप्त सहायता प्रदान कर सके।

मै यह भी कहना चाहता हूँ कि हमारी अपेक्षा कम भाग्यशाली राष्ट्रो को आर्थिक सहायता की कल्पना अमरीका की साधारण जनता को वाशिंगटन के उन नेताओ से अधिक स्वीकार्य है, जो इसे समझने मे असमर्थ हैं या समझना चाहते नही। जिस किसी ने भी हमारे देश की विस्तृत यात्रा की है, वह जानता है कि यह विचार कितनी सरलतापूर्वक लोकप्रिय समर्थन के साथ कार्यरूप में परिणत किया जा सकता है। यही 'मानवीय भ्रातृत्व' की भावना ईसाई धर्म के मूल मे है, जो अधिकाश अमरीकियो को अपने परिवार और पडोस, और सामुदायिक सम्बधो मे आचरण के लिए प्रेरित करता है, और इस प्रकार यह सबसे सरल सिद्धान्तो मे से एक है, जिसे अधिकाश अमरीकी समझ सकते है।

पर्याप्त विदेशी सहायता के कार्यक्रम के विकास के लिए ये कारण मुझे आकर्षक प्रतीत होते है। परन्तु मै कुछ सामान्य तर्क प्रस्तुत करना चाहता हूँ, जिनमे से कुछ मेरा विश्वास है कि, अनुचित मानकर अस्वीकृत कर दिये जायेगे और कुछ विशेषताओ के रूप मे अवश्य ही स्वीकृत होगे।

कतिपय कूटनीतिज्ञो और सामरिक विशेषज्ञो की मान्यताओ के विपरीत, विदेशी सहायता हमे साथी और मित्र खरीदने के योग्य नही बनायेगी। जिस प्रकार हम किसी स्वतत्र व्यक्ति की निष्ठा को नही खरीद सकते, उसी प्रकार किसी स्वतत्र राष्ट्र की निष्ठा भी नही खरीदी जा सकती।

और न एशिया, अफ्रीका अथवा दक्षिणी अमरीका के राष्ट्रो को दी गयी

आर्थिक सहायता से हम उनकी कृतज्ञता के सम्बध में ही आश्वस्त हो सकते है। निष्ठा की भाँति ही कृतज्ञता भी बिक्री की चीज नही है। यदि हम भावुकता-वश कृतज्ञता के लिए प्रयत्न करेंगे तो हमे निश्चय ही निराश होना पडेगा।

हमे साम्यवादी खतरे की सीमा के अनुसार आवश्यक रूप से अपनी सहायता का कार्यक्रम भी निर्धारित नही करना चाहिए। हमारी सहायता प्राप्त करने के योग्य होने के पूर्व क्या किसी राष्ट्र को साम्यवादी आघात से छिन्नभिन्न हो जाना चाहिए ? क्या जिन राष्ट्रो मे कम्यूनिस्ट नही है, उनकी आवश्यकताओ की उपेक्षा कर, हमें उन्हे सहायता के योग्य पात्र की सूची से निकाल देना चाहिए ? शोरगुल करनेवाले साम्यवादी अल्पसख्यको पर ऐसी शर्तें लगाना सचमुच ही विचित्र होगा।

हम यह भी देख चुके है कि केवल लोगो का पेट भरना, उन्हे मलेरिया से मुक्त करना और उनको साक्षर बनाना, उन्हे साम्यवाद-विरोधी बनाने के लिए अपने-आप मे पर्याप्त नही है। वास्तव मे नग्न आर्थिक अन्याय के प्रति जागरुकता प्राय. केवल अभाव की अपेक्षा अधिक विस्फोटक होती है। जैसा कि मैंने पिछले प्रकरण मे सुझाया था, एशियाई क्रान्तियो का नेतृत्व प्राय भूखे किसान नही करते, बल्कि हताश मध्यमवर्गीय बुद्धिजीवी करते है।

अरबो लोगो की दीनता और हीनता को, जो कदाचित् ही कभी पर्याप्त भोजन पाते है, दृढता के साथ कम करना है। परन्तु जिस प्रणाली से प्रगति की जाती है वह उतनी ही महत्वपूर्ण है जितनी प्रगति। जब तक लोग अपने ही सुधार मे भाग लेने की भावना विकसित नही कर लेते और आपने-आप को समुदाय के एक अग के रूप मे मानने और उसी सुरक्षित समाज मे रहने की आध्यात्मिक भावना पैंदा नही कर लेते, तब तक आर्थिक विकास कम अशान्ति पैदा करने की अपेक्षा और भी अधिक अशान्ति पैदा कर सकता है। उन्नति ऊपर से नीचे की ओर नही की जा सकती। इसको तो नीचे से ऊपर की ओर उठना है और वह भी अधिकतर स्वय अपनी सहायता के लिए कृतसकल्प जनता के प्रयत्नो द्वारा ही।

न तो विदेशी सहायता, चाहे वह कितनी ही उदार क्यो न हो, हमें स्थायी रूप से और सफलता के साथ भृष्ट अथवा सामन्ती सरकारो की रक्षा में समर्थ बना सकती है और न केवल हमारे विनियोग ही प्राय व्यर्थ जायेंगे, बल्कि इस प्रक्रिया मे हमे होनहार, युवा, देशी लोकतात्रिक नेतृत्व का समर्थन भी खो देना पडेगा। हम उस राष्ट्र को नही बचा सकते जो स्वय अपनी रक्षा के लिए कृतसकल्प

नही है, और इस प्रक्रिया मे ठोस उत्सर्ग करने के लिए तैयार नही है। उपनिवेश-वाद के बाद सामन्तवाद ही साम्यवाद, का अत्यधिक विश्वसनीय साथी है।

उन विशेषताओ को ध्यानपूर्वक समझ लेने के उपरान्त विदेशी सहायता के लिए आवश्यक और उचित कारणो का हम अधिक सरलता के साथ सामना कर सकते है, और साथ-ही-साथ हम स्वय अनेक विफलताओ, निराशाओ और सतापो से अपने-आपको बचा सकते है।

× × ×

अपनी सामरिक महत्व की प्रतिरक्षा पक्ति के पीछे सद्भावना, स्थिरता और समझदारी के बढते हुए क्षेत्रो की स्थापना के प्रयत्न मे हमको स्थिरता और राजनीतिक 'यथातथ्यता' को एक ही न मान लेने के लिए सतर्क भी रहना चाहिए। क्रान्तिकारी एशिया और अफ्रीका मे राजनीतिक स्थिरता, साइकिल चलाने की भाँति केवल आगे बढने की गति से प्राप्त की जा सकती है।

इसलिए अपनी सहायता की आयोजना मे, हमको वियेतनाम और दक्षिणी कोरिया जसे स्थानो मे, जो सीधे साम्यवादी सैनिक दबाव की बन्दूको के अन्तर्गत कार्य कर रहे है, अपने अवसरो और नीति सम्बन्धी व्यापक अवसरो मे, जो भारत, बर्मा, पाकिस्तान, जापान, हिन्देशिया और अफ्रीका के कुछ भागो जैसे देशो मे हमारे लिए खुले हुए हैं, स्पष्ट अन्तर कर लेना चाहिए।

पहली बात तो यह है कि हम उन देशो को ऊपर उठा रहे है, जो हमारी सहायता के बिना कदाचित् तुरन्त ही नीचे चले जाते। हमारी नीति का तात्कालिक उद्देश्य साम्यवादी गुट को क्षेत्र न मिलने देना है।

दुर्भाग्य से, इस तरह की अवरोधक कार्रवाइयो के ही कारण हमारा विदेशी सहायता-बजट इतना भारी हो गया है। यद्यपि वे आवश्यक है, तथापि वे हमें केवल पीछे खिसकने से बचा लेती है। आगे बढने के लिए हमको व्यापक एव निश्चित अवसरो का सामना करना चाहिए, जिससे हम शक्ति के अधिक स्थायी क्षेत्रो का निर्माण कर सके।

हमारे शान्तिकालीन प्रमुख आर्थिक विनियोगो को उन मुख्य देशो की सहायता करनी चाहिए, जिनमे अपने साधनस्रोतो को, अपनी स्वतत्र सरकारो को, अपनी उन्नति की भावना को, उनकी अपनी भाग लेने की भावना को और स्वतत्र विश्व समुदाय से सम्बन्धित होने की भावना को विकसित करने की सामर्थ्य है। ऐसे राष्ट्रो में जब आत्मविश्वास पैदा होता है, तब वे हमसे प्राय: असहमत भी हो सकते हैं और हमारी अधिक निराश मनोदशा में उनकी

आलोचनाएँ भी प्राय उसी अनुपात मे बढती हुई प्रतीत होगी जिस अनुपात मे उन्होने लाभ प्राप्त कर लिए है।

फिर भी, हमे उनकी प्रगति का स्वागत करने के लिए काफी परिपक्व होना चाहिए और यह समझना चाहिए कि यह वही अहमन्यता है, जो उनकी बढती हुई उस स्वदेशी शक्ति से उत्पन्न होती है, जो उन्हे साम्यवाद के लिए अथवा किसी भी अन्य बाहरी शक्ति के लिए दुर्गम बना देती है। भौतिक, राजनीतिक तथा मनोवज्ञानिक दृष्टि से यह बहुत ही कठिन कार्य है।

परन्तु विकल्प तो स्पष्ट है। यदि एशिया, अफ्रीका और मध्यपूर्व के अर्ध-विकसित राष्ट्र विश्व की प्रमुख औद्योगिक शक्तियो से घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित नही कर पाते, तो वे देर-सबेर विश्व की दूसरी कोटि की औद्योगिक शक्ति से घनिष्ठ सम्बध स्थापित कर लेगे। जैसा कि अन्यत्र है, एशिया में भी राजनीति साधारणतया अर्थव्यवस्था का ही अनुसरण करती है। पीछे पड जानेवाले रूस के व्यापारिक प्रतिनिधि पहले ही से समस्त योरोप और एशिया मे चक्कर काट रहे है। अफगानिस्तान मे एक बडा सोवियत चतुर्थ कार्यक्रम तैयार किया जा रहा है।

मार्च, १९५५ मे जब मै भारत मे था, तब सरल शर्तों वाले सोवियत ऋण पर दस लाख टन का एक फौलाद-कारखाना निर्माण करने की बातचीत चल रही थी। इसी प्रकार की सहायता के लिए भारत की प्रार्थना को हम पहले ही ठुकरा चुके थे। आयोजना के अनुसार प्रशिक्षण के लिए और आयोजना पर कार्य के लिए लगभग तीन सौ भारतीयो को मास्को जाना पडा। चतुर रूसियो ने भारतीयो से कहा, "इस प्रकार कारखाने का आयोजन और निर्माण सचमुच आपके ही हाथो होगा।"

जून, १९५५ मे प्रधान मत्री बलगानिन ने मास्को मे अपने सार्वजनिक भाषणो के दौरान मे भारतीय विकास-कार्यक्रम के लिए नेहरू का बडे जोरो के साथ अभिनन्दन किया। टेक्निकल सहायता और अनुकूल ऋणो के आधार पर यदि और सोवियत मदद भारत को न मिले तो मुझे आश्चर्य ही होगा।

सोवियत नीति के इस विकासमान रूप का राजनीतिक अभिप्राय बहुत ही महत्व का है। एशिया, अफ्रीका और दक्षिणी अमरीका के लोगो ने १८० वर्ष तक अमरीका की ओर न केवल इसलिए देखा है कि वह प्रजातात्रिक स्वतत्रता और व्यक्तिगत अवसर का सुदृढ गढ है, बल्कि इसलिए कि वह आर्थिक अन्याय को कम करने और एक विकासशील समाज की रचना के

लिए स्वतत्र संस्थानो की शक्ति का प्रबल आदर्श है।

आनेवाले वर्षों मे उनके 'नये दृष्टिकोण' के अगस्वरूप हमें मान लेना चाहिए कि सोवियत रूस अर्धविकसित और अवचनबद्ध विश्व को अत्यन्त विश्वासोत्पादक प्रमाण प्रदान करेगा कि कम से कम, साम्यवाद के अन्तर्गत, आर्थिक गति चमत्कारपूर्ण हो सकती है और रूस उन राष्ट्रो की सहायता करने के लिए उद्यत है, जो उसकी सहायता स्वीकार कर लेंगे। यद्यपि सोवियत उदारता का राजनीतिक मूल्य ऊँचा हो सकता है, तथापि जिस चतुराई के साथ इसे प्रस्तुत किया जायेगा, उसकी गणना न करना अथवा प्रगति के लिए उतावले नये स्वतत्र राष्ट्रो के लिए इसके आकर्षण को स्वीकार न करना मूर्खता होगी।

× × ×

हमने यह पहले ही पता लगा लिया है कि आर्थिक विकास की जटिल समस्याएँ परस्पर सम्बधित है। उदाहरणस्वरूप, निम्न अमरीकी आयात-निर्यात-कर और बढा हुआ व्यापार प्रत्यक्ष विदेशी सहायता की राशि को घटाने मे काफी सहायक होगा, जिसकी मध्यवर्ती विश्व को अपनी आर्थिक प्रगति के लिए नितान्त आवश्यकता है। जहाँ तक सभव हो, अर्धविकसित राष्ट्रो को अपनी उन्नति के लिए मूल्य चुकाना चाहिए और कुछ अपवादो के अतिरिक्त वे इसी प्रकार चाहेगे भी।

परन्तु डालर पाने के लिए उनके पास केवल दो ही तरीके है। प्रथम वे आवश्यकता के अनुसार अपनी चीजे बेच कर उपार्जन कर सकते है और इस प्रकार प्राप्त धन को अपने लिए आवश्यक अमरीका मे बने यत्रो, सामग्रियो, 'बुलडोजरो' पर तथा अमरीकी टेक्नीशियनो को नियुक्त करने में खर्च कर सकते है। द्वितीय, इन चीजो को खरीदने के लिए अमरीकी ऋणो और अनुदानो से उन्हे डालर मिल सकते है।

इस प्रकार हम अन्य राष्ट्रो को अपना कुछ उत्पादन बेचना जितना आसान बना लेंगे, उतना ही कम हमसे ऋणो और अनुदानो की उन्हे आवश्यकता पड़ेगी। इसके अतिरिक्त, उनका जीवन-स्तर जितना ऊँचा उठेगा, उतनी ही अधिक चीजे वे अमरीकी उत्पादको से खरीदने योग्य होगे।

आयात-निर्यात-कर की नीति का प्रश्न कुछ ऐसा टेढा है, जो न केवल कम विकसित देशो पर ही प्रभाव डालता है, बल्कि जापान जैसे विकसित राष्ट्रो को भी प्रभावित करता है। जापान-सरकार आज व्यापार-निकासी के मार्ग

बडी बैचेनी से ढूढ रही है, क्योकि इस आधुनिक औद्योगिक द्वीप-राष्ट्र को जीवित रहने के लिए उसकी आवश्यकता है। जापानी माल के लिए युद्ध-पूर्व चीनी बाजार की स्मृतिया जापान में अभी भी बिलकुल स्पष्ट है, जिसका अनुभव मुझे टोकियो मे अनेक जापानी व्यापारियो की बातो से बार-बार हुआ। यदि अमरीकी नीति प्रभावशाली विकल्प की व्यवस्था नही करती, तो आनेवाले वर्षों मे चीन, जापान और रूस में व्यापार बढता ही जायेगा। इसके साथ ही अन्य आर्थिक और सामरिक महत्व के बधन और तटस्थता के लिए नये दबाव प्रकट हो सकते है।

युद्ध के बाद से हमने जापानी अर्थव्यवस्था को बडे पैमाने पर सहायता पहुँचायी है, पहले प्रत्यक्ष रूप से डालर के अनुदानो से, और फिर अप्रत्यक्षरूप से, अभी हाल मे वहाँ पर तैनात अमरीकी सेना की सेवाओ के लिए वेतन देकर। अधिक से अधिक, ये साधन अस्थिर है।

अमरीकी तथा अन्य पश्चिमी बाजारो मे जापानी चीजो के लिए आयात-निर्यात-करो मे काफी रियायत देना एक दूसरा प्रमुख विकल्प है, जिससे कि जापान हमको माल बेच कर आवश्यक डालर अर्जित कर सकता है। जापान के साथ पारस्परिक व्यापारिक समझौते के उद्देश्य से बातचीत का प्रयत्न उस दिशा मे एक कदम है, किन्तु प्रगति धीमी होकर रहेगी।

अमरीकी राजनीतिक जीवन से मौखिक परिचय रखने वाले किसी भी व्यक्ति के लिए इसके धीमे होने का कारण स्पष्ट है। एक राज्य के गवर्नर की हैसियत से मैंने कठोर घरेलू दबाव को अपनी आँखो देखा, जो निम्न तट-कर के विरोध में बढ सकता है। अचानक तट-कर-परिवर्तनो के कारण कतिपय समुदायो में गम्भीर अस्तव्यस्तताएँ प्रकट हो सकती हैं और उनकी उपेक्षा सिनेटर और काग्रेसजन अपने राजनीतिक भविष्य के लिए गम्भीर खतरा उठा कर ही कर सकते है। उनके लिए यह तर्क कि अधिक उदार व्यापारिक नीति द्वारा बढायी गयी विदेशी खरीद हमारी स्वय की अर्थव्यवस्था को पुष्ट करेगी, साधारणतया उनकी समझ के बाहर है। वे बताते है कि ऐसे लाभ सर्वदा किसी दूसरे के राज्य या क्षेत्र मे होते प्रतीत होते है।

फिर भी, विश्व-समस्या आज भी मौजूद है और किसी-न-किसी रूप में हमें अन्ततोगत्वा उसका सामना करना ही पडेगा। यदि हम राजनीतिक दृष्टि से अन्य राष्ट्रो को हमारे हाथ काफी बिक्री कर, अपने लिए आवश्यक डालर अर्जित कर लेने की अनुमति नही दे सकते, तो हमें किसी-न-किसी प्रकार की

सहायता के रूप मे उन्हे डालर अवश्य प्रदान करना चाहिए।

फिर भी, हमे 'दोहरी सहायता' के रूप मे इसे स्पष्टत स्वीकार करना चाहिए। उपभोक्ता के रूप मे अमरीकी लोगो को पहले अमरीका में बनी उसी प्रकार की वस्तु के लिए अधिक मूल्य देना पडता है, जिस प्रकार की वस्तु वे किसी विदेशी निर्माता से अधिक सस्ते दामो मे खरीद सकते है। तब चूकि हमने विदेशी निर्यात को यहाँ डालर अर्जित करने से रोक दिया है, इसलिए अमरीकी जनता को कर-दाता के रूप में अपनी सरकार को इसके फलस्वरूप होने वाली आर्थिक कठिनाइयो से निकालने का प्रयत्न करना चाहिए।

अर्धविकसित देशो मे विनियोग एक बडा ही प्रभावशाली विकल्प है, परन्तु सच तो यह है कि आवश्यक पैमाने पर ऐसा नही हुआ है। युद्ध-काल से सयुक्त राज्य अमरीका मे गैरसरकारी वार्षिक विनियोग औसतन ४६ अरब डालर रहा है। इसी अवधि मे हमारा कुल समुद्रपारीय वार्षिक विनियोग केवल एक अरब डालर रहा है। इसमे से अधिकाश योरोप और कनाडा मे था, और वह भी अधिकतर उन देशो मे अमरीकी कारपोरेशन द्वारा अर्जित लाभो से प्राप्त हुआ था।

यदि हम दक्षिणी अमरीका और सऊदी अरब मे अमरीकी तेल-विस्तार को निकाल दे, तो अर्धविकसित देशो मे सम्पूर्ण दस वर्ष की अवधि में अमरीकी गैरसरकारी विनियोग का कुल योग मुश्किल से एक अरब डालर होगा।

पूँजी के इस क्षीण प्रवाह के समझ मे आने योग्य और उचित कारण है। अधिकाश अर्धविकसित राष्ट्रो मे राजनीतिक और आर्थिक दशाएँ भी अनिश्चित है। प्राय औपनिवेशिक अनुभवो के आधार पर विदेशी विनियोक्ताओ के विरुद्ध अनुचित पूर्वधारणाएँ रही है। कुछ मामलों में कर-सम्बधी कानून एक बार मुनाफा हो जाने के बाद उससे उचित हिस्सा निकालने में कठिनाई प्रस्तुत कर देता है। दिन-प्रतिदिन के सचालन मे प्राय कष्टदायक नौकरशाही कठिनाइयाँ आया करती है।

हमारी सरकार को चाहिए कि वह उन अमरीकी फर्मों को सभी व्यावहारिक प्रोत्साहन प्रदान करे, जो समुद्रपार पूँजी लगाने के लिये तैयार हैं; विशेषकर एशिया, दक्षिणी अमरीका और अफ्रीका में, जहाँ पूजी की बहुत अधिक आवश्यकता है। प्रस्ताव रखा गया है कि समुद्रपार अर्जित हमारे लाभो पर हमारा संघीय निगम-कर १४ प्रतिशत घटा देना चाहिए और यह कर तभी वसूल करना चाहिए, जब लाभ इस देश में ले आया जाय। विदेशो में

अधिक अमरीकी पूँजी के विनियोग मे सहायता के उद्देश्य से इस कर-बाधा को क्यो न २५ प्रतिशत या ५० प्रतिशत भी कर दिया जाय ?

परन्तु आदर्श परिस्थितियो मे भी आवश्यक कुल विनियोग निजी पूँजी के लिए बहुत अधिक होगा और लाभ के अवसर बहुत सीमित और अनिश्चित होगे। अधिक विद्युत्-शक्ति, बन्दरगाह की पर्याप्त सुविधाएँ, अधिक कुशल रेलो और समुन्नत सचार-साधन जैसी मौलिक आवश्यकताओ की पूर्ति सरकारी निधि से की जानी चाहिए। इन बुनियादो के पड जाने के बाद ही हम वास्तव मे गैर-सरकारी विनियोगो के सूत्रपात के आकर्षक अवसरो की अपेक्षा कर सकते है।

किसी देश के सक्रान्ति-काल में सुस्थिर आर्थिक विकास के लिए इन बुनियादो की आवश्यकता होती है। सक्रान्ति-काल के पूरा होते ही बाहरी आर्थिक सहायता की आवश्यकता भी समाप्त हो जायगी, परन्तु इस बीच हमे इस बात को भी नही भूलना चाहिए कि अधिकाश अर्धविकसित देशो मे पर्याप्त गति से प्रगति के लिए ठोस पैमाने पर प्रत्यक्ष सरकारी ऋण और अनुदान अत्यावश्यक है।

इसका अर्थ है, इस देश और इसके प्रमुख योरोपीय मित्रो से प्राप्त जन-निधियाँ, जिनके लिए वर्षो पहले से बचन दिया गया है। ऐसी निधियो के लिए आवश्यकता और उन्हे प्रदान करने की हमारी अस्वीकृति से उत्पन्न कठिनाइयाँ, विकास-योजनाओ के कार्यान्वय के साथ महत्वपूर्ण ढग से बढती जायेगी और ये राष्ट्र पूँजी-विनियोग को अधिक शीघ्रता के साथ पचा देने के लिए तैयार है।

किसी भी परिस्थिति में कुल आवश्यक धन हाल के अमरीकी प्रतिरक्षा-बजट के अल्पाश से अधिक नही हो सकता। साथ-ही-साथ जनवरी, १९४९ में राष्ट्राध्यक्ष ट्रूमन द्वारा चतुर्थ कार्यक्रम की नाटकीय घोषणा के बाद से आवश्यक धनराशि, डिमोक्रेटिक या रिपब्लिक, किसी भी प्रशासन द्वारा गम्भीरता के साथ प्रस्तुत किये गये किसी प्रस्ताव से काफी आगे है।

× × ×

बढे हुए खर्च के होते हुए भी, हम यह कैसे निश्चित कर सकते हैं कि हमारी निधियाँ कहाँ सबसे अधिक प्रभावपूर्ण ढग से प्रयुक्त हुई है? १९५१ और १९५५ के बीच असाम्यवादी एशिया और अधिकाश अफ्रीका मे अपने और सयुक्त राष्ट्र-संघ तथा कोलम्बो-योजना के आर्थिक कार्यक्रमो के क्रियान्वय का अध्ययन

करने का मुझे मूल्यवान अवसर प्राप्त हुआ था। ठोस विकास की गतिविधि के आवश्यक तत्वो के सम्बधो मे कुछ निष्कर्ष मुझे बहुत स्पष्ट प्रतीत होते है।

किसी देश विशेष के लिए व्यापक और पूर्ण विकास-योजना प्रथम महत्व की है, जो बडी सतर्कता के साथ उसकी आवश्यकताओ और साधन-स्त्रोतो से सम्बद्ध हो और प्रत्येक कार्य की योजना सामान्य कार्यक्रम मे उपयुक्त ढग से पिरोई हुई हो। बिना ऐसी आयोजना के प्रत्येक पृथक कार्य अविचारपूर्ण, असामयिक, अधिक व्यय-साध्य और प्राय अनुत्पादक हो सकता है।

औद्योगिक विकास की अधिक महत्वाकाक्षापूर्ण समस्याओ को सुलझाने के पूर्व एक सफल विकास-योजना को दो आवश्यक तत्वो से प्रारम्भ करना चाहिए। प्रथम, इसे अपने देश के आर्थिक साधन-स्त्रोतो के पूर्ण उपयोग की व्यवस्था करनी चाहिए। इसका मुख्य अर्थ यह है कि कर-प्रणाली न्यायपूर्ण हो और उसे कस कर लागू किया जाय। इसके लिए विदेशी विनिमय-व्यय पर नियत्रण की आवश्यकता है, ताकि फ्रान्सीसी सुगन्धित द्रव्यो और तफरीह की मोटर गाडियो पर उर्वरको और 'बुलडोजरो' को प्राथमिकता प्राप्त हो सके। इसका अर्थ है, प्राकृतिक साधन-स्रोतो के विकास पर विशेष जोर, जिससे विदेशी विनिमय-मुद्रा अर्जित की जा सकती है।

द्वितीय, एक अच्छी विकास-योजना मे ऐसे कार्य सम्मिलित किये जाने चाहिएँ, जिनके परिणामस्वरूप देश की जनता के जीवन-स्तर मे शीघ्र और स्पष्ट सुधार हो सके। शीघ्र और प्राय मौलिक भूमि-सुधार प्रत्येक देश के लिए अत्यन्त आवश्यक है, जहाँ गभीर भूमि-कर-सम्बधी समस्याएँ व्याप्त है। स्वास्थ्य और शिक्षा के कार्यक्रमो पर जोर देना भी, विशेषकर यदि उसे भारत की भाँति, ग्राम-ग्राम मे व्यापक समुदाय विकास-योजना मे समन्वित करना हो, ऐसे प्रभावशाली साधन है, जिनसे जनता को विकास के नये लाभो से प्रभावित किया जा सकता है।

ऐसे ही प्रयत्नो से लोगो मे उत्साह और शक्ति का सृजन कर उन्हे अधीरता, हिंसा और निराशा की अपेक्षा रचनात्मक मार्गो पर लगाया जा सकता है। तथापि इससे अमरीकी नीति-निर्माताओ के सम्मुख एक महत्वपूर्ण धर्म-सकट उत्पन्न हो जाता है। सहायता-प्राप्त राष्ट्र के घरेलू मामलो मे उस हद तक हस्तक्षेप किये बिना, जो हमे स्वय पसन्द नही है और जिसके कारण हमारे इरादो पर शक करने वाले हम पर साम्राज्यवाद, प्रभुता और अनिष्ठा के आरोप लगायेंगे, ठोस आर्थिक विकास के लिए आवश्यक परिस्थितियो के

सम्बन्ध मे हम कैसे विश्वास दिला सकते है ?

यह धर्म-सकट इतना उग्र नही है, जितना पहली दृष्टि मे दिखाई पड सकता है। जैसा कि हम बाण्डुग मे देख चुके है, अर्धविकसित देशो के अधिकाश नेता उसी अर्थ मे सन्तुलित और स्वस्थ विकास की प्राप्ति के लिए चिन्तित है, जिस अर्थ मे हमने अभी विचार किया। इस सम्बध मे सयुक्त राष्ट्र सघ और उसके अभिकरणो मे, कोलम्बो-योजना मे, अर्धविकसित देशो के अपने स्वय के आन्तरिक अनुभवो मे, हमारे चतुर्थ कार्यक्रम (पाइन्ट फोर) के पत्रको मे और अनेक गैरसरकारी अभिकरणो के अध्ययन मे, जो विकास के क्षेत्र मे क्रियाशील रहे है, इसे पूरा करने की विधि का विशेष ज्ञान भरा पडा है।

अर्धविकसित देशो ने साधारणतया सचित इन ज्ञानो और अनुभवो से लाभ उठाने की उत्सुकता प्रकट की है। इस प्रकार अनेक अर्ध-विकसित देशो द्वारा अपनायी गयी दिशा प्राय ऐसी है, जिसे एक ठोस अमरीकी नीति का प्रोत्साहन प्राप्त होना चाहिए। निस्सन्देह इसके लिए अनेक स्पष्ट अपवाद भी है।

विदेशी राजनीति पर बिना प्रभुत्व प्राप्त किये विदेशी विकास को प्रभावित करने के कार्य के लिए हमसे न केवल पूँजी की अपेक्षा की जायगी, बल्कि वाशिगटन और विदेशी नियुक्तियो मे अत्यन्त प्रशिक्षित और भावुक लोगो की आवश्यकता पडेगी। यद्यपि आज हमारे पास इन पदो पर अनेक सुयोग्य व्यक्ति है, तथापि सुव्यवस्थित प्रशिक्षण और भर्ती की आवश्यकता की ओर बहुत ही कम ध्यान दिया गया है।

प्राय ऐसे व्यक्ति उन स्थानो पर पहुँच जाते हैं, जो टेकनीक की दृष्टि से भलीभाँति दक्ष है, किन्तु जिन लोगो के साथ उन्हे कार्य करना है, उनकी भाषा, रीति-रिवाज, इतिहास और परम्पराओ के सम्बध मे उन्हे बहुत कम जानकारी है। हमे ऐसे योग्य एव निष्ठावान अमरीकियो और दूसरे लोगो को नियुक्त करने के लिए सतर्कता से प्रयत्न करना चाहिए, जो उस देश के विकास की संभावनाओ के प्रति उत्साही हो, जिसमें उनकी नियुक्ति होने वाली है।

किसी विशेष सरकार अथवा सस्थान द्वारा समर्थित स्कूल, जो किसी प्रमुख अमरीकी विश्वविद्यालय से सम्बद्ध हो, विदेशी नियुक्तियो के लिए लोगो को तैयार करने मे बहुत-कुछ सहायता कर सकता है। यहाँ पर उन स्त्री-पुरुषो को, जो सीमान्त के नवजीवन की ओर आकर्षित है, कृषि, स्वास्थ्य, शिक्षा, स्वच्छता, औद्योगिक विकास और इजीनियरिग मे और साथ ही व्यापक

आर्थिक, राजनीतिक और सास्कृतिक पृष्ठभूमियो मे, जिनकी उन्हे अपने कार्य मे सफलता प्राप्त करने के लिए आवश्यकता है, टेक्निकल प्रशिक्षण मिलना चाहिए। अनेक कारणो से ऐसे स्कूलो को गृहिणियो की उपेक्षा नही करनी चाहिए।

एक अन्य महत्वपूर्ण मार्ग भी है, जिससे सयुक्त राज्य अमरीका बिना शत्रुता और रंजिश पैदा किये गैरसरकारी औद्योगिक, धार्मिक और दानशील दलों की गतिविधियो के द्वारा विकास को सफलता के साथ प्रभावित कर सकता है। फोर्ड, राकफेलर और कार्नेगी जैसे अनेक फाउण्डेशनो ने कम विकसित देशो के तमाम भागो मे मूल्यवान योग प्रदान किया है।

डगलस एन्समिगर के विशेष नेतृत्व मे फोर्ड फाउण्डेशन ने भारत में विशेषरूपेण बहुत ही महत्वपूर्ण कार्य किया है। मै जानता हूँ कि भारत-सरकार के उच्च पदाधिकारी इस बात को स्वीकार करते है कि ग्राम-विकास, लघु उद्योग और शिक्षा के क्षेत्र में इसने बहुमूल्य योगदान किया है। जन-स्वास्थ्य के क्षेत्र मे राकफेलर फाउण्डेशन के प्रयत्नो को सभी स्वीकार करते है।

सयुक्त राष्ट्र-सघ के विशिष्ट अभिकरणो को भी बहुत बडे-बडे कार्य करने है—शिशुनिधि, यूनेस्को (UNESCO), विश्व स्वास्थ्य-सगठन, खाद्य और कृषि-सगठन, अन्तरराष्ट्रीय श्रम-कार्यालय और सयुक्त राष्ट्रीय टेक्निकल सहायता-प्रशासन निरन्तर हमारे समर्थन के पात्र है। सयुक्त-राज्य-अमरीका के तत्वावधान मे अनेक देशो मे सहायता बडे उत्साह से स्वीकार की जा रही है, जबकि आज भी दुतरफी सहायता को शका की दृष्टि से देखा जाता है। यद्यपि उनकी निधियाँ बहुत ही छोटी है, तथापि सयुक्त राष्ट्रीय अभिकरणो के कार्य ने विश्व के अर्धविकसित राष्ट्रो में व्यापक प्रतिष्ठा और विश्वास पैदा कर दिया है।

सयुक्त राष्ट्र की विकास-योजनाओ को और भी अधिक प्रभावशाली बनाने सम्बन्धी वादविवादो मे सयुक्त राज्य अमरीका ने कभी-कभी निषेधात्मक रुख अपनाया है। ये वादविवाद उन दो प्रमुख प्रस्तावो के चतुर्दिक घूमते आये हैं, जिनको कम विकसित देशो और उनकी आवश्यकताओ को निकट से जाननेवाले अधिकाश विशेषज्ञो का जबरदस्त समर्थन प्राप्त रहा है।

उनमे से प्रथम है, विशेष सयुक्त राष्ट्रीय आर्थिक विकास-निधि (SUNFED), जिसका उपयोग अर्धविकसित देशो मे पूंजी-अपेक्षित योजनाओ को अनुदान के आधार पर आर्थिक सहायता प्रदान करने मे किया जायगा। दूसरा

है, विश्व-बैंक या विशेष विकास-बैंक के रूप में अधिक और उदार ऋण देने वाली सत्ता, जो उन योजनाओ को सहायता प्रदान करेगी, जिनसे फिर भुगतान की अपेक्षा की जा सकती है।

इन प्रस्तावो के अनुसार लगने वाली पूँजी का योग ३५ करोड डालर है, जिसका आधा भाग सयुक्त राज्य अमरीका को देना था। १९५४ में हमने दूसरे प्रस्ताव पर अपनी स्थिति में सशोधन किया, परन्तु हमने सयुक्त राष्ट्रीय आर्थिक विकास-निधि के लिए अनुकूल वातावरण निरन्तर बनाये रखा।

अफ्रीका मे सयुक्त राष्ट्रीय तत्र के उपयोग ने नवीन महत्व प्राप्त कर लिया है, क्योकि वहाँ पर 'ट्रस्टीशिप कौसिल' के माध्यम से अन्तरराष्ट्रीय सगठन का उत्तरदायित्व न्यूनाधिक प्रत्यक्ष रूप मे अधिकाश महाद्वीप मे फैला हुआ है। यहाँ पर सयुक्त राष्ट्र को लोगो की उच्च आशाओ के अनुकूल व्यापक और उत्तरदायित्व पूर्ण कार्य सौपने का अनुपम अवसर है।

सयुक्त-राष्ट्र के एक अभिन्न मित्र और समर्थक के रूप में मैं यह भी कहना चाहता हूँ कि अपने दायित्वो को पूरा करने के लिए अच्छी तरह से तैयार होने के पूर्व, विशिष्ट अभिकरणो को लम्बी दूरियो की यात्रा करनी पडती है। परस्पर टकराती सत्ता, छोटे-मोटे ईर्ष्या-द्वेष और व्यापक नौकरशाही ने प्रभावशाली प्रशासन में अनेक अवसरो पर बाधाएँ प्रस्तुत की हैं।

अपने समस्त आर्थिक और सामाजिक प्रयत्नो के द्वारा सुव्यवस्थित सयुक्त राष्ट्र सघ, 'गरीबो के शहर' को फिर से आश्वस्त करके कि वर्ग की विकट समस्याओ का निराकरण सहकारी और लोकतात्रिक ढग से किया जा सकता है, अमूल्य सेवा कर सकता है। मैं फिर जोर देना चाहता हूँ कि आर्थिक विकास सर्वदा इस प्रकार का होना चाहिए, जिससे अन्त मे केवल एक अधिक स्वस्थ प्रतिद्वन्द्वी राष्ट्रीय राज्यो का एक दूसरा युग न आये, बल्कि आर्थिक स्वार्थों के समान बधनो मे आबद्ध, सजीव और विकासशील प्रजातत्रो का उद्भव हो।

इस चुनौतीपूर्ण कार्य को पूरा करने का अधिकाधिक प्रयास सयुक्त राष्ट्र को रक्त-माँस-पेशियो से युक्त एव सुसगठित बना सकता है। ऐसे साधनो से इसको हमारी सामान्य आशाओ का अग बनाया जा सकता है। वर्ग पर विभिन्न राष्ट्रीय आक्रमणो को सयोजित करने मे सहायता करके सयुक्त राष्ट्र, साथ-ही-साथ युद्ध पर आक्रमण में भी, स्वय अपनी सहायता करेगा। ये दोनो समस्याएँ एक साथ सम्बद्ध है और अन्त में वे एक साथ ही उठ या गिर भी सकती है।

संयुक्त राष्ट्र की अपेक्षा अधिक विशेषताप्राप्त अन्तरराष्ट्रीय दलो को

अमरीकी आर्थिक सहायता के वितरण के माध्यम के रूप में महत्वपूर्ण लाभ प्राप्त है। मार्शल योजना के अनुभवो ने यह प्रदर्शित कर दिया है कि क्षेत्रीय सस्थाएँ, जिनमे सहायताप्राप्त राष्ट्रो को प्रभावपूर्ण प्रतिनिधित्व प्राप्त है, हमारी पूर्ण सहायता मिलने पर सम्बद्ध देशो के कार्यक्रमो की कठोर निरीक्षिका बन सकती है।

योरोपीय आर्थिक सहयोग सम्बन्धी सगठन में एक स्थायी कर्मचारी-दल ने उन सारी गतिविधियो की समीक्षा की, जिनके लिए मार्शल-योजना-निधि वचनबद्ध थी। वार्षिक बैठको मे सामान्य आर्थिक प्रगति की व्याख्या की गयी, भावी कार्यक्रम के लिए आवश्यकताओ को लिपिबद्ध किया गया और प्रशासन के उच्च स्तर तथा अनुपालन के लिए आग्रह किया गया।

कोलम्बो-योजना-सगठन एशिया के लिए एक तुलनात्मक सस्था है, जो मूलत ब्रिटिश कामनवेल्थ के राष्ट्रो से बनी हुई थी, परन्तु बाद मे हिन्द महासागर से पूर्व के प्रत्येक असाम्यवादी राष्ट्र को इसमें सम्मिलित कर लिया गया। सयुक्त-राज्य-अमरीका को भी सदस्य के रूप मे स्वीकार कर लिया गया है। औपचारिक दृष्टि से इसने इस क्षेत्र में अपनी टेक्निकल और आर्थिक सहायता सम्बधी गतिविधियो को सगठन से सयोजित कर दिया है। परन्तु सम्बध वास्तविक की अपेक्षा मौखिक अधिक रहा है। वस्तुत विकास-सम्बधी अमरीकी व्यय के निर्धारण या समीक्षा मे हमने कोलम्बो-योजना को कोई महत्वपूर्ण दायित्व नही सौपा है।

अमरीकी राज्यो के सगठन से लेटिन अमरीकी आर्थिक विकास-निधियो के क्षेत्रीय प्रशासन के लिए वैसा ही अवसर प्राप्त होता है। यहाँ फिर इस गोलार्ध में अपने आर्थिक प्रयत्नो के महत्वपूर्ण विस्तार पर विचार करने से लगातार इन्कार कर, सयुक्त राज्य अमरीका ने प्रगति मे बाधा उपस्थित की है।

आर्थिक सहायता के बढते हुए व्यापक उत्तरदायित्व के जितने ही निकट हम पहुँचेंगे, उतने ही हमारे प्रयत्न अधिक प्रभावशाली होगे। फिर भी, किसी-न-किसी रूप में बडे पैमाने पर चुनौती का मुकाबला कुछ वर्षों की अवधि में करना ही चाहिए। यदि इस अवस्था में मुख्यत. ऐसे अन्तरराष्ट्रीय अभिकरणो के माध्यम से सहायता करना राजनीतिक दृष्टि से असभव है, तो कम-से-कम हम आयात-निर्यात बैंक का प्रयोग करे, जिसके पास १९५५ में २ अरब डालर से अधिक अधिकृत और निष्क्रिय पूजी थी।

× × ×

उन मार्गों की व्यापकता और विभिन्नता दिखाने के लिए काफी कहा जा चुका है, जिनके द्वारा विश्व का प्रमुख औद्योगिक राष्ट्र, अमरीका हमारे युग की आर्थिक चुनौती का सामना करने मे सहायता कर सकता है। विश्व-क्रान्तियो के हमारे सर्वेक्षण ने यह स्पष्ट कर दिया है कि अनेक देशो में जागृत लोगो के बीच प्राचीन अर्थव्यवस्था का आकर्षण बहुत पहले समाप्त हो चुका है और अब वह तेजी के साथ निर्मूल होता जा रहा है। इनमे से अधिकाश लोगो के लिए, अमरीका अपने अर्वाचीन इतिहास में किसी समय आर्थिक अवसर का आदर्श रहा है, जिसकी उन्होने प्रशसा की है और अनुकरण करने का भी प्रयत्न किया है।

इन अधिकाश अर्धविकसित क्षेत्रो के लोगो की सरकारो का मौलिक दर्शन कितना भी अस्थायी हो, वह प्रजातत्र और पश्चिम की ओर प्रवृत्त हो रहा है। यदि अन्ततोगत्वा साम्यवादी विकल्प की विजय होती है, तो उसका कारण यह होगा कि अमरीका और अटलाटिक राष्ट्रो की पद्धति और प्रणालियां अब इन देशो के लिए आवश्यक विकास के मुख्य कार्य के लिए अपर्याप्त सिद्ध हो कर तिरस्कृत कर दी गयी है।

कुछ कार्यों का प्रारम्भ अच्छा हुआ है और बीच मार्ग में ही लडखडाना हमारे लिए खतरनाक होगा। आर्थिक सहायता का वह महत्वपूर्ण अश प्रदान करने का साधन और सामर्थ्य, टेकनीक और निपुणता केवल अमरीका में है, जो अन्त मे विश्व के उन लाखो-करोडो लोगो के लिए सफलता या विफलता पैदा कर सकता है, जो अपनी स्वतत्रता प्राप्त करने या कायम रखने के लिए प्रयत्नशील है।

लेकिन प्रतिरक्षा की भाँति अर्थव्यवस्था भी शान्ति की एक सीमा है। हमारे युग की यथार्थताओ को समझने लायक कुशल कूटनीति एक अन्य सीमा है।

छत्तीसवाँ प्रकरण

शांति की राजनीति

सोवियत कूटनीति मे ज्यो ही स्तालिनवाद का ह्रास स्पष्ट रूप से दिखायी पडने लगा, त्योही सैनिक समाधानो पर अमरीकी केन्द्रीकरण की अपर्याप्तता तीव्रता के साथ प्रकाश मे आने लगी। यह भी स्पष्ट है कि व्यापक रूप से बढा हुआ आर्थिक सहायता-कार्यक्रम, अत्यन्त आवश्यक होते हुए भी, अकेले ही इस अपर्याप्तता का निराकरण नही कर सकता। १९५५ मे मास्को और पेकिंग भी कठोर शीत युद्ध की धूम पर अधिक बल न देकर, विचारो, प्रचारो, वायदो, नारो और मैत्रीपूर्ण कूटनीतिक बर्ताव के द्वारा लोगो को अपने पक्ष मे कर लेने के प्रयत्न कर रहे थे।

फिर भी, मास्को के तात्कालिक कूटनीतिक उद्देश्यो मे दिखायी पड़नेवाले जबर्दस्त परिवर्तन से इस नये बल के महत्व को कम आका गया। दो ध्रुवो वाले अमरीकी और रूसी, विश्व की दो महान शक्तियो मे से एक, व्यवस्थित रूप से विश्व-राजनीति को विरोधहीन बनाने मे जुटी प्रतीत हो रही थी।

रूस की सीमाओ पर तटस्थ अन्तराल राज्यो की यथासम्भव व्यापक सहायता, जर्मनी और जापान से भूतपूर्व शत्रुओ के साथ साम्राज्य-सम्बन्ध स्थापित करने और विदेशो से उल्लेखनीय सद्भावना, जो अपेक्षाकृत कम भयानक रूसी कूटनीतिक मुद्रा से प्रवाहित होगी, के बदले मे नवीन रूसी नेतृत्व रूस के प्रभुत्व के क्षेत्र को कम करने पर विचार करता जान पड़ा।

अनेक कारणो से, जिन पर हम विचार कर चुके है, सोवियत नीतियो मे यह परिवर्तन, सोवियत इरादो अथवा अभिप्रायो मे बिना किसी मौलिक परिवर्तन के, अनेक राजनीतिक और आर्थिक तथ्यो को परिलक्षित कर सकता है। एक शताब्दी पूर्व लार्ड पामर्स्टन ने कहा था, "रूसी सरकार की नीति और रीति सदैव यही रही है कि जितनी तेजी से, और जहाँ तक अन्य सरकारो की उदासीनता या दृढता के अभाव से अपने प्रभाव-क्षेत्र को बढ़ाने का मौका मिले, बढा जाय; और जहाँ निश्चित प्रतिरोध का सामना करना पड़े, वहाँ रुक कर पीछे हट जाय।"

यदि एक सतर्कतापूर्ण परीक्षण-अवधि यह प्रदर्शित करती है कि सोवियत

नीति किसी भी कारण से वस्तुत शीत युद्ध को समाप्त करना चाहती है, तो उसे जारी रखने के लिए प्रयास करना अमरीकी नीति का दुस्साहस होगा। हमने इसे आरम्भ नही किया। हमने कभी इसे चाहा नही। अब यदि सयोगवश विशिष्ट समस्याओ पर व्यावहारिक समझौता हो सकता है, तो हमें निश्चय ही उसमें बाधक नही बनना चाहिए। यदि शीतयुद्ध का जाल धीरे-धीरे दूर हो जाय, तो विश्व के लिए और हमारे सिद्धान्तो के लिए भी अच्छा ही होगा—यद्यपि परिवर्तन गतिशील सह-अस्तित्व में, जो अनिवार्यत आरम्भ होगा, उन सिद्धान्तो को और भी कडी कसौटी पर चढाया जा सकता है।

अन्य साधनो से युद्ध यदि कूटनीति का विस्तार है और यदि गर्म और शीत, दोनो युद्धो का अन्त कूटनीति के कार्यसूची में प्रथम विषय हैं, तो हमें अपनी कूटनीति के लिए कुछ मार्गदर्शक चौकियो की स्थापना करने की आवश्यकता है, क्योकि हमारी परराष्ट्र-नीति के आवश्यक सैन्य और आर्थिक पहलुओ के बावजूद, कूटनीति विदेशी सम्बधो के संचालन के मूल में रहती है। इसके प्रयोग और व्यवहार के आज भी ऐसे मार्ग हैं, जिनसे राष्ट्रो के बीच कठिनाइयाँ और तनाव बिना युद्ध के समाप्त हो जाते है।

कूटनीति की कार्यसूची

संयुक्त-राज्य-अमरीका में कूटनीतिक परम्परा के लाभ का अभाव है, जो ब्रिटेन के परराष्ट्र-विभाग के चतुर्दिक एकत्र हो गया है। किसी भी स्थिति में, यह सभव नही है कि सबके लिए मुक्त हमारी लोकतान्त्रिक परम्परा कुछ चुने हुए व्यवसायी विशिष्ट जनो द्वारा इतनी विस्तृत और स्वायत्त गतिविधि को सहन करेगी। अमरीकी कूटनीति इगलैण्ड की अपेक्षा अधिक मात्रा में जनक्षेत्र में है।

इस स्थिति मे हमारे सभी अन्तरराष्ट्रीय प्रयत्नो की भाँति हमारी कूटनीति की प्रथम आवश्यकता हमारे अपने उद्देश्यो की स्पष्ट समझदारी है। ये उद्देश्य व्यावहारिक होने चाहिएँ। यद्यपि उन्हे अमरीकियो के एक बडे बहुमत का समर्थन प्राप्त करने के लिए प्रयत्न करना चाहिए तथापि हमारे अनेक विभिन्न पूर्व विचारो और पूर्व निर्णयो के अपचित समझौते से उनका कुछ अधिक होना आवश्यक है। उन्हे घोट-पीस कर लोकतान्त्रिक वादविवाद और विचक्षण नेतृत्व का सम्मिश्रण बना देना चाहिए।

ज्यो-ज्यों साम्यवादी चालें अधिक लचीली होती जाती है, हमें विश्व-

साम्यवाद के सम्बन्ध में अपने उद्देश्यो पर पुनर्विचार करने और उन्हे स्पष्ट करने की आवश्यकता पडेगी। स्पष्ट है कि हम उसे पसन्द नही करते, बल्कि हम तो यह चाहेगे कि वह लुप्त हो जाय, तथापि जैसा कि हम देख चुके हैं, इसको जानबूझ कर बलपूर्वक विनष्ट करने के लिए आक्रमक सैनिक कार्रवाइयो की आवश्यकता पडेगी, जिन्हे अधिकाश अमरीकी ठीक ही ठुकरा देते हैं।

अन्ततोगत्वा हमे सरल परन्तु परेशान करने वाले इस प्रश्न का सामना करना पडेगा कि सोवित सघ और साम्यवादी चीन के साथ हम किस आधार पर शान्ति के साथ रहने के लिए तैयार है ?

इतिहास में अमरीका सर्वदा से अधिनायकतत्रों के साथ रहता आया है। यद्यपि जारवादी रूस कुख्यात निरकुश राजतत्र था, फिर भी वह प्राय. अमरीका का मित्र बन कर रहा। दक्षिणी अमरीका के अनेक राष्ट्र, जो सयुक्त राष्ट्र-सघ मे हमारे साथ बडे उत्साह के साथ मतदान करते है, स्पेन, पुर्तगाल, स्याम, फारमोसा और दक्षिणी कोरिया जैसे हमारे अनेक मित्रो की भाँति अधिकनायकवादी राज्य हैं।

इससे यह सकेत मिलता है कि इस प्रकार की तानाशाही से हमे खतरा नही है, चाहे हम उसे कितना भी नापसन्द करे, बल्कि उस तानाशाही से खतरा है जो अपने पड़ोसियो पर प्रत्यक्ष आक्रमण या विध्वस द्वारा अपना नियत्रण स्थापित करने का प्रयास करती है।

जैसा कि हम देख चुके है, साम्यवादी सिद्धान्त इस बात पर आग्रह करता है कि साम्यवादी और प्रजातात्रिक विश्व में निरन्तर सघर्ष चलता रहेगा और अन्ततोगत्वा एक-न-एक के विनाश मे उसका अन्त होगा। अनेक अवसरो पर सोवियत नेताओ ने कहा है कि पूजीवादी जगत का 'अनिवार्य' पतन अन्त में सशस्त्र संघर्ष द्वारा होगा। अन्य अवसरो पर उन्होने यह अधिक मर्यादित विचार रखा है कि चूकि मार्क्स के विधान के अनुसार यह अनिवार्य प्रक्रिया का अंश है, इसलिए यह किसी-न-किसी प्रकार अपने समय पर घटित होगा और इसके साथ इतिहास को सहायता प्रदान करने की विशेष आवश्यकता नही है।

यदि साम्यवादी सैनिक आक्रमण के विरुद्ध हमारी सामरिक महत्व की रेखा, कुछ वर्षों तक दृढतापूर्वक कायम रहे, यदि विश्व का दो-तिहाई भाग, जो साम्यवादी नही है, आर्थिक और राजनीतिक सहयोग के व्यापक क्षेत्र में धीरे-धीरे एक साथ खिच आये और यदि प्रगति की गति और प्रकार ऐसा हो जो आन्तरिक आक्रान्ति को निरुत्साहित करे, तो साम्यवादी नेताओं की नयी

पीढी शायद तथ्य के अनुसार सिद्धान्त को ग्रहण करने का निर्णय कर ले। वे पहले भी ऐसा कर चुके है।

इस बीच हम आणविक शीत युद्ध की राजनीति से पृथक होने के लिए उत्सुक विश्व मे, साम्यवादी परराष्ट्र-नीति के विषयो मे अनेक कूटनीतिक विभिन्नताएँ देखने की आशा कर सकते है। जनेवा-सम्मेलन के नये वातावरण मे इन विभिन्नताओ ने विश्व को और अधिक सरलता से साँस लेने और तात्कालिक युद्ध के भय से कुछ मुक्त होने के योग्य बनाया है।

यदि समय सिद्ध कर देता है कि रूस अपने नये दृष्टिकोणो के प्रति गम्भीर है, तो अमरीकी कूटनीति हम लोगो को एक अधिक स्थिर विश्व के निकट लाने मे कौनसा योग प्रदान कर सकती है? हमे कम-से-कम अपने मन में व्यवस्थित रूप से समझौते का स्वीकार्य आधार ठीक-ठीक समझ लेना चाहिए और यह भी समझ लेना चाहिए कि जानबूझ कर हम किन खतरो को औचित्य के साथ उठा सकते है और सोवियत इरादो को जाचने तथा जहाँ सम्भव हो, सच्चा और पारस्परिक समझौता करने के लिए कौनसा निश्चित उत्तर जिम्मेदारी के साथ दे सकते है। कम-से-कम एक बात तो निश्चित है। शीत युद्ध के तनाव को कम करने के उद्देश्य से हमारे प्रयत्नो के लिए बिना शर्त आत्म-समर्पण की नीति उतनी ही महँगी सिद्ध होगी, जितनी द्वितीय विश्वयुद्ध को समाप्त करने के हमारे प्रयत्न के लिए थी।

चूकि रूसी और अमरीकी कूटनीति प्रतिद्वद्वात्मक सह-अस्तित्व के युग में प्रवेश करती है, इसलिए उनमे से प्रत्येक तटस्थ विश्व के महान पचो के ध्यान और सहानुभूति के लिए स्पर्द्धा करेगा। वे पच हमारे उद्देश्यो के बारे मे निरन्तर हमारे कूटनीतिक व्यवहार के शुद्ध प्रभाव के आधार पर अनुमान लगाते रहेगे।

यदि हम जनमत को अपने विरुद्ध करने के खतरे पर घरेलू राजनीतिक उपभोग के लिए विभिन्न रूप धारण करने के लिए लालायित है, तो हमे ब्रिटिश राजनीतिज्ञ कासलरे की लार्ड लीवरपूल को वियना-काग्रेस के समय दी गयी विवेकपूर्ण सलाह को याद करना चाहिए। उन्होने कहा, "हमारा कार्य पुरस्कार एकत्र करना नही है, बल्कि विश्व को शान्तिपूर्ण प्रवृत्ति की ओर वापस लाना है।"

यदि हम अन्तरराष्ट्रीय मचो पर अभिमानपूर्ण बाते कहने के लिए लालायित है, तो हमें यह भी स्मरण रखना चाहिए कि, एक दूसरे ब्रिटिश कूटनीतिज्ञ ने

एक बार भिन्न, किन्तु उपयुक्त सदर्भ मे कहा था, "कूटनीति स्पष्टत. यह जानने मे है कि तुम क्या चाहते हो, तुम्हारा विरोधी पक्ष क्या चाहता है और यह प्रकट करने मे है कि जो कुछ वह चाहे, उसके शब्दो मे तुम क्या चाहते हो।"

जहाँ तक सभव हो, अन्य असाम्यवादी राष्ट्रो के साथ अपने मार्ग और व्याख्याओ को समन्वित करना आज अमरीका का एक अत्यावश्यक कूटनीतिक कार्य हो गया है। इस सम्बध मे हाल के वर्षो मे हमारा आलेख बहुत ऊँचा नही रहा है। अनौपचारिक रीति से ही सही, हमे अन्य सभी असाम्यवादी राष्ट्रो को अग्रिम विचारविमर्श के द्वारा अपने कूटनीतिक प्रयत्नो मे सम्मिलित करना अमरीकी कूटनीति का मौलिक रूप होना चाहिए। यदि उस समय सोवियत सघ या साम्यवादी चीन मार्ग मे बाधा प्रस्तुत करते है, तो हम अकेले ही उन प्रहारो को सहन करने के लिए नही रहेगे। पारस्परिक स्वीकृत उद्देश्यो की प्राप्ति मे हमारी असफलता तब समस्त स्वतत्र विश्व की सयुक्त असफलता होगी।

दूसरे रूप मे इसका अर्थ यह है कि जिन उद्देश्यो को हम प्राप्त करना चाहते हैं, उन्हे ऐसे शब्दों मे प्रस्तुत करना चाहिए जो अधिकाश यथार्थवादी व्यक्तियो को व्यावहारिक और उचित प्रतीत हो। उन्हे इस प्रकार प्रस्तुत नही करना चाहिए जिससे उसका स्पष्ट उद्देश्य सोवियत सघ अथवा साम्यवादी चीन को परेशान करना प्रतीत हो, बल्कि इस प्रकार प्रस्तुत करना चाहिए कि उसका उद्देश्य सहमति और समझौते को अधिक सरल बनाना और जहाँ सभव हो, साम्यवादी नेताओ को उनके उस दोहरे विचार की मनोवैज्ञानिक क्षमता से मुक्त करना प्रतीत हो, जिसके कारण वे अभी तक ऐसी बातें करते रहे है, मानो शान्ति और साम्यवादी विश्व-आधिपत्य एक ही उद्देश्य हो। हम अपनी नीति को अधिक स्पष्ट और व्यापक बना कर साम्यवादी नीति को स्पष्ट बनाने मे सहायता कर सकते है।

हमारे प्रमुख प्रस्तावो पर ध्यानपूर्वक विचार होना चाहिए, न केवल अपने मित्रो के साथ, बल्कि जहाँ तक सभव हो, उन सभी मुख्य राष्ट्रों के साथ जो वर्तमान संघर्षो से अलग रहना चाहते है। बातचीत की प्रक्रिया के सम्बध में सही भविष्यवाणी नही की जा सकती और अधिकतर यह उनकी योग्यताओ, व्यक्तित्वो और भावप्रवणता पर निर्भर करेगा जो नीति के विकास और उसके कार्यान्वय के लिए उत्तरदायी है।

× × ×

सोवियत लचीलेपन के नये युग के दौरान में अमरीकी कूटनीति का महत्वपूर्ण उद्देश्य नये रूसी दबाव के अन्तर्गत अपने योरोपीय मित्रो को बनाये रखना होगा। इन मित्रताओ का बडे महँगे दामो में निर्माण किया गया था और उन्हे और भी अधिक खर्च पर बनाये रखना चाहिए। फलस्वरूप हमे मतभेद की बातो पर और अमरीका तथा उत्तरी अटलाटिक के अन्य राष्ट्रो के बीच उत्तेजना पर विशेष ध्यान देना चाहिए।

योरोप के जो उदाहरण, मित्र राष्ट्रो के झगडो के मामलो को चित्रित करते है, जिनसे क्रेमलिन लाभ उठाने की आशा कर सकता है, उनमें निश्चय ही निम्नलिखित बाते सम्मिलित होगी :—

(१) ऊष्मान्यैष्टिक (Thermonuclear) अस्त्रो के इस युग में हमारे नाटो (NATO) के मित्रो की स्थिति भयानक रूप से खुली हुई है। उनकी भौगोलिक स्थिति ही उनकी कूटनीति के प्रमुख उद्देश्यो का निर्देशन करती है। यह एक ऐसा उद्देश्य है, जिसके कारण बहुतेरे अनुभव करते है कि अमरीका की अपेक्षाकृत कम खुली हुई स्थिति ने ही हमें विश्व-मामलो में तनाव को ढीला करने के प्राथमिक महत्व को कभी-कभी भूल जाने दिया है।

(२) गुप्त कूटनीति की दृढ और अनाटकीय प्रणाली और परराष्ट्र नीति के सचालन में व्यवसायवाद के अभ्यस्त, योरोपीय विदेश-मत्रालय अमरीकी नीति के अनिश्चित चढाव-उतार, नाटो के प्रति हमारी भक्ति, और याल्टा-पत्र जैसे प्रमाणपत्रो के एकपक्षीय प्रकाशन के चारो ओर नाचने के लिए तैयार रहते आये है।

(३) मैकार्थीवाद जैसे प्रभावो और मैकैरन (Mccarran) अधिनियम के कुटिल प्रयोग के कारण अनेक योरोपीय और एशियाई राजधानियो के समाचार-पत्रो मे अमरीकी रूप को बडे खतरनाक ढग से बिगाड़कर प्रकाशित किया गया है, यहाँ तक कि अमरीकी लोकप्रियता स्वय कभी-कभी ऐसी अनिश्चितताओ पर उलटे निर्भर प्रतीत होती है, जैसी माओ के चीन के प्रति उनकी दोस्ती और दुश्मनी की घटती-बढती मात्राएँ है।

(४) अनेक योरोपीय और असाम्यवादी एशियावासी सोचते है कि हाल के वर्षों मे वाशिंगटन के विपरीत, लन्दन ने उच्च नीति के निर्माण में सच्चाई का सामना करने की इच्छा और शान्तिपूर्ण यथार्थवादिता का उपयोग किया है। नेतृत्व के लिए वे अधिकाधिक ब्रिटेन की ओर देखते आ रहे हैं और हिन्दचीन तथा इ-डी-सी (E D.C.) के संकटो के दौरान में परराष्ट्र-

मंत्री के रूप में प्रधान मत्री ईडन के अन्तरराष्ट्रीय रक्षण-कार्य ने ब्रिटिश कूटनीति की प्रतिष्ठा कम करने के लिए कुछ भी नही किया। उसके दृढ आत्मविश्वास ने परराष्ट्र-विभाग के लिए अधिकाश विदेशी प्रेक्षको के मिश्रित विश्वास और विद्वेष को सुरक्षित रखा है। जुलाई १९५५ में जनेवा में राष्ट्राध्यक्ष आइसनहावर ने इस सन्तुलन को ठीक करना शुरू किया।

(५) योरोपियनो में सयुक्त राष्ट्र सघ को विरोधी स्वार्थों मे समझौता कराने के माध्यम के रूप में देखने का झुकाव है, जबकि हम कभी-कभी इसें केवल आक्रमण के प्रतिकार के माध्यम के रूप में देखते प्रतीत होते है। ये विभिन्नताएँ स्पष्टत सयुक्त राष्ट्रसघ मे लाल चीन तथा अन्य राष्ट्रो के प्रवेश के सम्बध में विपरीत दृष्टिकोणो मे प्रतिबिम्बित है।

हमारी सामरिक महत्व की सीमान्त रेखा के पीछे शान्ति और उन्नति के स्थिर ढाँचो के निर्माण के प्रयासो मे अमरीकी कूटनीति को जिन कार्यों का सामना करना है, विभेद की ये बातें उन्ही की द्योतक है।

सोवियत दबाव की ढिलाई के साथ पश्चिमी योरोप मे घरेलू दबाव, मित्र-राजनीति को अधिकाधिक अन्धकार में डालते जायेगे।

अडेनावर के एक बार 'चाँसलर' का पद छोडने पर जर्मनो का भविष्य अनिश्चित हो जायगा। शक्तिशाली अस्थिरता की उनकी शाश्वत राजनीतिक समस्या बिना समाधान के ही रह जाती है और योरोप के मध्य, विभाजित जर्मनी का खतरनाक प्रश्न हमेशा के लिए उलझा ही नही रहेगा।

नाटो (NATO) के सभी मित्रो के लिए परस्पर-मान्य कोई ऐसी सन्तोषप्रद व्यवस्था होनी चाहिए, जो फ्रास और इटली की अर्थव्यवस्थाओं के आवश्यक आधुनिकीकरण में और भी उचित पूजी लगाने की अनुमति दे सके। शीत युद्ध से शीत शान्ति की ओर परिवर्तन की सूचक इस अवधि मे इन दोनो देशो के नागरिको के लिए घरेलू आर्थिक समस्याएँ अधिकाधिक परराष्ट्र-नीति की प्राथमिकताओ को हटाने की ओर प्रवृत्त हो सकती हैं। फ्रान्स मे मकानो की विकट समस्या सरकारी उदासीनता को अब और अधिक नही सहेगी। दक्षिण इटली में भूमि-वितरण एक राजनीतिक समस्या है, जिस पर अविलम्ब तीव्र ध्यान देने की आवश्यकता है।

इस प्रकार के घरेलू दबावो और शीत-युद्ध के घटते खतरे के अन्तर्गत अमरीका प्रतिरक्षा के आर्थिक मूल्यो पर योरोपीय असन्तोष के प्रदर्शनो की अपेक्षा कर सकता है। आलोचक कहेगे कि जबकि उनके देश के साधनस्त्रोत अनन्त और

कम महत्वपूर्ण सैनिक कार्यक्रम मे नष्ट हो जाते है, तो अपने देश मे साम्यवादी नेतृत्व मे सामाजिक असन्तोष और भी अधिक गम्भीर होता जायेगा।

जिस हद तक वे उन सामाजिक और आर्थिक सुधारो का साहसपूर्वक समर्थन करते है, जो अधिकाश योरोप मे बहुत अर्से से पिछडे हुए है, उस हद तक योरोपीय सरकारो का मामला आकर्षक होगा। अनेक कुशल प्रेक्षक विश्वास करते है कि पश्चिमी योरोप मे साम्यवादी दलो के अन्तिम पतन के लिए जिसकी आवश्यकता है, वह है उत्पादन के फलो के उचित वितरण के लिए सुयोग्य, सच्चा और एक वामपक्षी प्रयत्न।

अमरीकी कूटनीति को इन नयी कार्रवाइयो को पहले से ही समझ लेना चाहिए और योरोप के क्रमिक राजनीतिक और आर्थिक एकीकरण को, जहाँ कही सभव हो, प्रोत्साहन देकर और अपने-आपको उस एकीकरण से, जहाँ कही और जितना भी उपयुक्त प्रतीत हो, कल्पनात्मक और रचनात्मक ढग से सम्बधित कर, उन्हे सयोजित कर लेना चाहिए। 'नाटो' के घोषणा पत्र की व्यापकता और दृष्टि स्वय उसे सैनिक खतरे के ह्रास के साथ बदलते हुए राजनीतिक दबावो को प्रतिबिम्बित करने की अनुमति देती है।

योरोप, अमरीका और उपनिवेशवाद

स्वय अपनी समस्याओ मे व्यस्त रहने के योरोप के अधिकार को कोई अस्वीकार नही कर सकता। उनके समाधान की शीघ्रता जितनी योरोप को है, उतनी ही प्राय अमरीका को भी है। परन्तु इस पर प्राय. बहुत अधिक बल नही दिया जा सकता कि विश्व-क्रान्ति हम सब पर दबाव डाल रही है और यह जिस प्रकार हमारी नीतियो को प्रभावित करती है, उसी प्रकार भीतर और बाहर से योरोपीय नीतियो को भी प्रभावित करती है।

क्रान्ति आन्तरिक रूप से उन सभी बहुमुखी और प्राय असन्तुष्ट माँगो मे परिलक्षित है, जिन्हे योरोप के कम साधनसम्पन्न लाग युद्ध-काल से ही अपनी सरकारो के समक्ष प्रस्तुत करते आ रहे है।

बाह्य रूप से यह जटिल व्यवस्था में परिलक्षित है, जिसे बाहरी ससार में योरोप के निहित स्वार्थों को उपनिवेशवाद के ह्रास के प्रत्युत्तर मे बनाना पडा या बनाने में असफल होना पडा। इस 'महान सगठन' को बनाये रखने के हमारे प्रयत्नो के सदर्भ मे उपनिवेशवाद के प्रति योरोपीय दृष्टिकोण अमरीकी

कूटनीति के लिए प्रथम कोटि की एक और समस्या प्रस्तुत कर देता है।

हम पहले ही औपनिवेशिक जगत मे अपनी नीति के प्रति अमरीकी क्रान्ति-कारी परम्परा की उपयुक्तता पर बल दे चुके है। कार्लोस रोम्यूलो ने चुनौती को मोटे ढग से व्यक्त किया, "क्रान्ति का शिशु अमरीका, अपनी क्रान्तिकारी परम्परा को एशिया मे जाते देखकर भूलचूक से भी उसे सोवियत रूस के हाथो मे जाने देना सहन नही कर सकता।"

उन्होने आगे कहा, "एशिया के हृदय के और समीप पहुँचने के लिए अमरीका को अपने हृदय का और भी उपयोग करना चाहिए। वाशिंगटन, जेफर्सन, लिंकन और फ्रैंकलिन डेलानो रूजवेल्ट की स्वतत्रताप्रेमी, उदारचेता और गभीर मानवीय भावना से प्रेरित अमरीका के प्रति एशियावासी सामजस्य और सहानुभूति के साथ व्यवहार करेगे। दूसरी ओर, उस अमरीका की अपेक्षा उन्हे और कोई भी इतने निश्चित रूप से नही निकाल फेकेगा, जो लापरवाही से अपने योरोपीय साथियो के पापो से अपने कुल की प्रतिष्ठा को कलकित होने देता है।"

हमें सचमुच यह नही भूल जाना चाहिए कि प्रमुख औपनिवेशिक शक्तियाँ—फ्रान्स और ब्रिटेन—ने दक्षिणी महाद्वीपो मे परिव्याप्त क्रान्ति का सरक्षण किसी भी हालत में अमरीका से कम नही किया।

"स्वतत्रता, समानता, बन्धुत्व" फ्रान्सीसी क्रान्तिकारी मूल का ऐतिहासिक नारा है और इसे इसके जन्मदाता राष्ट्र के साथ ऐसा सम्बद्ध कर दिया गया है कि सर्वत्र सभी लोगो ने समझ लिया कि जैफर्सन के इस कथन का क्या अर्थ था, "प्रत्येक मनुष्य के दो देश है, एक स्वय अपना और दूसरा फ्रान्स।"

ऐसे समय में भी, जबकि फ्रान्स की औपनिवेशिक नीतियाँ प्राय दुखद ढंग से अयोग्य और ह्रासोन्मुख प्रतीत होती है, यह याद रखना आवश्यक है कि फ्रान्स कभी विश्व-क्रान्ति की प्रेरणा का केन्द्र था। फ्रान्सीसी सविधान-सभा के सम्मुख उपस्थित होने के लिए जब विदेशी आमत्रित होते थे, तब "मानव जाति के प्रवक्ता" के रूप में परिचित कराये गये प्रसियन अनाकार्सिस क्लूट्स ने बडी उत्तेजना के साथ कहा, "जब मै ससार के नक्शे पर दृष्टि डालता हूँ, तो मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि अन्य सभी देश लुप्त हो गये है और राष्ट्रो के पुनरुद्धारक के रूप में केवल फ्रान्स ही दृष्टिगोचर होता है।"

यदि फ्रान्स हिन्दचीन और उत्तरी अफ्रीका के दिवालिये उपनिवेशवाद में कही अपनी परम्परा की अवहेलना करता प्रतीत होता है, तो भी आज सैगोन

और कासाब्लाका की क्रान्तिकारी पुस्तको की अलमारियो में फ्रान्सीसी परम्परा व्यगात्मक प्रेरणा के रूप में प्राप्त हो जायगी और फ्रान्सीसी औपनिवेशिक नीति के निरुत्साहित करने वाले पक्षो के बावजूद, हमको हमेशा याद रखना चाहिए कि फ्रान्सीसियो पर जातिवाद का दोषारोपण कभी नही किया गया।

नयी विश्व-क्रान्ति की आशाओ के साथ अग्रेजी राजनीतिक व्यवहार का क्रमिक एकीकरण फ्रान्सीसी क्रान्तिकारी परम्परा की अपेक्षा कम नाटकीय, किन्तु कही अधिक सुदृढ रहा है।

यदि अमरीकियो को इगलैड के विरुद्ध अपने आदर्श—औपनिवेशिक विद्रोह का गर्व है,तो उन्हे याद रखना चाहिए कि वे उस समय की अपेक्षा 'कभी अधिक अग्रेज' नही थे, जब कि उन्होने 'क्रोधान्वित होकर अपने विरोधो को लिखा' और अपने चरणो से इगलैण्ड की धरती को इस प्रकार प्रकम्पित कर दिया कि सारा ससार उसे देख सके; अथवा जब उन्होने हैम्पडन का पुराना नारा "बिना प्रतिनिधित्व के कोई कर नही' बुलन्द किया था, और जब उन्होने बोस्टन के बन्दरगाह में चाय पाट दी थी।

ब्रिटिश कूटनीति की सफलताओ मे विश्व के वर्तमान मामलो का वह अनुपम पक्ष है जो स्वतत्रता के साथ बढने वाले 'कामनवल्थ' में दिखायी देता है, जिसका नाम भी इगलैण्ड के इतिहास मे क्रामवेल के प्रारम्भिक क्रान्तिकारी अध्याय से लिया गया है। ब्रिटिश राजनीतिक विचारधारा में यह अर्वाचीन, प्रगति दक्षिणी एशिया, सूडान और गोल्डकोस्ट से अपने 'रचनात्मक राजत्याग' में प्रयुक्त ब्रिटेन के लोकतात्रिक सिद्धान्तो में परिलक्षित है।

युद्धोतर कालीन ब्रिटिश नीति की निपुणता और विवेकशीलता के सम्बध में यह स्पष्ट करने के लिए काफी कहा जा चुका है कि औपनिवेशिक समस्या को एक दुराग्रही साम्राज्यवादी शक्ति के विरुद्ध पवित्र विद्रोह के सरल प्रश्न में परिणत नही किया जा सकता। साम्राज्य से 'कामनवेल्थ' मे सक्रमण, समय के अनुसार न केवल शिष्टतापूर्ण ढग से हटने की नीति है, बल्कि परामर्श और सहयोग की स्वीकारात्मक नीति है।

ब्रिटिश-परराष्ट्र विभाग द्वारा राष्ट्रमण्डल के दक्षिणी एशियाई सदस्यो के विचारो पर ध्यान दिये जाने और कोलम्बो-योजना के महान सयुक्त आर्थिक प्रयीस मे इसका जितना सुदर उदाहरण मिलता है, उतना अन्यत्र कहीं नही मिलता। हमको सचमुच मान लेना चाहिए कि इस स्थिति में औपनिवेशिक सत्ता के लिए एक नये पद की व्यवस्था निहित है, जैसा कि यह भूतपूर्व उपनिवेशो

के लिए करती है।

फिर भी, औपनिवेशिक उन्मूलन की गति, जो अनिवार्यत भविष्य के गर्भ में है, योरोप से प्रारम्भ नही होगी। हम देख चुके है कि अपार अमरीकी सहायता से समर्थित फ्रान्स की सारी शक्ति भी हिन्दचीन पर युद्धोतर आधिपत्य बनाये रखने मे अपर्याप्त सिद्ध हुई, समृद्धिशाली ईस्ट इण्डीज पर अपने अधिकार को बनाये रखने के लिए युद्ध को नीदरलैण्ड ने हानिकारक समझा और ब्रिटेन ने अनेक रक्तपातपूर्ण गृह-युद्धो को उसी गौरव और चतुराई से बचाया, जिससे उसने भारत, पाकिस्तान, लका और बर्मा से अपने-आप को निकाला।

शेष औपनिवेशिक क्षेत्र अमरीकी नीति-निर्माताओ को चुनौती प्रस्तुत करते हैं, जिसका सामना अवश्य करना चाहिए, यद्यपि अभी तक उसका सामना नही किया गया है। अमरीकी यात्रियो से, जो अपने देश मे राजनीतिक आन्दोलनो के समय पिछलग्गू राष्ट्रो की 'मुक्ति' की बाते सुनने के आदी हैं, अफ्रीकी कभी-कभी बडी कटुता के साथ पूछते है, "हम से क्यों नही शुरू करते?"

एशिया में भी मैंने लोगो को कहते सुना हैं, "यदि तुम अमरीकी रूस के आधिपत्य से राष्ट्रो को मुक्त करने का प्रयत्न करते हो, तो उसका परिणाम युद्ध हो सकता है, परन्तु इससे दुगुने लोग तुम्हारे 'नाटो' के साथियो के औपनिवेशिक आधिपत्य से मुक्त होने के लिए प्रतीक्षा कर रहे है। वहाँ युद्ध का कोई खतरा नही होगा और तुम्हारा प्रभाव भी निर्णायक सिद्ध हो सकता है। क्या काले अफ्रीकियो का गोरी चमडीवालो की अपेक्षा तुम्हारी मुक्तिदायिनी अन्तरात्मा पर कम प्रभाव है?"

उपनिवेशवाद की समस्या पर यह सदिग्ध ही है कि हिन्दचीन के नाटकीय पाठ को गम्भीरतापूर्वक ग्रहण किया गया है। मई, १९५५ में सिनेट की परराष्ट्र-सम्बन्ध-समिति के समक्ष अपने बयान मे मैंने कहा कि, एशिया और अफ्रीका में हमारी सद्भावनाओ को तब तक स्वीकार नही किया जायेगा, जब तक हम उपनिवेशवाद के सम्बध मे अपनी स्थिति स्पष्ट नही कर देते।

सामान्य सहमति में सिर तो हिले, परन्तु एक सिनेटर बोल उठा, "हाँ; किन्तु क्या यह सचमुच एक वादाविवादात्मक प्रश्न नही हैं? योरोप अपने उपनिवेशों से चिपके रहने के लिए कृतसकल्प है और हमारी स्वय की सुरक्षा-प्रणाली योरोप और नाटो से सम्बद्ध है। उपनिवेशवाद के विरुद्ध यदि हम स्वतन्त्र-स्थिति ग्रहण करते है, तो हमारी सारी सैनिक सुरक्षा-प्रणाली टूट कर खण्ड-खण्ड हो जायेगी।"

इससे यह सकेत मिलता है कि, सभी प्रश्नो पर एकता स्वय एक उद्देश्य बन गयी है, और चाहे जो भी हो, हर हालत में किसी-न-किसी प्रकार उपनिवेशो पर अधिकार रखने वाले साथियो के विचारो को हमें स्वीकार करना पडेगा, यद्यपि इसके कारण एक ऐसी समस्या पर अपने सिद्धान्तो को हमें त्यागना पडेगा, जहाँ समझौता, चाहे वह कितना ही सोद्देश्य क्यो न हो, स्वतत्र विश्व के लिए अत्यन्त मँहगा सिद्ध हो चुका है।

यदि हमसे सचमुच यही अपेक्षित है, तो पश्चिमी सभ्यता का भविष्य निश्चय ही अन्धकारपूर्ण है। हमारी भूल से आगामी वर्षों मे सोवियत सघ और साम्य-वादी चीन 'गरीबो की दुनिया' का नेतृत्व प्राप्त कर लेंगे। सभ्यता पर वर्ग की अनिर्णीत समस्या के घातक प्रभाव सम्बधी टायन्बी की चेतावनी नाटकीय महत्व प्राप्त करेगी।

परन्तु यह भी एक ऐसी धारणा रखती है, जिसे कोई भी विचारशील अमरीकी, जो योरोप की अतीतकालीन सफलताओ और मौलिक शक्ति को समझता और उनका आदर करता है, इसे तुरन्त स्वीकार नही कर सकता और सामान्यतः न तो फ्रान्सीसी और न योरोपीय अर्वाचीन इतिहास के स्पष्ट पाठ को सीखने मे समर्थ हैं।

आगामी वर्षों मे अमरीकी कूटनीति का प्रमुख कार्य होशियारी, विवेक, बुद्धि और समझदारी के साथ, उस सामञ्जस्य को सरल बनाना है, जो औपनिवेशिक शक्तियो के बीच स्पष्ट रूप से होना चाहिए। यह विचित्र बात है कि इसी साम-ञ्जस्य पर स्वय योरोप की भावी महत्ता अधिकतर अवलम्बित है।

अनेक योरोपीय, जो अपने अतीत के सम्बध में बहुत क्षुब्ध हो कर बोलते है, यह मान लेते है कि वर्तमान सह्य हो सकता है, किन्तु उन्हे यह विश्वास-सा हो गया है कि भविष्य मे यह असभव होगा। फिर भी, यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि कुछ परिस्थितियो के अन्तर्गत योरोप भविष्य की ओर दायित्वपूर्ण नवीन आशा से देख सकेगा। वे परिस्थितियाँ अफ्रीका के घटना-चक्र पर अधिक-तर निर्भर हो सकती है, जो क्रान्ति का आगामी महाद्वीप है।

उदाहरण के लिए, बैल्जियम अपने अधिकार की सीमा में ८० लाख प्रबल और सुयोग्य जनता के साथ एक छोटा राष्ट्र है। परन्तु कागो के साथ, जो क्षेत्र में संयुक्त राज्य अमरीका का आधा है और जहाँ तक हम जानते है, साधनस्त्रोतो में भी हमारा आधा है, साझीदारी में बैल्जियम अन्ततोगत्वा एक प्रमुख शक्ति के रूप में प्रकट हो सकता है।

फिर भी, बैल्जियम जब तक कागो के एक करोड बीस लाख अफ्रीकियो के साथ साझीदारी नही करता, तब तक उसको यह अधिकार प्राप्त नही हो सकेगा। सर्वदा यही ध्यान रखना पर्याप्त नही होगा कि अफ्रीकावासियो को पेट भर भोजन मिले, अच्छे कपडे मिले, अच्छा वेतन मिले और उनकी ओर काफी ध्यान दिया जाय। कभी-न-कभी वे समान राजनीतिक अधिकार के गौरव की माँग करेगे और इस माँग को पूरा करना ही पडेगा।

अनेक विचारशील बैल्जियमवासी इसे समझते है। २२ जून, १९५५ को सानफ्रेन्सिस्को मे सयुक्तराष्ट्र-सम्मेलन मे, बैल्जियम के परराष्ट्र-मत्री, पाल हैनरी स्पार्क ने कहा, "इस सम्मेलन ने मुझे पूर्ण रूप से विश्वास दिला दिया है कि, अपने तमाम स्वाभाविक परिणामो के साथ सभी जातियो की पूर्ण समानता सत्य बन गयी है। इसे स्वीकार न करने वाला कोई भी समकालीन राजनीतिज्ञ अनेक भूले करेगा।"

अफ्रीका, ढाई करोड लोगो और फ्रासीसी पश्चिमी अफ्रीका, मोरक्को, ट्यूनिशिया और अल्जीरिया के प्रचुर साधन-स्रोतो के साथ, विस्तारशील रचनात्मक साझेदारी के लिए फ्रास को वैसा ही अवसर प्रदान करता है।

ऐसे कार्यक्रमो को विकसित करना निश्चय ही योरोपीय और अमरीकी कल्पना के साधन-स्रोतो के परे नही हो सकता, जो विभिन्न औपनिवेशिक स्थितियो की जटिलताओ को ध्यान मे रखते है और साथ ही शीघ्र स्वराज्य के प्रति असन्दिग्ध वचन का प्रतिनिधित्व करते है। हमने फिलीपाइन्स मे यही किया। ब्रिटेन ने भी दक्षिणी एशिया मे ऐसा ही किया और अब वह सूडान और पश्चिमी अफ्रीका मे कर रहा है। यदि अपेक्षित सद्भावना और सयम के समाधान औपनिवेशिक जगत मे अन्यत्र नही विकसित किये जा सके, तो एक बात निश्चित है। भारत, बर्मा, लका और फिलीपाइन्स के अभिवचन के बजाय अटलाटिक राष्ट्रो को अन्त मे एक विश्वव्यापी आपदा का सामना करना पडेगा, जो अपनी जटिलताओ मे हिन्दचीन के सकट से भी कही अधिक विनाशकारी होगी।

× × ×

इस बात को परस्पर समझना चाहिए कि हमारी स्थिति अपने अटलाटिक साथियो की स्थिति से कभी-कभी भिन्न होती है। गम्भीर विचारविमर्श के बाद जब हममे विश्वास हो जाय कि वे आज के विश्व की यथार्थताओ से दूर है, तो हमे उनसे असहमत होने मे झिझकना नही चाहिए। अतीत मे उनकी स्थिति को

स्वीकार कर लेने की हमारी स्पष्ट तत्परता ने, चाहे कितने ही अनमने मन से क्यो न हो, एशिया, और अफ्रीका मे तथा अन्यत्र, हम पर गहरा आघात किया है।

हम अमरीकियो को चाहिए कि, औपनिवेशिक जनता हमारे जिस सार्वजनिक रूप को देखती है, उसे बलपूर्वक और सार्थक ढग से बदल दे। हमे अपनी उपनिवेश-विरोधी परम्परा को पुन स्थापित करने के लिए प्राय उपस्थित होने वाले अवसरो को ग्रहण करना चाहिए। हमारे कूटनीतिक व्यवहार को यथासम्भव स्पष्टरूप से यह प्रदर्शित कर देना चाहिए कि हम ईमानदारी और गम्भीरता के साथ उस सिद्धान्त के प्रति कृतसकल्प है, जिस पर हमारे राष्ट्र की रचना की गयी थी और वह यह कि सभी राष्ट्र उचित रूप से योग्य हो जाने पर लोकतात्रिक स्वराज के पात्र बन जाते है।

जिन नीतियो को हम स्वीकार करे, उन्हे साथ-ही-साथ पूर्णतया दायित्वपूर्ण और सुदक्ष होना चाहिए और उन दशाओ की वास्तविकताओ के अनुरूप होना चाहिए, जो आज अफ्रीका और योरोप दोनो मे विद्यमान है। मेरा सुझाव है कि अवशिष्ट औपनिवेशिक महाद्वीप, अफ्रीका के लिए हमारी नीतियो के रूप मे कम-से-कम निम्नाकित बाते होनी चाहिएँ —

(१) हमे इस तथ्य से प्रारम्भ करना चाहिए कि अफ्रीका पर हमारा नियत्रण नही है, न हम नियत्रण चाहते है और एक मर्यादा के अन्तर्गत ही हम वहाँ कुछ कर सकते है।

(२) अपने योरोपीय मित्रो को उनके औपनिवेशिक ढगो पर शानदार भाषण सुनाये बिना और अफ्रीकी लोगो को प्रसन्न करने के लिए जनरजक नेतृत्व का प्रदर्शन किये बिना, हमे स्वतत्रता सम्बन्धी प्रत्येक व्यवस्थित और दायित्वपूर्ण प्रस्ताव के पीछे अपना व्यक्तिगत एव सार्वजनिक प्रभाव डालना चाहिए।

(३) अपनी दीर्घकालीन खिन्नता के बाद अफ्रीकी स्वय शासन की दिशा में अपनी गति का निर्णय भले या बुरे के लिए करेगे। फिर भी यदि अमरीकी अफ्रीकावासियो को यह विश्वास दिलायें कि ज्यो ही वे व्यवस्था करने योग्य हो जायेगे, हम ईमानदारी के साथ उनकी स्वतत्रता का समर्थन करेगे, तो हम उन अफ्रीकियो की माँगो को मर्यादित करने मे सहायता करने की स्थिति मे हो जायेंगे, जो आज अपनी योग्यता से अधिक अधिकारो की माँग कर रहे है।

(४) भारत, पाकिस्तान, फिलीपाइन्स और बर्मा की भाँति, यदि गोल्ड कोस्ट, नाईजीरिया और सूडान व्यवस्थित और प्रजातात्रिक ढग से स्वतत्र

राष्ट्रो के रूप में विकसित हो सकते है, तो जो यह ईमानदारी के साथ विश्वास करते है कि अफ्रीकावासी निकट भविष्य मे अपना शासन नही चला सकते, उन्हे अपने विचारो में सशोधन करने के लिए विवश होना पडेगा। इन नयी उत्पन्न होनेवाली, स्वतत्र पश्चिमी अफ्रीकी सरकारो की सफलता के आश्वासन में सहायता के लिए अमरीका जो कुछ भी कर सकता है, उससे इस रचनात्मक उद्देश्य का हित होगा। इसके लिए हमारी सरकार से न केवल आर्थिक सहायता की आवश्यकता है, बल्कि हमारी गैर-सरकारी एजेंसियो से भी, जिनमें फाउण्डेशन और चर्च भी सम्मिलित है, कल्पनाशील और दक्षतापूर्ण सहायता की आवश्यकता होगी।

(५) इसीलिए मिस्त्र, लीबिया, इथिओपिया और लाईबेरिया जैसे स्वतत्र अफ्रीकी राष्ट्रो की हमें उदारतापूर्वक सहायता करनी चाहिए। उनकी प्रगति औरो की उन्नति की गति का निर्णय करने मे सहायक होगी।

(६) अफ्रीका में किसी आर्थिक कार्यक्रम के समर्थन की स्वीकृति के पूर्व हमें इस बात की खूब छानबीन कर लेनी चाहिए कि उससे सभी जातियो को पूर्ण अवसर प्राप्त होते है, या नही। अफ्रीका में यदि हम योरोपियो की बची-खुची औपनिवेशिक श्रेष्ठता या दक्षिणी अफ्रीका मे जातिवाद के साथ परोक्षरूप से भी अपने आप को मिला देते है, तो हमारे प्रयत्न निष्फल होगे।

(७) विदेश-विभाग की ओर से हमे अफ्रीका को कही अधिक ऊँची प्राथमिकता प्रदान करनी चाहिए। आज अफ्रीका में हमारे मुठ्ठी भर कूटनीतिक कार्यालय हैं। १९५५ मे, यद्यपि मै व्यक्तियो की योग्यता और सच्चाई से प्रभावित हुआ था, तथापि अधिकाश के पास अत्यधिक कार्य हैं और वे इतने बड़े क्षेत्र के लिए उत्तरदायी हैं, जिसको सँभाल सकना उनकी शारीरिक सामर्थ्य के परे हैं।

(८) विदेश-विभाग और सयुक्त राज्य अमरीका के सूचना-अभिकरण के लोगो को बताया जाना चाहिए कि उनके कार्य का प्राथमिक उद्देश्य अफ्रीकियो के साथ घनिष्ठ सौमनस्य तथा कार्य-सम्बन्ध विकसित करना है, न कि केवल शीर्षस्थ योरोपियो के लघु शासक-वर्ग से सम्बध स्थापित करना। अफ्रीका में हमारे सूचना-प्रयासो को भौतिक दृष्टि से बढाना है और उन्हें अफ्रीकावासियो तक पहुँचाने पर अपना ध्यान केंद्रित करना है।

(९) स्वय सयुक्त राज्य अमरीका मे आज अफ्रीकी मूल के १ करोड ६० लाख अमरीकी है। सरकारी और गैर-सरकारी दोनो ही हैसियत से, अफ्रीका

के लिए अमरीका के इन पुत्रो की अपेक्षा, जो अफ्रीका के ही पौत्र-प्रपौत्र है, अधिक अच्छे राजदूत, व्याख्यानदाताओ, अध्यापको, सरकारी कर्मचारियों और धर्मप्रचारको के रूप में हमें नही मिल सकते।

(१०) अमरीकी विश्वविद्यालयो में अफ्रीकी अध्ययन को अत्यन्त उच्च प्राथमिकता प्रदान करनी चाहिए।

(११) राजनीतिक अधिकारो के, प्रथम स्थानीय, फिर क्षेत्रीय, फिर राष्ट्रीय दृढ विकास के लिए आवश्यक, एक अफ्रीकी घोषणा-पत्र के निर्माण को प्रोत्साहन देना चाहिए, जिसमें स्वतंत्रता की दिशा में प्रगति की गति का सुझाव देने के लिए एक कार्यक्रम हो। जब जनवरी, १९५५ में संयुक्त राष्ट्रीय ट्रस्टीशिप परिषद की एक उप-समिति ने, जिसमें एक अमरीकी सदस्य भी था, इस प्रकार का एक कार्यक्रम रखा, तब ब्रिटेन, बैल्जियम, पुर्तगाल और फ्रास की ओर से तत्काल और स्पष्ट विरोध हुआ।

फिर भी, यही स्थिति है, जिसका आने वाले वर्षों में सामना करने के लिए हममें साहस होना चाहिए। हमे व्यावहारिक मर्यादाओ के अन्तर्गत अन्तिम स्वतत्रता की दिशा में अफ्रीकी प्रगति के विकास को सगठित, परस्पर सम्बन्धित और प्रोत्साहित करने के साधन के रूप में सयुक्त राष्ट्र-सघ का समर्थन करना चाहिए।

अफ्रीकी नीति के समस्त विचार-विमर्श में एक बात स्पष्ट है कि अमरीकी कूटनीति को अब समझना चाहिए कि अफ्रीका में मौलिक शक्ति के स्रोत अफ्रीकियो के साथ है, न कि उनके योरोपीय शासको के साथ। अन्त में सामरिक दृष्टि से महत्वपूर्ण इस विशाल महाद्वीप की जनता निर्णय करेगी कि उनके सामरिक महत्व के धातुओ को कौन प्राप्त करे। सम्पूर्ण कूटनीतिक प्रयास में इसी बात पर अधिक बल है।

शक्ति के ध्रुव

योरोप में हमें बहुत पहले से मालूम है कि जनता और उद्योग के प्रमुख केन्द्र हमारे नीति-निर्माण में प्राथमिक महत्व के थे। जब तक फ्रान्स और पश्चिमी जर्मनी दोनो को शामिल करने वाली एक योरोपीय प्रतिरक्षा-प्रणाली नही बन गयी, तब तक हमने प्रतीक्षा की और धैर्य के साथ कार्य किया। हमने यह देख लिया है कि यही पाठ शीघ्र ही अफ्रीका के बिल्कुल भिन्न सदर्भ में भी

लागू होना चाहिए।

एशिया मे इसी मौलिक सिद्धान्त के प्राथमिक महत्व की अब और अवहेलना नही की जा सकती। आवश्यकता पडने पर यद्यपि समस्त असाम्यवादी एशिया की रक्षा करनी चाहिए और उसके अपने लोकतान्त्रिक विकास मे प्रोत्साहन प्रदान करना चाहिए तथापि प्रबल असाम्यवादी शक्ति के सच्चे ध्रुव भारत और जापान है। उन दोनो मे मिला कर ४५ करोड ५० लाख लोग है, जो विश्व की जनसख्या का २० प्रतिशत है। चीन की ५८ करोड २० लाख मानव-शक्ति के प्रति-सन्तुलन मे यही प्रभावशाली एशियाई मानव-शक्ति है।

एशिया के ७५ प्रतिशत औद्योगिक उत्पादन और लाखो कुशल और निपुण मजदूरो तथा भारत मे प्रचुर मात्रा मे प्राकृतिक साधनो के साथ, भारत और जापान चीन के लिए एकमात्र प्रभावशाली एशियाई औद्योगिक प्रति-सन्तुलन है। अपने दीर्घकालीन धार्मिक और सास्कृतिक परम्परा और हाल के वर्षों में गाधी द्वारा गतिशील नवजीवनप्राप्त भारत, एशिया मे चीन के लिए कहीं अधिक महत्वपूर्ण आध्यात्मिक और सैद्धान्तिक प्रति-सन्तुलन है।

सामरिक महत्व की दृष्टि से अवस्थित भारत और जापान तथा अपने बीच सामान्य आधार प्राप्त करने के लिए हमारे प्रयत्नो को बढाने मे ये बातें प्रोत्साहन दे सकती है। एशिया मे अपने अन्य सभी वचनो का पालन करते हुए हमें इन दो राष्ट्रो के प्रति विशेष प्राथमिकता का दृष्टिकोण पैदा करना चाहिए, जिनके बिना स्वतत्र और स्थिर एशिया असभव है।

चीनी धरती से च्यागकाई शेक के भगाये जाने के बाद से हम जिन नीतियो का पालन करते आये है, उनके बल मे इससे कुछ परिवर्तन होता है। हमारी प्राथमिक सामरिक कूटनीति फारमोसा, दक्षिणी कोरिया, फिलीपाइन्स, स्याम और पाकिस्तान पर आधारित है, जिनकी कुल आबादी एशिया की जनसख्या की केवल १२ प्रतिशत है। हमने प्राय भारत, बर्मा और हिन्देशिया की स्वतत्र नीतियो के प्रति, यदि क्षोभ का नही, तो उदासीनता का व्यवहार किया है। कभी-कभी यही उदासीनता जापान के प्रति भी प्रकट हुई है।

फिलीपाइन्स मे सुधारवादी, लोकप्रिय प्रजातान्त्रिक शासन प्रगति कर रहा है और पाकिस्तान मे लोकतान्त्रिक सदभावना वाले व्यक्तियो के अन्तर्गत वहाँ की सरकार अपने राजनीतिक आधार को व्यापक बनाने का सच्चा प्रयत्न कर रही है। परन्तु सामान्यत. अमरीकी समर्थन के लिए किसी शासन की विशेषताओ को जाँचने की कसौटी साम्यवाद के विरोध की उसकी इच्छा और हमारे नेतृत्व

की स्वीकृति रही है। यदि कभी उन पर विचार हुआ भी है, तो इसके अनुसरण, स्थिरता और राजनीतिक प्रणालियो को गौण स्थान प्रदान किया गया है।

एशिया में उन झण्डियो की पंक्ति, जिन्हे हमारे सैनिक मानचित्रो पर हमारे साथ सैनिक सन्धि करने वाले देशो की घेरेबन्दी दिखाने के लिए लगाया गया है, एक आकर्षक गृहद्वार का रूप प्रदर्शित करती ह। परन्तु इन सरकारों में से कोई भी यदि क्रान्तिकारी एशिया की चुनौती का सामना नही करती और अपने घर को व्यवस्थित नही बनाती, तो वह युद्ध में कब तक जीवित रह सकती है?

भारत, जैसा कि हम देख चुके है, अपनी लडखडाती हुई समस्याओ का समाधान लोकतात्रिक नेतृत्व, अनुनय-विनय, समझौता और आयोजना की प्रणाली के माध्यम से उपलब्ध पूर्ण क्रान्ति के द्वारा करने का प्रयत्न कर रहा है। इस प्रयत्न की अधिकाश अमरीकियो ने, जिन्होने इसे देखा है, प्रशसा की है और परिणामो में, भारत के मौन किन्तु स्पष्टत-प्रत्यक्ष प्रतिद्वदी चीन के साथ उसकी अनुकूल तुलना प्रस्तुत की हैं।

तथापि शेष राजनीतिक और आर्थिक समस्याएँ, जिन पर पिछले प्रकरणो में विचार हो चुका है, बहुत कठिन हैं। इन समस्याओ के समाधान में भारत की सफलता या विफलता पर अन्ततोगत्वा दक्षिणी एशिया और मध्यपूर्व के सभी देशो की स्थिरता निर्भर करती है।

जो भी एशिया के नक्शे, लोगों और साधनो का अध्ययन करता है, वह इस बात को मानेगा कि भारत की अवहेलना करना, नेहरू के भाषणो पर निराश होकर तथा भारत को तटस्थतावादी कह कर उसकी निन्दा करना, और बात को वही छोड़ देना खतरनाक और असामयिक होगा। यदि हमारे पेशेवर 'वास्तविकतावादी' भी लोकतात्रिक आस्था की भारतीय भावना और हमसे ही उधार लिये विचारो एव सिद्धान्तो पर उसके जोर देने की उपेक्षा करते हैं और यदि वे पूरी बात अकात्मक भौगोलिक राजनीति के आधार पर उनके सकीर्णतम अर्थ में रखते हैं, तो क्या वे एक क्षण के लिए भी सोचते है कि स्वतंत्र भारत के बिना अधिकाश स्वतत्र एशिया कैसे जी सकता है?

आन्तरिक समस्याओ के दबाव अथवा अन्य कारणो से चीन धीरे-धीरे विश्व के मामलो में अपने दृष्टिकोण को सशोधित कर सकता है। यदि ऐसा है तो भारत इस सशोधन के जल्दी हो जाने मे कुछ सहायता कर सकता है। इस बीच जब कि नेहरू, वाशिंगटन की विदा के समय दी गयी चेतावनी कि

साम्राज्यवादी शक्तियो के साथ स्थायी गठबन्धन से बचना चाहिए की अपनी एक आधुनिक व्याख्या करते है, हमें अपने रक्तचाप को नियत्रित रखना चाहिए।

जिस प्रकार हम लोगो ने आज से १३० वर्ष पहले मनरो-सिद्धान्त के द्वारा दक्षिणी अमरीका में सुरक्षा पैदा करने में सहायता की, उसी प्रकार यदि भारत अपने पास के दो महत्वपूर्ण क्षेत्रो मध्यपूर्व और दक्षिणपूर्व एशिया में सुरक्षा पैदा करने के दायित्व को समझ लेता है, तो हमारे हितो की वृद्धि ही होगी। हमें इस बात को कभी भी नही भूलना चाहिए कि हमारा सच्चा हित एशिया के राष्ट्रो को आँख मूँद कर अपने नेतृत्व में बाध लेने मे नही है, बल्कि उन्हें अपने ढग से इस प्रकार अपना स्वदेशी विकास और गतिशील शक्ति उत्पन्न करने में प्रोत्साहन देने में हैं, जो प्रत्यक्ष आक्रमण अथवा विध्वस के साम्यवादी कुचक्रो को निरुत्साहित करेगा।

यदि विश्व-साम्यवाद अगले दशक में भी उतना ही आक्रमक बना रहता हैं, जितना वह १९४५ से १९५५ तक था, तो भारत, बर्मा और हिन्देशिया अन्त में खतरे के प्रति जागरूक हो जायेगे और स्पष्ट विरोध की नीति अपनाने के लिए तैयार हो जायेंगे। जैसा कि सभव प्रतीत होता है, यदि १९५५ का सोवियत विघटन जारी रहता है, तो हमारी कूटनीति की परीक्षा और भी कठिन हो जायेगी।

जापान में हमारी कूटनीति की परीक्षा कुछ भिन्न मापदण्डो से होगी। वहाँ हमारे पास सैनिक समझौते है, जिन पर हमे गहरा विश्वास हैं। जापानी धरती पर हमारे हवाई अड्डे हैं, जिनकी रक्षा १९५५ तक अमरीकी स्थल-सेना ने की थी। कोरिया युद्ध के समय जापान हमारा आवश्यक शस्त्रागार और कार्रवाइयो का आधार था।

परन्तु जो नीति-निर्माता, यह मानते है, कि अगले दशक में हम जापान द्वारा अमरीकी नीति के किसी-न-किसी प्रकार के अनुसरण पर निर्भर कर सकते हैं, वे विशेषत. खतरनाक किस्म के सपने देखा करते हैं। हमारे अड्डे विजित द्वारा विजयी को दिये गये हैं। यह दबाव बडी होशियारी का और जापान की प्रतिरक्षा के हित में था; परन्तु साथ ही यह एक विदेशी दबाव था और अधिकांश जापानी उसे वैसा ही समझते थे। भारत की भाँति जापान भी आणविक युद्ध के खतरो से बचने के लिए अत्यधिक लालायित है।

जनरल मैकार्थर ने एक बार कहा था, "जापानी यथार्थवादी हैं और एक अति भयानक अनुभव द्वारा व्यापक सर्वनाश के भयकर प्रभाव को अकेले वे ही

जानते है। दो महान विचारधाराओ के बीच सिद्धान्तहीन की भाँति फँसे हुए, वे अपने सीमित भौगोलिक क्षेत्र मे अनुभव करते है कि एक और युद्ध में, विजयी या विजित किसी की ओर से भी वे उसमे सम्मिलित हो, उलझना कदाचित् उनकी जाति का सर्वनाश कर देगा।"

इन परिस्थितियो मे यह आश्चर्य की बात नही है कि, जापान में 'तटस्थता-वाद' बढ गया है। यदि जापान एशिया का निर्माण करने वाली शक्तियो को समझने की हमारी योग्यता में और अधिक विश्वास नही करता, तो यह तटस्थता बढती ही जायगी।

भारत और जापान की उच्चतम महत्ता पर बल देने में मेरा यह अभिप्राय नही है कि हम अन्य एशियाई स्वतत्र राष्ट्रो की समस्याओ की ओर से निश्चित हो जायँ। फिलीपाइन्स, बर्मा, हिन्देशिया, पाकिस्तान, लका, फारमोसा और दक्षिणी कोरिया, सभी को स्पष्ट रूप से अमरीका की एशिया-सम्बधी नीति को प्रभावित करने में अपना-अपना महत्वपूर्ण योग देना है।

यदि फारमोसा मे एक नये लोकतात्रिक शासन का विकास होता तो यह द्वीप भी विशेष महत्वपूर्ण रचनात्मक कार्य करता। साक्षरता, भूमि-सुधार और गाँवो में विद्युतीकरण के आधार पर पहले ही से फारमोसा का जीवन-स्तर एशिया के उच्चतम जीवन-स्तरो में से एक है। इसी कारण यह प्राय. निश्चित है कि, स्वतत्र जनमत-गणना में फारमोसा चीन की दरिद्रताप्राप्त मुख्य भूमि से सलग्न होने से इन्कार कर देगा।

यदि पर्याप्त मात्रा में राजनीतिक स्वतत्रता प्रदान कर दी जाय और ७० लाख फारमोसावासियो को अपने भाग्य-निर्माण मे अन्तिम अधिकार दे दिया जाय, तो कटुता और भ्रम की वर्तमान 'भूलभुलैया' में से धीरे-धीरे एक गतिशील और रचनात्मक समाज का उद्भव हो सकता है। यह कहना कि फारमोसा को या तो चीन की मुख्य भूमि को फिर से जीत लेना चाहिए, या अलग होकर साम्यवादी आधिपत्य में आ जाना चाहिए, पराजयवादी प्रवृत्ति का परिचायक है। एक तीसरी सभावना भी है—एक स्वतत्र विकासशील राष्ट्र, जो अन्ततोगत्वा दूर पूर्व में प्रजातत्र का एक प्रतीक हो सकता है और चीन की मुख्य धरती तथा अन्यत्र करोडो लोगो के लिए प्रेरणा का स्रोत हो सकता है।

फिर भी, अमरीकी नीति-निर्माताओ को यह नही भूलना चाहिए कि स्वतत्र एशिया के भविष्य की सामरिक महत्व की कुञ्जियाँ भारत और जापान है; जिनमें से प्रथम की तो अमरीकियो ने इतनी अवहेलना की और दूसरा पराजित,

अनिश्चित और अधिकाधिक रहस्यपूर्ण है। यदि ये दो राष्ट्र अपनी स्वतंत्रता और प्रगति को बनायें नही रखते, तो जिसे हम आज "स्वतत्र एशिया" कहते हैं उसे शायद इतिहासकार किसी दिन द्वितीय विश्व युद्ध के बाद समस्त एशिया में फैली उथलपुथल में एक क्षणिक स्थिति से अधिक कुछ नही कह सकेंगे।

विदेशों में अमरीका का स्वरूप

ऐसे युग में, जब कि जनता और विचार गतिशील है, अमरीकी कूटनीति को इस तथ्य को भी आत्मसात कर लेना चाहिए कि विदेशी मामलो की व्यक्तिगत सीमा भी अब अधिकाधिक प्रकाश में आती जा रही है। हमारे सम्पूर्ण कूटनीतिक प्रयत्न का एक विकासशील पक्ष, निस्सन्देह वह सरकारी और गैर-सरकारी धारणा है, जो अमरीकी प्रवृत्ति, जीवन और वार्ता से विदेशी ग्रहण करते है। प्रति वर्ष हजारो गैर-सरकारी अमरीकी राजदूत आनन्द, व्यापार और शिक्षा के लिए विदेश जाते है। प्रत्येक अपना एक व्यक्तिगत प्रभाव डालता है।

ये व्यक्तिगत प्रभाव कुल मिलाकर काफी हद तक हमारे उस रूप की पूर्ति करते हैं, जिसे विदेशी देखते और मान लेते है। इन गुणात्मक व्यक्तिगत प्रभावो के सामूहिक प्रभाव की तुलना में हमारे सरकारी अमरीकी सूचना के प्रयास का स्थान गौण है।

सामान्यतया मान्य वह व्यग चित्र, जिसमें अभिमानी और धन के पुजारी अमरीकियो को नशे मे विश्व का चक्कर लगाते और आसानी से शत्रु बनाते दिखाया गया है, अत्यन्त अनुचित है। भारत मे मुझे पता लगा कि, युद्ध के दौरान मे जिस क्षेत्र में अधिकाश अमरीकी रखे गये थे, वहाँ आज उन्हे सब से अधिक पसन्द किया जाता और समझा जाता है। फिर भी, मुठ्ठीभर विशिष्ट अमरीकी यात्री अमरीकी देश की प्रतिष्ठा पर जो स्थायी आघात पहुँचा सकते हैं, उसकी यों ही उपेक्षा नही की जा सकती। सरकारी और गैर-सरकारी दोनो ही तौर पर हमें इसे सुधारने का यथाशक्ति प्रयास करना चाहिए।

सरकारी स्तर पर हमारे सरकारी मिशनो को अनेक प्रकार से सुदृढ किया जा सकता है। स्पष्टत जातीय भेदभावो से ओतप्रोत अमरीकियों को सरकारी कार्यों पर विदेशो मे नही भेजना चाहिए। फिर भी, एशिया और अफ्रीका में मै ऐसे एक से अधिक अमरीकी पदाधिकारियो से मिल चुका हूँ, जिन्होने अनेक अवसरो पर बहुत-कुछ उस दकियानूसी जातिवादी अमरीकी की भाँति ही बात

की और व्यवहार भी किया, जैसा कि रूसी प्रचार में नियमितरूप से दिखाया जाता है।

सयुक्त राज्य अमरीका की सूचना-सेवा और उसकी उत्तराधिकारिणी सयुक्त राज्य सूचना-एजेन्सी ने कठिन परिस्थितियो में यथाशक्ति सेवा की है। उन्होने अनेक सुयोग्य और कभी-कभी असाधारण व्यक्तियो को आकृष्ट किया है, जिन्होने बडी निष्ठा के साथ अपने समय और प्रतिभा का उपयोग किया है। परन्तु प्राय कैपिटल हिल पर असहानुभूतिपूर्ण और कभी-कभी अत्यन्त गलत जानकारी वाले काग्रेसी श्रोताओ को प्रसन्न करने की आवश्यकता, विदेशों में हमारे धन के प्रभावपूर्ण प्रयोग के साथ सदैव मेल नही खाती ।

इसी कारण यह कहना उचित होगा कि अमरीकी जीवन के विकृत चित्र को, जो विश्व के अनेक भागो में विकसित हो चुका है, कुछ हद तक हमी ने बनाया है। शक्तिशाली, सबल, समृद्ध और सम्पन्न अमरीका के रूप-चित्रण के अपने प्रयास में हमने यह ईर्ष्यालु और घृणित, किन्तु मानवीय आशा पैदा कर दी है कि कही हम अपना मजबूत पैर स्वय ही न काट डालें।

विकृत और नीरस चलचित्रो और हास्य-पुस्तको (Comic) की धारा से उत्पन्न धर्मसकट के लिए अभी तक हम कोई सन्तोषजनक समाधान नहीं प्राप्त कर सके हैं। वे विदेशो में अमरीका के एक रुग्ण और अप्रतिनिधिमूलक चित्र का निर्माण करते है। सिद्धान्त के आधार पर सरकारी सेंसरशिप के विरुद्ध हमने आशा की है कि कभी न कभी फिल्म और प्रकाशन उद्योग स्वय अपना प्रभावशाली आत्मानुशासन स्थापित करेंगे। अभी तक उन्होंने ऐसा नही किया है।

सच पूछा जाय तो अन्त में जिस रूप का चित्रण हम विदेशों में करते हैं, वह इतना सुन्दर और आकर्षक कभी नही होगा, जितना हम स्वयं हैं। हम जिन सरकारी और गैर-सकारी धारणाओ का निर्माण करते हैं, उनके अन्तर्गत सर्वदा ऐसे गुण होते है, जो एक राष्ट्र के रूप में हममें हैं, ऐसे गुण जो हमारी शिक्षा-प्रणाली द्वारा पुष्ट और विकसित हुए हैं।

तथापि आज अमरीकी शिक्षा ही सम्भवत हमारी एकमात्र महत्वपूर्ण घरेलू समस्या है। कोई भी यह दावा नही करता कि, हमारी वर्तमान शिक्षा-पद्धति अपने परिणामो के गुण अथवा मात्रा में पर्याप्त है। न केवल हम बाल-अपराध, शिक्षको के अल्प वेतन और समकालीन विश्वसमस्याओ के मूल्य तत्व से विहीन पाठ्यक्रमो की विभिन्न समस्याओ से परेशान हैं, बल्कि हम अपने प्रतिभाशाली

अमरीकी युवकों की प्रतिभा को भी नष्ट कर रहे हैं। प्रति वर्ष श्रेष्ठ हाई स्कूलों से निकले दो लाख विद्यार्थी कालेजो मे प्रवेश ही नही करते और इतने ही छात्र प्रविष्ट हो जाने पर भी धनाभाव के कारण वहाँ ठहर नही पाते।

यदि इन चार लाख होनहार युवक-युवतियो को उच्च शिक्षा के लाभ प्राप्त होते तो महत्वपूर्ण सोवियत टैक्नालाजिकल प्रतियोगिता मे परिणामत. हम बहुत आगे निकल जाते। अपने नागरिको की बहुत बडी सख्या के लिए अमरीका विश्व-मामलो की नयी सीमाओ के साथ व्यवहार के लिए आवश्यक समझदारी, दृष्टिकोणो और क्षमताओ को और व्यापक बनायेगा। शिक्षा-सम्बधी सुविधाओं का काफी विस्तार, समुन्नत पाठ्यक्रम और कालेजो में योग्य विद्यार्थियो के प्रवेश के लिए अधिक प्रजातात्रिक नीतियो का अपनाना ऐसे कार्य हैं, जिन्हे १९५६-६० में कालेजो में प्रवेश के इच्छुक आवेदको की बाढ आने के पूर्व तात्कालिक प्राथमिकता दी जानी चाहिए।

शिक्षा-समस्या से सम्बधित उस चित्र का अत्यन्त विवादास्पद पक्ष है, जिसे हम ससार के सम्मुख प्रस्तुत करते है और जिस पर सार्वजनिक विचार विमर्श होना चाहिए। प्रजातत्र और साम्यवाद के बीच विचारो की विश्वव्यापी प्रतियोगिता में यह दुर्भाग्यपूर्ण बात है कि, हम अमरीकावासी साम्यवादी प्रचार के सबसे सुरक्षित लक्ष्य हैं। इसका एक कारण यह है कि हमारे प्रवक्ता बडी कठोरता के साथ बातचीत के पुराने ढग से चिपके हुए है।

उन्नीसवी शताब्दी की अनुपस्थित स्वतत्र व्यवसाय-पद्धति की याद दिलाने वाले शब्दो मे जब हम बात करते है, जिसकी वर्तमान व्यावहारिक अमरीकी आर्थिक प्रणाली से कोई समानता नही है, तब हम उन साम्यवादी प्रचार के कारखानो को खुराक पहुँचाते हैं, जो रूढिगत पूँजीवादी साम्राज्य-वाद के विरुद्ध घृणा पैदा करने का निरन्तर प्रयत्न करते रहते हैं। प्राचीन अप्रचलित अमरीकी आर्थिक लोकगीत से मेल खाने के लिए अमरीकी राज-नीतिज्ञों द्वारा रचित हमारी अधिकाश वार्ता विदेशो मे हमारे रूप की पूर्ति ठीक उसी प्रकार करती है, जिस प्रकार मास्को उसकी पूर्ति करना चाहता है।

यह एक विरोधाभास है। इस अर्थ मे हमारी आर्थिक शब्दावली प्राय: अत्यधिक सैद्धान्तिक हैं और विश्व के सैद्धान्तिक सघर्ष में अनाकर्षक है। तथापि, जैसा कि हम देख चुके है, हमारी राष्ट्रीय अमरीकी आर्थिक प्रथा ने आर्थिक न्याय के समन्वय का सफल प्रयास किया है, जिसने हमारे समाज में उग्रवादी मार्क्सवादी आन्दोलन की प्रगति को रोक दिया है। एक ओर जब

कि अमरीकी व्यवसायी कभी-कभी विश्व में सर्वत्र मान्य आर्थिक आदर्शो की भाषा में बातचीत करते है, जो एडम स्मिथ के विश्व में भी कभी विद्यमान नही था, दूसरी ओर वे मजदूर युनियनो के साथ दीर्घकालिक ठेको पर हस्ताक्षर करते है, जिसमे जीवन निर्वाह व्यय की अक-सूची के अनुसार सचालन की परिवर्तनशील धाराएँ होती है और वे लगभग आश्वस्त वार्षिक वेतन को स्वीकार कर लेते है।

फिर भी, समस्त विश्व मे लोग हमारे व्यावहारिक न्याय की अपेक्षा हमारी शब्दावली को अधिक अच्छी तरह जानते है। जब वे सोचते है कि अमरीकी व्यवहार मे उन्होने कुछ प्रशसनीय गौरवपूर्ण चीज पा ली है, जैसा कि टी वी ए मामले में हुआ, तब उन्हे यह सुनकर गहरा आघात लगता है कि हमारे प्रमुख वक्ता चुपके से प्रवेश करनेवाले समाजवाद के रूप में इसकी निन्दा करते है।

काल्पनिक भ्रमो के प्रति इस प्रकार की राजनीतिक मौखिक सेवा विदेशों मे हमारा बहुत अहित करती है। अब हम और अधिक बडे-बडे अनियत्रित वक्तव्यों को सहन नही कर सकते, जिनका अभ्यस्त हमारा राजनीतिक जीवन हो चुका है। इसके बजाय हमारे राजनीतिक नेताओ को स्पष्ट शब्दो में बात करना सीखना चाहिए, जो दोनो राजनीतिक दलो की वास्तविक सफलताओ पर अपने उचित अभिमान को परिलक्षित करती हो और तब हमारी बात अनसुनी हो जाने पर हम सभी को दु खी होने का समान अधिकार होगा।

अपने सरकारी सूचना-कार्यक्रम पर पुनर्विचार मुझ में यह विश्वास पैदा करता है कि हम लोग साम्यवाद-विरोधी निषेधात्मक विचारो से पहले ही बहुत अधिक भरे हुए है। अब सब लोग जान गये है कि हम साम्यवाद के विरोधी है। अब लोग हमारे युग की बडी समस्याओ पर हमारे निश्चित विचारो को जानने के लिए उत्सुक है।

यद्यपि विदेशो मे हमारे बहुतेरे पुस्तकालय उपयोगी है, तथापि वे और भी उपयोगी हो सकते है यदि वे जानबूझ कर स्वतत्रता के समस्त पक्षो के विधेयात्मक अध्ययन के लिए केन्द्र बनने का प्रयत्न करे। हमारे पुस्तकालय राजनीतिक और आर्थिक प्रजातत्र के सभी पहलुओ से सम्बन्धित विदेशी और अमरीकी लेखको की पुस्तको के व्यापक और मौलिक संकलनो को प्रस्तुत करके अपने प्रभाव को व्यापक बना सकते है।

यदि हम अपनी अमरीकी सूचना-सेवा को चार क्रान्तिकारी सिद्धान्तो

पर निर्माण करे, जो मध्यवर्ती विश्व के लोगो को इतना प्रेरित करते आये है और जो इस पुस्तक मे बार-बार राष्ट्रीय स्वतत्रता, मानवीय गौरव, आर्थिक प्रगति और शक्ति के रूप मे व्यक्त हुए है, तो परिणाम उत्साहवर्धक होगा। विश्व के लोग अमरीका की चमक-दमक मे अधिक दिलचस्पी नही रखते, बल्कि इस बात मे दिलचस्पी रखते है कि हमने पीढी-दर-पीढी अपने लोकतात्रिक समाज के सुधार के लिए किस प्रकार निरन्तर सघर्ष किया है, ताकि सबको अधिकाधिक अवसर प्राप्त हो सके, हमारी समस्याए उनकी समस्याओ से किस प्रकार सम्बन्धित है और हमारी सफलताएँ तथा असफलताएँ भी किस प्रकार उनकी सफलताओ और असफलताओ से सम्बन्धित है।

मै अधिक-से-अधिक जोर देकर सुझाव प्रस्तुत करना चाहता हूँ कि, सूचना-कार्यक्रम किसी भी प्रकार कपडे धोने के साबुन बेचने के समान नही है। बढा-चढाकर और गोलमोल की गयी अपीले अन्त मे न केवल असफल होती है, बल्कि इस प्रक्रिया मे वे हमे नीचे भी गिरा देती है।

अयोग्यता के कारण अथवा विचारहीन कॉग्रेस के सदस्यो के दबाव के कारण जब हम खोखले दावे करते है और झूठ बोलते है, तब लोकतात्रिक विचार-विमर्श की हमारी पद्धति अतिरजनाओ का भडाफोड़ कर देती है। इसका परिणाम यह होता है कि तटस्थ लोगो को, जिनमे से सभी एशिया, अफ्रीका और दक्षिणी अमरीका मे नही रहते, विश्वास हो जाता है कि मास्को और वाशिगटन की कुटिल अपीलो मे कोई भी चुनने योग्य नही है और दोनो मे से किसी पर भी भरोसा नही किया जा सकता।

मनोवैज्ञानिक युद्ध गोबेल्स और स्तालिन से उधार लिया गया सनकीपने का कार्य है। यदि अपनी गतिविधियो का वर्णन करने के लिए हम इसके उपयोग के लिए आग्रह करते है, तो विश्व के उन करोडो लोगो के सम्मान को हम खोते जायेगे, जो इस विश्वास पर पले है कि, अमरीका एक चतुर युक्ति अथवा एक खब्ती कूटनीति से परे कुछ और है।

हमारी सूचना सच्ची, निश्चित और सही होनी चाहिए। अच्छे उद्देश्य के लिए भी बेईमानी, बेईमानी ही है और जो उसका आचरण करता है, उसका मूल्य अनिवार्य रूप से वह घटा देती है।

एकतत्रवादी शासन के सूचना-कार्यक्रम को अपने झूठे दावो के भडाँफोड के लिए, अपने देश मे लोकतात्रिक आलोचना के बिना कार्यान्वित होने का कूटनीतिक लाभ रहता है। वह इस मान्यता पर फूलता-फलता है कि लोग

जो कुछ सत्य समझते है, वह प्राय उतना ही महत्वपूर्ण होता है जितना वास्तविक सत्य। विश्व के अनेक भागो मे सोवियत-शान्ति-अभियान की सफलता, जिसका प्रतीक पिकासो के शान्ति-कपोत के रूप मे भ्रामक ढग से प्रस्तुत किया गया है, इस समस्या का अगम्य उदाहरण रही है। अधिकाश विश्व में पिछले कई वर्षों मे यह एक लोकप्रिय धारणा रही है कि सोवियत सघ, न कि सयुक्त राज्य अमरीका, अस्त्रो की होड को रोकने के लिए सबसे अधिक आग्रह करता रहा है। विदेशो मे अमरीका के स्वरूप को अन्य कोई धारणा इतना नुकसान नही पहुँचा सकती।

नि:शस्त्रीकरण : बहाना या वायदा ?

१९४७ से, सोवियत आक्रमण और विध्वस का खतरा जब हम पर पूर्णरूपेण प्रकट हो गया, तब से अधिकाश अमरीकी यह मानने लगे कि इसका रूप और सीमा औरो पर भी उसी प्रकार प्रकट हो गये है। इसके कारण हम शान्ति और नि.शस्त्रीकरण के रूसी प्रचार की प्रभावशीलता को कम आँकने लगे है।

मास्को के इरादो के प्रति हमारी अनिश्चितता के बावजूद शान्ति और नि शस्त्रीकरण के रूसी दावे आज व्यापक रूप से मान्य है। असाम्यवादी जगत भर में, हमारे साथियो और तटस्थतावादियो के मध्य अधिकाश लोगो ने इस विश्वास को कस कर पकड लिया है कि, सोवियत संघ और सयुक्त-राज्य अमरीका के बीच शान्ति सभव है। यह दुर्भाग्य की बात है कि कुछ अमरीकी सेनानियो और राजनीतिक नेताओ की आलोचनाओ को, विदेशो मे लोगो ने व्यापक रूप से शान्तिपूर्ण उद्देश्यो के विरुद्ध माना है। जनेवा में राष्ट्राध्यक्ष आइसनहोवर ने अपने सच्चे और निष्कपट वक्तव्यो से अमरीका के शान्तिपूर्ण उद्देश्यो के प्रति फिर से विश्वास पैदा करने में सहायता की।

विदेशो मे यह व्यापक विश्वास कि शान्ति सभव है, अनेक दबावो और भावनाओ की जटिलता से उत्पन्न हुआ है, जिस मे आणविक विनाश का भय, दो विश्वयुद्धो के भयानक सस्मरण, विदेशी प्रभुत्व, शान्ति और सद्भावना के लिए मनुष्य की गहरी अभिलाषा सम्मिलित है। इसका पोषण १९५५ में सोवियत रुखो मे परिवर्तन के द्वारा बड़े नाटकीय ढग से हुआ था।

१९५५ के जाडे मे दक्षिण एशिया, अफ्रीका और ब्रिटेन में भी मैने पता

लगाया कि, अणुशक्ति नियत्रण और नि शस्त्रीकरण सम्बन्धी अमरीका के प्रारम्भिक कल्पनायुक्त प्रस्ताव या तो अज्ञात थे, या भुला दिये गये थे। युद्ध के बाद हमारे सूचना-विभाग की यह एक बहुत बडी असफलता है।

इसको समझा सकना और भी कठिन है, क्योकि हमारा मसला बहुत ही बढिया है। अपने युद्धकालीन मित्र, रूस की सद्भावना पर भरोसा करके सयुक्त राज्य अमरीका ने तुरन्त ही द्वितीय विश्व-युद्ध के बाद अपनी सैन्य शक्ति का विघटन कर दिया। अणुबम के आविष्कार के बाद एक वर्ष से भी कम समय में, रूस ने यह प्रस्ताव किया कि आणविक शक्ति के अन्तरराष्ट्रीय नियत्रण के लिए सयुक्त राष्ट्र सघ एक प्रभावशाली आयोजना तैयार करे।

उसी वर्ष, सयुक्त राष्ट्र सघ मे अमरीकी प्रतिनिधि, बर्नार्ड बरुच ने अणु-शक्ति नियत्रण और विकास के लिए हमारी रचनात्मक और साहसपूर्ण योजना प्रस्तुत की। १९४९ मे कुछ साधारण सशोधन के बाद इस प्रस्ताव को बृहत्सभा का जबर्दस्त समर्थन प्राप्त हुआ। इसको स्वीकार करने मे बृहत्सभा ने स्पष्ट रूप से माना कि, शस्त्रीकरण के क्षेत्र की भाँति अणुशक्ति के नियत्रण-क्षेत्र में भी, अस्त्र-निर्माण के रोकने के कागजी वायदे अपर्याप्त थे। समस्या का केन्द्रबिन्दु सयुक्त-राष्ट्र की टोलियो के अन्तरराष्ट्रीय पर्यवेक्षण द्वारा संसार को यह भरोसा दिलाने मे है कि एक बार किये गये वायदे पूरे किये जा रहे हैं।

बाद के महीनो मे सोवियत यूनियन ने सयुक्त राष्ट्रीय अणु-शक्ति-आयोग और परम्परागत शस्त्रीकरण सम्बन्धी सयुक्त राष्ट्रीय आयोग में बार-बार प्रगति में बाधा प्रस्तुत की है, जब सामान्य नि शस्त्रीकरण के प्रस्ताव पर विचार-विमर्श हो रहा था। प्रथम आयोग मे सोवियत यूनियन न अणु-शक्ति-योजना के नियत्रक तत्वो को एकदम ठुकरा दिया। दूसरे आयोग में भी उसने उसी जोर के साथ सामान्य शस्त्रीकरण को प्रकट और प्रमाणित करने की प्रणाली के प्रस्ताव को ठुकरा दिया।

१९५१ मे गतिरोध समाप्त करने के प्रयत्न मे, सयुक्त राज्य अमरीका ने एक नये आयोग के द्वारा, जो आणविक और परम्परागत दोनो अस्त्रो पर विचार करेगा, नि शस्त्रीकरण के नये मार्ग को प्रस्तावित करने में ब्रिटेन और फ्रान्स का साथ दिया। इस आयोग की स्थापना बृहत्सभा के मतो द्वारा हुई।

अप्रैल, १९५२ मे अमरीकी सदस्य ने प्रस्ताव रखा कि सयुक्त राष्ट्र को फ्रैंकलिन रुजवैल्ट के पद 'भय से मुक्ति' के उनके अर्थ को लक्ष्य के रूप में स्वीकार करना चाहिए। इसमे शस्त्रीकरण की विश्वव्यापी कटौती इस हद तक

और इस ढग से आ जायगी कि विश्व में कही भी कोई राष्ट्र दूसरे राष्ट्र के विरुद्ध भौतिक आक्रमण करने के स्थिति मे नही होगा।

अमरीकी सदस्य ने अनेक 'आवश्यक सिद्धान्तो' की एक शृखला प्रस्तावित की, जिसमे अणुबम सहित सभी प्रकार के अस्त्रो के नि शस्त्रीकरण का क्रमिक कार्यक्रम रखा गया था। उसने 'सौदेबाजी की प्रक्रिया' के विरुद्ध चेतावनी दी और कहा कि राष्ट्रो को अब अपनी शक्ति के लिए सेना की उन टुकडियो और अस्त्रो पर नही निर्भर करना चाहिए, जिनका वे किसी भी क्षण सूचना मिलने पर प्रयोग कर सकते है, बल्कि अपनी जनता के स्वास्थ्य, सुख और आर्थिक शक्ति पर निर्भर करना चाहिए।

एक महीने बाद अमरीकी, फ्रान्सीसी और ब्रिटिश प्रतनिधियो ने सशस्त्र सेना की सख्यात्मक सीमा के लिए अपने प्रस्ताव रखे—रूस, चीन और सयुक्त राज्य अमरीका प्रत्येक १० लाख से १५ लाख तक, फ्रान्स और इग्लैण्ड प्रत्येक ६,५०,००० और प्रत्येक अन्य देश १,५०,००० से २,००,००० तक। इन सभी प्रस्तावो का पहले तो मजाक उडाया गया और बाद मे इन्हे ठुकरा दिया गया।

१९५४ के पतझड मे सोवियत सघ ने अपनी स्थिति मे सशोधन करना प्रारम्भ किया। राजनीतिक विघटन मे, जो अगले वसन्त में आरम्भ हुआ, मास्को अचानक उन स्थितियो को स्वीकार करता हुआ प्रतीत हुआ, जिनका अटलाटिक राष्ट्रो ने दीर्घ काल से समर्थन किया था और सोवियत प्रवक्ताओं ने बार-बार निन्दा की थी। १९५५ के सोवियत प्रस्ताव की अधिकाश भाषा निश्चयात्मक नही थी, उसमे सभवत बच निकलने की अनेक धाराएँ थी। फिर भी सोवियत सघ, पश्चिमी मित्रो द्वारा प्रस्तावित सशस्त्र-सेना की सीमा, धीरे-धीरे नि शस्त्रीकरण का सशोधित कार्यक्रम, किसी प्रकार का एक ही नियत्रण-विभाग और कम-से-कम, बन्दरगाहो और हवाई अड्डो की सुविधाओ के निरीक्षण को स्वीकार करने के लिए तैयार जान पड़ा।

सोवियत कठोरता में लचीलेपन के इस अभाव से यह और भी अधिक महत्वपूर्ण है कि नि शस्त्रीकरण की दिशा में अमरीकी प्रयत्नो की कहानी को विदेशो मे प्रभावपूर्ण ढंग से बार-बार दुहराया जाय। यदि, जैसा कि बहुतो को सन्देह है, समस्या के सम्बन्ध मे क्रैमलिन के रुख में वास्तविक परिवर्तन हो, तो हमें गम्भीर विचार-विनिमय के लिए तैयार रहना चाहिए। नि शस्त्रीकरण के मामलो पर राष्ट्राध्यक्ष के विशेष सहायक के रूप में एक मत्रिमण्डलीय

पद की रचना, नि शस्त्रीकरण के प्रश्न के सभी पक्षो के सयोजन, विश्लेषण और नाटकीयकरण मे अमूल्य सहायता प्रदान कर सकती है।

नि शस्त्रीकरण-वार्ता के लम्बे इतिहास मे पहली बार यह सभावना प्रकट हुई है कि युद्ध के अस्त्रो के व्यापक ढाँचे को भग कर देने की प्रारम्भिक कार्रवाइयो पर प्रमुख सशस्त्र शक्तियाँ समझौता कर सकती है। अभी तक नि शस्त्रीकरण पर कठोर और दुराग्रही सोवियत नीति के सम्मुख सयुक्त राज्य अमरीका व्यावहारिक, राजनीतिक कठिनाइयो से बचने में सफल रहा है, जिसमें नि शस्त्रीकरण के लिए सीधे प्रयत्नो की आवश्यकता होती। हम अपने नि शस्त्रीकरण के प्रस्तावो के बारे मे गम्भीर रहे है, परन्तु रूसी दुराग्रह के कारण हमें उन समस्याओ का सामना नही करना पडा, जो इन प्रस्तावो की स्वीकृति से पैदा हो सकती थी।

अब पहली बार हमें उन समस्याओ का सामना करना है और वे उन चार प्रमुख प्रश्नो के चारो ओर चक्कर काटती है, जो नि शस्त्रीकरण के सम्पूर्ण प्रश्न के प्रति हमारी मूल धारणा से सलग्न है—क्या नि शस्त्रीकरण सचमुच अब भी हमारे हित मे है? क्या आणविक नि शस्त्रीकरण हमको वर्तमान की अपेक्षा अधिक या कम सुरक्षित बनायेगा, अर्थात् क्या नियत्रण की व्यावहारिक प्रणाली का निर्माण सभव है? यदि इन प्रश्नो का उत्तर स्वीकारात्मक है, तो क्या ऐसा समझौता राजनीतिक दृष्टि से व्यवहारिक होगा? अन्त में, यदि सोवियत सघ द्वारा प्रस्तुत प्रकट रूप से सच्चे और व्यावहारिक प्रस्ताव को स्वीकार करने मे हम असफल रहे, तो परिणाम क्या होगे?

यह बात कि हमे अपने-आपसे पूछना चाहिए कि नि शस्त्रीकरण क्या अभी भी हमारे राष्ट्रीय हित मे है, इस बात की द्योतक है कि हम लोग सफलता-पूर्वक लम्बी अवधि तक पूर्ण सकट मे रहने के आदी हो गये है। इस भावना को इतने व्यापक रूप मे स्वीकार कर लिया गया है कि शान्ति का एकमात्र आधार एक प्रकार का सतुलित आतक हो गया है, और हम प्राय यह भूलते प्रतीत होते है कि 'शान्ति' और 'आतक' कभी कितने परस्पर-विरोधी प्रतीत होते थे और हमारी स्थिति कितनी खतरनाक है।

यदि शान्ति आतक पर निर्भर है, तो हम अब भी निरन्तर आतक की दया पर है और हमें पिछली पीढी की अपेक्षा कही अधिक भयानक ढग के खतरो का मुकाबला करना है। युद्ध के बाद से करोड़ो लोगो के जीवन से सम्बन्धित अन्तिम निर्णय विश्व के मुट्ठी भर नेताओ के हाथ मे है। जब आणविक सैन्य-

शक्ति अधिक राष्ट्रो को प्राप्त हो जायगी तो खतरे और भी बढ जायेंगे।

नि शस्त्रीकरण का कोई भी कार्यक्रम, जो इन खतरो को कम कर सकता है, निश्चित रूप से केवल हमारे राष्ट्रीय हित मे है, बल्कि सरकार के उच्चतम स्तरो और विचारशील नागरिको पर अविचलित और निरन्तर ध्यान की कोटियाँ बनाने के लिए बहुत महत्वपूर्ण है।

अभी तक नि शस्त्रीकरण की सभी बातें कार्यान्वय के मसले पर अटक कर रह गयी। क्या शस्त्रीकरण के नियत्रण की व्यावहारिक प्रणाली के लिए सभावनाएँ सचमुच सुधर गयी है ? हमें इस तथ्य का सामना करना पड सकता है कि निकट भविष्य मे कोई भी नि शस्त्रीकरण की ऐसी आयोजना नही प्रस्तुत कर सकता, जो शत-प्रतिशत सुरक्षित हो। टेक्निकल कठिनाइयाँ ही न जाने कितनी है, और कम-से-कम प्रारम्भिक स्थितियो में पूर्ण कार्यान्वय के लिए आवश्यक सूचना तक पहुँच के लिए कुछ सम्बधित सरकारो की दीर्घ-कालीन राजनीतिक परम्पराओ मे एकदम परिवर्तन करने की आवश्यकता पड़ेगी।

हमे यह भी मालूम हो सकता है कि, हमे अपने प्रथम व्यावहारिक उद्देश्य को एक चेतावनी-प्रणाली तक सीमित करना पडेगा, जिसका उद्देश्य पहले से किसी आक्रामक सैनिक तैयारी और ऐसे भारी और अचानक आक्रमण को रोकना हो, जो अपने पहले ही प्रहार मे निर्णायक सिद्ध हो सकता है।

यदि ऐसी अग्रिम सूचना देनेवाली प्रणाली के कार्य आरम्भ करने से पारस्परिक विश्वास बढता है, तो भावी कार्रवाई के लिए काम आसन हो जायेगा। उसके बाद रुढिगत अस्त्रो पर सख्यात्मक नियत्रण शुरू हो सकता है, जिसके साथ आणविक शक्ति मे कटौती भी शामिल होगी। यह स्पष्ट है कि आणविक और रूढिगत दोनो अस्त्रो के नि शस्त्रीकरण का कार्य एक साथ ही चलना चाहिए।

सभव है कि हमे पाँच या दस वर्षों तक नि शस्त्रीकरण की क्रमिक स्थितियो का अनुभव करना पडे। प्रारम्भिक समझौतो की अपूर्णताओ को बाद के सुधरे हुए कार्यान्वय में विलय किया जा सकता है। इस प्रकिया को जारी रखने के लिए आवश्यक सद्भावना पैदा करने मे स्वय अनुभव अत्यन्त आवश्यक सिद्ध हो सकता है। किसी भी स्थिति मे आज के अनिश्चित आतक की अपेक्षा आशापूर्ण प्रयोग श्रेयस्कर होगा।

नि:शस्त्रीकरण की प्रक्रिया की प्रारम्भ करने और जारी रखने की राज-

नीतिक व्यावहारिकता क्या होगी ? क्या प्रारम्भिक समझौते भी राजनीतिक दृष्टि से व्यवहारिक होंगे ? क्या वे सधि के रूप मे सयुक्त राज्य अमरीका की सिनेट में दो तिहाई बहुमत प्राप्त कर सकेगे ? क्या हम एक अन्तरराष्ट्रीय जाँच-अभिकरण का विश्वास करेगे, जिसमे ओकरिज या अन्य किसी स्थान पर जाँच के लिए एक रूसी इन्सपेक्टर होगा ?

जनेवा मे रूसियो के समक्ष राष्ट्राध्यक्ष आइसनहावर के प्रस्तावो के प्रति, जिनमे सैनिक प्रतिष्ठानो के नीलपत्रो के आदान-प्रदान और एक-दूसरे की प्रतिरक्षा-सुविधाओ के हवाई निरीक्षण की माँग की गयी थी, अधिकाश अमरीकियो की स्वीकारात्मक प्रतिक्रिया यह सकेत करती है कि जनमत इस प्रकार के प्रस्तावो को स्वीकार करने के लिए तैयार हो सकता है।

नि शस्त्रीकरण-समझौतो के विरोध मे सच्चे सदेह करनेवाले होगे और वे भी होगे जो अपने आणविक अस्त्रो पर किसी प्रकार के प्रतिबन्ध का खुलकर विरोध करते है। एक बात और भी है, जो बिलकुल प्रत्यक्ष नही, फिर भी बुरी तरह से उलझी हुई है। वह यह कि हमारी अधिकाश राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था ३० अरब डालर प्रतिरक्षा-बजट से बँधी हुई है। लाखो व्यक्ति प्रतिरक्षा-सम्बन्धी सामग्री बनाने के कार्य मे लगे हुए है। यदि शस्त्रो के व्यय में बडी कमी की जाती है तो अमरीका मे ऐसा कोई भी बडा समुदाय नही है, जो आर्थिक परिवर्तन के प्रभाव का अनुभव नही करेगा।

धीरे-धीरे किये जाने वाले नि शस्त्रीकरण की अर्थव्यवस्था का सक्रमण-काल कठिन होगा और व्यवस्था को सरल बनाने के लिए व्यवसाय तथा सरकार दोनो के कल्पनाशील और सहानुभूतिपूर्ण नेतृत्व की आवश्यकता होगी। जब तक युद्ध के लिए निर्धारित अपार निधियो को उत्पादक और शान्तिकालीन खर्चों के लिए हस्तान्तरित नही किया जायगा, तब तक राजनीतिक दबाव बहुत अधिक होगा। फिर भी अमरीका की भाँति जिस राष्ट्र को नये स्कूलो, नयी सडको और नये स्वास्थ्य-कार्यक्रमो की अत्यधिक आवश्यकता है, उसे निःशस्त्रीकरण के आर्थिक प्रभावो से घबडाना नही चाहिए।

इन सभाव्य बाधाओ के बिना भी नि शस्त्रीकरण एक जटिल विषय है, और इसके सम्बन्ध मे सतर्कतापूर्वक आशावादी से अधिक होना बेवकूफी होगी। फिर भी हम एक ऐसे बिन्दु तक पहुँच गये है, जहाँ यह युग-प्राचीन मान्यता कि नि शस्त्रीकरण काल्पनिक है, निराशापूर्ण अस्वीकार्य सलाह बन गयी है। हमारी समस्याओ की निर्णायक नवीनता के सम्मुख, सर्वत्र लोग

अपने नेताओ से युद्ध को समाप्त करने के लिए अद्वितीय प्रयत्नो से कम की माँग नही कर रहे है।

जनेवा मे आशा का प्रमुख आन्तरिक आधार सभी पक्षो में यह पारस्परिक विश्वास था कि युद्ध अन्तत. नीति का असभव साधन बन गया है। दृष्टिकोणो और उद्देश्यो मे व्यापक अन्तर पाये गये, परन्तु स्पष्ट मान्यता यह थी कि, इन मतभेदो के गम्भीर होते हुए भी, अब युद्ध उनका स्वीकार्य समाधान नही था।

यह सामान्य मान्यता ही विश्व-राजनीति की एक नयी सीमा है और यह अधिकतम महत्व की है।

अन्य बातो के साथ, उनका अर्थ यह है कि निषेधात्मक नीतियो को अब विश्व-जनमत सहन नही करेगा। सोवियत प्रस्तावो पर ध्यानपूर्वक, गम्भीरता से और प्रत्यक्ष रूप से इस सकल्प के साथ विचार करना चाहिए कि, यदि कोई समाधान प्राप्त नही होता तो इसका कारण यह नही होगा कि हममे कल्पना या सकल्प का अभाव था। हमारी मैत्री, तटस्थता के विकास और हमारे विदेशी अड्डो पर विनाशकारी प्रभाव पड़ेगा, यदि हम नि शस्त्रीकरण की दिशा में दूसरो द्वारा प्रस्तुत किये गये प्रस्तावो का तिरस्कार करते प्रतीत होगे अथवा यदि हम अन्यथा अपनी सद्भावना प्रदर्शित करने में असफल रहेगे। हमको सतर्कतापूर्वक, किन्तु ईमानदारी के साथ, न केवल दूसरो के प्रस्तावो का प्रत्युत्तर देते हुए, बल्कि सक्रिय रूप से अपना भी प्रस्तुत करते हुए, और अनिवार्य रूप से परिव्याप्त खतरो के प्रति न केवल जागरूक होकर, बल्कि अद्वितीय अवसरो को पहचानते हुए भी आगे बढना चाहिए।

जैसा कि हम देख चुके है, हमे माध्यमिक कार्रवाई से प्रारम्भ करना आवश्यक हो सकता है, किन्तु वर्षों तक प्रभावशाली होने के लिए निरस्त्रीकरण को मौलिक और व्यापक होना पडेगा। यदि इसका उद्देश्य कुछ चुने हुए हथियारो के नियमन तक ही सीमित रहता है, तो यह सफल नही हो सकता। इसमें अन्ततोगत्वा युद्ध का अन्त समाविष्ट होना चाहिए?

२० जनवरी, १९५५ को लास एजेल्स में 'अमरीकी लीजन कन्वेशन' के सम्मुख जनरल डगलस मैकार्थर ने अपने उल्लेखनीय भाषण में हमारे युग के मुख्य प्रश्न को सक्षेप में इस प्रकार प्रस्तुत किया—"क्या हम एक आत्मघातक युद्ध के लिए निरन्तर बढती हुई तैयारी का घातक दण्ड पीढियो तक भोगते रहेगे, जब कि बीच-बीच मे शस्त्रीकरण के प्रतिबधो और आणविक अस्त्रो के प्रयोग पर नियत्रणो जैसे उपचारो के साथ हम खिलवाड़ कर रहे है?"

जनरल ने यह भी कहा कि युद्ध की समाप्ति से कम हमारा लक्ष्य नही होना चाहिए। यदि ऐसा सभव हुआ, तो "ईसा के पर्वत पर के उपदेशो" के बाद वह सभ्यता मे सबसे बडी प्रगति का परिचायक होगा, क्योकि इस अवस्था में युद्ध की तैयारी मे खर्च होनेवाले अरबो डालर भूमण्डल की दरिद्रता का मूलोच्छेदन कर सकते है।

उन्होने अनुभव किया कि राष्ट्रीय विनाश के खतरो के साथ वर्तमान तनाव को दो बडे भ्रमो के कारण कायम रखा जा रहा है। ये भ्रम, एक ओर अमरीका की और दूसरी ओर सोवियत रूस की धारणाएँ है कि कभी-न-कभी उसका विपक्षी आक्रमण करना चाहता है। जनरल का विश्वास था कि दोनो भूल कर रहे है, क्योकि किसी भी पक्ष से युद्ध का अर्थ विनाश ही होगा।

मैकार्थर ने आगे कहा, "समस्या नेतृत्व की है। विश्व के नेताओं की जो तीव्र आलोचना हम कर सकते हैं, वह यह कि उनमे आयोजना का अभाव है। ऐसा एक महापुरुष कब सत्ता प्राप्त करेगा, जिसमे शान्ति की इस विश्वव्यापी इच्छा को कार्यान्वित करने की कल्पना और हिम्मत हो? बडी शीघ्रता के साथ यह एक आवश्यकता बनती जा रही है।"

मैकार्थर ने इस बात पर बल दिया कि अब हम एक नये युग मे है। पुराने तरीके अब और अधिक काम नही देगे। अब हमको पुराने बधनो को तोड कर बाहर आ जाना चाहिए। नेतृत्व के लिए सर्वदा एक नेता होना चाहिए और वह नेता हमी को होना चाहिए। अब हमको विश्व की बडी शक्तियो के साथ युद्ध को समाप्त कर देने की अपनी तत्परता की घोषणा करनी चाहिए। परिणाम चमत्कारपूर्ण हो सकता है।

सचमुच यह सभव है।

पूर्व उल्लिखित अन्य क्षेत्रो की भाँति नि शस्त्रीकरण के क्षेत्र में यदि हम उसका उपयोग करे तो हमारे पास सयुक्तराष्ट्र सघ को उसे निरीक्षण और कार्यान्वय का अधिकार देकर उसे सुदृढ बनाने का अवसर है। विश्व की इतनी अधिक महत्वाकाक्षाओ का समावेश करनेवाली अन्य कोई सस्था नही है। सयुक्तराष्ट्र के घोषणा-पत्र की धारा १ मे निहित, दो महान उद्देश्य युद्ध और वर्ग की दो विशाल समस्याओ के समाधान की आशा दिलाते हैं।

१. अन्तरराष्ट्रीय शान्ति और सुरक्षा को कायम रखना और इस उद्देश्य से शान्ति के लिए खतरो को रोकने और हटाने के लिए प्रभावपूर्ण सामूहिक कार्रवाई करना।

२. विश्व की आर्थिक, सामाजिक, सास्कृतिक अथवा मानवीय समस्याओं के समाधान में अन्तरराष्ट्रीय सहयोग प्राप्त करना।

विभिन्न प्रकार से हम पहले ही सुझाव दे चुके हैं कि इन निश्चित सामाजिक और आर्थिक समस्याओ के समाधान में सयुक्त राष्ट्र का कार्य बहुत ही महत्व-पूर्ण हो सकता है। यदि सयुक्त राष्ट्र की सदस्यता बढा दी जाय, तो अर्ध-विकसित जगत के और राष्ट्रो के प्रवेश से ऐसी समस्याओ पर और भी अधिक ध्यान केन्द्रित होगा। अपने अस्तित्व के प्रथम दशक मे सयुक्त राष्ट्र (U.N.) ने राजनीतिक क्षेत्र मे विश्व-शान्ति के लिए मूल्यवान योगदान किया– ईरान से सोवियत सेना की तथा सीरिया और लेबनान से ब्रिटिश तथा फ्रासीसी सेनाओ की वापसी, यूनान की सीमान्त घटनाओ की जाँच-पडताल, फिलस्तीन के सघर्ष को सभालना, हिन्देशिया मे युद्धबन्दी, कोरियाई युद्ध में हस्तक्षेप और विराम सन्धि की वार्ता और चीन मे सयुक्त राज्य अमरीका के कैदियो के सम्बन्ध में बातचीत।

यदि सयुक्त राष्ट्र सघ नि शस्त्रीकरण-नियत्रण के प्रमुख क्षेत्र में दृढता के साथ कारंवाई करे, तो उसके प्रयास इसे नयी पहल प्रदान कर सकते है, जो इसकी अतीतकालीन सभी सफलताओ से बढ कर होगी।

यदि ऐसे उद्देश्यो की प्राप्ति के लिए प्रयत्न करना है तो संयुक्त राष्ट्र को सचमुच प्रभावशाली होने के लिए पर्याप्त व्यापक प्रतिनिधित्व प्राप्त होना चाहिए। सयुक्त राष्ट्र के प्रति दो विभिन्न रुखो ने, सदस्यता के लिए बीसियो से भी अधिक आवदेन-पत्रो पर, जिनको अभी तक ठुकरा दिया गया है, निर्णय नही करने दिया। एक रुख सयुक्त राष्ट्र को एक ही प्रकृति वाले राष्ट्रो का गुट्ट मानता है, जिनका प्राथमिक उद्देश्य कतिपय सीमित, किन्तु स्वीकृत राजनीतिक लक्ष्यो को सुरक्षित रखना है। इस दृष्टिकोण से, जिसका अनुसरण समय-समय पर रूस और अमरीका दोनो ने किया है, शीत-युद्ध में सहायक प्रतीत होने पर सयुक्त राष्ट्र का मान किया गया, अन्यथा उसका कोई मूल्य नही समझा गया।

दूसरा रुख सयुक्त राष्ट्र को एक सभामच के रूप मे मानता है, जिसका मुख्य भावी लाभ उसकी सदस्यता की सार्वभौमिकता मे निहित है, जहाँ विश्व-कार्य-सूची की वास्तविक समस्याओ पर विचार-विमर्श हो सकता है और प्रभावशाली ढग से उन्हे पूरा किया जा सकता है। कदाचित् तनाव के क्षीण होने की अवधि मे यह अधिक आशापूर्ण विकल्प अन्ततः मान्य हो सकता है।

सैंतीसवाँ प्रकरण

अवसर के अनुकूल कार्य

इस पुस्तक में हम देख चुके है कि शान्ति के नयी सीमाएँ बहुपक्षीय है। हम आणविक अस्त्रो से उस शान्तिपूर्ण विश्व की रचना नही कर सकते, जिसकी अत्यन्त आवश्यकता है। विश्वास, विचार और समझदारी के बिना हमारे डालर भी बिलकुल ही अपर्याप्त है। सगीन की नोको पर हम मुक्ति प्राप्त कर सकते है, किन्तु उसे खरीदने मे डालरो का प्रयोग नही कर सकते।

हम आणविक गतिरोध से शान्ति के प्रारम्भ तक भी नही पहुँच सकते, जब तक हम साधारण मानवता से समझौता नही कर लेते। मनुष्य केवल रोटियो के सहारे नही जीता। उसे न्याय चाहिए; उसे स्वतत्रता चाहिए; उसे बन्धुता चाहिए।

समझने के अपने प्रयत्न-स्वरूप हमें आज की विश्वक्रान्ति के मूल तत्व को प्रत्यक्ष देखने के लिए हमे साहस और कल्पना से काम लेना चाहिए और विश्वास-पूर्वक उसे अपना कहने का दावा करना चाहिए। १७७६ में स्वतत्रता-भवन मे इसका जन्म हुआ था और इसके लिए हमें क्षमाप्रार्थी होने का कोई कारण नही है। आज की भाँति भी उस समय उसका उद्देश्य मानव-मन और मस्तिष्क को हर प्रकार के अत्याचार से मुक्त करना था।

क्या आधुनिक अमरीका, अपनी समृद्धि और परिपक्वता की अवधि में विलियम जेम्स के शब्दो मे, "हमारी सुषुप्त क्रान्तिकारी प्रवृत्तियों" को सचेत कर सकता है? क्या हममें विश्व को दायित्वपूर्ण परिवर्तन के मार्ग से ले चलने की सामर्थ्य है? क्या हममें एक व्यापक और कल्पनाशील विश्वनीति को प्रारम्भ करने और उसे कायम रखने की सामर्थ्य है? क्या हम वाशिगटन में आवश्यक नेतृत्व का और जोन्सपोर्ट, टोरिगटन, एक्रौन और फोर्टवर्थ में आवश्यक जन-समर्थन का आवाहन कर सकते है?

हम इस भयानक चुनौती को अनेक लाभो के साथ सामना करते हैं। उनमें से अमरीकी उत्पादन क्षमता, यत्र, कुशलता और सम्पत्ति की क्रमिक अकात्मक तालिका है, जो प्राय अमरीकियो और विदेशियो, दोनो के लिए, अमरीकी सफलताओं और शक्ति का अन्तिम मापदण्ड प्रस्तुत करती है।

तथापि यदि यही अमरीकी शक्ति की पूर्ण माप होती, तो अगली पीढी में ही हमारा समाज टोयन्वी की इतिहास की चट्टानो पर चूर-चूर होनेवाली प्रारम्भिक सभ्यताओ की सूची मे आसानी से सम्मिलित हो सकता था। समकालीन पर्यवेक्षको के लिए असीरिया, रोम और नैपोलियन के साम्राज्य कभी उतने ही सर्वशक्तिमान प्रतीत हुए होगे, जितना आज अमरीका दिखायी पडता है।

परन्तु आधुनिक अमरीका बमो, वायुसेना, फौलाद के कारखानो और भीड से भरे राजपथो की सयुक्त शक्ति से कही अधिक है। यह राष्ट्र-निर्माण के लिए चार शताब्दियो से एक स्वतत्र राष्ट्र के सघर्ष की चरम सीमा है, जिसमे जीवन के अविच्छेद्य अधिकार, स्वतत्रता और सुख के प्रयास सुरक्षित होगे।

अमरीकी प्रजातत्र ने उस शाश्वत चुनौती को खुशी के साथ स्वीकार कर लिया है और हम परिणाम पर गर्व कर सकते है। हमारे जो परिवार आज भी अपने ऊपर अभिजातीयता की शान चढाये हुए है, कल उत्पन्न हुए और कल विलुप्त हो जायेगे। अमरीकी नेताओ की किसी भी प्रतिनिध्यात्मक सूची से प्रकट होता है कि, उनके पिता और पितामह, उनसे भिन्न, किसान, सीमान्त-रक्षक, मजदूर अथवा 'केबिन-बाय' (चौकी के लडके) थे और उन्होने अपनी अधिकतर निष्ठा, ईमानदारी और व्यक्तिगत योग्यता से ही ख्याति प्राप्त की थी।

पिछली शताब्दी में हमने तीन करोड प्रवासियो को आत्मसात कर लिया है और आज अमरीकियो मे विश्व के अक्षरश सभी जातीय, धार्मिक और राष्ट्रीय तत्वो का समावेश है। फ्रैंकलिन रुजवेल्ट ने एक बार "अमरीकी क्रान्ति की पुत्रियो" के समक्ष भाषण आरम्भ करते समय कहा था, "साथी प्रवासियो!"

अपने उत्पादन के फलो मे व्यापक भाग लेने की दिशा में हमारी निरन्तर प्रगति और इस भाग को प्राप्त करने के लिए राजनीतिक शक्ति का सफल प्रयोग, दोनो ही आर्थिक प्रजातत्र की दिशा मे सच्चे विकास को सिद्ध करते है।

यदि हम आराम चाहते है, तो हम कठिन श्रम के गौरव के प्रति अभी भी वचनबद्ध है। यदि हमारी धार्मिक चेतना प्राय उत्साहपूर्ण है, तो हम धर्म और राज्य को एक दूसरे से पृथक रखने मे भी उतने ही उत्साही है। हमारे साम्प्रदायिक आशावाद का मूल प्रगति मे हमारे विश्वास और सार्वजनिक दायित्व ग्रहण करने की हमारी इच्छा मे निहित है। जन-शिक्षण की हमारी

प्रणाली स्पष्टतः अमरीकी है और अधिकतर प्रजातान्त्रिकी आवश्यकताओ के साथ विचित्र ढग से बँधी हुई है।

एक स्वतत्र राष्ट्र के रूप में ऐसे मापदण्डो से नापी हुई हमारी सामर्थ्य बहुत अधिक है। हमारी उदारता और सहानुभूति हमारी निष्ठा और परिश्रम, स्वतन्त्रता मानवीय गौरव और शान्ति मे हमारा विश्वास—ये सभी ससार के उन करोड़ो लोगो को प्रभावित करते है, जो इन चीजो में विश्वास करते है और उन्हे चाहते है।

परन्तु इस बात से इन्कार करना ईमानदारी नही होगी कि, हमारे समाज में कुछ ऐसी गम्भीर दुर्बलताएँ पैदा हो गयी है, जो आज के विश्व में हमें बड़ी महँगी पड सकती है। इन दुर्बलताओ और उनके अभिप्रायो पर ध्यानपूर्वक विचार करना भी आवश्यक है।

यद्यपि हमारा जन्म क्रान्ति मे हुआ, और हमारी सख्या समुद्रपार से आनेवाले लोगो से निरन्तर बढती रही है, तथापि हममे से बहुतेरे विश्व के अधिकाश लोगो की आशाओ और अभिलाषाओ से दूर हो गये है।

यद्यपि हम भूमण्डल के सबसे अधिक साक्षर राष्ट्रो मे से है, तथापि शायद ही एक प्रतिशत अमरीकियो को एशिया, अफ्रीका और दक्षिणी अमरीका के इतिहास का प्रारम्भिक जानकारी से अधिक ज्ञान होगा, जहाँ मानवसमाज का बहुत बडा भाग रहता है और जहाँ भविष्य के रूप का निर्णय अधिकाशत किये जाने की सम्भावना है।

यद्यपि दूसरो की सहायता के लिए इतनी उदारता के साथ किसी अन्य राष्ट्र ने नही दिया, तथापि सार्वजनिक वक्तव्यो से हम प्राय लालची और स्वार्थी प्रतीत होते है।

यद्यपि हमारे राष्ट्र की रचना व्यक्ति की ईमानदारी और स्वाधीनता में हमारे विश्वास से हुई है, तथापि, विश्व के करोडो लोगो को विश्वास दिलाया गया है कि अब हमारी आस्था धन, सेना और दूसरो को उपदेश देने में ही रह गयी है।

यद्यपि विश्व की दो तिहाई जन-सख्या पीली अथवा काली है, तथा १८० वर्ष पूर्व हमारी स्वतत्रता के घोषणापत्र मे कहा गया था कि सभी मनुष्य बराबर पैदा हुए है, तथापि हमारा जातीय भेदभाव अभी तक समाप्त नही हुआ है।

यद्यपि ससार में हमारा जीवनस्तर सबसे ऊँचा है, तथापि हमारी वर्तमान समृद्धि का कुछ अश शीत-युद्ध-प्रतिरक्षा कार्यक्रमो पर भयानक रूप से

आधारित है।

यद्यपि युद्धकाल में हम प्राय कोई भी बलिदान देने को तैयार हैं, तथापि वास्तविक युद्ध के अभाव में, हममे से बहुतेरे उन चीजो के लिए बलिदान करने को तैयार नही दिखायी पडते, जिनसे युद्ध रोका जा सकता है।

यद्यपि अमरीकी मूलत आशावादी है, तथापि आणविक सघर्ष ने कभी-कभी हमको अशोभनीय भाग्यवादी बनने के लिए विवश कर दिया है।

यद्यपि साम्यवाद-विरोधी के वेश में हम बडे कट्टर लोकतात्रिक है, तथापि हमने अपने राष्ट्रीय मामलो में उन व्यवहारो को सहन किया है, जो पूर्व की इस कहावत को चरितार्थ करते है कि, विरोधी एक-दूसरे के अवगुण ग्रहण कर लेते हैं।

यद्यपि हमारे देश की जडें शिक्षा और ज्ञान के प्रति गहन सम्मान में दृढता के साथ जमी हुई है, तथापि घबडा कर हमने एक ऐसा आतकपूर्ण रुख अपना लिया है, जिसने हमारे अनेक विद्वानो को सतर्क और कल्पनाहीन बना दिया है, परान्वेषियो और दोषवेचको (सेन्सरो) के समक्ष हमारी स्वतत्रताओं को प्रतिरक्षा के आधार पर रखना पडा है और हमारे महान निजी सस्थानो की प्रतिष्ठा पर लापरवाही से आघात किया जाता है।

दुर्बलताओ की यह सूची हमारे विरुद्ध एक कठोर निर्णय के समान है। मैं इसको कम नही आँकना चाहता, क्योकि इसी पर विश्व हमारे सम्बंध में फैसला करता है। न इस पुस्तक के तर्क से मेरा यह अभिप्राय है कि १७७६ की हमारी समस्याओ और आज की विश्व-समस्याओ की जटिलताओ के बीच कोई अन्तर नही है। फिर भी मुझे पूरा विश्वास है कि अमरीकी क्रान्ति को नवीनता और दृढता प्रदान कर तथा विश्व के मामलो में सर्वप्रथम उसे केन्द्रित कर, एक जबर्दस्त राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक शक्ति बनाया जा सकता है, जो ससार के प्रत्येक स्त्री, पुरुष और बच्चे के जीवन को प्रभावित कर सकती है।

इस शक्ति के प्राप्त करने के अपने प्रयत्नो में हमारी मान्यताओ का गुण निर्णायक सिद्ध हो सकता है। वस्तुत. जिन मान्यताओ को हम स्वीकार करते है, उनके प्रति हमारे अभिवचन की मात्रा पर बहुत-कुछ अवलम्बित है।

जैसा कि हम देख चुके है, हमारे विदेशी श्रोता कुछ-कुछ संशायलु हैं। यह बात चारो ओर फैल गयी है कि अपनी परम्पराओ से हमारा सम्पर्क टूट गया है। इसलिए हमारा पुन अन्वेषण सच्चा होना चाहिए। यदि ऐसा नही होता,

तो हम जेफर्सन और लिंकन की भाँति चाहे जितना भी बोलने का प्रयास करें वह खोखला ही मालूम होगा और हमारे सभी प्रतिवाद धोखे की निशानी प्रतीत होगे। चालबाजी की दृष्टि से अमरीकी क्रान्तिकारी परम्पराओ की ओर झूठा प्रत्यागमन निश्चय ही असफल होगा।

'मनोवैज्ञानिक युद्ध' के सीमित उद्देश्यो के लिए नैतिक स्थितियो पर जोर देने और उन्हे अपने राष्ट्रीय जीवन का सर्वस्व मानकर उनका पालन करने मे जो अन्तर है वह निश्चय ही हथकण्डे और प्रमाणिकता, चाल और सत्य के बीच का अन्तर है। इस प्रकार हमारी निष्कपटता की कसौटी राजनैतिक भाषणो, टेलीविजन के तमाशो, और 'वायस आफ अमरीका' के प्रसारणो में अपने क्रान्तिकारी नारो का बार-बार दोहराना नही है, बल्कि मानव-समाज की समस्याओ पर हमारे दिन-प्रतिदिन का व्यवहार है। अमरीकी परराष्ट्रनीति में व्यक्तिगत अमरीकी नागरिक का जीवन भी इतना क्यो उलझा हुआ है, इसका यह भी एक कारण है। उसका उलझना जितना चुनौतीपूर्ण है, उतना ही परिणामजनक भी है।

आखिरकार, हमारी स्वतत्रता की घोषणा में स्पष्ट प्रजातत्र का विचार, घटनाओ के निर्माण की सामर्थ्य रखनेवाली मानवीय शक्ति का विचार था, यह सिद्धान्त कि किसी समाज की उत्पादक शक्तियाँ उस हद तक प्राप्त होती है, जिस हद तक प्रत्येक सदस्य जाति, पद, धर्म या वर्ग की चिन्ता किये बिना, सामान्य भलाई के लिए अपना विशिष्ट योगदान करने को स्वतंत्र हो और सामाजिक शालीनता के सामान्य स्तर के प्रति भी वह उतना ही दायित्वपूर्ण हो। इस दृष्टि से, लोकतत्र हमारे लिए तथा विश्व के लिए व्यापक भविष्य का मार्ग प्रशस्त करता है।

इस प्रकार प्रजातत्र को कार्यान्वित करने का उत्तरदायित्व बिखरा हुआ सामूहिक काम नही है। यह समान रूप से प्रत्येक व्यक्ति के कन्धो पर आश्रित है। धार्मिक स्वतत्रता की हमारी परम्परा की रक्षा करना कैथोलिक, प्रोटेस्टैन्ट और यहूदी लोगों का पवित्र कर्त्तव्य है, और उनका भी, जिनका एकमात्र विश्वास सत्य और भ्रातत्व में है। ये विश्वास हमें देश और विदेश में व्यापक समझदारी और श्रेष्ठतर नीतियो के योग्य बनाते हैं।

इस प्रकार हम अन्याय के प्रतिकार और अपेक्षाकृत एक अधिक स्वस्थ और सुखी समाज के सहयोगात्मक निर्माण में प्रत्येक अवसर से लाभ उठाते हैं। 'मेफ्लावर कम्पैक्ट' और 'स्वतत्रता के क्रान्तिकारी पुत्रों' के पूर्व के दिनो से

अमेरीका के पास ऐच्छिक सहकारी गतिविधियो की अद्वितीय परम्परा रही है। हमारा राष्ट्र सहयोगियो का रहा है, और हमें आशा है कि रचनात्मक ऐच्छिक सहयोग के प्रति हमारी प्रेरणा कभी नही मरेगी।

जो श्रम-आन्दोलन, उस आदर्शवाद से लज्जित नही है जिसमें उसका जन्म हुआ था, वह देश और विदेश में प्रजातान्त्रिक पुनर्जागरण के लिए संघर्ष करने में अधिक क्रियात्मक भाग ले सकता है। प्रत्येक दल, जिसने प्रवासियो, नीग्रो, गन्दी बस्तियो के निवासियो या अन्य अभागे लोगो की स्थितियो को सुधारने का संगठित प्रयास किया, न केवल अपने समाज में, अपितु समुद्रों, पर्वतो और लौहावरणो के पार, व्यक्ति के गौरव में दृढता के साथ अपनी आस्था व्यक्त कर सकता है।

गैरसरकारी अमरीकी नागरिक सर्वदा अपने देश के सर्वोत्तम राजदूत रहे है। सिगरेट बाँटते हुए या अनाथो से मित्रता करते हुए अमरीकी सैनिक (जी आई) कुछ विशिष्ट पदाधिकारियो की अपेक्षा अमरीकी शालीनता और उदारता के प्राय सच्चे प्रतिनिधि रहे है। विदेशो में अपने सम्बधियो के नाम अमरीकी प्रवासियो के पत्र, हमारे कितने ही राजनीतिज्ञो के सावधानी से तैयार किये गये वक्तयो की अपेक्षा, अमरीकी प्रजातंत्र का कही अधिक सही और प्रभावोत्पादक चित्र प्रस्तुत करते है।

उन अमरीकी प्रचारको, डाक्टरो तथा शिक्षको के आत्मत्याग ने, जिन्होने सारे विश्व की दलित जनता के साथ अपने-आपको मिला दिया और हजारों प्रकार से उनकी सहायता की, अनेक राष्ट्राध्यक्षो के भाषणो की अपेक्षा कहीं अधिक अमरीकी भावना का प्रतिनिधित्व किया है।

ये ही वे बाते हैं, जिन्हे हमने सम्राटो और तानाशाहो से आगे बढ़ कर, उनकी प्रजा के हृदय तक पहुँचने के लिए पहले की थी। यदि फिर से जागरूक अमरीकी परम्परा अमरीकी लोगो की चेतना को प्रभावित कर सके, तो हम अपने-आप ही विदेशो में और अधिक विश्वासोत्पादक रूप प्रस्तुत कर सकेंगे। यह एक स्वतत्र और क्रियाशील जनता का रूप होगा, जो दया और सहनशीलता के लिए बचनबद्ध है, क्योकि व्यक्ति के असीम मूल्य में उसका विश्वास असहमत होने के व्यक्तिगत अधिकार की रक्षा करता है।

एकतन्त्रवादी सिद्धान्त वास्तव में इस प्रकार एकागी प्रचारो में व्यस्त रहते है कि न तो हम उनका अनुकरण कर सकते है और न करेंगे। साम्यवाद राष्ट्रीय शक्ति-साधनो से समर्थित सुदृढ नेताओ के हाथो में एक सिद्धान्त है।

इसके विपरीत एक प्रकार से प्रजातत्र असिद्धान्तवादी है। विभिन्नता, विचार-विमर्श, और अल्पसख्यको के मत के प्रति आदर उसकी विशेषताएँ है। तथापि अमरीकी प्रजातत्र की सबसे बडी शक्ति सामान्य विश्वास की क्रियाशील भावना प्रदान करने की उसकी योग्यता रही है।

यदि हमारे राजनीतिक सभाषण का सुर कुछ ऊँचा हो जाय, तो दोनो दलो मे हमारे राजनीतिक नेता स्वय सार्वजनिक विचार-विमर्श के उस आवश्यक वातावरण मे योगदान करेगे, जहाँ दो दलो का होना एक नारे से अधिक सिद्ध होगा। कठिन प्रश्न पूछने के अपने आवश्यक लोकतान्त्रिक अधिकार को समर्पित किये बिना, राजनीतिक नेता, चाहे तो लचीली गतिशील नीतियो के निर्माण के लिए, दलगत सीमाओ को छोड कर एक साथ मिलकर कार्य कर सकते है। यही विश्वस्थिति की माँग है और यह अमरीकी जनता के जबर्दस्त बहुमत के समर्थन के बिना असभव है।

सबसे बडी चुनौती कदाचित् हमारी परराष्ट्र-नीति के सचालन मे प्रत्येक अमरीकी के जागरूक और उन्मुक्त ढग से भाग लेने की है। पेशेवर श्रेष्ठजनो की आवश्यकता मे न तो आँख मूंद कर मौन सम्मति और न इसके विपरीत, जारी रहने वाली राष्ट्रीय नगर-सभा का बिखरा हुआ विचार, आधुनिक प्रजातत्र के इस भारी धर्म सकट का कोई समाधान प्रदान करता है। इन दोनो छोरो में समन्वय स्थापित करना चाहिए। विशिष्ट योग्य नेतृत्व की माँग के लिए जनता को सतर्क रहना चाहिए, परन्तु एक बार उसे पाने पर उसका निष्ठा किन्तु आलोचना के साथ अनुसरण करने के लिए भी तैयार रहना चाहिए।

ऐसा करने के लिए परिपक्वता, राजनीतिक-सहिष्णुता और अन्य राष्ट्रो के साथ हमारे सम्बधो की जटिलताओ की व्यापक समझदारी की आवश्यकता है; परन्तु अमरीकी व्यक्तिगत रूप से स्वय इस मामले के बीच में है, और इसलिए चाहे भला हो या बुरा, उसकी पसन्द आखिरी होनी चाहिए। अपने विचारो को पक्का कर लेने पर कादचित् वह अधिक यथार्थवादी स्वीकारात्मक सदर्भ में, साम्यवाद के अपने भय को प्रस्तुत करेगा।

क्रेमलिन को सबसे अधिक भय इस बात का होना चाहिए कि हम अपने ऊपर साम्यवाद के सम्मोहन मत्र का उच्चाटन करेगे, निषेधात्मक उत्तरों के रूप में इसके प्रति अधिकतर सोचना बन्द कर देंगे, अपनी महान शक्ति की विस्तृत सीमाओं को समझेंगे और मानवता की आवश्यकताओ और उद्देश्यों की कुजी, विधेयात्मक नीतियो के समर्थन के लिए सगठित होगे।

यदि हमारी बडी सख्या इस आस्था के साथ रहे कि हम अपने भाई के रक्षक है, तो हम एक राष्ट्र के रूप में स्वय अपने लिए ऐसे शक्तिशाली उद्देश्यों की व्यवस्था करने लगेगे, जो 'युद्ध से शिक्षा' की बराबरी का काम करेंगे। जब हम एक बार विश्वव्यापी पैमाने पर वर्ग और युद्ध की समस्याओ का इस प्रकार समाधान करना प्रारम्भ कर देगे, तो उसके साथ-साथ हम यह भी पायेंगे कि हमने सम्भाव्य साम्यवाद का सही सम्भाव्य अन्तस्वेष्टन प्राप्त कर लिया है।

जो शताब्दी लेनिन, सुनयात सेन, गाँधी और विल्सन से प्रारम्भ हुई, निश्चय ही उसकी रचना विचारो से होनेवाली थी। मानव-मस्तिष्क के लिए सघर्ष आज तीव्र और कोलाहलपूर्ण हो गया है। मै विश्वास करता हूँ कि आज विश्व हमसे लिंकन की आत्मा की अपेक्षा करता है—और उस आत्मा को आंशिक रूप में पुन ग्रहण करके ही हम परिवर्त्तनशील नये विश्व का सफलतापूर्वक सामना कर सकते है।

२१ फरवरी, १८६१ को 'स्वतत्रता भवन' में लिंकन ने अमरीका के सन्देश को, सक्षिप्त रूप में इस प्रकार कहा था, "मेरी सभी राजनीतिक भावनाएँ उन भावनाओ से ली गयी हैं, जिनका जन्म इसी भवन में हुआ और यही से समस्त विश्व में जिनका प्रसार किया गया। यह केवल उपनिवेशों के मातृभूमि से पृथक होने का ही मामला नही था, बल्कि यह स्वतत्रता का घोषणा-पत्र था, जिसने न केवल इस देश के लोगो को स्वतत्रता प्रदान की, प्रत्युत भविष्य के लिए समस्त विश्व में आशा का सचार किया। इसने लोगो को आश्वस्त किया कि समय आने पर सभी लोगो के कन्धो से बोझ उतार दिया जायगा और सबको समान अवसर प्राप्त होगे।"

यदि हम लिंकन की प्रजातात्रिक आस्था का कुछ अश भी प्राप्त कर सकें, और उसे विश्व में लागू कर सकें, तो हम देखेंगें कि हमारी अमरीकी क्रान्ति अपने समस्त गतिशील अभिप्रायो में पुन जीवित हो उठी है और हम देखेंगे कि योरोप, एशिया, अफ्रीका और दक्षिणी अमरीका के लोग मित्रता की भावना और नये विश्वास के साथ अपने हाथ हमारी ओर बढाते हैं। तब आणविक विनाश का भय समाप्त हो सकता है और आंतक से उत्पन्न गत्यावरोध सम्भवत धीरे-धीरे शान्ति में विलीन हो जायगा।

समाप्त

परिशिष्ट

अटलांटिक चार्टर . १४ अगस्त १९४१ को अमरीकी राष्ट्राध्यक्ष, रूजवेल्ट और ब्रिटिश प्रधानमत्री, चर्चिल द्वारा, उत्तरी अटलाटिक सागर में एक जहाज पर से की गयी, सयुक्त विज्ञप्ति।

बी–५२ (B-52) : एक प्रकार का अमरीकी बमवर्षक यान।

बाल्कन स्टेट्स . युरोप में डेन्यूब नदी के दक्षिण में स्थित बाल्कन राष्ट्र–युगोस्लाविया, बल्गेरिया, ग्रीस, आल्बेनिया, रूमानिया और तुर्किस्तान।

सी आई ओ (CIO) (१) काग्रेस आफ इन्डस्ट्रियल आर्गेनिजेशन अक्टूबर १९३५ में स्थापित औद्योगिक सघटन की काग्रेस।
(२) कमिटी आफ इन्डस्ट्रियल आर्गेनिजेशन. औद्योगिक सघटन-समिति।

कम्यूनिस्ट मेनिफेस्टो साम्यवादी घोषणा-पत्र. सन् १८४८ में कार्ल मार्क्स और फ्रेडरिक एजल्स द्वारा प्रकाशित पुस्तिका।

कामिन्फार्म (Cominform) सन् १९४७ में व्यवस्थापित कम्यूनिस्ट सूचना केन्द्र।

कोलम्बो पावर्स (Colombo Powers) कोलम्बो राष्ट्र–पाकिस्तान, बर्मा, लका, इडोनेशिया व भारत।

कामिन्टर्न (Comintern) सन् १९१९ में व्यवस्थापित अन्तरराष्ट्रीय साम्यवादी सभा, जो १९४३ में विसर्जित कर दी गयी।

ड्रांग नाक ओस्टेन (Drang nach osten) पूर्व की ओर बढने की प्रवृति विस्तारवाद।

एन्क्लोजर एक्ट (बाड़ा अधिनियम) ब्रिटिश पार्लियामेन्ट द्वारा स्वीकृत वह कानून, जिसने इग्लेण्ड के रईसो को भू-स्वामी बना दिया और उन्हें अपनी अधिकृत जमीन पर घेरा डालने का अधिकार दिया।

ई डी सी (EDC) : योरोपियन डिफेन्स कम्यूनिटी : योरोप का प्रतिरक्षा-दल।

जी आई (GI) : अमरीकी सिपाही।

जी आई बिल आफ राइट्स (G I Bill of Rights) . द्वितीय विश्व-युद्ध के समय अमरीकी सैनिको के युद्ध-निवृत्त होने पर उन्हे पुन नागरिक जीवन मे स्थापित करने के लिए कुछ विशेष अधिकार विषयक विधेयक ।

आई एल–२८ (IL–28) रूसी जैट बमवर्षक विमान।

कुलाक–(Kulak) एक धनी किसान।

एम आई जी–१५ (MIG–15) . रूसी लडाकू जैट विमान।

मनरो डोक्ट्रीन (Monroe Doctrine) २ दिसम्बर १८२३ को राष्ट्रपति मनरो द्वारा अमरीकी काग्रेस को भेजे गये सदेश में स्पष्ट किया गया लेटिन अमरीकी विषयक उनका सिद्धात ।

नाटो (NATO North Atlantic Treaty Organisation) उत्तरी अटलाटिक सधि-सगठन।

एन के वी डी (NKVD) रूसी सुरक्षा पुलिस।

ओ ई ई सी (OEEC Organisation for European Economic Co-operation) योरोपीय आर्थिक सहयोग सस्था।

ओ एस एस (OSS Office of Strategic Services) अमरीकी सामरिक नीति-सेवा-कार्यालय।

सीटो (SEATO South East Asian Treaty Organisation) दक्षिण-पूर्वी एशिया संधि-सगठन।

एस एच ए एफ ई (SHAFE Supreme Headquarters of the Allied Forces in Europe) द्वितीय विश्व-युद्ध में जनरल आइसनहावर का हैडक्वार्टर ।

सनफेड (SUNFED Special United Nations Fund for Economic Development) . आर्थिक विकास के लिए सयुक्त राष्ट्र-सघ की निधि।

टी यू–४ (TU–4) रूसी एटोमिक बमवर्षक यान।

टी वी ए (TVA Tennessee Valley Authority) . १८ मई १९३३ के कानून द्वारा स्थापित टेनेसी घाटी फेडरल कारपोरेशन।

यूएन या यूनो (UN or UNO United Nations or United Nations Organisation) सयुक्त राष्ट्र अथवा सयुक्त राष्ट्र-सघ।

यू एन ए ई सी (UNAEC United Nations Atomic Energy Commission) सयुक्त राष्ट्र अणुशक्ति आयोग।

यूनेस्को (UNESCO : United Nations Educational, Scientific and Cultural Organisation) सयुक्त राष्ट्र की शैक्षणिक वैज्ञानिक एव सास्कृतिक सस्था।

यू एन जी ए (UNGA · United Nations General Assembly) सयुक्त राष्ट्र संघ की जनरल असैम्बली।

यू एन आई सी ई एफ (UNICEF · United Nations International Children's Emergency Fund) सयुक्त राष्ट्र की अन्तर-राष्ट्रीय सकटकालीन शिशु-निधि।

उनरा (UNRRA . United Nations Relief and Rahabilitation Administration) : संयुक्त राष्ट्र संघ का सहायता व पुनर्वास प्रशासन।

वी-ई डे (V–E Day · Day of Victory in Europe in World War II) द्वितीय विश्व-युद्ध में, योरोप में विजय का दिवस।

वी-जे डे (V–J Day) . द्वितीय विश्व-युद्ध मे, जापान द्वारा बिना शर्त किये गये आत्मसमर्पण का दिन।

वाइट हाउस (White House) अमरीका का राष्ट्रपति-भवन।

ह्वो (WHO : World Health Organisation) . विश्व-स्वास्थ्य-संस्था।

वर्ल्ड बेंक (World Bank) : अन्तर्राष्ट्रीय बेंक।